पद्मपुराण

रविषेणाचार्य

[द्वितीय भाग]

ज्ञान मन्दिर
न्यू सेण्ट्रल जूट मिल्स कम्पनी लिमिटेड,
बजबज, चौबीस परगना
की ओर से
श्री सिद्धचक्रविधान महोत्सव के
सानन्द सम्पन्न होने के उपलक्ष में
सादर भेंट

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क—२४]

श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतम्

पद्मपुराणम्

[पद्मचरितम्]

द्वितीयो भागः

हिन्दीभाषानुवादसहितः
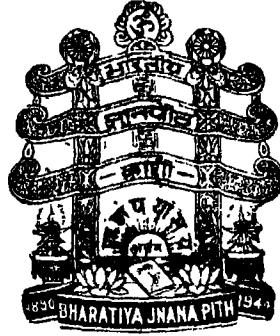
—सम्पादक—

पण्डित पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

भा र ती य ज्ञा न पी ठ, का शी

प्रथम आवृत्ति
११०० प्रति

माघ, वीर नि० २४८५
वि० सं० २०१५
फरवरी १९५९

मूल्य
दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ. हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक :— बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ६
वीर नि० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

JNĀNAPĪTHA MURTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ
SANSKRIT GRANTHA, No 24

PADAMA PURĀṆA

[VOL.II]

of

RAVISENACĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATĪON

EDITER

Pandit. PANNALAL JAN SAAITYĀCHARYA

Published by

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA KĀSHĪ

First Edition
1100 Copies

MAGHA VIRA SAMVAT 2485
V. S. 2015
FEBRUARY 1959

Price
Rs 10/-

BHARĀTĪYA JÑĀNAPĪTHA Kashi

FOUNDED BY

SAHU SHĀNTI PRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTI DEVĪ

BHĀRATĪYA JNĀNA-PĪTHA MŪRTI DEVĪ
JAIN GRANTHAMĀLĀ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC PHILOSOPHICAL, PAURAṆIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARĀS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED

General Editors
Dr. Hiralal Jain, M. A., D. Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Publisher
Ayodhya Prasad Goyaliya
Secy., Bharatiya Jnanapitha
Durgakund Road, Varanasi

Founded on
Phalguna krishna 9.
Vira Sam. 2470

Vikrama Samvat 2000
18 Febr. 1944.

विषयानुक्रमणिका

छब्बीसवाँ पर्व

सत्ताईसवाँ पर्व

अट्ठाईसवाँ पर्व

बत्तीसवाँ पर्व

तैंतीसवाँ पर्व

चौंतीसवाँ पर्व

राम वनमें विराजमान हैं और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते हैं। वहाँ हाथी पर चढ़ा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान द्वारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आतिथ्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अपना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अबतक कुमारके वेषमें रह रहा था। पूछने पर उसने इसकी आद्यन्तकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिखिल्य मेरे जन्मके पूर्वसे ही म्लेच्छ राजाके यहाँ कैद हैं। उनके अभावमें मैं कुमारका वेष रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम-लक्ष्मण-सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने म्लेच्छ-राजाको आज्ञाकारी बनाकर बालिखिल्यको बन्धन-मुक्त कराया। १२५–१३२

पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते-करते सीता थक जाती है। प्याससे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गाँवमें ले जाते हैं और सब क्रमप्राप्त कपिल ब्राह्मणकी यज्ञशालामें ठहर जाते हैं। ब्राह्मणीके द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है परन्तु उसी समय लकड़ियोंका भार शिर पर रखे हुए कपिल ब्राह्मण आता है और इन्हें अपनी यज्ञशालामें ठहरा देख ब्राह्मणीके प्रति रोषसे उबल उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हें घरसे निकलनेके लिए बाध्य करता है। उत्तेजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमें एक वट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते हैं। आकाशमें घनघटा उमड़ आती है। जोरदार वर्षा होने लगती है तथा राम-लक्ष्मण सीता असहायकी तरह पानीसे भींगने लगते हैं। यक्षपति अपने अवधिज्ञानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कपिल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रलुब्ध चित्त हो ब्राह्मणीके साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरजसे बैठकर रामका स्तवन करता है। राम उसे अपरिमित धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते हैं। अपकारके बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमें ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली। १३३–१४६

छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल बीतने पर जब राम उस यक्ष निर्मित रामपुरीसे चलने लगे तब यक्षराजने उनसे क्षमा माँगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी इन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणको चाहती थी पर उनके वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्य कुमारके साथ विवाह करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख, वनमाला आत्म-घातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियोंके साथ वनदेवीकी पूजाका बहाना कर वनमें गई और साथके सब लोगोंके सो जाने पर वह उत्तरीय वस्त्रकी फाँसी बना मरनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने छिपे छिपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राण-रक्षा की।

सैंतीसवाँ पर्व

अड़तीसवाँ पर्व

उनतालीसवाँ पर्व

चालीसवाँ पर्व

इकतालीसवाँ पर्व

बयालीसवाँ पर्व

तैंतालीसवाँ पर्व

चवालीसवाँ पर्व

पैंतालीसवाँ पर्व

छियालीसवाँ पर्व

सैंतालीसवाँ पर्व

अड़तालीसवाँ पर्व

सत्तावनवाँ पर्व

अट्ठावनवाँ पर्व

उनसठवाँ पर्व

साठवाँ पर्व

इकसठवाँ पर्व

बासठवाँ पर्व

तिरसठवाँ पर्व

चौसठवाँ पर्व

पैंसठवाँ पर्व

पद्मपुराणम्

श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षड्विंशतितमं पर्व

अतो जनकसम्बन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निवेदयामि यद्वृत्तं भवावहितमानसः[1] ॥१॥
भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदनं तस्याः प्रत्यैक्षत[2] चिरं सुरः ॥२॥
जगाद श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना । देवो ररक्ष विज्ञातुमेतदिच्छामि[3] शिष्यताम् ॥३॥
उवाच गौतमो राजा नाम्ना चक्रध्वजोऽभवत् । स्थाने चक्रपुराभिख्ये भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥
तयोश्चित्तोत्सवापत्यं कन्या गुरुगृहे च सा । रराज सितमृल्लेशैर्लेखनी वर्णपूरिका ॥५॥
[4]राज्ञः पुरोहितस्यास्य धूमकेशस्य पिङ्गलः । स्वाहाकुक्षिभवोऽधीते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥
विद्यालाभस्तयोर्नासीदन्योन्यहृतचेतसोः । विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽवहितात्मनाम् ॥७॥
पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसंभवः ॥८॥
सद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः प्रेमैवं पञ्चहेतुकम् । दुर्मोचं वध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी । उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमें गौतमस्वामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक चक्रध्वज नामका राजा था । उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई । वह कन्या गुरुके घर अर्थात् चाटशालामें खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित धूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पिङ्गल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पिङ्गल इन दोनोंका चित्त परस्परमें हरा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिर-चित्तवालोंको ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो छूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥

१. मानस म० । २. प्रत्यैक्षित म० । ररक्ष । ३. -मेतमिच्छामि म०, ज०, ख० । ४. राज्ञां म० ।

अथासौ ज्ञातसद्भावा तेन चित्तोत्सवा रहः । ह्रियतेस्म महारूपा कीर्तिर्दुर्यशसा यथा ॥१०॥
दूरं देशं [1]यदानायि तदाज्ञायि सुबन्धुभिः । हृता प्रमाददोषेण मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
कन्यया मुदितश्चौरः पिङ्गलो धनवर्जितः । न विभाति यथा लोभी तृष्णया धर्मवर्जितः ॥१२॥
विदग्धनगरं चाप दुर्गमं परराष्ट्रिणाम् । बहिः कृत्वा कुटीं तत्र तस्थौ निःस्वकपाटके[2] ॥१३॥
ज्ञानविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठादिविक्रयात् । अनुरक्षति तां पत्नीं मग्नो दारिद्र्यसागरे ॥१४॥
पुत्रः प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रभयंकरः । जातोऽत्र प्रवरावल्यां राजा कुण्डलमण्डितः ॥१५॥
तेन दृष्टान्यदा बाला निर्यातेन कथञ्चन । हतश्च पञ्चभिर्बाणैर्मारस्याभूत् सुदुःखितः ॥१६॥
प्रच्छन्नं प्रेषिता दूती तया रात्रौ नृपालयम् । यथासीत् कमलामेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥
तया सह सुखं रेमे प्रीतः कुण्डलमण्डितः । उर्वश्या सह संरक्तो यथासीन्नलकूबरः ॥१८॥
ततः स पिङ्गलाख्योऽपि श्रान्तः स्वगृहमागमत् । तामपश्यन् विशालाक्षीं मग्नो वैधुर्यसागरे ॥१९॥
विस्तीर्णेन किमुक्तेन सोऽयं विरहदुःखितः । न क्वचिल्लभते सौख्यं चक्रारूढ इवाकुलः ॥२०॥
हृतभार्यो द्विजो दीनस्तं राजानमुपागमत् । ऊचे चान्विष्य मे राजन् पत्नी केनापि चोरिता ॥२१॥
भीपितानां दरिद्राणामार्तानां च विशेषतः । नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं नृपः ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलको चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया। जिस प्रकार अपयशके द्वारा कीर्तिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवाका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोंको उसका पता चला। जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको चुरानेवाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकारकी धर्महीन लोभी मनुष्य तृष्णासे सुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोंका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्ध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहीं कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिए तृण, काष्ठ आदि बेंचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥

उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आई। देखते ही वह कामके पाँचों बाणोंसे ताड़ित होकर अत्यन्त दुःखी हो गया ॥१६॥ उसने गुप्तरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतीने उसे रात्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुखकी दूतीने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलकूबर उर्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल थका-माँदा अपने घर आया तो उस विशाल लोचनाको न देखकर दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि अधिक कहनेसे क्या? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रारूढ़की तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गई थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाके पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन्! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र

---

१. यथानायि म० । २. निस्वकपाटकः म० ।

अमात्यं धूर्तमाहूय[1] समायं पार्थिवोऽब्रवीत् । चिराय मा कृथा माम जायास्यान्विष्यतामिति ॥२३॥
जगादेति च तत्रैकः सविकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पौदनस्थानवर्त्मनि ॥२४॥
क्षान्त्यार्यावृन्दमध्यस्था[2] तपः कर्तुं समुद्यता[3] । विनिवर्तय तां क्षिप्रं किं विरौषि व्रज द्विज ॥२५॥
को वा प्राव्रज्यकालोऽस्या दधत्यास्तरुणीं तनुम् । वरस्त्रीगुणपूर्णाया हरन्त्यास्तरुणं जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्थाय बद्ध्वा परिकरं दृढम् । दधाव रंहसा विद्धो भ्रष्टाश्वतरको यथा ॥२७॥
पौदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । अदृष्ट्वा पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्ञया नरैः क्रूरैर्गलघातैः स तर्जनैः । यष्टिलोष्टप्रहारैश्च दूरं निर्वासितो भृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परिक्लेशमवमानं वधं तथा । अनुभूय परं दीर्घमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥
रतिं न लभते क्वापि रहितः प्रियया तया । शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽग्नाविवोरगः ॥३१॥
विशालपङ्कजवनं दावाग्निमिव पश्यति । सरोऽपि [4]गाहमानोऽसौ दह्यते विरहाग्निना ॥३२॥
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारे[5] ददर्श [6]गगनाम्बरम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्तं[7] च समेत्य रचिताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसा हृष्टो धर्मं शुश्राव तत्त्वतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशशंस जिनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
अहो परममाहात्म्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो भास्कर इवोदितः ॥३६॥

तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्तमन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्रीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्रीको तो पथिकोंने पोदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ वह आर्यिकाओंके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोंको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पोदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोंमें अपनी स्त्रीकी बहुत खोज की । जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापिस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें धिया देकर नाना प्रकारकी डाँट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थान भ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ स्त्रीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था । वह अग्निमें पड़े हुए साँपके समान रात-दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनको दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रवेश करते समय विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा । एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिगम्बर आचार्यको देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनिराजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिनशासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन भगवान्के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभावसे सहित है । मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । २. मध्यस्थां म० । ३. समुद्यतां म० । ४. ग्राहमानो म० । ५. दूरे ज०, क०, ख० । दूरं म० । ६. दिगम्बरमुनिम् । ७. -मर्यगुप्तिं च म० ।

प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणां शासनं पापनाशनम् । देहं निर्वापयाम्यद्य दग्धं विरहवह्निना ॥३७॥
ततः संवेगमापद्य [1]गुरुणाभ्यनुमोदितः । कृत्वा परिग्रहत्यागं दीक्षां दैगम्बरीमितः[2] ॥३८॥
तथापि विहरन् क्षोणीं सर्वसङ्गविवर्जितः । [3]चित्तोत्सवासमुत्कण्ठां जातुचित्प्रत्यपद्यत[4] ॥३९॥
सरित्पर्वतदुर्गेषु श्मशानेष्वटवीषु च । वसन् स परमं चक्रे तपो विग्रहशोषणम् ॥४०॥
न यस्य [5]जलदध्वान्ते काले खेदं गतं मनः । हेमन्ते हिमपङ्केन वपुर्यस्य न कम्पितम् ॥४१॥
[6]पूष्णो यस्य करैरुग्रैस्तापोऽणुरपि नो कृतः । स्मृत्वासीदत् सतां जातु स्नेहस्य किमु दुष्करम् ॥४२॥
दह्यमानं तथाप्येष शरीरं विरहाग्निना । पुनर्विध्यापयज्जैनवचनो[7]दकसीकरैः ॥४३॥
अर्धदग्धतरुच्छायं तत्तस्य वपुरागतम् । रमणीस्मरणेनोग्रतपसा च निरन्तरम् ॥४४॥
आस्तां तावदिदं वक्ष्ये [8]मण्डितस्याधुनेहितम्[9] । कथा ह्यन्तरयोगेन स्थिता रत्नावली यथा ॥४५॥
अनरण्ये च राज्यस्थे वृत्तमेतन्निबुध्यताम् । कथानुक्रमयोगेन कथ्यमानमतः शृणु ॥४६॥
स्थानं दुर्गं समाश्रित्य मण्डितेन वसुन्धरा । [10]विराधितानरण्यस्य कुशीलेन यथा स्थितिः[11] ॥४७॥
देशा उद्वासिता तेन दुर्जनेन गुणा यथा । विरोधिताश्च सामन्ताः कषाया[12] इव योगिना ॥४८॥
नाशक्नोदनरण्यस्तं गृहीतुं क्षुद्रमप्यलम् । [13]आखोर्गिरिविलस्थस्य किं करोतु[14] मृगाधिपः ॥४९॥

उदित हुआ है ॥३६॥ मैं पापको नष्ट करनेवाले जिनशासनको प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्निसे जले हुए इस शरीरको आज शान्त करता हूँ ॥३७॥ तदनन्तर संवेगको प्राप्त हो तथा गुरुकी आज्ञा लेकर उसने परिग्रहका त्याग कर दिया और दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ॥३८॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवाके विषयमें उत्कण्ठित हो जाता था ॥३९॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, श्मशान और अटवियोंमें निवास करता हुआ वह शरीरको सुखानेवाला परम तपश्चरण करता था ॥४०॥ मेघोंसे अन्धकारपूर्ण वर्षाकालमें उसका मन खेदको प्राप्त नहीं होता था और न हेमन्त ऋतुमें हिमके पङ्कसे उसका शरीर कम्पित होता था ॥४१॥ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे उसे थोड़ा भी सन्ताप नहीं होता था। वह सदा सत्पुरुषोंका स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर अर्थात् कठिन है ? ॥४२॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्नि से जलता रहता था जिसे वह जिनेन्द्र भगवान्के वचनरूपी जलके छींटोंसे पुनः-पुनः शान्त करता था ॥४३॥ इस प्रकार निरन्तर होनेवाले स्त्रीके स्मरण तथा उग्र तपश्चरणसे उसका वह शरीर अधजले वृक्षके समान काला हो गया था ॥४४॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि अब यह कथा रहने दो। इसके बाद कुण्डलमण्डित की कथा कहता हूँ सो सुनो ! यथार्थमें जिस प्रकार रत्नावली बीच-बीचमें दूसरे रत्नोंके अन्तरसे निर्मित होती है उसी प्रकार कथा भी बीच-बीचमें दूसरी-दूसरी कथाओंके अन्तरसे निर्मित होती है ॥४५॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्यमें स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समय की यह कथा है सो कथाके अनुक्रमसे कही जानेवाली इस अवान्तर कथाको सुनो ॥४६॥ कुण्डलमण्डित दुर्गम गढ़का अवलम्बन कर सदा अनरण्यकी भूमिको उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुलकी मर्यादाको विराधित करता रहता है ॥४७॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणोंको उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्यके बहुतसे देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायोंका अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुतसे सामन्तोंका अवरोध कर दिया ॥४८॥ यद्यपि वह क्षुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़नेके लिए समर्थ नहीं हो

१. गुरुणात्यनुमोदितः म० । २. प्राप्तः । ३. चित्तोत्सवां समुत्कण्ठां म० । ४. प्रतिपद्यत म० । ५. जलधैर्ध्वान्ते म० । ६. पूष्णोर्यस्य म० । ७. वचनोत्कर -म० । ८. कुण्डलमण्डितस्य । ९. हितः ख० । १०. विरोधितानरण्यस्य । ११. स्थितेः म० । १२. कषाय इव म० । १३. मूषकस्य । १४. करोति म० ।

नक्तंदिवमशुष्यत् स [1]तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शारीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥५०॥
ततोऽसौ बालचन्द्रेण सेनान्या जात्वभाष्यत । उद्विग्न इव कस्मात्त्वं सततं नाथ लक्ष्यसे ॥५१॥
उद्वेगकारणं भद्र मम मण्डितकः परम् । इत्युक्ते बालचन्द्रेण प्रतिज्ञेयं समाश्रिता ॥५२॥
[2]राजन्नसाधयित्वा तं [3]पापं मण्डितकं तव । सकाशं नागमिष्यामि व्रतमेतन्मया कृतम् ॥५३॥
इति राज्ञः पुरः कृत्वा संगरं रोषमुद्वहन् । बलेन चतुरङ्गेण सेनानीर्गन्तुमुद्यतः ॥५४॥
चित्तोत्सवा समायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेष्टितः । प्रमादबहुलो भिन्नमूलभृत्यपक्षतायतिः ॥५५॥
अज्ञातलोकवृत्तान्तो मण्डितः खण्डितोद्यमः । हेलया बालचन्द्रेण गत्वा बद्धो मृगो यथा ॥५६॥
गृहीतबलराज्यं तं निर्वास्य [4]विषयात् कृती । बालचन्द्रोऽनरण्यस्य समीपं पुनरागमत् ॥५७॥
ततस्तेन सुभृत्येन कृतसुस्थवसुन्धरः । परं प्रमोदमापन्नोऽनरण्यः सुखमन्वभूत् ॥५८॥
शरीरमात्रधारी तु मण्डितः पादचारकः । पर्यटन् धरणीं दुःखी पश्चात्ताप समाहतः ॥५९॥
परिप्राप्याश्रमपदं श्रमणानां महात्मनाम् । नत्वा च शिरसाचार्यं धर्मं पप्रच्छ भावतः ॥६०॥
दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः । व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मधीः ॥६१॥
प्राव्रज्ये यस्य भगवन् शक्तिर्जन्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्मः कश्चिन्न विद्यते ॥६२॥

सका। सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के बिलमें स्थित चूहेका सिंह क्या कर सकता है? ॥४९॥ वह रात-दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूखता जाता था। भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥५०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ! आप सदा उद्विग्न-से क्यों दिखाई देते हैं? ॥५१॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र! मेरे उद्वेगका परम कारण कुण्डलमण्डित है। राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन्! 'पापी कुण्डलमण्डितको वश किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा' मैंने यह व्रत लिया है ॥५२-५३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरङ्ग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्सवामें जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सब चेष्टाएँ छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था। उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे। लोकमें कहाँ क्या हो रहा है? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। सब प्रकारका उद्यम छोड़कर वह एक स्त्रीमें ही आसक्त हो रहा था। सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जाकर उसे मृगकी भाँति अनायास ही बाँध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्य पर अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापिस आ गया ॥५७॥ इस प्रकार उस उत्तम सेवकके द्वारा जिसकी वसुधामें पुनः सुख-शान्ति स्थापित की गई थी ऐसा अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था। ऐसी दशामें वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था। सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥५९॥ एक दिन वह भ्रमण करता दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा। वहाँ आचार्य महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः धर्ममें लगती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन्! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तत्परो जय म०। २. हे राजन्! असाधयित्वा = तं स्ववशमकृत्वा। ३. पापमहितकं ख०। ४. देशात्।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतुःसंज्ञापरायणः । एतदिच्छामि विज्ञातुं प्रसीद व्याकुरुष्व मे ॥६३॥
गुरुः प्रोवाच वचनं धर्मः प्राणिदया स्मृता । मुच्यन्ते देहिनः पापैरात्मनिन्दाविगर्हणैः ॥६४॥
हिंसायाः कारणं घोरं शुक्रशोणितसंभवम् । पिशितं मा भक्षय त्वं शुद्धं चेद्धर्ममिच्छसि[1] ॥६५॥
प्राणिनां मृत्युभीरूणां मांसैश्चर्मप्रसेविकाम्[2] । पूरयित्वा ध्रुवं याति नरकं पापमानवः ॥६६॥
शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्ग[3]ग्रहणादिभिः । नास्ति संधारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिणः ॥६७॥
तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिनः । नरकान्न परित्राणं कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥
सर्वजातिगता जीवा बान्धवाः पूर्वजन्मसु । स्युरमी भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥
पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति [4]परिपन्थं च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादपि [5]क्रूरां मधुमांसाद् गतिं व्रजेत् ॥७०॥
न वृक्षाज्जायते मांसं नोद्भिद्य धरणीतलम् । नाम्भसः पद्मवच्चापि सद्द्रव्येभ्यो यथौषधम् ॥७१॥
पक्षिमत्स्यमृगान् हत्वा वराकान् प्रियजीवितान् । क्रूरैरुत्पाद्यते मांसं तन्नाश्नन्ति दयापराः ॥७२॥
[6]स्तन्येन वर्धितं [7]यस्या शरीरं तां मृतां सतीम् । महिषीं मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमाः ॥७३॥
माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥७४॥
इतः क्ष्मापटलं मेरोरधस्तात् सप्तकं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवनवासिनः ॥७५॥
सकषायं तपः कृत्वा जायन्ते तत्र देहिनः । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विताः ॥७६॥

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६२॥ अथवा चारों संज्ञाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइये ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नाङ्कित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गर्हा आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका भयंकर कारण तथा शुक्र और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुँडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेष धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यकी रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं हैं ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं । अतः मांसभक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न ओषधिके समान किन्हीं उत्तम द्रव्योंसे उत्पन्न होता है । किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्टकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयोंका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियाँ हैं उनमें से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासी देव रहते हैं । जो मनुष्य कषायसहित तप करते हैं । वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव कहलाते

१. -मृच्छसि म० । २. उदरदरीम् । ३. विविधलिङ्गधारणैः । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् । ५. क्रूरान् म० । ६. शल्येन म० । ७. यस्यां म० ।

अधस्तस्याः क्षितेरन्या दारुणः षट् च भूमयः । नारका यासु पापस्य भुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥७७॥
कुरूपा दारुणारावा दुःस्पर्शा ध्वान्तपूरिताः । उपमोज्झितदुःखानां कारणीभूतविग्रहाः ॥७८॥
कुम्भीपाकाख्यमाख्यातं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा [1]शाल्मली क्रूरकण्टका ॥७९॥
असिपत्रवनच्छन्नाः क्षुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलदग्निनिभास्तीक्ष्णलोहकीला निरन्तराः ॥८०॥
तेषु ते तीव्रदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादा[2] घातकाश्चासुधारिणाम् ॥८१॥
नास्त्यर्धाङ्गुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । क्रियते नारकैर्यत्र निमेषमपि विश्रमः ॥८२॥
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम इति ध्यात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैरमरैश्च ते ॥८३॥
ज्वलदङ्गारकुटिले दग्धा मत्स्या इवानिले । विरसं विहिताक्रन्दा विनिःसृत्य कथञ्चन ॥८४॥
नारकाग्निभयग्रस्ताः प्राप्ता वैतरणीजलम् । [3]चण्डक्षारोर्मिभिर्भूयो दह्यन्ते वह्नितोऽधिकम् ॥८५॥
असिपत्रवनं यातारछायाप्रत्याशया द्रुतम् । पतद्भिस्तत्र दार्यन्ते चक्रखड्गगदादिभिः ॥८६॥
विच्छिन्ननासिकाकर्णस्कन्धजङ्घादिविग्रहाः । कुम्भीपाके[4] नियुज्यन्ते [5]वान्तशोणितवर्षिणः ॥८७॥
प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु क्रूरारावेषु विह्वलाः । पुनः शैलेषु भिद्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्वराः ॥८८॥
उल्लङ्घ्यन्तेऽतितुङ्गेषु पादपेष्वन्धकारिषु । ताड्यन्ते मुद्गराघातैर्महद्भिर्मस्तके तथा ॥८९॥
जलं प्रार्थयमानानां तृष्णार्तानां प्रदीयते । ताम्रादिकललं तेन दग्धदेहाः सुदुःखिताः ॥९०॥

हैं तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते हैं ॥७५-७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियाँ और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते हैं ॥७७॥ वे नारकी कुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोंके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटोंसे युक्त शाल्मली वृक्ष है॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा छुरोंकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥८१॥ वहाँ अर्ध-अङ्गुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वहीं पर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़ कर विरस शब्द करते हैं। यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरङ्गोंके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, खड्ग, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जङ्घा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भी-पाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदिमें भर कर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोल्हुओंमें उन विह्वल नारकियोंको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देने वाले बहुत ऊँचे वृक्षों पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा बड़े-बड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्यासले पीड़ित होकर पानी माँगते

१. शाल्मली क्रूरकण्टका क०। २. मांसादिघातका म०। ३. चन्द्र म०। तीव्र ब०। ४. पाकेन युज्यन्ते। ५. चान्त म०। वात ब०।

ब्रुवते नास्ति तृष्णा न इत्यतोऽपि बलादमी । पाय्यन्ते तदतिक्रूरैः संदंशव्यावृताननाः[2] ॥९१॥
प्रपात्य[3] भूतले भूयो वक्षस्याक्रम्य[4] दीयते । पादः क्रूरवचोभिस्तैस्तेषां कल्मषकर्मणाम्[5] ॥९२॥
तेषां निर्दग्धकण्ठानां दह्यते हृदयं पुनः । निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति[6] निर्भिद्य जठरं सह ॥९३॥
परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका यत्प्रपद्यन्ते कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥९४॥
इति ज्ञात्वा महादुःखं नरके मांससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥९५॥
अत्रान्तरे जगादैवं कुण्डलत्रस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्दृश्यते वद ॥९६॥
गुरुरूचे न यो मांसं खादत्यतिदृढव्रतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥९७॥
उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमतः । मांसमुक्तेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी ॥९८॥
यः पुनः शीलसम्पन्नो जिनशासनभावितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणी सौधर्मादिषु जायते ॥९९॥
अहिंसा प्रवरं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसान्निवृत्तस्य जायतेऽत्यन्तनिर्मला ॥१००॥
दयावान् सङ्गवान् योऽपि म्लेच्छश्चाण्डाल एव वा । मधुमांसान्निवृत्तः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥१०१॥
मुक्तमात्रः स पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा[7] ॥१०२॥
सम्यग्दृष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्भोगान् ध्रुवं[8] स्वर्गनिवासिनाम् ॥१०३॥

हैं उनके लिए तामा आदि धातुओंका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं ॥९०॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जबर्दस्ती संडाशीसे मुँह फाड़ कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥९१॥ पाप करने वाले उन नारकियोंको जमीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दुष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोंसे रूँदते हैं ॥९२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं। यही नहीं पेट फोड़ कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥९३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त कराते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥९४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमें महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥९५॥

इसी बीचमें जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंकी क्या गति होती है सो कहिये ॥९६॥ इसके उत्तरमें गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढ़तासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥९७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह उपवासादिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमें रहती है ॥९८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गोंमें उत्पन्न होता है ॥९९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गई है। जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥१००॥ जो परिग्रही म्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥१०१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥१०२॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह

१. अस्माकम् । २. व्यावृताननः म० । ३. प्रयात्य म० । ४. वक्षस्याक्रम म० । ५. ९२–९३ श्लोकयोरयं पाठः 'ब' पुस्तकसंमतः । पुस्तकान्तरेषु त्वित्थं पाठोऽस्ति 'प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रमदीयते । तेषां निर्दग्धकण्ठानां दह्यते हृदयं पुनः॥९२॥ निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य जठरं सह । ज्वलता कललेनाशु तेषां कलुषकर्मणाम् ॥९३॥ ६. अंत्राणि । ७. यथा म० । ८. विभुः क०, ख०, ग० ।

इत्याचार्यस्य वचनं श्रुत्वा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्त्या रहितोऽणुव्रतेष्वपि ॥१०४॥
प्रणिपत्य गुरुं मूर्ध्ना मधुमांसविवर्जनम् । जग्राह शरणोपेतं समीचीनं च दर्शनम् ॥१०५॥
कृत्वा चैत्ये[1] नमस्कारं गुरोर्दिग्वाससां तथा । निष्क्रान्तः स[2] ततो देशादिति चिन्तामुपागतः ॥१०६॥
मातुः सहोदरो भ्राता कृतान्तसमविक्रमः । ध्रुवं मे सीदतः सोऽयं भविष्यत्यवलम्बनम् ॥१०७॥
राजा भूत्वा पुनः शत्रुं जेष्यामीति सुनिश्चितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽसावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
श्रमादिदुःखपूर्णस्य व्रजतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुर्व्याधयो देहे पापैरन्यभवार्जितैः ॥१०९॥
सन्धिषु च्छिद्यमानेषु भिद्यमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽत्राणं[3] मरणं तस्य ढौकितम् ॥११०॥
मुञ्चते समये [4]यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव च्यवते देवः[5] शेषपुण्याद्दिवश्च्युतः ॥१११॥
गर्भे च[6] तौ विदेहाया विधिना परियोजितौ । [7]पश्य कर्मानुभावस्य विचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
एतस्मिन्नन्तरे साधु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
भवनेऽवधिना स्मृत्वा धर्मस्य च फलोदयम् । दध्यौ चित्तोत्सवा क्वेति तावज्ज्ञे यथाविधि ॥११४॥
दुष्टया किं तया कृत्यं क्वासौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुरां विरहार्णवे ॥११५॥
पत्न्यां जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इत्यसौ ॥११६॥
सूतां तावदियं देवी युगलं किं ममानया । गर्भद्वितययोगिन्या मृतयास्ति प्रयोजनम् ॥११७॥

निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिरसे राजा होकर निश्चित ही शत्रुको जीतूँगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६–१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था । बीचमें पूर्वभवमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियाँ छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी । अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डलमण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥ भाग्यवश वे दोनों ही जीव राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए । गौतमस्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मोदयकी यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है ? वह कुण्डलमण्डित कहाँ है जिसने मुझे विरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त कराई थी ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनककी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा

१. चैत्यनमस्कारं ब० । २. सततं ख० । ३. न विद्यते त्राणं यस्मात्तत्, ब० पुस्तके टिप्पणम् । ४. तस्मिन् म० । ५. देवी शेषपुण्याद्दिवः सती ब० । ६. चित्तौ म० । ७. यस्य म० ।

ततो निर्लुठितं सन्तं पापं मण्डितकं ध्रुवम् । नेष्यामि यदहं दुःखं तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥
इति संचिन्तयन् क्रुद्धः पूर्वकर्मानुबन्धतः । देवो रक्षति तं गर्भं संमृदन्पाणिना करम् ॥११९॥
इति ज्ञात्वा क्षमं कर्तुं दुःखं जन्तोर्न कस्यचित् । कालव्यवहितं तद्धि कृतमात्मन एव हि ॥१२०॥
कालेनाथ सुतं देवी प्रसूता युगलं शुभम् । सुतं दुहितरं चान्ते जहार पृथुकं[1] सुरः ॥१२१॥
आस्फाल्य मारयाम्येनं शिलायां पूर्वमण्डितम् । इति ध्यातं पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
धिङ्मया चिन्तितं सर्वं संसारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथं बुधः ॥१२३॥
तृणस्यापि पुरा दुःखं [2]श्रामण्ये न कृतं मया । सर्वारम्भनिवृत्तेन [3]तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥
गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं द्युतिमाप्तोऽस्मि करोमि दुरितं कथम् ॥१२५॥
स्वल्पमप्यर्जितं पापं व्रजत्युपचयं परम् । निमग्नो येन संसारे चिरं दुःखेन दह्यते ॥१२६॥
निर्दोषभावनो यस्तु दयावान् सुसमाहितः । स्थितं करतले तस्य रत्नं सुगतिसंज्ञकम् ॥१२७॥
घृणावान् संप्रधार्येदं तमलंकृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णयोरस्य चक्रे दीप्तांशुमण्डले ॥१२८॥
पर्णलघ्वीं ततो विद्यां संक्रमय्य शिशौ सुरः । सुखदेशे विमुच्यैनं गतो धाम मनीषितम् ॥१२९॥

मरणको प्राप्त होगी इसलिए यह युगल सन्तानको उत्पन्न करे पीछे देखा जायगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊँगा ॥११७–११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दुःख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमें वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पछाड़कर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह वह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे संसार (जन्म-मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥ पूर्वभवमें मुनि अवस्थामें जब मैं सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी काँवरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दुःख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसाद से अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अतः अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम वृद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागरमें निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःखसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है जो दयालु है और जो अपने परिणामोंको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमें दया उत्पन्न हो गई जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमें देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहिनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलघ्वी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

१. बालकं 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । २. श्रामण्येन म० । ३. तपो-विविध-म० ।

नक्तं शक्त्या स्थितेनासावुद्याने नभसः पतन्। विद्याभृतेन्दुगतिना ददृशे सुखभाजनम् ॥१३०॥
उडुपातः किमेष स्याद् विद्युत्खण्डोऽथवा च्युतः। वितर्क्येति समुत्पत्य ददृशे पृथुकं शुभम् ॥१३१॥
गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्याः पुष्पवतीश्रुतेः। वरशय्याप्रसुप्ताया[1] जङ्घादेशे चकार सः ॥१३२॥
ऊचे[2] चैतां[3] द्रुतस्वान उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि। किं शेषे बालकं पश्य संप्रसूतासि शोभनम्[4] ॥१३३॥
ततः कान्तकरस्पर्शसौख्यसंपत्प्रबोधिता। शय्यातः सहसोत्तस्थौ सा विघूर्णितलोचना ॥१३४॥
अर्भकं च ददर्शातिसुन्दरं सुन्दरानना। तस्यास्तदंशुजालेन निद्राशेषो निराकृतः ॥१३५॥
परं च विस्मयं प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना। कयायं जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया शिशुः ॥१३६॥
सोऽवोचद्दयिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः। प्रतीहि संशयं मा गास्त्वत्तो धन्या परा तु का ॥१३७॥
सावोचत्प्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसंभवः। प्रतारितास्मि दैवेन किं मे [5]भूयः प्रतार्यते ॥१३८॥
सोऽवोचद्देवि मा शङ्कां कार्षीः कर्मनियोगतः। प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसंभवः ॥१३९॥
सावोचदस्तु नामैवं कुण्डले त्वतिचारुणी[6]। ईदृशी मर्त्यलोकेऽस्मिन् सुरत्ने भवतः कुतः ॥१४०॥
सोऽवोचद्देवि नानेन विचारेण प्रयोजनम्। शृणु तथ्यं पतन्नेष गगनादाहृतो मया ॥१४१॥
[7]मयानुमोदितस्तेऽयं सुतः सुकुलसंभवः। लक्षणानि वदन्त्यस्य महापुरुषभूमिकम् ॥१४२॥
श्रमं कृत्वापि भूयांसं भारमूढ्वा च गर्भजम्। फलं तनयलाभोऽत्र तत्ते जातं सुखं प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पड़ते हुए सुखके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है? अथवा कोई बिजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योंही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचमें ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुष्पवती रानी की जाँघों के बीचमें रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि! उठो, क्यों सो रही हो? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त-स्पर्शसे उत्पन्न सुखरूपी सम्पत्तिसे जाग्रत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥ ज्योंही उस सुन्दरमुखीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योंही उसकी किरणोंके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गई ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्रीने उत्पन्न किया है? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है। विश्वास रक्खो, संशय मत करो, तुमसे बढ़ कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय! मैं तो बन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है? मैं दैवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गई हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि! शङ्का मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियोंके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह तो बताओ कि इसके कुण्डल लोकोत्तर क्यों है? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये? ॥१४०॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि! इस विचारसे क्या प्रयोजन है? जो सत्य बात है सो सुनो। यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाभ रूप ही होता है। सो हे प्रिये! तुम्हें यह फल

१. प्रसुप्तायां म०। २. चैतां क० म०। ३. हुतस्वान म०। ४. शोभिनम् म०। ५. भूप म०। ६. त्वतिचारिणी म०। ७. मया तु मोदित म०।

कुक्षिजातोऽपि पुत्रस्य यः कृत्यं कुरुते न ना[1]। अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४४॥
तव सोऽयमपुत्रायाः सति पुत्रो भविष्यति। [2]अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि शोभने॥१४५॥
एवमस्त्विति संभाष्य देवी सूतिगृहं गता। प्रभाते सुतजन्मास्यास्तुष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
ततो जन्मोत्सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथनूपुरे। संप्रवृत्तः समागच्छद् विस्मिताशेषबान्धवः ॥१४७॥
रत्नकुण्डलभानूनां मण्डलेन यतो वृतः। प्रभामण्डलनामास्य पितृभ्यां निर्मितं ततः ॥१४८॥
अर्पितः पोषणायासौ धात्र्या लीलामनोहरः। सर्वान्तःपुरलोकस्य करपद्ममधुव्रतः ॥१४९॥
विदेहा तु हृते पुत्रे कुररीवत्कृतस्वना। बन्धूनपातयत् सर्वान् गम्भीरे शोकसागरे ॥१५०॥
परिदेवनमेवं च चक्रे चक्राहतेव सा। हा वत्स केन नीतोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
विघृणस्य कथं तस्य पापस्य प्रसृतौ करौ। अज्ञानं जातमात्रं त्वां गृहीतुं [3]ग्रावचेतसः ॥१५२॥
पश्चिमाया इवाशायाः संध्येवेयं सुता मम। स्थिता स तु परिप्राप्तो मन्दायाः पूर्ववत्सुतः ॥१५३॥
ध्रुवं भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजितः। तदेव फलितं कर्म न कार्यं बीजवर्जितम् ॥१५४॥
मारितास्मि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा। पुरु प्राप्तास्मि यद्दुःखं समागत्यार्द्धवैशसम्[4] ॥१५५॥
इति तां कुर्वतीमुच्चैर्विह्वलां परिदेवनम्। समाश्वासयदागत्य जनको निगदन्निदम् ॥१५६॥
प्रिये मा गाः परं शोकं जीवत्येव शरीरजः[5]। हृतः केनाप्यसौ जीवन् द्रक्ष्यसे ध्रुवमेव हि ॥१५७॥

अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुक्षिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे प्रिये ! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारे पुत्र नहीं है सो यह तुम्हारा पुत्र हो जायगा। इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर रानी प्रसूतिकागृहमें चली गई और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथनूपुर नगरमें पुत्रका जन्मोत्सव किया गया। इस उत्सवमें आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोंकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता-पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाओंसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोंमें भ्रमरके समान संचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धायको सौंपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुओं को शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स ! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुझे हर ले गया है ? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुझ अबोध बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे होंगे ? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामें आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और संध्याकी भाँति यह पुत्री स्थित रह गई ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला। जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर ले गया

१. जनः ब० । २. अन्तयानेन म० ज० । ३. पाषाणहृदयस्य । ४. अर्धमरणम् । ५. शरीरजे म० ।

दृश्यते नेक्ष्यते भूयः पुनर्जात्ववलोक्यते । पूर्वकर्मानुभावेन जाये रोदिषि किं वृथा ॥१५८॥
व्रज स्वास्थ्यमिमं लेखं सुहृदो [1]नाययाम्यहम् । वार्तां दशरथस्येमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
स चाहं च सुतस्याशु करिष्यामि गवेषणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
दयितां सान्त्वयित्वैवं लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रवाच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
मह्यामन्वेषितस्ताभ्यां नासौ दृष्टो यदार्भकः । मन्दीकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण बान्धवाः ॥१६२॥
नासावासीज्जनस्तत्र पुरुषः प्रमदाथवा । यो न वाष्पपरीताक्षस्तच्छोकेन वशीकृतः ॥१६३॥
शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योषितामङ्कदेशे
पृथुतनुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम् ।
विपुलकमलयाता[2] श्रीरिवासौ सुकण्ठा
शुचिहसितसितास्या वर्धताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥
प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्विताङ्गा
जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥१६६॥
वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छायपाणिः
[3]शितिमणिसमतेजः[4]केशसंघातरम्या ।

है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार बतलानेके लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोंसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी खोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी खोज की । पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बन्धुजन शोकको मन्दकर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र सम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होने वाली स्त्रियोंकी गोदमें निरन्तर वृद्धिङ्गत हो रही थी । वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लिप्त करती थी । वह विपुल कमलोंको प्राप्त लक्ष्मीके समान-सी जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हास्यसे उसका मुख शुक्ल हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमें अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्षणोंसे युक्त उस जानकी को लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया था, उसके हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके

१. नीययाम्यहम् म० । २. पाता म० । ३. सितमणि म० । ४. शितमणिसमतेजाः ब० ।

जितसमदनहंसस्त्रीगतिः सुन्दरभ्रू-

बकुलसुरभिवक्त्रामोदबद्धालिवृन्दा ॥१६७॥

अतिमृदुभुजमाला शक्रशस्त्रानुमध्या

प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरुः ।

स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोज्ज्वलाङ्घ्रिः

प्रभवदतिविशालच्छायवक्षोजयुग्मा ॥१६८॥

प्रवरभवनकुक्षिष्वत्युदारेषु कान्त्या

विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा परं सा ।

सततमुपगतान्तःसप्तकन्याशताना-

मतिशय रमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥

अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः

सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।

यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथं चि-

न्नियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥

विधिरिव रतिदेवीं कामदेवस्य बुद्ध्या

दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।

जनकनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां

ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताभामण्डलोत्पत्त्यभिधानं नाम षड्विंशतितमं पर्व ॥२६॥

धारक केशोंके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसकी मुखके सुवाससे उसके पास भौंरोंके समूह मँडराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्रके समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलोंके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चाँदनी, इन्द्रकी इन्द्राणी, और चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ संपर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा प्रोक्त पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करने वाला छब्बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

१. वज्रवन्मध्या ।

सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजेन्द्रश्चारुवृत्तान्तविस्मितः । पप्रच्छ गणिनामग्र्यं [1]नूतनप्रश्रयान्वितः ॥१॥
किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनकभूभृता । रामस्य येन सा तस्मै तेन बुद्ध्या निरूपिता ॥२॥
ततः करतलासङ्गद्विगुणीभूतदन्तभाः । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याक्लिष्टकर्मणः । यतः प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुबुद्धिना ॥४॥
दक्षिणे विजयार्द्धस्य कैलासाद्रेस्तथोत्तरे । अन्तरेऽत्यन्तबहवः सन्ति देशाः सहान्तराः ॥५॥
[2]तत्रार्धवर्वरो देशो निःसंयमनमस्कृतिः । निर्विदग्धजनो घोरम्लेच्छलोकसमाकुलः ॥६॥
मयूरमालनगरे[3] कृतान्तनगरोपमे । [4]आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्द्धवर्वरचारिणाम् ॥७॥
पूर्वापरायतक्षोण्यां यावन्तो म्लेच्छसंभवाः । कपोतशुककाम्बोजमङ्कना[5]द्याः सहस्रशः ॥८॥
गुप्ता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विविधायुधैः । आन्तरङ्गतमं प्रीत्या परिवार्य ससाधनाः ॥९॥
आर्यानेतान्जनपदान् प्रचण्डान्तररंहसः । उद्वासयन्त आजग्मुरिति कारुण्यवर्जिताः ॥१०॥
देशं जनकराजस्य ततो व्याप्तुं समुद्यताः । शलभा इव निःशेषमुपप्लवविधायिनः ॥११॥
जनकेन च साकेतां युवानः प्रेषिता[6] द्रुतम् । [7]आन्तरङ्गतमं [8]प्राप्तमूचुर्दशरथस्य ते ॥१२॥
विज्ञापयति देव त्वां जनको जनवत्सलः । पौलिन्द[9]परचक्रेण समाक्रान्तं महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुनः नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन् ! राजा जनकने रामका ऐसा कौनसा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया ? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसङ्गसे जिनके दाँतोंकी कान्ति दूनी हो गई थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुनो, संक्लेशहीन कार्यको करनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयार्द्ध पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुतसे देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धवर्वर नामका देश है जो असंयमी जनोंके द्वारा मान्य है, धूर्तजनोंका जिसमें निवास है तथा जो अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमें यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है । उसमें आन्तरङ्गतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्बोज, मङ्कन आदि जितने हज़ारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सब साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरङ्गतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो दयासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरङ्गतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! प्रजा-

१. नूतनप्रवयान्वितः क०, ख० । २. तत्रार्धवर्वरीदेशो ब० । ३. मयूरमालानगरे क०, ख० । ४. आन्तरङ्गतमे क०, ख० । ५. मङ्कन्याद्याः ब० । ६. प्रेक्षिता क०, ख०, ब० । ७. आतासन्तजना तेन दूतस्तेन वदन्त वै (?) क०, ख० । ८. प्रासु ब० । ९. पौलिंग्य म० ।

आर्यदेशाः परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्वासितं जगत् । एकवर्णां प्रजां सर्वां पापाः कर्तुं समुद्यताः ॥१४॥
प्रजासु विप्रनष्टासु जीवामः किं प्रयोजनाः[1] । चिन्त्यतामिति किं कुर्मो व्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
किं वा दुर्गं समाश्रित्य तिष्ठामः ससुहृज्जनाः । [2]नदीकालिन्दभागान् वा गिरिं वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥
अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिताः । संनिरुध्मः[3] समागच्छत् परसैन्यं भयानकम् ॥१७॥
साधुगोश्रावकाकीर्णां प्रजामेतां सुविह्वलाम् । सम्यक् संधारयिष्यामस्त्यक्त्वा जीवं सुदुस्सहम् ॥१८॥
अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां[4] यत्त्वया पाल्यते मही । तव राज्यं महाभाग त्वमेव हि जगत्पतिः ॥१९॥
यजन्ते[5] भावतः सन्तो यावन्तः श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन[6] व्रीह्याद्यैर्यदबीजकैः[7] ॥२०॥
[8]मुक्तिक्षान्तिगुणैर्युक्ता यत्र ध्यानपरायणाः । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधनं गगनाम्बराः ॥२१॥
महान्तश्च पुरस्कारा यच्चैत्यभवनादिषु । विधीयन्तेऽभिषेकाश्च जिनानां क्षीणकर्मणम् ॥२२॥
[9]प्रजासु रक्षितास्वेतत्सर्वं भवति रक्षितम् । ततश्च धर्मकामार्थाः प्रेत्य चेह च भूभृताम् ॥२३॥
बहुकोषो नरेशो यः प्रीतः पालयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसादं [10]समश्नुते ॥२४॥
हिंसाधर्मविहीनानां यज्वतां यागदक्षिणाम् । कुरुते पालनं यश्च तस्य भोगाः [11]पुनर्भुवः ॥२५॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिकारा महीतले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुतः ॥२६॥
नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः । ध्यायन्त्यात्मानमव्यग्रास्तथैवाश्रमिणो बुधाः ॥२७॥

वत्सल राजा जनक आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१३॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है। वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं? विचार कीजिए कि इस दशामें हम क्या करें? अथवा किसकी शरणमें जावें? ॥१५॥ हम मित्रजनोंके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयंकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोंसे व्याप्त इस विह्वल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन्! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा करते हैं। अङ्कुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्ग्रन्थ मुनि मुक्ति क्षान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की बड़ी-बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाओंके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होने पर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले लोगोंकी जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥२४–२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंको धर्म अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाओंके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही ये अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका आश्रय

---

१. किं प्रयोजनम् म० । २. नदीकीलीन्द्रभागान्वा म० । ३. सन्निरुद्धाः म० । ४. राजंस्त्वम् म० । ५. जयन्ते क०, ख० । ६. प्रधानेन म० । निधानेन ब० । ७. यवबीजकैः ब० । ८. युक्तिः म० । ९. प्रजाः सुरक्षितास्त्वेतत् म० । १०. समश्नुतम् म० । ११. पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः । षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥
अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रुत्य[1] नराधिपः । द्रुतं रामं समाहूय [2]राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२९॥
मुदितैः किङ्करैर्भेरीघनानन्दा समाहता[3] । आजग्मुः सचिवाः सर्वे गजवाजिसमाकुलाः ॥३०॥
जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिपूरितान् । बद्ध्वा परिकरं शूरा भासमानाः समागताः ॥३१॥
चारुनूपुरनिस्वाना दधाना वेषमर्चितम् । वस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागताः[4] स्त्रियः ॥३२॥
आटोपमीदृशं दृष्ट्वा किमेतदिति शब्दितम् । रामं दशरथोऽवोचत् पालयेमां सुत क्षितिम् ॥३३॥
रिपुचक्रमिहायातं यद्देवैरपि दुर्जयम् । विजेष्ये तदहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
ततो राजीवनयनो राघवो नृपमब्रवीत् । किमर्थं तात संरम्भमस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥
किं कार्यं पशुसंज्ञैस्तैरसंभाष्यैर्दुरात्मभिः । येषामभिमुखीभावं प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥
न ह्याखूनां विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः । न चापि तूलदाहार्थं [5]सन्नह्यति विभावसुः ॥३७॥
तत्र प्रयातुमस्माकं युज्यते यच्छ शासनम् । इत्युक्ते हर्षिताङ्गस्तं परिष्वज्य पिताब्रवीत् ॥३८॥
त्वं बालः सुकुमाराङ्गः पद्म[6] पद्मनिभेक्षणः । कथं तान् सहसे जेतुं न [7]प्रत्येम्यहमर्भक[8] ॥३९॥
सोऽवोचत् सद्य[9] उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावकः । कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
बालः सूर्यस्तमो घोरं द्युतीर् ऋक्षगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥४१॥

लेकर प्रजा सुखसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥ जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका छठवाँ भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत हो गये ॥२९॥ किङ्करोंने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजाई। हाथी और घोड़ोंसे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे सुन्दर शब्द हो रहा था तथा जो उत्तमोत्तम वेष धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियाँ पिटारोंमें वस्त्रालंकार ले लेकर आ गईं ॥३२॥ यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है? तब राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र! तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवोंके द्वारा भी दुर्जेय है। मैं प्रजाके हितकी वाञ्छासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने राजा दशरथसे कहा कि हे तात! अस्थानमें क्रोध क्यों करते हो? ॥३५॥ आप रणकी इच्छासे जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुस्वरूप भाषाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता है? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज क्षोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रुईको जलानेके लिए तत्पर होता है ॥३७॥ वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए। ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म! अभी तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमार है, तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक! तुम उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन है? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र-समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है? ॥४१॥

---

१. -मुपश्रित्य ज०, ब०, क०, ख० । २. दातुं राज्यम् म० । ३. समाहताः म० । ४. पटलेष्वागताः म० । ५. तत्परो भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्ययं करोमि । ८. अर्भकः म० । ९. सद्यगुत्पन्नो क०, ख०, म० ।

ततः सहर्षरोमाङ्को नृपो दशरथः पुनः । प्रमोदं परमं प्राप्तो विषादं च सबाष्पदृक् ॥४२॥
सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थितिः । उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥४३॥
अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते । मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ॥४४॥
इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ रामलक्ष्मणौ । पितुः पादाब्जयुगलं प्रणम्योपगतौ बहिः ॥४५॥
ततः सर्वास्त्रकुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसंपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनौ ॥४६॥
चतुरङ्गबलोपेतौ पूर्यमाणौ विभूतिभिः । संप्रयातौ रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
पूर्वमेव तु निर्यातो जनकः सोदरान्वितः । अन्तरं योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
शत्रुशब्दममृष्यन्तो[1] जनकस्य महारथाः । विविशुर्म्लेच्छसंघातं मेघवृन्दमिव ग्रहाः ॥४९॥
प्रवृत्तश्च महाभीमः संग्रामो रोमहर्षणः । बृहत्प्रहरणाटोप आर्यम्लेच्छभटाकुलः ॥५०॥
जनकः कनकं दृष्ट्वा परं गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणां घटाम् ॥५१॥
वर्वरैस्तु महासैन्यैर्भग्नैर्भग्नैः पुनः पुनः । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वासु वेष्टितः ॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पद्मः सौमित्रिणा सह । अपारं गहनं सैन्यमपश्यच्चारुलोचनः ॥५३॥
दृष्ट्वा तस्य सितच्छत्रं विशीर्णा शत्रुवाहिनी । तमसां सन्ततिः स्फीता पौर्णमासीविधुं यथा ॥५४॥
आश्वासितश्च बाणौघैर्जनको [2]ध्वस्तकङ्कटः । तेन जन्तुर्यथा दुःखी धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुनः परम प्रमोद और विषादको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जब तक आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण-कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शस्त्र चलानेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्षणोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरङ्ग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ़ होकर चले ॥४६–४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था। जनक और शत्रुसेनाके बीचमें दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए म्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े-बड़े शस्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महाभयंकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक संकटमें पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ म्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होनेपर भी भी राजा जनकको सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे। पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रको देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गई जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देख कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आश्वासन

१. -ममृक्षन्तो म० । २. ध्वस्तकवचः ।

राघवो रथमारूढो युक्तं चपलवाजिभिः । कवचोद्योतितवपुः हारकुण्डलमण्डितः ॥५६॥
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिध्वजः । प्रकीर्णकोल्वणच्छत्रो धरणीधीरमानसः ॥५७॥
प्रविशन् विपुलं सैन्यं लीलया लोकवत्सलः । सुभटैः पूर्यमाणः सन् भात्यर्क इव रश्मिभिः ॥५८॥
संरक्ष्य जनकं प्रीतः कनकं च यथाविधि । बलं व्यध्वंसयच्छत्रोरिभवत् कदलीवनम् ॥५९॥
तथैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसंहतान् । ववर्ष वायुना नुन्नः सागरे जलदो यथा ॥६०॥
निशितानि च चक्राणि शक्तींश्च कनकानि च । शूल[1]क्रकचनिर्घातान्येवमाद्यान्यचिक्षिपत् ॥६१॥
सौमित्रिभुजनिर्मुक्तैस्तैः पतद्भिरितस्ततः । म्लेच्छदेहा[2] न्यकृत्यन्त द्रुमाः परशुभिर्यथा ॥६२॥
भटाः शबरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निर्भिन्नवक्षसः । केचिच्छिन्नभुजग्रीवा निपतन्ति[3] सहस्रशः ॥६३॥
ततः पराङ्मुखीभूता लोककण्टकवाहिनी । तथापि लक्ष्मणस्तेषामनुधावति पृष्ठतः ॥६४॥
अनिवार्यं समालोक्य तं सौमित्रिं मृगाधिपम् । अपरे म्लेच्छशार्दूला समन्तात् क्षोभमागताः ॥६५॥
बृहद्वादित्रनिर्घोषैः कुर्वाणा भैरवं रवम् । चापासिचक्रबहुलाः कृतसंघातपङ्क्तयः ॥६६॥
रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः केचिच्छुरधारिणः । असिधेनुकराः क्रूरा नानावर्णाङ्गधारिणः ॥६७॥
केचिद्भिन्नाञ्जनच्छायाः[4] शुकपत्रत्विषोऽपरे । केचित्कर्दमसंकाशाः केचित्ताम्रसमत्विषः ॥६८॥
कटिसूत्रमणिप्रायाः पत्रचीवरधारिणः । नानाधातुविलिप्ताङ्गा मञ्जरीकृतशेखराः ॥६९॥

दिया–धैर्य बँधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके द्वारा दुःखी प्राणीको आश्वासन दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चञ्चल घोड़ोंसे जुते हुए रथ पर सवार थे, उनका शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे। उनकी ध्वजामें सिंहका चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणोंसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोनों भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्र पर जल वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदल पर कान तक खिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, क्रकच और वज्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ोंसे वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रोंसे म्लेच्छोंके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोंकी इस सेनामें बाणोंसे कितने ही योद्धाओंका वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओंकी वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गई थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देखकर म्लेच्छरूपी तिंदुए सब ओरसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और झुण्डके-झुण्ड बनाकर पङ्क्तिरूपमें खड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बाँधे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रङ्गके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अञ्जनके समान काले थे, कोई सूखे पत्तोंके समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रङ्गके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बाँधे हुए थे, पत्तोंके वस्त्र पहिने हुए थे, नाना धातुओंसे उनके शरीर लिप्त थे, फूलकी

१. शूलं क्रकच म० । २. म्लेच्छदेहानि कृत्यन्ते म० । ३. न्यपत्यन्त । ४. शुष्क म०, ज० ।

वराटकाभदशना विशालपिठरोदराः । विरेजुः सैन्यमध्ये[1] तु कुटजा इव पुष्पिताः ॥७०॥
अपरे शबरा रेजुर्भीषणायुधपाणयः । पीनजङ्घाभुजस्कन्धा असुरा इव दर्पिताः ॥७१॥
निर्दयाः पशुमांसादो मूढाः प्राणिवधोद्यताः । आरभ्य जन्मनः पापा [2]सहसारम्भकारिणः ॥७२॥
वराहमहिषव्याघ्रवृककङ्कादिकेतवः । नानायानच्छदच्छत्रास्तत्सामन्ताः सुभीषणाः ॥७३॥
नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातयः । सागरोर्मिनिभाश्चण्डा[3] नानाभीषणनिस्वनाः ॥७४॥
लक्ष्मणक्ष्माधरं वव्रुः क्षुब्धाः [4]शबरनीरदाः । निजसामन्तवातेन प्रेरिताः पुरुरंहसः ॥७५॥
अधावल्लक्ष्मणस्तेषां निपाताय समुद्यतः । [5]यथानडुत्समूहानां महावेगो गजाधिपः ॥७६॥
मृद्यमाना निपेतुस्ते स्वैरेव वसुधातले । विदुद्रुवुरसंख्याश्च भीत्या विक्षतमूर्तयः[6] ॥७७॥
ततः [7]संधारयन् सैन्य[8]मान्तरङ्गतमो नृपः । समं सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिमुखं स्थितः ॥७८॥
तेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते भैरवे मृधे । लक्ष्मणस्य धनुश्छिन्नं बाणैः संततवर्षिभिः ॥७९॥
कृपाणं यावदादत्ते लक्ष्मणो विरथीकृतः । [9]समीरणजवं तावत्पद्मो रथमचोदयत् ॥८०॥
लक्ष्मणस्योपनीतश्च रथोऽन्यः क्षेपवर्जितः । अपारमदहत् सैन्यं रामः कक्षमिवानलः ॥८१॥
कांश्चिच्चिच्छेद बाणौघैः कांश्चित्कनकतोमरैः । चक्रैः शिरांसि केषांचित्कुञ्चितौष्ठान्यपातयत् ॥८२॥

मञ्जरियोंसे उन्होंने सेहरा बना रक्खा था ॥६९॥ कौड़ियोंके समान उनके दाँत थे, बड़े मटकाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वीले असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खाने वाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कङ्क आदिके चिह्न उनकी पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयंकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चद्दर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धोंमें जिन्होंने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षोभको प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बैलोंके समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसीप्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गई जिससे वे अपने ही लोगोंसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरङ्गतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सन्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथ-रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगवाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुकी सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और तोमर नामक शस्त्रोंसे

---

१. सैन्यमध्यं म० । २. सहसारम्यकारिणः म० । ३. चन्द्रा म० । ४. शरदनीरदाः म० । ५. यथा नदत्समूहानां म० । ६. विकृतमूर्तयः म० । ७. साधरयन् म० । ८. आन्तरङ्गतमः एतन्नामा म्लेच्छनृपः । ९. समीरणजवात्तावत् म० ।

ननाश भयपूर्णा च [1]यथाशं म्लेच्छवाहिनी। विध्वस्तचामरच्छत्रध्वजचापसमाकुला ॥८३॥
निमिषान्तरमात्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा। म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कषाया इव साधुना ॥८४॥
आगतो यश्च सैन्येन निष्पारेणोदधिर्यथा। भीतोऽश्वैर्दशभिः सोऽयं म्लेच्छराजो विनिःसृतः [2] ॥८५॥
पराङ्मुखीकृतैः क्लीबैः किमेभिर्निहतैरिति। सौमित्रिणा समं रामः कृती निववृते सुखम् ॥८६॥
अमी भयाकुला म्लेच्छा विहाय विजिगीषुताम्। आश्रित्य सह्यविन्ध्याद्रीन् समयेनावतस्थिरे ॥८७॥
कन्दमूलफलाहारास्तत्यजू रौद्रकर्मताम्। राघवाद् भयमापन्ना वैनतेयादिवोरगाः ॥८८॥
[3]सानुजः [4]सानुजं पद्मो [5]विग्रहे शान्तविग्रहः। विसर्ज्य [6]जनकं हृष्टं [7]जनकाभिमुखोऽगमत् ॥८९॥
प्रजात्तपरमानन्दा [8] रेमे विस्मितमानसा। रराज पृथिवी सर्वा भूत्या कृतयुगे यथा ॥९०॥
धर्मार्थकामसंसक्तैः पुरुषैर्भूषितं जगत्। व्यतीतहिमसंरोधैर्नक्षत्रैरम्बरं यथा ॥९१॥
माहात्म्यादमुतो राजन् दुहिता लोकसुन्दरी। जनकेन प्रसन्नेन राघवस्य प्रकल्पिता ॥९२॥

काट डाला तथा जिनके ओंठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चक्ररत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८२॥ टूटे-फूटे चमर छत्र ध्वजा और धनुषोंसे व्याप्त म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गई--इधर-उधर भाग गई ॥८३॥ जिस प्रकार साधु कषायोंको क्षण भरमें नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८४॥ जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दश घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥ इन विमुख नपुंसकोंको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचार कर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुख पूर्वक युद्धसे लौट गये ॥८६॥ भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सह्य और विन्ध्य पर्वतोंपर रहने लगे ॥८७॥ जिस प्रकार साँप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे। वे कन्द मूल फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमें जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई कनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सन्मुख चले गये ॥८९॥ तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥ जिस प्रकार हिमके आवरणसे रहित नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म अर्थ काममें आसक्त पुरुषोंसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥ गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोक-सुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथावाञ्छम् यथासंम्लेच्छ म०। २. विनिःस्मृतः म०। ३. सलक्ष्मणः। ४. अनुजसहितं कनकसहितमिति यावत्। ५. पद्मोऽविग्रहः ज०। ६. मिथिलाधिपम्। ७. पित्रभिमुखम्। ८. रोमविस्मित- म०।

उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्यं बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक स्वं ननु कर्म पुंसाम् ।
[1]समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥६३॥
सोऽहं महात्मा भुवने समस्ते गतः प्रतापं परमं सुभाग्यः ।
गुणैरनन्यप्रमितैरुपेतो रविर्यथोद्भाति[2] परो मयूखैः ॥६४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्य प्रोक्ते पद्मचरिते म्लेच्छपराजयसंकीर्तनं नाम सप्तविंशतितमं पर्व ॥२७॥

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुरुषोंके साथ संयोग अथवा वियोग होनेमें कारणभावको प्राप्त होता है ॥६३॥ परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त संसारमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें म्लेच्छोंके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२७॥

१. समागते म० । २. यथोद्भूतपरो म०

अष्टाविंशतितमं पर्व

ईदृक्पराक्रमाकृष्टो नारदः पुरुविस्मयः । धृतिं न लभते क्वापि रामसंकथया विना ॥१॥
श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दातुमभीष्टेति प्रकटा सर्वविष्टपे ॥२॥
अचिन्तयच्च पश्यामि कन्यां तामद्य कीदृशीम् । शोभनैर्लक्षणैर्येन रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
पद्मगर्भदलं यस्मिन् कृत्वा स्तनतटे रहः । मत्कान्त्या सदृशं नेदमिति बुद्ध्यावलोकते ॥४॥
समये नारदस्तस्मिन् सीतालोकनलालसः । विशुद्धहृदयः प्रापदारुरोह च तद्गृहम् ॥५॥
ततो दर्पणसंक्रान्तं जटामुकुटभीषणम् । नारदीयं वपुर्वीक्ष्य कन्या त्राससमाकुला ॥६॥
हा मातः कोऽयमत्रेति कृत्वा प्रस्खलित[1]स्वनम् । विवेश गर्भभवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
नारदोऽनुपदं तस्या विशन्नतिकुतूहलः । नारीभिर्द्वारपालीभिः सावष्टम्भमरुध्यत ॥८॥
यावत्तस्य च तासां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन संप्रापुर्नराः खड्गधनुर्धराः ॥९॥
गृह्यतां गृह्यतां कोऽयं कोऽयमित्युद्धतस्वनाः । कुञ्चितौष्ठाक्षरान् दृष्ट्वा सशस्त्रान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
नारदः परमं बिभ्रद्भयमुत्कटवेपथुः । ऊर्ध्वरोमा खमुत्पत्य विश्रान्तोऽष्टापदाचले ॥११॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्तोऽस्मि जननं पुनः । निष्क्रान्तोऽस्मि महादावात् पक्षी ज्वालाहतो यथा ॥१२॥

अथानन्तर जो इस प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके बिना कहीं भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमें प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्याको देखूँ तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कैसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीताके महलमें पहुँचा जब कि वह एकान्त स्थानमें पद्मगर्भ मणिका एक खण्ड अपने स्तन तटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लालसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमें ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गई ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्धोच्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गई । उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुतूहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमें भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे । जो ओंठ चाब रहे थे, शस्त्रोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कँप-कँपी छूट रही थी, और रोमाञ्च खड़े हो गये थे । खैर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास पर्वत पर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं बड़े कष्टमें पड़ गया था । बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओंसे झुलसा पक्षी किसी बड़े दावानलसे बाहर निकलता

१. प्रस्खलितं स्वनं म० ।

शनैः शनैस्ततः कम्पं तद्दिग्न्यस्तेक्षणोऽमुचत् । ममार्ज च ललाटस्थान् स्वेदबिन्दून् स्थवीयसः ॥१३॥
समादधे स्खलत्पाणिर्जटाभारं समाकुलम् । मुहुः स्मृता च निःश्वासान्मुमुचे दीर्घवेगिनः ॥१४॥
ततः स्वैरं भयाद् भ्रष्टो दध्यावेवं प्रकोपवान् । [1]निश्चलस्थितशेषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
अदुष्टमानसः पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्रापमवस्थां मृत्युगोचराम् ॥१६॥
अहो प्रौढकुमार्यास्तच्चेष्टितं दुष्टविभ्रमम् । गृहीतोऽस्मि नयेनैव कृतान्तसदृशैर्नरैः ॥१७॥
क्व मे पापाधुना याति व्यसने पातयामि ताम् । नृत्याम्यातोद्यमुक्तोऽपि किमुतातोद्यसंयुतः ॥१८॥
विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सीतारूपं पटे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
चकारोपवने चन्द्रगतेः[2] क्रीडनसद्मनि । उत्सृज्य च बहिस्तस्थौ पुरस्याप्रकटात्मकः ॥२०॥
अन्यदाथ तमुद्देशं कुमारैर्बहुभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽसौ रममाणः समाययौ ॥२१॥
तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् । ह्रीश्रुतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
ततः शोचति निश्वासान्मुञ्चतेऽत्यन्तमायतान् । शुष्यति क्षिपति स्रस्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः । उपचारेण [3]कान्तेन न जातु सुखमश्नुते ॥२४॥
पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि चवैडं[4] यथा भृशम् । करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिमे ॥२५॥

है उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशामें लग रहे थे । तदनन्तर धीरे-धीरे उसने शरीरको कँपकँपी छोड़ी और ललाटपर स्थित पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछीं ॥१३॥ उसने काँपते हुए हाथसे अपनी बिखरी हुई जटाएँ ठीक कीं । यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगता था ॥१४॥ तत्पश्चात् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अङ्ग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशङ्का हो गई ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ़ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जावेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकटमें डालूँगा । मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जावें तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचार कर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तुङ्ग क्रीड़ा भवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अङ्कित बहिन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था । वह रात-दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था । सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष

१. निश्चितस्थित म० । २. चन्द्रगतः ज० । ३. रम्येण । ४. विषनिर्मितम् ।

मौनमाचरति स्मित्वा करोति च कथां मुहुः । सहसोत्तिष्ठति व्यर्थं याति भूयो निवर्तते ॥२६॥
ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैस्तैर्विचेष्टितैः । ज्ञातं तदातुरत्वस्य कारणं मतिशालिभिः ॥२७॥
जगदुश्चैवमन्योन्यं कन्येयं केन चित्रिता । पटोऽत्र निहितो गेहे स्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२८॥
ततः श्रुत्वा कुमारं तमाकुलं स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य बन्धूनां विलब्धो दर्शनं ददौ ॥२९॥
आदरेण च तैः पृष्टः कृतपूजानमस्कृतिः । मुने कथय कन्येयं दृष्टा क्व भवतेदृशी ॥३०॥
महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । मर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथंचन ॥३१॥
[1]अवद्वारस्ततोऽवोचद् विनयं परमं वहन्[2] । भूयो भूयः स्वयं गच्छन्[3] विस्मयं कम्पयन् शिरः ॥३२॥
अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी । इन्द्रकेतोः सुतस्तत्र[4] जनको नाम पार्थिवः ॥३३॥
विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वस्वभूतेयं सीतेति दुहिता तयोः ॥३४॥
निवेद्यैवमसौ तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाल मा याः विषादं त्वं तवेयं सुलभैव हि ॥३५॥
रूपमात्रेण यातोऽसि किमस्या भावमीदृशम् । ये तस्या विभ्रमा भद्र कस्तान्[5] वर्णयितुं क्षमः ॥३६॥
तया चित्तं समाकृष्टं तवेति किमिहाद्भुतम् । धर्मध्याने दृढं बद्धं मुनीनामपि सा हरेत् ॥३७॥
आकारमात्रमत्रैतत्तस्या न्यस्तं मया पटे । लावण्यं यत्तु तत्तस्यास्तस्यामेवैतदीदृशम् ॥३८॥
नवयौवनसंभूतकान्तिसागरवीचिषु । सा तिष्ठति तरन्तीव संसक्ता स्तनकुम्भयोः ॥३९॥

करता था मानो उन्हें विषमय ही समझता हो। वह संतापसे युक्त होकर बार-बार जलसे सींचे हुए फर्शपर लोटता था ॥२५॥ वह मौन बैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गईं मानो उसे भूत लग गया हो। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है? इस महलमें यह चित्रपट किसने रक्खा है? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने सुना कि हमारे कार्यसे भामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशङ्क होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने! कहो आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अङ्गना है या पृथिवी पर आई हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देखी है? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है उसमें इन्द्रकेतुसे प्रशंसाको प्राप्त हुआ जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधने वाली विदेहा नामकी प्रिया है। उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है। यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानो सर्वस्व ही है ॥३४॥ भामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने भामण्डलसे कहा कि हे बालक! तू विषादको प्राप्त मत हो। यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रसे ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह तो धर्मध्यानमें सुदृढ़रूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तको भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमें उसका यह केवल आकारमात्र ही अङ्कित किया है। उसका जो लावण्य है वह तो उसीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नव यौवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरङ्गोंमें ऐसी जान पड़ती

१. नारदः । अवद्वारः म० । २. महत् म० । ३. गच्छद्विस्मयं म० । ४. इन्द्रकेतोः स्नुतः म० । ५. तां म० ।

तस्याः श्रोणी वरारोहा कान्तिसंप्लावितांशुका । वीक्षितोन्मूलयेत्[1] स्वान्तं समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
युक्त्वा भवन्तमन्यस्य सेयं कस्योचिता भवेत् । यत्नं वस्तुनि कुर्वन्ता[2] जायतां योग्यसंगमः[3] ॥४१॥
इत्युक्त्वा चरितार्थः सन्नारदोऽगान्मनीषितम् । दध्यौ भामण्डलोऽप्येवं स्मरसायकताडितः ॥४२॥
[4]क्षेपिष्ठं प्रमदारत्नं न लभेयं यदीदृशम् । न जीवेयं तदावश्यं स्मराकुलितमानसः ॥४३॥
धारयन्ती परां कान्तिमियं मे [5]हृदयस्थिता । कथं न[6] कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
दहति त्वचमेवार्को बहिरन्तश्च मन्मथः । अन्तर्द्धिरस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
द्वयमेव ध्रुवं मन्ये प्राप्तव्यमधुना मया । तया वा संगमः साकं मरणं वा स्मरेषुभिः ॥४६॥
अनारतमिति[7] ध्यायन्नशने शयने न च । न प्रासादे न चोद्याने धृतिं भामण्डलोऽगमत् ॥४७॥
स्त्रियोऽथ नारदं मत्वा कुमारासुखकारणम् । ससंभ्रमं समुद्विग्नाः[8] पितुरस्य न्यवेदयन्[9] ॥४८॥
नाथानर्थसमुद्गेन[10] नारदेनाहृता पटे । चित्रीकृत्याङ्गना कापि[11] रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
समालोक्य कुमारस्तां विह्वलीभूतमानसः । धृतिं न लभते क्वापि त्रपया दूरमुज्झितः ॥५०॥
मुहुस्तामीक्षते कन्यां सीताशब्दं समुच्चरन् । करोति विविधां चेष्टां वायुनेव वशीकृतः ॥५१॥
उपायश्चिन्त्यतामाशु तस्योत्पादयितुं धृतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्भोजनादिपराङ्मुखः ॥५२॥

है मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही रही हो ।।३९।। कान्तिसे वस्त्रको तिरोहित करने वाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जावें तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़ कर फेंक दे ।।४०।। आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ।।४१।। इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थान पर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणोंसे ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ।।४२।। चूँकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस स्त्रीरत्नको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ।।४३।। परम कान्तिको धारण करने वाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ।।४४।। सूर्य सिर्फ बाहरी चमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है। इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ।।४५।। इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं। एक तो उस स्त्री रत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ।।४६।। इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ।।४७।।

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ।।४८।। कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है। वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपट पर अङ्कित करके लाया था ।।४९।। उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है। लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ।।५०।। वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुए के समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता रहता है ।।५१।। वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है। इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते हैं तब तक

१. -न्मूलयत् म० । २. पुमान् । ३. योग्यसमागमसहितः । ४. शीघ्रम् । ५. हृदयं स्थिता म०, ज० । ६. च म० । ७. -मतिध्यायन् म० । ८. समुद्विग्ना म० । ९. न्यवेदयत् म० । १०. तथानर्थसमुद्गेन म०, नार्यानर्थ- ब० । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरण्डकेन । ११. क्वापि म० ।

ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा वार्तामेतां समाकुलः । आगत्य कान्तया साकं सुतमेवमभाषत ॥५३॥
भज सर्वाः क्रियाः पुत्र सुचेता भोजनादिकाः । अयं वृणोमि तां कन्यां भवतो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
[1]परिसान्त्व्य सुतं कान्तां रहश्चन्द्रा[2]यणोऽवदत् । प्रमोदं च विषादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥५५॥
आर्ये विद्याभृतां कन्याः संत्यज्य प्रतिमोज्झिताः । भूगोचराभिसम्बन्धः कथमस्मासु युज्यते ॥५६॥
क्ष्मागोचरस्य निलयं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुखच्छाया तदा तु का ॥५७॥
तस्मात् केनाप्युपायेन कन्यायाः पितरं प्रियम् । इहैव [3]नाययाम्याशु नान्यः पन्था विराजते ॥५८॥
नाथ युक्तमयुक्तं वा त्वमेव ननु म[4]न्यसे । तथापि तावकं वाक्यं ममापि हृदयङ्गमम् ॥५९॥
ततश्चपलवेगाख्यं भृत्यमाहूय सादरम् । कर्णजापेन विज्ञातवृत्तान्तमकरोन्नृपः ॥६०॥
आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ मिथिलां त्वरितो ययौ । हृष्टहंसयुवामोदसूचितामिव पद्मिनीम् ॥६१॥
अवतीर्याम्बराच्चारु[5]सप्तिवेषमुपाश्रितः । वित्रासयितुमुद्युक्तो गोमहि[6]ष्यश्ववारणान् ॥६२॥
[7]देशघाते यथा जातः समाक्रन्दस्तदापरः । शुश्राव च जनौघेभ्यो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥६३॥
निर्ययौ च पुरायुक्तः प्रमोदोद्वेगकौतुकैः । ईक्षाञ्चक्रे च तं सप्तिं नवयौवनसंगतम् ॥६४॥
[8]उद्दामानं मनोवेगं[9] भास्वत्प्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावर्तं तनुवक्त्रोदरं चलम्[10] ॥६५॥

उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाय ॥५२॥ तदनन्तर चन्द्र-गति विद्याधर इस समाचारको सुनकर घबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित्त होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करो । मैं तुम्हारे मनमें स्थित उस कन्याको वरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५३-५४॥ इस प्रकार पुत्रको सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विषाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५५॥ हे आर्ये ! विद्याधरोंकी अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका भूमिगोचरियोंके साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥५६॥ इसके सिवाय एक बात यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करने पर भी यदि उसने कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥ स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक भृत्यको आदरपूर्वक बुलाकर उसके कानमें सब वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस सुगन्धिसे सूचित कम-लिनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह गाय, भैंसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह जिस देशके घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था । राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनीं ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने नव यौवनसे युक्त उस घोड़ेको देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनको अपनी ओर खींचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अङ्गमें महान्

१. परिशान्त्य म० । २. चन्द्रगतिः । ३. नययाम्याशु म० । ४. मन्यते म० । ५. हयत्वेपम् । ६. महिषाश्व क०, ख० । ७. देशघातो ख० । ८. उदमानं म० । उद्मानं ज० । ९. मनोयोगं म० । १०. बलम् म०, ज० ।

सुशफाग्रैर्मृदङ्गानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोहं दधतं [1]प्रोथवेपथुम् ॥६६॥
ततः [2]शुद्धप्रमोदः सन् जगाद जनको मुहुः । ज्ञायतामेष कस्याश्वः प्राप्तो निर्दामतामिति ॥६७॥
ततो द्विजगणा ऊचुः प्रियोद्योद्यतचेतसः[3] । राजन्नस्य न[4] नाकेऽपि तुरङ्गो विद्यते समः ॥६८॥
कैव वार्ता पृथिव्यां नु[5] राज्ञामीदृग् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्त्वयेयता ॥६९॥
रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानीमः [6]स्थूरीपृष्ठोऽमुना समः ॥७०॥
नूनं भवन्तमुद्दिश्य कृतवन्तं परं तपः । सृष्टोऽयं विधिना सप्तिरतः स्वीक्रियतां प्रभो ॥७१॥
ततोऽसौ [7]विनयी निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । [8]मन्दुरां कुङ्कुमार्द्राङ्गः प्रचलच्चारुचामरः ॥७२॥
[9]संवृत्तो मासमात्रोऽस्य ययौ कालो गृहीतितः[10] । उपचारैरलंयोग्यैः सेव्यमानस्य सन्ततम् ॥७३॥
पाशकोऽत्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य [11]सद्देशे ग्रहणं दृश्यतामिति ॥७४॥
ततोऽसौ मुदितस्तुङ्गमारुह्य वरवारणम् । उद्दिष्टपादविस्तेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥
दूरे च सरसो दुर्गे स्थितं दृष्ट्वा वरं द्विपम् । जगादानय तत्क्षिप्रं कंचिदश्वं महाजवम् ॥७६॥
ढौकितश्च स मायाश्वः सद्यः स्फुरितविग्रहः । आरुरोह स तं यातश्चोत्पत्य तुरगो नभः ॥७७॥
हाहाकारं नृपाः कृत्वा वहन्तः शोकमुद्धतम् । निवृत्ताः सहसा भीता विस्मयव्याप्तमानसाः ॥७८॥

आवर्त थीं, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापोंके अग्रभागसे वह पृथिवीको ताडित कर रहा था । उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मृदङ्ग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५–६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोंसे कहा कि मालूम किया जाय कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान घोड़ेको दुहरी रस्सीसे बाँधकर घुड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुङ्ग गजराज पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खड़ा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथु म० । २. शुद्धः प्रमोदः ब०, म० । ३. प्रियभाषणपरमानसाः । ४. न ना कोऽपि म० । ५. तु म० । ६. अश्वः स्थूलीपृष्ठोऽ ज० । ७. विनयैर्निन्ये ब० । ८. मन्दुराकुङ्कुमार्द्राङ्गप्रचलच्चारुचामरः म० । ९. संवृतो म० । १०. गृहीततः ब० । ११. सदेशे म०, क० । संदेशे ख० ।

ततो [1]नदीगिरीन् देशानरण्यानि च भूरिशः। प्रयाति लङ्घयन् सप्तिः मनोवदनिवारणः ॥७९॥
नातिदूरे ततो दृष्ट्वा [2]प्रासादं तुङ्गमुज्ज्वलम्। ह्रियमाणः स शाखायां दृढं लग्नो महातरोः ॥८०॥
अवतीर्य ततो वृक्षाद् विश्रम्य च सविस्मयः। चरणाभ्यां परिक्रामन् प्रययौ स्तोकमन्तरम् ॥८१॥
ददर्श च महातुङ्गं शालं चामीकरात्मकम्। गोपुरं च सुरत्नेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥
नानाजातीश्च वृक्षाणां लताजालकयोगिनाम्। फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनाम् ॥८३॥
संध्याभ्रकूट संकाशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान्। सेवां प्रासादराजस्य [3]कुर्वाणानिव [4]तत्पराम् ॥८४॥
ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य दक्षिणो दक्षिणे करे। केसरीवातिनिःशङ्कः प्रविवेश स गोपुरम् ॥८५॥
अपश्यच्च परिस्फीताः पुष्पजातीर्बहुत्विषः। मणिकाञ्चनसोपाना वापीश्च[5] स्फटिकाम्भसः ॥८६॥
रमणांश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान्। चलत्पल्लवसंघातान् कृतसंगीतषट्पदान् ॥८७॥
ततश्च माधवीतुङ्गजालकान्तरयोगिना। विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चारुकान्तिना ॥८८॥
रत्नवातायनैर्युक्तं मुक्ताजालकशोभितैः। शातकौम्भमहास्तम्भसहस्रकृतधारणम् ॥८९॥
नानारूपसमाकीर्णं मेरुशृङ्गसमप्रभम्। वज्रबद्धमहा[6]पीठमद्राक्षीद् भवनं नृपः ॥९०॥
अचिन्तयच्च [7]किं न्वेतद्विमानं पतितं खतः[8]। वासवस्य हृतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापिस लौट आये ॥७८॥

अथानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह घोड़ा अनेक नदी, पहाड़, देश और पर्वतोंको लाँघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७९॥ तदनन्तर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखामें मजबूतीसे झूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरोंसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमयकोट और उत्तमोत्तम रत्नोंसे युक्त तोरणसे समुद्भासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताओंके समूहसे युक्त, फल और फूलोंसे समृद्ध, तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियाँ देखीं ॥८३॥ जिनके शिखर संध्याके बादलोंके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमें स्थित थे तथा जो भवनोंके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोंको भी उन्होंने देखा ॥८४॥ तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेकर सिंहके समान निःशङ्क हो गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रङ्ग-बिरङ्गे अनेक प्रकारके फूल देखे। जिनकी सीढ़ियाँ मणि और स्वर्णकी बनी हुई थीं तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी बावड़ियाँ देखीं ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने खुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताओंकी ऊँची जालीके बीच झाँककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मोतियोंकी जालीसे सुशोभित रत्नमय झरोखोंसे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारों बड़े-बड़े खम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिबद्धके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करने लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योंके द्वारा हरण किया हुआ

१. नदीगिरेर्देशान् म०। २. प्रसादं तुङ्गमुच्चलम् म०। ३. कुर्वाणामिव ब०। ४. तत्परम् ब०, ज०। ५. वापी च म०। ६. पीत म०। ७. किंत्वेतद्विमानं म०। ८. आकाशात्।

पातालादुत्थितः किं वा नागेन्द्रस्यायमालयः । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डनः ॥९२॥
अहो मे ययुना[1] तेन भद्रेणोपकृतं परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वेश्मावलोकितम् ॥९३॥
विवेश चिन्तयन्नेवं भवनं तन्मनोहरम् । सम्फुल्लवदनाम्भोजो ददर्श च जिनाधिपम् ॥९४॥
हुताशनशिखागौरं पूर्णचन्द्रनिभाननम् । पद्मासनस्थितं तुङ्गं[2] जटामुकुटधारिणम् ॥९५॥
प्रातिहार्यसमायुक्तं हेमतामरसार्चितम्[3] । चित्ररत्नकृतच्छायं तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥९६॥
ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूरुहः । प्रणामं प्रयतः कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छामुपागतः ॥९७॥
क्षणेन प्राप्य संज्ञां च स्तुतिं कृत्वा सुसंस्कृताम् । विस्रब्धं जनकस्तस्थौ विस्मयं परमुद्वहन् ॥९८॥
कृती चपलवेगश्च मायां संहृत्य सत्वरः । खड्गविद्याधरो भूत्वा संप्राप रथनूपुरम् ॥९९॥
स्वामिने चावदन्नत्वा तुष्टो जनकमाहृतम् । [4]रम्यकाननसंवीते स्थापितं जिनवेश्मनि १००॥
आगतं जनकं ज्ञात्वा परं हर्षमुपागमत् । आप्तवर्गेण संयुक्तश्चन्द्रयानो महामनाः ॥१०१॥
गृहीत्वा च परां पूजां नानावाहनसंकुलः । मनोरथरथारूढो ययौ जिनवरालयम् ॥१०२॥
दृष्ट्वा तत्सुमहत्सैन्य[5]मागच्छत्परमोज्ज्वलम् । तूर्यशङ्खमहानादमाविग्नो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
ततो हरिगजद्वीपिनागहंसादिवाहिनाम् । पुरुषाणामिदं मध्ये विमानं स व्यलोकयत् ॥१०४॥

इन्द्रका क्रीड़ागृह है ? ॥९१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥९२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥९३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्रभगवान्के दर्शन किये । जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥९४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलोंसे उनकी पूजा की गई थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥९५–९६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया। नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥९७॥ क्षण भरके बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुन्दर सुसंस्कृत स्तुति की। तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ निःशङ्क हो वहीं बैठ गया ॥९८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥९९॥ उसने संतुष्ट होकर अपने स्वामीके लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आया जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ। तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एवं नाना वाहनोंसे युक्त चन्द्रगति आप्तवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१–१०२॥ जिसमें तुरही और शङ्खोंका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस

१. अश्वेन । २. तुङ्गजटा-ज०, क०, ख० । ३. सुवर्णकमलपूजितम् । ४. मनोहरोद्यानवेष्टिते । ५. सुमहासैन्य ब० ।

अचिन्तयच्च ते नूनमेते विद्याभृतो[1] जनाः । विजयार्द्धगिरेरूर्ध्वं ये वसन्तीति मे श्रुतम् ॥१०५॥
[2]मध्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थितिः । शोभते परमो दीप्त्या कोऽपि विद्याधराधिपः ॥१०६॥
एवं चिन्तापरे तस्मिन्नृपतौ दैत्यपुङ्गवः । संप्रापच्चैत्यभवनं सम्मर्दी[3] [4]नतविग्रहः ॥१०७॥
दृष्ट्वा दैत्याधिपं प्राप्तं भीमसौम्यपरिग्रहम् । जनकः किमपि ध्यायंस्तस्थौ सिंहासनान्तरे ॥१०८॥
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनानां परमस्तुतिम् ॥१०९॥
[5]विपञ्चीं च विधायाङ्के सुखरूपां प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ जिनगुणात्मकम् ॥११०॥

चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिभुवनवरदमभिष्टुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तैः ।
प्रणतं सुरवृषभगणैः प्रणमत नाथं जिनेन्द्रमक्षयसौख्यम् ॥१११॥
ऋषभं सततं परमं वरदं मनसा वचसा शिरसा सुजनाः ।
भजत प्रवरं विलयं प्रगतं विहितं सकलं दुरितं भवति ॥११२॥
अतिशयपरमं विनिहत दुरितं परमगतिगतं नमत जिनवरम् ।
सर्वसुरासुरपूजित पादं क्रोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥
उत्तमलक्षणलक्षितदेहं नौमि जिनेन्द्रमहं प्रयतात्मा ।
भक्त्या विनमितसर्वजनौघं ननिमात्रविनाशितभक्तभयम् ॥११४॥

आदि नाना वाहनोंपर स्थित पुरुषोंके मध्यमें एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयार्द्ध पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमें अपने विमानमें बैठा हुआ जो कान्तिमान् पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरों का राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजके सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुख-कारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकोंके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशय पूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको हे भव्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवानको मनसे, वचनसे शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्रभगवानको नमस्कार करो जो कि अतिशयोंसे उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्रभगवानकी स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नम्रीभूत कर

१. विद्याधरा म० । २. मध्ये + अयम् + अस्य । ३. हर्षयुक्तः । ४. नम्रशरीरः । ५. वीणाम् ।

अनुपमगुणधरमनुपमकायं विनिहतभवभयसकलकुचेष्टम् ।
कलिमलघनपटविनयनदक्षं प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥

इति गायति दैत्येन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययौ भयमुत्सृज्य जनको नाम[1] शोभनः ॥११६॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीषच्चलितमानसः । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥
उरगाणां पतिः किं स्यात् किं वा विद्याधराधिपः । सखे वद कुतः प्राप्तो भवान् किं संज्ञकोऽपि वा ॥११८॥
मिथिलानगरीतोऽहं प्राप्तो जनकसंज्ञकः । हृतो मायातुरङ्गेण नभश्चरमहीपते ॥११९॥
इत्युक्ते जनकेनैतावन्योन्यं [2]प्रीतमानसौ । इच्छाकाराञ्जलिं[3] कृत्वा सुखासीनौ बभूवतुः ॥१२०॥
क्षणं स्थित्वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितैः । जनितान्योन्यसन्मानौ तौ विश्रम्भं समीयतुः ॥१२१॥
ततश्चन्द्रायणोऽवोचद्धीमान् कृत्वा कथान्तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्वं मिथिलापतिरीक्षितः ॥१२२॥
अस्ति ते दुहिता राजन् लक्षणैरन्विता शुभैः । कर्णगोचरमायाता मम भूरिजनाननात् ॥१२३॥
सा भामण्डलसंज्ञाय मत्पुत्राय प्रदीयताम् । त्वया विहितसम्बन्धं मन्ये स्वं परमोदयम् ॥१२४॥
सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात् कृतं विद्याधराधिप । किन्तु [4]दाशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥
सुहृच्चन्द्रगतिरूचे सा कस्मात्तस्य कल्पिता । सोऽवोचच्छ्रूयतामस्ति भवतां चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

दिया है और जिन्हें नमस्कार करने मात्रसे भक्तोंका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्य-जन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले हैं, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने संसाररूपी समस्त कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोंसे पवित्र हैं अथवा अत्यन्त पवित्र हैं ॥११५॥

तदनन्तर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवोंके स्वामी हैं ? या विद्याधरोंके अधिपति हैं ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले हैं ? और यहाँ कहाँसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ । जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षणभर ठहरकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिने कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥ हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोंसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए । आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिने कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गई है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

१. नागशोभनः ज० । २. प्रीतिमानसौ ज० । प्रतिमानसौ म० । ३. -ञ्जली कृत्वा म० । ४. दशरथ-सुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगोरत्नसंपूर्णा मदीया मिथिलापुरी । अर्द्धबर्बरकैर्म्लेच्छैरबाध्यत सुदारुणैः ॥१२७॥
अपीड्यन्त प्रजाः सर्वाः स्वह्रियन्त धनोत्कराः । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त श्रावकाणां महात्मनाम् ॥१२८॥
ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मां सहानुजम् । पद्मेन[1] विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्जयाः ॥१२९॥
लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य शक्रोपमपराक्रमः । कुरुते शासनं नित्यं महाविनयसंयुतः ॥१३०॥
यदि नाम न तत्सैन्यं ताभ्यां स्याद् विजितं द्विषा । म्लेच्छलोकेन संपूर्णा ततः स्यादखिला मही ॥१३१॥
विवेकरहितास्ते हि लोकपीडामया इव । महोत्पाता इवात्यन्तभीषणा विषदारुणाः ॥१३२॥
प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ सुपुत्रौ लोकवत्सलौ । इन्द्रवद्भवने राज्यं सुखं दशरथोऽभजत् ॥१३३॥
तस्य राज्येऽधुना जाते नयशौर्यविलासिनः । वातोऽपि नाहरत् किञ्चित् प्रजानां पुरुसम्पदाम्[2] ॥१३४॥
ततः प्रत्युपकारं कं करोमीति समाकुलः । न रात्रौ न दिवा निद्रां संप्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥
रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो समः । कश्चित् प्रत्युपकारोऽस्ति किमुताधिक्यगोचरः ॥१३६॥
हतं महोपकारेण प्रतीकारविवर्जितम् । मन्ये तृणमिवात्मानं भोगप्रीति[3] पराङ्मुखः ॥१३७॥
नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा दुहितरं शुभाम् । गतो विरलतां शोकः शोकस्थानेऽपि मे ततः ॥१३८॥
तया कल्पितया तस्य रामस्य पुरुतेजसः । नावेव शोकजलधेस्तारितोऽहं सुजातया ॥१३९॥
ततो नभश्चरा ऊचुरन्धकारीकृताननाः । अहो मानुषमात्रस्य बुद्धिस्तव न शोभना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्नों-से परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीड़ित होने लगी, धन-धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव श्रावकोंके धार्मिक पूजा-विधान आदि अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ। सो उस महा-युद्धमें रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवोंसे भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छोंको पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा विनयसे सहित है। वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके द्वारा म्लेच्छोंकी वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे भर जाती ॥१३१॥ वे म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयंकर और विषके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे सम्पूर्ण तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राजा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके समान राज्यसुखका उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राजा दशरथके राज्यमें इस समय हवा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? ॥१३४॥ इस उपकारके बदले मैं उनका क्या उपकार करूँ इसी बातकी आकुलतासे चिन्ता करते हुए मुझे न रातमें नींद आती है न दिनमें ही ॥१३५॥ रामने मेरे प्राणोंकी जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिककी तो चर्चा ही क्या है? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दबा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ। मैं केवल भोगोंके भयसे पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोकके स्थानमें भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीके लिए उसको देना संकल्पित कर लिया और नावकी भाँति इस पुत्रीने मुझे शोकरूपी सागरसे पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनके मुखोंपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो! तुम एक

१ रामेण। २. पुरसम्पदाम् ख०। ३. भोगभीति म०।

म्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । [1]प्रशंससि परां शक्तिं भूमिगोचरिणो[2] बुध ॥१४१॥
म्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युत निन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥
शिशोर्विषफले प्रीतिर्निःस्वस्य[3] बदरादिषु । ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥१४३॥
कुसम्बन्धं परित्यज्य क्षितिगो[4]चरिणां मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण सम्बन्धमधुना सह ॥१४४॥
क्व महासम्पदो देवैः सदृशो व्योमचारिणः । क्व भूमिगोचराः क्षुद्राः सर्वथैवातिदुःखिताः ॥१४५॥
जनकोऽवोचदत्यन्तविपुलः [5]क्षारसागरः । न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादुपयोभृतः ॥१४६॥
अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥१४७॥
असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् । केशरी यत्किशोरः संश्च[6]न्द्रनिर्मलकेसरः ॥१४८॥
इत्युक्ते [7]कोऽपि नोऽत्यर्थं समं कृतमहारवाः । भूमिचेष्टां समारब्धा निन्दितुं गगनायनाः[8] ॥१४९॥
विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता नित्यं स्वेदसमन्विताः । शौर्यसम्पत्परित्यक्ताः शोचनीया धराचराः ॥१५०॥
वद तेषां पशूनां च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन त्रपां त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्तान् विकत्थसे ॥१५१॥
उवाच जनको धीरः हा कष्टं किं श्रुतं मया । वसुधाराजरत्नानां निन्दितं पापकर्मणा ॥१५२॥
कथं त्रिभुवनख्यातो वंशो नाभेयसंभवः । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्तो लोकपावनः ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो क्षुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमिगोचरियोंकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है । अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४२॥ बालककी विषफलमें, दरिद्रकी बेर आदि तुच्छ फलोंमें और कौएकी सूखे वृक्षमें प्रीति होती है । सो कहना पड़ता है कि प्राणीका स्वभाव कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोंके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी क्षुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलको धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मदको झरानेवाले असंख्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित हैं, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते हैं, शूरवीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमिगोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोकको

१. प्रशशंस म० । २. गोचरिणोर्बुधः म०, गोचरिणो बुधैः ब० । ३. दरिद्रस्य । निःश्वस्य म० । ४. गोचरिणामतः म० । ५. लवणसागरः । ६. चन्द्रमण्डल म० । ७. केऽपि नोत्यर्थं (?) । ८. विद्याधराः ।

अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥१५४॥
पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिः पुंसां वदत खेचराः । स्वप्नेऽपि जातु किं दृष्टा भवद्भिः खेचरावनौ ॥१५५॥
इक्ष्वाकुवंशसंभूता गोष्पदीकृतविष्टपाः । अनीक्षितपरच्छत्रा महारत्नसमृद्धयः ॥१५६॥
सुरेन्द्रकीर्तितोदारकीर्तयो गुणसागराः । व्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
पुत्रोऽनरण्यराजस्य तत्र वंशे महात्मनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥
यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । मूर्ध्ना वहति यस्याज्ञां शेषामिव जनोऽखिलः ॥१५९॥
चतस्रो यस्य सम्पन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आशा इव महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
शतानि वरनारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्त्रनिर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । दीप्तिनिर्जिततिग्मांशुः कीर्त्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥
स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शौर्येण यो महापद्मं जयेदपि सुविभ्रमः ॥१६३॥
अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरासनम् ॥१६४॥
वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन[1] को गुणः ॥१६५॥
ग्रहणं वा भवद्भिः किं यत्र देवाधिपा अपि । क्रियन्ते भूमिसंभूतैर्नमन्तः क्षितिमस्तकाः ॥१६६॥
इत्युक्ते रहसि स्थित्वा सम्मन्त्र्य गगनायनाः । ऊचुर्न वेत्सि कार्याणि [2]जनकैकाग्रमानसाः ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगत्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंको पञ्च कल्याणकोंकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोष्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका छत्र नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमङ्गला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको शेषाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलङ्कारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियाँ हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमाको जीतनेवाली पाँच सौ स्त्रियाँ और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनको हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिङ्गन करती है, जिसने अपनी दीप्तिसे सूर्यको, कीर्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं। इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए । इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

१. जालेषु म० । २. जानकैकाग्रमानसः क०, ख० ।

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गर्जितं वहसे वृथा । अथ विप्रत्ययः कश्चित्ततोऽस्माद्व्रज निश्चयम् ॥१६८॥
समयं शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनुः । इदं च सागरावर्तममरैः कृतरक्षणम् ॥१६९॥
इमे वाणासने कर्तुमधिज्ये यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयोः शक्तिं ज्ञास्यामः किं बहूदितैः ॥१७०॥
वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभिः प्रसभं पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥१७१॥
ततः परममित्युक्त्वा धनुषी वीक्ष्य दुर्ग्रहे । [२]मनकाद् व्याकुलीभावं जनको मनसागमत् ॥१७२॥
ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां स्तोत्रं तु भावतः । गदासीरादिसंयुक्ते पूजां नीते शरासने ॥१७३॥
उपादाय च ते शूरा जनकं च नभश्चराः । मिथिलाभिमुखं जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
ततः कृतमहाशोभं समङ्गलमहाजनम् । विवेश जनको वेश्म पौरलोकावलोकितः ॥१७५॥
विधायायुधशालां च समावृत्य नभश्चराः । वहन्तः परमं गर्वं नगरस्य बहिःस्थिताः ॥१७६॥
जनकस्तु सखेदाङ्गः कृत्वा किञ्चित्स भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भेजे तल्पमुत्साहवर्जितः ॥१७७॥
तत्र चोत्तमनारीभिर्विनीताभिः सुविभ्रमम् । चन्द्रांशुचयसंकाशैश्चामरैरभिवीजितः ॥१७८॥
उष्णदीर्घातिनिःश्वासान् विमुञ्चन् विषमानलम् । दृष्ट्या विविधं भावमभाष्यत विदेहया[३] ॥१७९॥
का क्व कामिंस्त्वया दृष्टा नारी [४]यातेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि संश्रितः ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उत्कृष्ट हैं' इस गर्जनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो यदि मेरे इस कहनेमें कुछ संशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो। यह वज्रावर्त्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त्त नामका धनुष है। देव लोग इन दोनों की रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरीसहित करनेमें समर्थ हो जावेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे। अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त्त धनुषको चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं यदि वे उक्त धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोंकी शर्त स्वीकार तो कर ली परन्तु उन दुर्ग्राह्य धनुषोंको देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भाव-पूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा, हल आदि शस्त्रोंसे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गई ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पड़े और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गई थी, और जिसमें महाजन लोग मङ्गलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया। प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोड़ासा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा। उत्साह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियाँ, हाव भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोंसे उसे हवा कर रही थीं तथापि वह अत्यन्त विषम, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था। उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस

१. विरोधः । २. मनकाव्याकुली-म० । ३. एतन्नाम्न्या जनकपत्न्या । ४. या तेन लक्षितः म० ।

[1]प्राकृता कापि सा नारी कामिनीगुणरिक्तिका । इति या स्मरसंतप्तं[2] भवन्तं नानुकम्पते ॥१८१॥
नाथ वेदय मे स्थानं येन तामानयामि ते । भवद्दुःखेन मे दुःखं जनस्य सकलस्य वा ॥१८२॥
उदारे सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽसि नो तया । [3]ग्रावमानसया येन धृतिं न लभसे भृशम् ॥१८३॥
उत्तिष्ठ भज निःशेषाः क्रिया राजजनोचिताः । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः[4] ॥१८४॥
इत्युक्ते पार्थिवोऽवोचत् कान्तां प्राणगरीयसीम् । अन्यथा खेदितस्यास्य किं मे चित्तस्य खेद्यते ॥१८५॥
शृणु देवि यतोऽवस्थामीदृशीमहमागतः । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भाषसे ॥१८६॥
तेन मायातुरङ्गेण नीतोऽहं विजयाचलम्[5] । समयेनामुना तत्र मुक्तः पत्या खगामिनाम् ॥१८७॥
वज्रावर्तमधिज्यं चेद्धनुः पद्मः[6] करिष्यति । ततः स्यात्तस्य कन्येयं तनयस्य ममान्यथा ॥१८८॥
कर्मानुभावतस्तच्च मया साध्वसतोऽपि वा । प्रतिपन्नं[7] मभाग्येन बन्धावस्थामुपेयुषा ॥१८९॥
समुद्रावर्तसंज्ञेन[8] तच्चापेन समन्वितम् । आनीतं खेचरैरुग्रैर्बहिःस्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥
मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिज्यताकृतौ । वज्रज्वलन[9]तुल्यस्य दुर्निरीक्ष्यस्य तेजसा ॥१९१॥
[10]कृतान्तमेव निक्रुद्धमनाकृष्टमपि स्वनत् । अनधिज्यमपि स्वैरं भीष्मं तिष्ठत्यनारतम् ॥१९२॥
[11]अधिज्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन [12]मदियं ध्रुवम् । हरिष्यते खगैः कन्या मांसपेशीव जम्बुकात् ॥१९३॥
विंशतिर्वासराणां च वस्तुन्यत्र कृतोऽवधिः । बलान्नीता वराकीयं भूयोऽस्माभिः क्व वीक्षिता ॥१९४॥

अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥ जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे संतप्त हुए आप पर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइये जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पाषाणहृदयाने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अधीर हो रहे हैं ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए। यदि शरीर है तो अनेक इच्छित स्त्रियाँ हो जावेंगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे खिन्न हो रहा है। उसे इस तरह खेद क्यों पहुँचा रही हो ? ॥१८५॥ हे देवि ! सुनो, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ। तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्ध पर्वतपर ले जाया गया था वहाँ विद्याधरोंके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो बन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्दभाग्यने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये हैं और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष वज्राग्निके समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है। इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो। बिना खींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हर कर ले जावेंगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगालके मुखसे मांसकी डलीको हर ले जाते हैं ॥१९३॥ इस कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चित की

१. पामरी। २. स्मरसंसक्तं म०। ३. पाषाणवत्कठोरचेतसा। ४. इष्टाः। ५. विजयार्धगिरिम्। ६. रामः। ७. स्वीकृतम्। ८. संख्येन म०। ९. दिग्ज्वालानल- ज०, ख०, क०। १०. कृतान्तायैव तत्क्रुद्ध- म०, ख०। ११. अधिज्येन च्युते यस्मिन् म०। १२. मत् मत्सकाशात्।

एवमुक्तेऽस्रसंपूर्णलोचना सहसाभवत् । विदेहापहृतं बालमस्मरञ्च प्रसङ्गतः ॥१९५॥
अतीतागामिशोकाभ्यामभितः पीडितेव सा । चकार वारिनेत्राभ्यां कुररीव कृतस्वना ॥१९६॥
परिदेवनमेवं च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवणं[1] चेतसामलम् ॥१९७॥
कीदृग्वामं मया नाथ दैवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यन्न संतुष्टं हर्तुं कन्यां समुद्यतम् ॥१९८॥
स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेयं सुचेष्टिता । मम ते बान्धवानां च प्रेमभावो जनस्य च ॥१९९॥
दुःखस्य यावदेकस्य[2] नान्तं गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे[3] कृतसंनिधि वर्तते ॥२००॥
शोकावर्तनिमग्नां तां करुणं रुदतीमिति । नियम्यास्रु[4] प्रियोऽवोचदतः शोकसमाकुलः ॥२०१॥
अलं कान्ते रुदित्वा ते ननु कर्मार्जितं पुरा । नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥२०२॥
अथवा मयि विश्वस्ते हृतो दुष्टेन बालकः । अप्रमत्तस्य बालां तु हर्तुं शक्तोऽस्ति को मम ॥२०३॥
आप्तप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । पृष्टासि दयिते वस्तु जानाम्येतत् सुखावहम् ॥२०४॥
सारैरेवंविधैर्वाक्यैः कान्तेन कृतसान्त्वना[5] । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृच्छ्रादवस्थिता ॥२०५॥
ततो धनुर्गृहप्रान्ते विशाला रचितावनिः । स्वयंवरार्थमाहूताः पार्थिवाः सकलाः क्षितौ ॥२०६॥
प्रेषितः कोशलां दूतः [6]पद्माद्याः समुपागताः । [7]मातापित्रादिसंयुक्ता जनकेनाभिपूजिताः ॥२०७॥

गई है। इसके बाद यह कन्या जबर्दस्ती ले जाई जावेगी। फिर इस बेचारीको हम कहाँ देख सकेंगे ? ॥१९४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसङ्गसे उसे अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१९५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोनों ओरसे पीड़ित हो रही थी। इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१९६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोंके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने दैवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे वह पुत्रके द्वारा सन्तुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१९७-१९८॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाई-बान्धव एवं परिवारके लोगोंका प्रेमभाजन है ॥१९९॥ मैं पापिनी जब तक एक दुःखका अन्त नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जनक स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमें फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है। निश्चयसे पूर्व जन्ममें अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है। यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१-२०२॥ अथवा मेरे निश्चिन्त असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ। देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आप्तजनोंके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ते हुए ही मैंने तुमसे पूछा था। मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही होगी ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिसे सान्त्वना दी गई थी ऐसी विदेहा बड़े कष्टसे शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रक्खा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनाई गई और उसमें स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारों भाई माता पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सन्मान किया

१. द्रविणं म० । २. -देतस्य म० । ३. तावदेतन्मे म० । ४. नियम्याश्रु म० । ५. सान्त्वया ज० । ६. रामाद्याः । ७. मातृपित्रा-ज०, क०, ख०, ब० ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरी । कन्यासप्तशतान्तस्था सीता शूरभटावृता ॥२०८॥
प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वेश्मनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विविधां लीलां महाविभववर्तिनः ॥२०९॥
ततः स्थित्वा पुरस्तस्य कञ्चुकी सुबहुश्रुतः । जगाद तारशब्देन हेमवेत्रलताकरः ॥२१०॥
राजपुत्रि परीक्षस्व पद्मोऽसौ पद्मलोचनः । अयोध्याधिपतेराद्यः पुत्रो दशरथश्रुतेः ॥२११॥
लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चायमनुजोऽस्य महाद्युतिः । भरतोऽयं महाबाहुः शत्रुघ्नोऽयं सुचेष्टितः ॥२१२॥
सुतैर्दशरथोऽमीभिर्गुणसागरमानसैः । वसुधां शास्ति निर्दग्धभयाङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥
हरिवाहननामायं धीमानेष घनप्रभः । अयं चित्ररथः कान्तो दुर्मुखोऽयं प्रभाववान् ॥२१४॥
श्रीमंजयो जयो भानुः सुप्रभो मन्दरो बुधः । विशालः श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबलः शिखी ॥२१५॥
एतेऽन्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विताः । विशुद्धवंशसम्भूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तयः ॥२१६॥
कुमाराः परमोत्साहा गुणभूषणधारिणः । महाविभवसम्पन्ना भूरिविज्ञानकोविदाः ॥२१७॥
गजोऽयमस्य शैलाभस्तुरङ्गोऽस्यायमुन्नतः । रथोऽस्यायं महाभोगो[1] भटोऽस्यायं कृताद्भुतः ॥२१८॥
सांकाश्यपुरनाथोऽयमयं[2] रन्ध्रपुराधिपः । [3]गवीधुमदधीशोऽयमयं नन्दनिकाधिपः ॥२१९॥
विभुः सूरपुरस्यायमेष कुण्डपुराधिपः । अयं मगधराजेन्द्रः काम्पिल्यविभुरेष च ॥२२०॥
अयमिक्ष्वाकुसम्भूतो नृपोऽयं हरिवंशजः । अयं कुरुकुलानन्दो भोजोऽयं वसुधापतिः ॥२२१॥
इत्यादिवर्णनायुक्ता श्रूयन्तेऽमी महागुणाः । इदं त्वदर्थमेतेषां समारब्धं परीक्षणम् ॥२२२॥

॥२०७॥ तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारों ओर नाना प्रकारकी लीला को करते हुए समस्त सामन्त बड़े ठाट-बाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला कञ्चुकी सीताके सामने खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बड़ी-बड़ी भुजाओं को धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोंके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं। इनकी पृथिवीमें भयके समस्त अङ्कुरोंकी उत्पत्ति भस्म कर दी गई है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसञ्जय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिखी अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं। ये सभी महा पराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमें निपुण हैं ॥२१६-२१७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और यह आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इसका सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह साङ्काश्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है यह गवीधुमद् देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और काम्पिल्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्द दायक है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महा

१. महाभागो म० । २. रध्रपुराभिधः म० । ३. गवीकमद ज० । गवाग्रमद म० ।

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति यो नरः । कुमारि वरणीयोऽसौ भवत्या पुरुषोत्तमः ॥२२३॥
क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणाः स्वविकत्थनम् । वज्रावर्तधनुस्तेन ढौकिताश्चारुविभ्रमाः[1] ॥२२४॥
आसीदत्सु कुमारेषु धनुर्मुञ्चति पावकम् । विद्युत्सटासमाकारं निश्वसद्भीषणोरगम् ॥२२५॥
चक्षुस्तत्र [2]द्रुतं केचिद्धनुर्ज्वालासमाहतम् । त्रस्ताः पिधाय पाणिभ्यां पराचीनत्वमाश्रिताः[3] ॥२२६॥
तस्थुर्दूरत एवान्ये दृष्ट्वा स्फुरितपन्नगान् । कम्पमानसमस्ताङ्गा निर्मीलितविलोचनाः ॥२२७॥
[4]केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः क्षितावन्ये [5]गिरोज्झिताः । द्रुतं पलायिताः केचिदेके मूर्छामुपागताः ॥२२८॥
केचित्पन्नगवातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवत् । अपरे स्तम्भमायाताः स्थिताः शान्तर्द्धयोऽपरे ॥२२९॥
केचिदूचुर्यदि स्थानं गमिष्यामो निजं ततः । जीवदानानि दास्यामश्चरणौ देहि [6]देवते ॥२३०॥
[7]ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः सेवां मानसवासिनः[8] । ध्रियमाणाः करिष्यामो रूपिण्यापि किमेतया ॥२३१॥
अन्ये जगुरियं नूनं केनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥२३२॥
अन्ये जगुः किमस्माकं कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्यामः समयं साधवो यथा ॥२३३॥
तत पद्मः समुत्तस्थौ वरकार्मुकलालसः । दुढौके च [9]महानागमन्थरां गतिमुद्वहन् ॥२३४॥
आसीदतिशुभं तस्मिन् रूपं भेजे धनुर्निजम् । मुत्राकुपरमं सौम्यमन्तेवासी[10] गुराविव ॥२३५॥

गुणवान् सुने जाते हैं । तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२२॥ हे कुमारि ! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुषको चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा वरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सब राजाओंको वह कञ्चुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार बिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयङ्कर साँप फुँकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोंके पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी ज्वालाओंसे ताड़ित चक्षुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अङ्ग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए साँपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग ज्वरसे आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती बन्द हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥ कितने ही लोग साँपोंकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगोंको ऋद्धि शान्त हो गई अर्थात् वे शोभारहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोंको दान देवेंगे । हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे । भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमे कामसे क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देवेंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिको धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१. चारुनिभ्रमा म० । २. शीघ्रम् । ३. पराङ्मुखत्वम् । ४. केचिद्भराकुला म०, केचिज्ज्वराकुला ज० । ५. वाण्या रहिताः । ६. देवि ज० । ७. ऊचुरन्येन नारीभिः म० । ८. कामस्य । ९. महागजमन्थरां । १०. छात्रः ।

ततो विस्रब्धमादाय धनुरुद्वेष्टय चांशुकम् । समारोपयदभ्युच्चैर्ध्वनितं विपुलप्रभम् ॥२३६॥
महाजलधरध्वानशङ्किभिः शिखिभिः कृतम् । मुक्तकेकारवैर्नृत्यं बद्धविस्तीर्णमण्डलैः ॥२३७॥
अलातचक्रसंकाशः संजातो दिवसाधिपः । सुवर्णरजसाच्छन्ना इवासन् व्योमबाहवः[1] ॥२३८॥
साधु साध्विति देवानां बभूव नभसि स्वनः । ननृतुर्व्यन्तराः केचिन्मुञ्चन्तः पुष्पसंहतीः ॥२३९॥
ततोऽटनिजटङ्कारबधिरीकृतविष्टपम् । आचकर्ष धनुः पद्मः सम्प्राप्तं चक्रतामिव ॥२४०॥
विकलीभूतनिश्शेषहृषीकः सकलो जनः । तदावर्तमिव प्राप्तो भ्राम्यति त्रस्तमानसः ॥२४१॥
प्रवातघूर्णिताम्भोजपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरचापेन सीता रामं निरैक्षत ॥२४२॥
रोमाञ्चार्चितसर्वाङ्गा दधती परमस्रजम् । प्रीता रामं डुढौके सा व्रीडाविनमितानना ॥२४३॥
पार्श्वस्थया तया रेजे स तथा सुन्दरो[2] यथा । यथायमिति दृष्टान्तं यो गदेत् स गतत्रपः ॥२४४॥
अवतारितमौर्वीकं स कृत्वा सायकासनम् । तस्थौ विनयसम्पन्नः स्वासने सीतया सह ॥२४५॥
सकम्पहृदया सीता रामाननदिदृक्षया । भावं कमपि सम्प्राप्ता नवसङ्गमसाध्वसा ॥२४६॥
क्षुब्धाकूपारनिस्वानं सागरावर्तकार्मुकम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्यं कृत्वास्फालयदुन्नतम् ॥२४७॥
शरे निहितदृष्टिं तं समालोक्य नभश्चराः । वदन्तो देव मा मेति मुमुचुः कुसुमोत्करान् ॥२४८॥
आकृष्य कार्मुकं क्रूरं मौर्वीसंरावमूर्जितः[3] । अवतार्य च पद्मस्य पार्श्वे सुविनयस्थितः ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसीतरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर एवं सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३५॥ तदनन्तर रामने वस्त्र ऊपर चढ़ाकर निःशङ्क हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर जोरसे विपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोंकी महागर्जना समझ हर्षसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैला कर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गई ॥२३८॥ आकाशमें 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी टङ्कारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियाँ विकल हो गई थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवरमें पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ वायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे जिसका मुख नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमें खड़ी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपमामें 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमें ही क्षुभित समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यञ्चासहित कर जोरसे उसकी टङ्कार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर बाणपर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरोंने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे

१. दिशाः । २. सुन्दरा म० । ३. बलवान् ।

विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभृच्चन्द्रवर्धनः । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥२५०॥
विद्याधरैः समागत्य परमं भयपूरितैः । वृत्तान्ते कथिते तस्मिंश्चन्द्रश्चिन्तापरः स्थितः ॥२५१॥
वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुरुविस्मयः । अशोचदेवमात्मानं मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥२५२॥
कुलमेकं पिताप्येक एतयोर्मम चेदृशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्यां न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
अथवा किं मनो व्यर्थं परलक्ष्म्याभितप्यसे । पुरा चारूणि कर्माणि न कृतानि ध्रुवं त्वया ॥२५४॥
पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला । ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥२५५॥
कलाकलापनिष्णाता विज्ञाना केकया ततः । विज्ञाय तनयाकूतं कर्णे प्रियमभाषत ॥२५६॥
भरतस्य मया नाथ शोकवल्लक्षितं मनः । तथा कुरु यथा नायं निर्वेदं परमृच्छति ॥२५७॥
अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृपः । सुप्रभायां ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
स्वयंवराभिधं भूयः समुद्घोष्य नियोज्यताम् । तथायं यावदायाति नान्यं तं भावनान्तरम् ॥२५९॥
ततः परममित्युक्त्वा वार्तां दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतसः ॥२६०॥
यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥२६१॥
ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम् । [1]नक्षत्रगणमध्यस्थशर्[2]वरीवरविभ्रमम् ॥२६२॥
उपात्तसुमनोदामा [3]कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरतं वव्रे सुभद्रा भरतं यथा ॥२६३॥

धनुषको खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४९॥ इस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धिमती अठारह कन्याएँ दीं ॥२५०॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोंने वापिस आकर जब यह समाचार कहा तब चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामें निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिसे मनमें प्रबोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥ कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं। पर इन दोनों अर्थात् राम लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे मनको व्यर्थ ही क्यों संतप्त किया जाय ? निश्चित ही तूने पूर्वभवमें अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओंके समूहमें निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केकयाने पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृदयवल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ ! मुझे भरतका मन शोकयुक्त दिखाई देता है। इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाय ॥२५६–२५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोक-सुन्दरी नामा कन्या है ॥२५८॥ सो स्वयंवर विधिकी पुनः घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचाई ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नक्षत्रोंके समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण करनेवाली एवं सुवर्णके समान कान्तिसे संयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

१. नक्षत्रं गणमध्यस्थं म० । २. चन्द्र- । ३. कनकस्यापत्यं स्त्री कानकी ।

अत्यन्तविषमीभावं पश्य श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽसौ संप्रबुद्धः सन् कन्यया मोहितः पुनः ॥२६४॥
विलक्षाः पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्थानं यथायथम् । अस्थुश्च विकथाशक्त्या बन्धुवर्गसमागमे ॥२६५॥
यादृक् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् । नह्युप्तान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसंपदम् ॥२६६॥
केतुतोरणमालाभिमण्डितायां महाद्युतौ । [1]आगुल्फकुसुमापूर्णविशालापणवर्त्मनि ॥२६७॥
सशंखतूर्यनिस्वानपूरिताखिलवेश्मनि । मिथिलायां तयोश्चक्रे विवाहः परमोत्सवः ॥२६८॥

द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपूरितः ।
महाप्रलयमायातं देहीति ध्वनितं यथा ॥२६९॥
ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं स्थिता भूपाः सुचेतसः ।
परमं प्राप्य सन्मानं ययुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥२७०॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपपयोनिधिवर्तिनः ।
पितृजनार्पितसंमदसम्पदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥२७१॥
विविधयानसमाकुलसैनिका जलनिधिस्वनतूर्यनिनादिताः ।
विविशुरभ्युदयेन सुकोशलां दशरथस्य सुता वधुके [3]तथा ॥२७२॥
समवलोकितुमुत्तमविग्रहे पुरि तदा वधुके सकलो जनः ।
रहितसामिकृतस्वमनःक्रियः श्रयति राजपथं भृशमाकुलः ॥२७३॥

वरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चक्रवर्तीको वरा था ।।२६२-२६३।। गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मोंकी अत्यन्त विषमता देखो कि प्रबोधको प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुनः मोहित हो गया ।।२६४।। सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके बीचमें विकथा करते हुए रहने लगे ।।२६५।। कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोदों बोये हैं वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ।।२६६।।

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजाई गई थी, जो महाकान्तिको धारण कर रही थी, जिसके बाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शङ्ख एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ।।२६७-२६८।। उस समय धनसे सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् बिलकुल ही नष्ट हो गया था ।।२६९।। उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सन्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ।।२७०।।

अथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियोंसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवाली तुरही बज रही थी ऐसे दशरथके पुत्रों तथा बहुओंने बड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ।।२७१-२७२।। उस समय उत्तम शरीरको धारण करनेवाली बहुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी

१. अगुल्फकुसुमापूर्णविशालापण्यवर्त्मनि म० । २. धनेन । ३. वध्वौ एव वधुके स्वार्थे क० ।

कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः पुरुगुणस्तवसन्नतमूर्तयः ।
स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुताः सुधियः स्थिताः ॥२७४॥
समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ॥२७५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥

व्यग्रतासे राजमार्गमें आ गये ॥२७३॥ जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर विनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें रामलक्ष्मणको स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

आषाढधवलाष्टम्याः प्रभृत्यथ नराधिपः । महिमानं जिनेन्द्राणां प्रयतः कर्तुमुद्यतः ॥१॥
सर्वाः प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । विधातुं जिनबिम्बानामिति कर्तव्यमुद्यताः ॥२॥
पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः । कश्चिद् ग्रथ्नाति माल्यानि [1]लब्धवर्णः सुभक्तिषु ॥३॥
वासयत्युदकं कश्चिद्द्रवयत्यपरः क्षितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छवीन् ॥४॥
द्वारशोभां करोत्यन्यो [2]वासोभिरतिभासुरैः । नानाधातुरसैः कश्चित्कुरुते भित्तिमण्डनम् ॥५॥
एवं जनः परां भक्तिं वहन् प्रमदपूरितः । जिनपूजासमाधानात् पुण्यमार्जयदुत्तमम् ॥६॥[3]
ततः सर्वसमृद्धीनां कृतसम्भारसन्निधिः । चकार स्नपनं राजा जिनानां तूर्यनादितम् ॥७॥
अष्टाहोपोषितं कृत्वाभिषेकं परमं नृपः । चकार महतीं पूजां पुष्पैः सहजकृत्रिमैः ॥८॥
यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शक्रः सुरसमन्वितः । जिनेन्द्रमहिमानन्दं कुरुते तद्वदेव सः ॥९॥
ततः सदनयातानां महिषीणां नराधिपः । [4]प्रजिघाय महापूतं [5]शान्तिगन्धोदकं कृती ॥१०॥
तिसृणां तरुणीस्त्रीभिर्नीतं शान्त्युदकं द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्रुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
वृद्धकञ्चुकिनो हस्ते दत्तं जिनवरोदकम् । अप्राप्य सुप्रभा कोपं शोकं च परमं गता ॥१२॥
अचिंतयच्च नो साध्वी बुद्धिरेषा महीभृतः । यदेता मानिता नाहं शान्तिवारिविसर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आषाढ़ शुक्ल अष्टमीसे आष्टाह्निक महापर्व आया। सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-प्रतिमाओंके विषयमें निम्नाङ्कित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल बनानेके लिए बड़े आदरसे पाँच रङ्गके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमें निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रोंसे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवालोंको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एवं आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनोंने जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका संचय किया ॥६॥

तदनन्तर सब प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमें तुरहीका विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्वर्ण रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोंसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमें जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सब परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जब रानियाँ घर पहुँच गईं तब बुद्धिमान राजा दशरथने सबके लिए महा पवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियाँ ले गईं इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धासे मस्तकपर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए वृद्ध कञ्चुकीके हाथ भेजा था इसलिए उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे

१. विचक्षणः, चतुरः इत्यर्थः । २. वस्त्रैः । ३. पुण्यमर्जयत् म० । ४. प्रेषयामास । ५. शान्त म० ।

को वात्र नृपतेर्दोषः प्रायः पुण्यं पुरा मया । नार्जितं येन सम्प्राप्ता [1]निकारमिदमीदृशम् ॥१४॥
पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या महासौभाग्यसंयुताः । पूतं यासां जिनेंद्राम्बु प्रीत्या प्रहितमुत्तमम् ॥१५॥
अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । शरणं मरणं मन्ये तापः शाम्यति नान्यथा ॥१६॥
[2]विशाखसंज्ञमाहूय भाण्डागरिकमेककम् । जगाद भद्र नाख्येयं त्वयेदं वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
विषेणात्यन्तपरमं मम जातं प्रयोजनम् । तदानय द्रुतं भक्तिर्मयि चेत्तव विद्यते ॥१८॥
गत्वा स यावदन्विष्यंश्चिरयत्यतिशंकितः । तावत्तल्पगृहं गत्वा सातिष्ठत् स्रस्तगात्रिका ॥१९॥
नृपतिश्चागतो वीक्ष्य प्रियास्तिस्रस्तया विना । समन्विष्यागमत्तस्याः समीपं त्वरितक्रमः ॥२०॥
अपश्यच्च मनश्चौरीमंशुकच्छन्नविग्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पे शक्रयष्टिमिव स्थिताम् ॥२१॥
गृहाण तदिदं[3] देवि क्ष्वेडमित्यवदच्च सः । प्रेष्यो दशरथश्चैतं देशं प्राप्याश्रृणोद् ध्वनिम् ॥२२॥
हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च ब्रुवन् । स निराकरोद्[4] भुजिष्यन्तं तत्तल्पे चोपविष्टवान् ॥२३॥
राजानमागतं ज्ञात्वा सहसा सत्रपोत्थिता । क्षितावुपविविक्षन्ती कान्तेनाङ्के निवेशिता ॥२४॥
अवाचि च प्रिये कस्मात् कोपं प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥
सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्माद् दुःखतः परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःखं वद कीदृशम् ॥२६॥
त्वं मे हृदयसर्वस्वं दयिते वद कारणम् । क्षणेनापनयं[5] यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥
श्रुतं वेत्सि जिनेन्द्राणां सदसद्गतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते धिक्कोपं ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥ अथवा इसमें राजाका क्या दोष है ? प्रायः-कर मैंने पूर्व भवमें पुण्यका संचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥ ये तीनों पुण्यवती तथा महा सौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ। अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो सकता ॥१६॥ यह विचार कर उसने विशाख नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विषकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है । इसलिए यदि तेरी मुझमें भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विषके नामसे अत्यन्त शङ्कित होता हुआ भाण्डारी उसे खोजता हुआ जब तक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीरको शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुराने-वाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥ इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विष लो। भाण्डारीके इस शब्दको वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्खे ! यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने जीवनसे भी निःस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सब दुःखोंसे अधिक दुःख है । सो जिस अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे सुमुखि ! शीघ्र ही वह कारण बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करने-

१. तिरस्कारम् । २. विशार- म० । ३. विषम् । ४. सेवकं तं । ५. दूरीभावं ।

प्रसीद देवि कोऽद्यापि कोपस्यावसरस्तव । प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२९॥
तयोक्तं नाथ कः कोपस्त्वयि मे दुःखमीदृशम् । समुत्पन्नं न यद्याति शान्तिं पञ्चतया[1] विना ॥३०॥
देवि तत्कतरद्दुःखमित्युक्तैवमभाषत । शान्त्यम्बुदानमन्यासां मम नेति कुतो वद ॥३१॥
दृष्टेन केन कार्येण हीनाहं विदिता त्वया । यदवञ्चितपूर्वास्मि वञ्चिता पण्डिताधुना ॥३२॥
यावदेवं वदत्येषा तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैनाम्बु नाथेन तुभ्यं दत्तमिति ब्रुवन् ॥३३॥
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अयि मुग्धे प्रसादस्य स्थाने प्राप्तासि किं रुषा ॥३४॥
पश्यास्माकं जुगुप्साभिर्दासीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्ठेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥
ईदृशी नाम नाथस्य सम्प्रीतिर्भवतीं प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे[2] प्रकुप्यसि ॥३६॥
प्रसीद दयितस्यास्य लग्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ॥३७॥
दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे । तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥३८॥
विपादयितुमस्माकमात्मानमुचितं ननु । किंत्वत्र जिनचन्द्राणां [3]वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥
सपत्नीभिरपि प्रीतमिति सान्त्विततया तया । चक्रे शान्त्युदकं मूर्ध्नि रोमाञ्चाञ्चितगात्रया ॥४०॥
ततः प्रकुपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिनं तकम् । व्याक्षेपः क्व नु ते जातो वदापसद[4] कञ्चुकिन् ॥४१॥
ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमप्यूचे क्षितिजानुशिराञ्जलिः ॥४२॥

वाले जिनशास्त्रको तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गई ? इस प्रगाढ़ अन्धकारस्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियाँ होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जब तक यह सब कह रही थी कि तब तक वृद्ध कञ्चुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देख, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियाँ गन्धोदक लाई हैं पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कञ्चुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामी की ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे बड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं । अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियाँ अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जब तक पतिपर क्रोध किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हमलोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था । इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमाञ्चसे सुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कंचुकीसे कहा कि हे नीच कंचुकी ! बता तुझे यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विशेषकर काँपने लगा था ऐसा

१. पञ्चयता म० । २. अनवसरे । ३. वारिणां म० (?) । ४. अधम ।

[1]हृदये स्थापिताः कृच्छ्रादानीता वक्त्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलीन्स्तेऽस्य भूरिशः ॥४३॥
[2]खत्कारं मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरौ[3] मुहुः । हृदयं संस्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥
पश्चान्मस्तकभागस्थचन्द्रांशुसितमूर्द्धजः । मन्दवाताहतश्वेतचामरोपमकूर्चकः ॥४५॥
मक्षिकाच्छदनच्छात्तत्वक्तिरोहितकैकसः । धवलभ्रूवलिच्छन्नशोणप्रभनिरीक्षणः ॥४६॥
अभिलक्ष्यशिराजालसंवेष्टितचलत्तनुः । असम्पूरितपुस्ताभः कृच्छ्राद्वासोऽपि धारयन् ॥४७॥
हिमाहत इवात्यर्थं कपोलौ कम्पयन् श्लथौ । विवक्षया मुहुर्जिह्वां स्थानानि स्खलितां नयन् ॥४८॥
अप्येकाक्षरनिष्पत्तिं मन्यमानो महोत्सवम् । वर्णान्तराभिसंधानाद् वर्णमन्यं समुच्चरन् ॥४९॥
संधानवर्जितान् वर्णान् परमश्रमकारिणः । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजर्जरान् ॥५०॥
जराधीनस्य मे नाथ किमागो भृत्यवत्सल । सम्प्राप्तोऽसि यतः कोपं देव विज्ञानभूषण ॥५१॥
पुरा करिकराकारभुजं कर्कशमुन्नतम् । पीनोत्तुङ्गं महोरस्कमालानसदृशोरुकम् ॥५२॥
आसीन् मम वपुः शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणां कारणं परमोदयम् ॥५३॥
अभूतां चूर्णने देव शक्तौ [4]हस्तिकपाटयोः । करौ पार्ष्णिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदकः ॥५४॥
उच्चावचां क्षितिं वेगात् पुराहं परिलंघयन् । राजहंस इवावातं नाथ स्थानमभीप्सितम् ॥५५॥
आसीत् दृष्टेरवष्टंभस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि क्षितेरीशं यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

कञ्चुकी पृथिवीपर घुटने और शिरपर अञ्जलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बड़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोंपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओंठ चलाता था, और बड़ी कठिनाईसे उठाकर पास ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफ़ेद बाल स्थित थे तथा सफ़ेद चमरके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पङ्खके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफ़ेद-सफ़ेद भ्रकुटियोंकी वलिसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चञ्चल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधबने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह वस्त्र भी बड़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताड़ित हुएके समान दोनों शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लड़खड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोंपर बड़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले टूटे-फूटे वर्णोंको वह जीर्ण-शीर्ण काँटेके समान बड़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७–५०॥ हे भृत्यवत्सल, स्वामिन् ! मुझ बुड्ढेका क्या अपराध है ? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव ! आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँड़के समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जङ्घाएँ आलान अर्थात् हाथी बाँधनेके खम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृति वाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२–५३॥ हे देव ! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ़ किवाड़ोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे लाँघ जाता था, हे स्वामिन् ! मैं राजहंस पक्षीके समान मनचाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४–५५॥ हे राजन् ! मेरी दृष्टिमें इतना बल था कि

१. हृदयस्थापिता म० । २. खत्कारं ख० । ३. -न्नधरं म० । ४. हस्तकपाटयोः म० ।

अङ्गनालनदृष्टीनां मनसां स महास्थिरम् । आलानमेतदासीन्मे शरीरं चारुविभ्रमम् ॥५७॥
लालितं परमैर्भोगैः प्रसादेन पितुस्तव । विसंघटितमेतन्मे कुमित्रमिव साम्प्रतम् ॥५८॥
अधत्त यः पुरा शक्तिं रिपुदारणकारिणीम् । करेण यष्टिमालम्ब्य तेन भ्राम्यामि साम्प्रतम् ॥५९॥
विक्रान्तपुरुषाकृष्टशरासनसमं मम । पृष्ठास्थि स्थितमाक्रान्ते मूर्ध्नि मृत्योरिवाङ्घ्रिणा ॥६०॥
दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिरं क्वापि गता मम । ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥६१॥
आलम्बे यदि नो यष्टिमेतां प्राणगरीयसीम् । क्षितौ पतेत्ततः पक्वमिदं हतशरीरकम् ॥६२॥
वलीनां वर्तते वृद्धिरुत्साहस्य परिक्षयः । राजन् श्वसिमि देहेन अदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
[1]अद्यश्वीनममुं कायं जरया जर्जरीकृतम् । नाथ धर्तुं न शक्नोमि बाह्ये वस्तुनि का कथा ॥६४॥
नितान्तपटुताभाञ्जि हृषीकाणि पुरा मम । संप्रत्युद्देशमात्रेण स्थितानि जडचेतसः ॥६५॥
पदमन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्याममेवाखिलं दृष्ट्या पश्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
गोत्रक्रमसमायातमिदं राजकुलं मम । यतः शक्नोमि न त्यक्तुमपि प्राप्येदृशीं दशाम् ॥६७॥
पक्वं फलमिवैतन्मे शरीरं क्वापि वासरे । नेष्यत्याहारतां मृत्युर्मर्मरच्छदनोपमाम् ॥६८॥
न तथासन्नमृत्योर्मे स्वामिन् संजायते भयम् । भवच्चरणसंसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
व्याक्षेपो मे कुतः कश्चिद्धतस्तनुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीक्ष्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

जिससे मैं राजाको भी तृणके समान तुच्छ समझता था ॥५६॥ अत्यन्त स्थविर और सुन्दर विलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोंकी दृष्टि और मनको बाँधनेके लिए आलानके समान था ॥५७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोंसे लाड़-प्यार किया था पर इस समय कुमित्रके समान यह विघट गया है ॥५८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओंको विदारण करनेकी शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ॥५९॥ मेरी पीठकी हड्डी शूरवीर मनुष्यके द्वारा खींचे हुए धनुषके समान झुक गई है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आक्रान्त हुएके समान नम्र हो गया है ॥६०॥ दाँतोंके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण (लृ तवर्ग ल और स) कहीं चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों (श ष स ह) की ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न सन्तापको सहनेमें असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥६१॥ यदि मैं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥ शरीरमें वलि अर्थात् सिकुड़नोंकी वृद्धि हो रही है और उत्साहका ह्रास हो रहा है । हे राजन् ! इस शरीरसे मैं साँस ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६३॥ हे नाथ ! आज-कलमें नष्ट हो जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तुकी तो कथा ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियाँ अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थीं पर इस समय नाममात्रको ही स्थित हैं मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पैर अन्य स्थानपर रखता हूँ पर सम्भल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतलको अपनी दृष्टिसे काला-ही-काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परासे चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥ हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्यमें होनेवाली आपके चरणोंकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे विलम्ब अथवा कार्यान्तरमें

१. अद्य श्वो भवम् अद्यश्वीनं भङ्गुरमित्यर्थः ।

स त्वं नाथ जराधीनं मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमर्हसि नो कर्तुं धीर धत्स्व प्रसन्नताम् ॥७१॥
निशम्य तद्वचो राजा गण्डं कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुपागमत् ॥७२॥
जलबुद्बुदनिस्सारं कष्टमेतच्छरीरकम् । सन्ध्याप्रकाशसंकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् ॥७३॥
सौदामिनीनश्वरस्यास्य कृते देहस्य मानवाः । आरम्भन्ते न किं कृत्यं नितान्तं दुःखसाधनम् ॥७४॥
अतिमत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गतुल्याः प्रतारकाः । भोगिभोगसमाभोगास्तापोपचयकारिणः ॥७५॥
विषयेषु यदायत्तं दुष्प्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्विमूढानां सुखत्वेनावभासते ॥७६॥
आपातरमणीयानि सुखानि विषयादयः । किंपाकफलतुल्यानि चित्रं प्रार्थयते जनः ॥७७॥
पुण्यवन्तो महोत्साहाः प्रबोधं परमं गताः । विषवद् विषयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जनाः ॥७८॥
कदा नु विषयांस्त्यक्त्वा निर्गतः स्नेहचारकात्[1] । आचरिष्यामि[2] जैनेन्द्रं तपो निर्वृतिकारणम् ॥७९॥
सुखेन पालिता क्षोणी भुक्ता भोगा यथोचिताः । विक्रान्ता जनिता पुत्राः किमद्यापि प्रतीक्ष्यते[3] ॥८०॥
अन्वयव्रतमस्माकमिदं यत्सूनवे श्रियम् । दत्त्वा संवेगिनो धीराः प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
चिन्तयित्वाप्यसावेवं राजा कर्मानुभावतः । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रतिं ययौ ॥८२॥
यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥
कियत्यपि ततोऽतीते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीसङ्घेन महता वृतः ॥८४॥

आसङ्ग कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं हैं । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कञ्चुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासोंसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भङ्गुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके कटाक्षोंके समान ठगनेवाले हैं, साँपके फनके समान भयङ्कर हैं और सन्तापकी वृद्धि करने वाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक हैं वे प्रारम्भमें ही मनोहर सुख रूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोंकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विषके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़ कर तथा स्नेह रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र-प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥ यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल

१. रागकारागृहात् । २. आचरिष्यामि म० । ३. प्रतीक्ष्यसे म० ।

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनिः । नगरीं तां समायासीन्मनःपर्ययवेदकः ॥८५॥
[1]सरय्वाश्च तटे कालं श्रान्तं सङ्घमतिष्ठिपत् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवाङ्मानसक्रियः ॥८६॥
प्राग्भागेषु[2] स्थिताः केचिद् गुहास्वन्ये तपस्विनः । केचिद् विविक्तगेहेषु केचिज्जैनेन्द्रवेश्मसु ॥८७॥
नगानां कोटरेष्वन्ये यथाशक्तिसमुद्यताः । तपांसि चक्रुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥८८॥
आचार्यस्तु विविक्तैषी पुर्या उत्तरपश्चिमाम् । [3]तपःसमुचितक्षेत्रं विशालमतिसुन्दरम् ॥८९॥
उद्यानं सुमहावृक्षं सयूथ इव वारणः । प्रविवेशात्मदशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम्[4] ॥९०॥
तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशूनामङ्गनानां च पण्डुकानां[5] च दुर्गमे ॥९१॥
द्वेषिलोकविमुक्तेऽसौ सूक्ष्मप्राणिविवर्जिते । दूरावष्टम्भिशालस्य स्थितो नागतरोरधः ॥९२॥
मार्तण्डमण्डलच्छायो[6] गम्भीरः प्रियदर्शनः । वर्षाः क्षपयितुं तस्थौ कर्माणि च महामनाः ॥९३॥
सम्प्राप्तश्च महाकालः प्रवासिजनभैरवः । प्रस्फुरद्विद्युदुग्रोऽष्ट[7]क्रूरधाराधरध्वनिः ॥९४॥
तर्जयन्निव लोकस्य कृततापं दिवाकरम् । भयात् पलायितं क्वापि स्थूलधारान्धकारतः ॥९५॥
जातमुर्वीतलं सम्यक् कञ्चुकेन कृतावृति । वर्द्धन्ते सुमहानद्यो वीचिपातितरोधसः ॥९६॥
जायते प्राप्तकम्पानां चित्तोद्भ्रान्तिः प्रवासिनाम् । असिधाराव्रतं जैनो जनोऽसक्तं निषेवते ॥९७॥

व्यतीत होनेपर बड़े भारी संघसे आवृत, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मनःपर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवीमें विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें आये ॥८४–८५॥ जिनके मन वचन कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए संघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ संघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर वनके सघन प्रदेशोंमें, कितने ही गुफाओंमें, कितने ही शून्य गृहोंमें, कितने ही जिनमन्दिरोंमें और कितने ही वृक्षोंकी कोटरोंमें ठहरकर यथा-शक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७–८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिए उन्होंने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमें जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमें यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया। उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षोंसे सहित था। आचार्यके साथ अधिक भीड़ नहीं थी। अपने आपको मिलाकर कुल दश ही मुनिराज थे। वह उद्यान पशुओं, स्त्रियों और नपुंसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेषी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओंसे शून्य था। ऐसे उस उद्यानमें जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थीं ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिलातल पर विराजमान हुए ॥८९–९२॥ आचार्य महाराज सूर्यबिम्बके समान देदीप्यमान, गम्भीर, प्रिय-दर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मोंका क्षय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९३॥

तदनन्तर जो विदेशमें जाने वाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करने वाला था, चमकती हुई बिजलीसे उग्र था तथा जिसमें आठों दिशाओंके मेघोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा। वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोंको संताप पहुँचाने वाले सूर्यको डाँट ही रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥९४–९५॥ पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रक्खी हो। तरङ्गोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बढ़ने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँप-कँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी। ऐसे वर्षाकालमें जैनी लोग निरन्तर

१. सरयूनद्याः । सरस्याश्च म० । २. प्राग्भावेषु म० । ३. तपःसमुचितं क्षेत्रं म०, क० । ४. कीर्तितं ज० । ५. नपुंसकानाम् । ६. मण्डलेच्छाया गभीरप्रिय ख० । ७. दुर्गोष्ट म० ।

भूरिशोऽवग्रहांश्चक्रुर्मुनयः क्षितिगोचराः । खयानलब्धयश्चैते पान्तु त्वां मगधाधिप ॥९८॥
अथ भेरीनिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । दोषान्ते[1] कोशलानाथो विबुद्धो[2] भास्करो यथा ॥९९॥
ताम्रचूडाः खरं रेणुर्[3]दम्पतीनां वियोजकाः । सारसाश्चक्रवाकाश्च सरसीषु नदीषु च ॥१००॥
भेरीपणववीणाद्यैर्गीतैश्च सुमनोहरैः । व्यावृतश्चैत्यगेहेषु जायते विपुलो जनः ॥१०१॥
विघूर्णमाननयनः सकलारुणलोचनः । विमुञ्चते जनो निद्रां प्रियामिव ह्रियान्वितः ॥१०२॥
प्रदीपाः पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रभः । विकासं यान्ति पद्मानि कुमुदानि निमीलनम् ॥१०३॥
ध्वस्ता ग्रहादयः सर्वे दिवाकरमरीचिभिः । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥
एवं प्रभातसमये संपन्नेऽत्यन्तनिर्मले । कृत्वा प्रत्यङ्गकर्माणि नमस्कृत्यार्चितं जिनम् ॥१०५॥
आरुह्य वासितां[4] भद्रां कुथापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथानां सेव्यमानोऽमरत्विषाम् ॥१०६॥
देशे देशे नमस्कुर्वन् मुनींश्चैत्यालयांस्तथा । महेंद्रोदयमुर्वीशो ययौ छत्रोपशोभितः ॥१०७॥
विष्टपानन्दजननीविभूतिस्तस्य भूभृतः । राजन् संवत्सरेणापि शक्यं कथयितुं न सा ॥१०८॥
मुनिरायातमात्रः सन् गुणरत्नपयोनिधिः । श्रोत्रयोर्गोचरं तस्य संप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥१०९॥
करेणोरवतीर्यासौ राजामितपरिच्छदः । महाप्रमोदसंपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥११०॥
विन्यस्य भक्तिसम्पन्नः पादयोः कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्यं शिरसा स नमोऽकरोत्[5] ॥१११॥

खड्गधाराके समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥९७॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमें चलनेकी ऋद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥९८॥

अथानन्तर प्रातःकाल होने पर शङ्खके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥९९॥ स्त्रीपुरुषोंका वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नादियोंमें विद्यमान सारस और चकवाक पक्षी जोर-जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोंसे आकर्षित हो बहुतसे मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र घूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया । कमल विकासको प्राप्त हुए और कुमुद निमीलित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया । तदनन्तर मनोहर मूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी वन्दनाके लिए चला । देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार छत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियों और जिनचैत्यालयोंको नमस्कार करता हुआ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें पहुँचा ॥१०७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नोंके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोंमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एवं महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेश किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणोंमें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

१. निशान्ते प्रभाते इत्यर्थः । २. विबुद्धो म० । ३. रराण, रेणुतः, रेणुः-शब्दं चक्रुः । ४. करिणीम् । ५. नमस्करोत् (?) म० ।

ततः सिद्धान्तसंबद्धामशृणोद् गुरुतः कथाम् । अनुयोगान्यतीतानां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थितिं कुलकराणां च वंशांश्च बहुधागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संघेशं नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः

दत्त्वा स्थानं क्षणमवनिभृन्मंत्रिणां स क्षितीशां
कृत्वा जैनीं गुणगणकथां [1]विस्मयेवातिपूर्णः ।
अन्तर्गेहं प्रविशति तदा मज्जनादिक्रियाश्च
प्रीतश्चक्रे विपुलविभवः स प्रजापत्यभिख्यः ॥११५॥
सम्पूर्णानां परममहसा चन्द्रकान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।
श्रीतुल्यानां परमविनयं बिभ्रतीनां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रतिं तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमाभिधानं नाम एकोनत्रिंशत्तमं पर्व ॥२९॥

सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोंकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना। तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमें वापिस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर निकटवर्ती मन्त्रियों और राजाओंसे जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर तथा उन्हें विदाकर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रहीं थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भाँति आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमें ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२९॥

---

१. विस्मयं चातिपूर्णः म० ।

त्रिंशत्तमं पर्व

ततः कालो गतः क्वापि घनौघडमरो नृप[1] । प्रोद्ययौ पुष्करं धौतमण्डलाग्रसमप्रभम्[2] ॥१॥
पद्मोत्पलादिजलजपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । साधूनां हृदयं यद्वद् बभूव विमलं जलम् ॥२॥
शरत्कालः परिप्राप्तः प्रकटं कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणी पंकवर्जिता ॥३॥
विद्युत्संभावनायोग्यास्तूलराशिसमत्विषः । क्षणमात्रमदृश्यन्त घनलेशा[3] क्वचित्क्वचित् ॥४॥
सन्ध्यालोकललामोष्ठी ज्योत्स्नातिविमलाम्बरा । निशानववधूर्भाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिताः । वाप्यः पद्मवनभ्राम्यद्राजहंसैर्विराजिरे ॥६॥
भामण्डलकुमारस्य सीतां चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनार्चितमप्येवं जातमग्निसमं जगत् ॥७॥
अरत्याकर्षिताङ्गोऽसौ परित्यज्यान्यदा त्रपा । पितुः पुरः परं मित्रं वसन्तध्वजमब्रवीत् ॥८॥
"दीर्घसूत्रो[4] भवानेवं परकार्येषु शीतलः[5] । गणरात्रमिदं[6] दुःखं तस्यां मे गतचेतसः[7] ॥९॥
उद्वेगविपुलावर्ते प्रत्याशाजलधौ मम । निमर्जनः[8] सखे कस्माद्दीयते नावलम्बनम् ॥१०॥
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य निशम्य गदितं बुधाः । सर्वे गतप्रभीभूता[9] विषादं परमं ययुः ॥११॥
तान् वीक्ष्य शोकसन्तप्तान् वारणानिव शुष्यतः । आवर्जितशिराव्रीडां क्षणं भामण्डलोऽगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोंके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश माँजे हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामीजनोंको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओंके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पोंसे प्रकट रूपसे हँसता हुआ शरद्काल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गई ॥३॥ जिनमें बिजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रूईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोंके खण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर ओंठ था, चाँदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नव-वधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलवनमें घूमते हुए राजहंसोंसे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरद्ऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिसे जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा छोड़ पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्री हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमें अत्यन्त मन्द हैं । उस सीतामें जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गईं । फिर भी तुझे चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमें उद्वेगरूपी बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमें मैं डूब रहा हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विषादको प्राप्त हुए ॥११॥ तद-नन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियोंके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नीचा

१. नृपः म० । २. उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम् । ३. मेघलेशाः, घनलेश्याः म०, ख०, ब० । ४. विल-म्बेन कार्यकारी । ५. मन्दः । ६. बहूनां रात्रीणां समूहः । ७. गतवेगतः म० । ८. निसर्गतः म० । ९. गतप्रभा-भूताः म० ।

बृहत्केतुस्ततोऽवोचत् किमद्याप्युपगुह्यते । निवेद्यतां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
ततस्ते कथयाञ्चक्रुस्तस्मै सर्वं यथाविधि । [1]चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमप्युज्झिताक्षराः ॥१४॥
जनको बाल कन्याया [2]इहैवास्माभिराहृतः । याचितश्चातियत्नेन पद्मस्योचे प्रकल्पिताम् ॥१५॥
उक्तप्रत्युक्तमालाभिरस्माभिस्तेन निर्जितैः । धनूरत्नावधिश्चक्रे कृतसन्मन्त्रणैः किल ॥१६॥
धनूरत्नलता तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । शार्दूलस्य क्षुधार्तस्य मांसपेशी यथार्पिता ॥१७॥
कन्या स्वयंवरा साध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनलावण्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥
अबालेन्दुमुखा बाला मदनेन [3]समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिताभवत् ॥१९॥
न चापे साम्प्रतं जाते गदासीरादिसंयुते । अमराधिष्ठिते नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥
अपि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णोरगदानवैः । रामलक्ष्मणवीराभ्यामाकृष्टे ते शरासने ॥२१॥
प्रसह्य साधुना हर्तुमशक्या त्रिदशैरपि । किमुतात्यन्तमस्माभिर्निस्सारैर्धनुषी विना ॥२२॥
पूर्वमेव हृता कस्मान्नेति चेन्मन्यते शिशो । यज्जामाता दशास्यस्य जनकस्य सुहृन्मधुः ॥२३॥
अवगम्य कुमारैवं विनीतः स्वस्थतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥२४॥

कर क्षणभरके लिए लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अबतक इस बातको क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लड़खड़ाते अक्षरोंमें सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हमलोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना सङ्कल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥ उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुषरत्नकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमेंसे जो भी धनुष रत्नको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुषकी शर्त इसलिए रक्खी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुष-रत्नरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूखसे पीड़ित सिंहके लिए मांसकी डली अर्पित की गई हो अर्थात् रामने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गई । वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयको हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१९॥ वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुष नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जबर्दस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

---

१. चण्डयानं म० । २. दिहैव म० । ३. समर्पिता म० ।

ततः स्वयंवरोदन्तं श्रुत्वा भामण्डलो ह्रिया । विषादेन च सम्पूर्णः कृच्छ्रं चिन्तान्तरं गतः ॥२५॥
निरर्थकमिदं जन्म विद्याधरतया समम् । यतः प्राकृतवत् कश्चिन्न सम्प्राप्तोऽस्मि तां प्रियाम् ॥२६॥
ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च सभामाह हसन्नसौ[1] । का वः खेचरता भीतिं भजतां भूमिगोचरात् ॥२७॥
आनयाम्येष सत्कन्यां स्वयं निर्जित्य भूचरान् । न्यासापहारिणां कुर्वे यक्षाणां च विनिग्रहम् ॥२८॥
इत्युक्त्वासौ [2]सुसन्नद्धो विमानी वियदुद्गतः । पुरकाननसम्पूर्णं पृथिवीतलमैक्षत ॥२९॥
ततो दृष्टिर्गता तस्य विदग्धविषये क्रमात् । महीध्रसंकटे रम्ये नगरे चात्मसेविते ॥३०॥
दृष्टं मया कदाप्येतदिति चिन्तामुपागतः । जातिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स मूर्छनम् ॥३१॥
पितुरन्ते ततो नीतः सचिवैराकुलात्मकैः । चन्दनद्रवसिक्ताङ्गः प्रमदाभिः प्रबोधितः ॥३२॥
अन्योन्यं दत्तनेत्रं च हसित्वा ताभिरौच्यत । कुमार युक्तमेतत्ते कातरत्वमनुत्तमम् ॥३३
अदृष्टावनिचर्यार्थं निश्शेषरहितत्रपः[3] । गुरूणामग्रतो मोहं यत्प्राप्तोऽसि विचक्षण[4] ॥३४॥
भज खेचरनाथानां कन्या देव्यधिकप्रभाः । जनजल्पनकं व्यर्थं वृत्तं सुन्दर मा कृथाः ॥३५॥
ततोऽसाब्रवीदेवं व्रीडाशोकनताननः । धिग्मया घनमोहेन विरुद्धं चिन्तितं महत् ॥३६॥
नीचानामपि नात्यन्तमीदृशं कर्म युज्यते । अहो कर्मभिरत्यर्थमशुभैरभिचेष्टितः ॥३७॥
एकस्मिन्नुषितः कुक्षौ क्वापि सार्धमहं तया । दुष्कर्मविगमाज्ज्ञाता कथञ्चित् साधुना मया ॥३८॥
ततस्तं शोकभारेण पीडितं चन्द्रविक्रमः । अङ्कमारोप्य चुम्बित्वा पप्रच्छ पुरुविस्मयः ॥३९॥

तदनन्तर स्वयंवरका वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधरका जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोधसे युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जीतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्याको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यक्षोंका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमानमें बैठकर आकाशमें जा उड़ा । वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा पृथ्वीतल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतोंसे युक्त विदग्धनामक देशमें अपने पूर्वभवके मनोहर नगर पर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा है । इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियोंने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर सींचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियोंने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्याका समस्त प्रयोजन बिना देखे ही गुरुजनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक कान्तिको धारण करनेवाली विद्याधर राजाओंकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ । हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोहमें पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तवन किया ॥३६॥ ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंको भी करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मोंने कैसी चेष्टा दिखाई ? ॥३७॥ मैंने उसके साथ एक ही उदरमें शयन किया है । आज पाप-कर्मका उदय मन्द हुआ इसलिए किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पीड़ित भामण्डलको गोदमें रखकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पूछने लगा

१. वाचः खेचरता (?) म० । २. तत्परो भूत्वा । ३. रहितं नयः म० । ४. विचक्षणः म० ।

वद पुत्रक किन्त्वेतदीदृशं भाषितं त्वया । सोऽवोचत्तात वक्तव्यं चरितं शृणु मामकम् ॥४०॥
पूर्वजन्मनि वास्येऽस्मिन् विदग्धे नगरे नृपः । अभूवं परराष्ट्राणां ध्वंसको मण्डितध्वनिः ॥४१॥
सर्वस्यामवनौ ख्यातः सततं विग्रहप्रियः । पालको निजलोकस्य महाविभवसंयुतः ॥४२॥
हृता तत्र मया जाया विप्रस्याशुभकर्मणा । माययाऽपाकृतश्चासौ गतः क्वाप्यतिदुःखितः ॥४३॥
ततोऽनरण्यसेनान्या गमितस्तनुशेषताम्[1] । पर्यटन् धरणीं क्वापि प्राप्तोऽस्मि मुनिसंश्रयम् ॥४४॥
यत्र त्रिलोकपूज्यानां सर्वज्ञानां महात्मनाम् । मतं भगवतां प्राप्तमर्हतां पावनं मया ॥४५॥
तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शासनतो मया । अनामिषं व्रतं शुद्धं गृहीतं क्षुद्रशक्तिना ॥४६॥
शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतीर्णोऽस्मि दुर्गतिम् ॥४७॥
अनन्यशरणत्वेन व्रतेन नियमेन च । सममन्येन जीवेन विदेहाकुक्षिमागमत् ॥४८॥
सुखेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं तुकम्[2] । केनाप्यपहृतश्चायं गृध्रेण पिशितं यथा ॥४९॥
नक्षत्रगोचरातीतं तेन नीतोऽस्मि पुष्करम्[3] । असौ नूनं स यस्यासौ हृता जाया मया पुरा ॥५०॥
मारयामीति तेनोक्त्वा भूयः कृत्वानुकम्पनम् । शनैरस्मि विमुक्तः खात् कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ॥५१॥
पतन् वीक्ष्य तदा रात्रावुद्याने परमे तया । गृहीत्वा तात दत्तोऽस्मि जायायै करुणावता ॥५२॥
सोऽहं भवत्प्रसादेन तदङ्के वृद्धिमागतः । परं विद्याधरत्वं च कृतदुर्लङ्घितक्रियः ॥५३॥
इत्युक्त्वा विररामासौ विस्मयं च जनो गतः । हाकारबहुलं शब्दं कुर्वन् कम्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३९॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित सुनिए ॥४०॥

पूर्व जन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशोंको लूटनेवाला, समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१–४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उदयसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणको मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सब सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया। अन्तमें अत्यन्त दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोंके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकोंसे पूज्य, सब पदार्थोंको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार मांसत्याग व्रत धारण किया। मैं अत्यन्त क्षुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो जिन शासनका बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उदरमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुखपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नक्षत्रोंसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया। यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलों-से अलंकृत कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोदमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओंका धारक हुआ और बहुत ही लाड़ प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित

१. गमितस्तुषशेषतां म० । २. पुत्रं 'तुक् तोकं चात्मजः प्रजा' इत्यमरः । ३. गगनम् ।

इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतरुं [1]वन्ध्यं विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥
[2]भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा सुनिश्चित्यात्मकर्मणाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥
आत्मीयं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूलं त्वरान्वितः ॥५७॥
भगवान् स हि सर्वत्र विष्टपे प्रथितात्मकः । गुणरश्मिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥
महेन्द्रोदय[3]यातं तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽवादीदेवं मूर्धाहिताञ्जलिः ॥५९॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन संप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवासतः ॥६०॥
एवमस्त्विति तेनोक्ते [4]तारं भेर्यः[5] समाहिताः । भामण्डलः परं चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥
कलं प्रवरनारीभिर्गीतं वंशस्वना[6]नुगम् । जगर्ज तूर्यसङ्घातः करतालसमन्वितः ॥६२॥
श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । इत्युच्चैर्वन्दिनां नादः संजज्ञे प्रतिनादवान् ॥६३॥
तेनोद्यानसमुत्थेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्तं कृतो विनीतायां कृतनिद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥
ऋषिसम्बन्धमुद्भानं श्रुत्वा जैनाः प्रमोदिनः । जाता जना वि[7]षण्णाश्च मिथ्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥
रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गा विस्फुरद्वामलोचना । सीता सिक्तामृतेनेव बुबुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
अचिन्तयच्च को न्वेष जनको यस्य नन्दनः । जयतीति मुहुर्नादः श्रूयतेऽत्यन्तमुन्नतः ॥६७॥
कनकस्याग्रजो राजा ममापि जनकः पिता । जातमात्रश्च मे भ्राता हृतो यः किं न्वमो भवेत् ॥६८॥

समस्त लोग हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्रगति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त हुआ। उसने लोक-धर्म अर्थात् स्त्री-सेवनरूपी वृक्षको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका बन्धन जाना, इन्द्रियोंके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५–५७॥ भगवान् सर्वभूतहित भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहसे समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥ महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भावपूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन्! मैं गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना चाहता हूँ ॥५९–६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहने पर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की। जोर-जोरसे भेरियाँ बजने लगीं, उत्तम स्त्रियोंने बाँसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया, करतालके साथ-साथ अनेक वादित्रोंके समूह गर्जना करने लगे। 'राजा जनकका लक्ष्मीशाली पुत्र जयवन्त हो रहा है' वन्दीजनोंका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा ॥६१–६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको निद्रारहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गई हो, उसके समस्त अङ्ग रोमाञ्चसे व्याप्त हो गये तथा उसका बाँया नेत्र फड़कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक कौन है जिसका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है। यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा है ॥६७॥ राजा जनक कनकका बड़ा भाई और मेरा पिता है। मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा

१. वध्यं म० । वन्ध्या क० । २. भूतमात्रमति म० । ३. यात्यन्त ब० । ४. उच्चैः । ५. नारंभे म०, म० दुन्दुभयः । ६. वंशस्वसानुगं म० । ७. विपन्नाश्च म० ।

ध्यात्वेति सोदरस्नेहसुसंप्लावितमानसा । मुक्तकण्ठं रुरोदासौ परिदेवनकारिणी ॥६९॥
ततो रामोऽभिरामाङ्गः प्रोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिषि वैदेहि भ्रातृशोकेन कर्षिता ॥७०॥
भवत्या यद्यसौ भ्राता श्वो ज्ञातास्मो न संशयः । अथवान्यः कश्चित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन किम् ॥७१॥
कारणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् । हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥७२॥
कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते [1]प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य[2] बुधस्य च ॥७३॥
एवं तयोः समालापं दम्पत्योः कुर्वतोः क्षपा । कृपयैव गता शीघ्रं जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
ततो दशरथः कृत्वा प्रत्यङ्गं वस्तु सादरः । नगरीतो विनिष्क्रान्तः ससुतः साङ्गनाजनः ॥७५॥
इतश्चेतश्च विस्तीर्णां पश्यन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्नः सामन्तशतपूरितः ॥७६॥
ददर्शाचके च देवेन्द्रपुरतुल्यं विनिर्मितम् । क्षणाद्विद्याधरैः स्थानं तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥
पताकातोरणैश्चित्रं रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविवेश तदुद्यानं साधुलोकसमाकुलम् ॥७८॥
नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुरुं गुणगुरुं नृपः । ददर्शोदयने भानोश्चन्द्रयानस्य दीक्षणम् ॥७९॥
नभश्चरैः समं पूजां कृत्वा सुमहतीं गुरोः । एकपार्श्वे निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८०॥
श्रीप्रभामण्डलोऽप्येकं पार्श्वमाश्रित्य खेचरैः । समस्तैः सहितस्तस्थौ किञ्चिच्छोकमिवोद्वहन् ॥८१॥
खेचरा भूचराश्चैते मुनयश्चान्तिकं स्थिताः । शुश्रुवुर्गुरुतो धर्ममनगारं तथेतरम् ॥८२॥
चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् । शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ॥८३॥

गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥६८॥ ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोंमें कहा कि हे वैदेहि ! भाईके शोकसे विवश हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करेंगे इसमें संशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन हैं वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गई सो मानो दयासे ही शीघ्र चली गई और प्रातःकाल सम्बन्धी मङ्गलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अङ्गसम्बन्धी कार्य कर आदरसहित पुत्रों और स्त्रीजनोंके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोंकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षणभरमें ही विद्याधरोंके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोंसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोंसे अलंकृत एवं मुनिजनोंसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोंसे श्रेष्ठ सर्वभूतहितनामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगतिका दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोंके साथ गुरुकी बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई-बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियोंका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है,

१. पामरस्य । २. शूरस्य ।

भव्यजीवा यमासाद्य लभन्ते संशयोज्झितम् । सम्यग्दर्शनसम्पन्ना गीर्वाणेन्द्रसुखं महत् ॥८४॥
केचित् केवलमासाद्य लोकालोकप्रकाशनम् । लोकप्राग्भारमारुह्य भजन्ते नैर्वृतं[1] सुखम् ॥८५॥
तिर्यङ्नरकदुःखाग्निज्वालाभिः परिपूरितः । संसारो मुच्यते येन तं पन्थानं महोत्तमम् ॥८६॥
सर्वप्राणिहितोऽवोचन्मन्द्रगर्जितनिस्वनः । प्रह्लादं सर्वचित्तानां जनयन्विदिताखिलः ॥८७॥
सन्देहतापविच्छेदि तद्वचोम्बु मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटैः पीतं प्राणिभिः प्रीतमानसैः ॥८८॥
ततो दशरथोऽपृच्छत् संजाते वचनान्तरे । चन्द्रकीर्तेः खगेन्द्रस्य वैराग्यं नाथ किंकृतम् ॥८९॥
सीता तत्र विशुद्धाक्षी ज्ञातुमिच्छुः सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥९०॥
शुद्धात्मा भगवानूचे शृणु राजन् विचित्रताम् । जीवानां निर्मितामेतां[3] कर्मभिः स्वयमर्जितैः ॥९१॥
संसारे सुचिरं भ्रान्त्वा जीवोऽयमतिदुःखितः । कर्मानिलेरितः प्राप्तश्चन्द्रेण [4]द्युतिमण्डलः ॥९२॥
अर्पितः पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलतारकः । स्वसारं च समालोक्य गाढाकल्पकमागतः ॥९३॥
जनकः कृत्रिमाश्वेन हृतश्चापस्वयंवरा । जाता विदेहजा चिन्तां परां भामण्डलोऽगमत् ॥९४॥
अस्मरच्च भवं पूर्वं मूर्च्छितः पुनरश्वसीत् । पृष्टश्चन्द्रेण चावोचदिति पूर्वभवक्रियाम् ॥९५॥
भरतस्थे विदग्धाख्ये पुरे कुण्डलमण्डितः । अधार्मिकोऽहरत् कान्तां पिङ्गलस्य मनःप्रियाम् ॥९६॥

मङ्गलरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और क्षुद्रजनोंको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८३॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव निःसन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते हैं ॥८४॥ और कितने ही लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अग्रभाग पर आरूढ़ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥८५॥ तिर्यञ्च और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाओंसे भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८६॥ ऐसे मार्गका कथन उन मुनिराजने किया था। वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥८७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने-अपने कर्णरूपी अञ्जलिपुटसे खूब पान किया ॥८८॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ! विद्याधरोंके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है? ॥८९॥ वहीं पासमें बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भाईको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नम्र हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥९०॥ तब विशुद्ध आत्माके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन्! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निर्मित जीवोंकी इस विचित्रताको सुनो ॥९१॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक संसारमें भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है। अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ। चन्द्रगतिने पालन-पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा। जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी बहिन सीताका चित्रपट देख अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥९२-९३॥ सीताकी मँगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवरमें राजा दशरथके पुत्र रामको वर लिया। इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥९४॥ अकस्मात् इसे पूर्व भवका स्मरण हुआ जिससे यह मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिने इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भवकी वार्ता इस प्रकार कहने लगा ॥९५॥ कि मैं भरत क्षेत्रके विदग्धनामा

१. निर्वाणसम्बन्धि । २. निर्जित-ज० । ३. मेकां म० । ४. भामण्डलः । ५. गाढव्यथाम् ।

बालेन्दुहृतसर्वस्वो विषयात् स निराकृतः । श्रमणाश्रममासाद्य प्राप व्रतमनामिषम् ॥९७॥
धर्म्यध्यानगतः कृत्वा कालं कलुषवर्जितः । जनकस्य विदेहायाः ससहायस्तनुं श्रितः ॥९८॥
अरण्यात् पिङ्गलः प्राप्तो दृष्ट्वा शून्यकुटीरकम् । कोटरानलजीर्णाङ्गदाहदुःखं समाप्तवान् ॥९९॥
[1]यद्दर्शं दुःखितोऽप्राक्षीन्नेत्राम्बुकृतदुर्दिनः । दृष्टा स्यात् पुण्डरीकाक्षी [2]ममेत्युन्मत्तविभ्रमः ॥१००॥
हा कान्त इति [3]कूजंश्च विलापमकरोदिति । प्रभावतीं सवित्रीं तां तातं चक्रध्वजं च तम् ॥१०१॥
विभूतिमतिनुङ्गां च बान्धवांश्च [4]सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्रीत्या विदेशमसि[5] सङ्गता ॥१०२॥
रूक्षाहारकुवस्त्रत्वं मदर्थं सेवितं त्वया । मामुत्सृज्य क्व यातासि सर्वावयवसुन्दरि ॥१०३॥
खिन्नोऽसौ धरणीं दुःखं भ्रान्त्वा सगिरिकाननाम् । वियोगवह्निना दग्धः सोत्कण्ठस्तपसि स्थितः ॥१०४॥
ततो देवत्वमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनिं किमेता सा कान्ता सम्यक्त्ववर्जिता ॥१०५॥
स्वभावार्जवसम्पन्ना भूयो वा मानुषी भवेत् । जीवितान्ते जिनं स्मृत्वा किं वा देवत्वमागता ॥१०६॥
इति ध्यायन् विनिश्चित्य स्तब्धदृष्टिः प्रकोपवान् । क्वासौ शत्रुर्दुरात्मेति ज्ञात्वा कुक्षिसमाश्रितम् ॥१०७॥
प्रसूतमेककं कृत्वा शान्तः कर्मनियोगतः । बालं मुमोच जीवेहि वदन् विद्यालघूकृतम् ॥१०८॥

नगरमें कुण्डलमण्डित नामका राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमें रहनेवाले पिङ्गलनामक ब्राह्मणकी मनोहर स्त्रीका हरण किया था ॥९६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमें उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया। अन्तमें मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममें पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिष अर्थात् मांस त्यागका व्रत धारण किया ॥९७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा कलुषतासे रहित होकर मैंने मरण किया और मरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें जन्म धारण किया। जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी बात कि वह भी उसी विदेहाके गर्भमें उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥९८॥

पिङ्गलने जब जङ्गलसे लौटकर कुटिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे झुलस ही गया हो ॥९९॥ वह उसके बिना पागल जैसा हो गया, उसके नेत्रोंसे लगातार दुर्दिनकी भाँति आँसुओंकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥१००॥ वह हा कान्ते ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमें प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयोंको छोड़कर विदेशमें आई थीं ॥१०१–१०२॥ तुमने मेरे पीछे रूखा-सूखा भोजन और अशोभनीय वस्त्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवसुन्दरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गई हो ? ॥१०३॥ खेदखिन्न तथा वियोगरूपी अग्निसे जला हुआ पिङ्गल पहाड़ों और वनोंसे सहित पृथिवीमें दुःखी होकर चिरकाल तक भटकता रहा। अन्तमें तप करने लगा परन्तु उस समय भी उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥१०४॥

तदनन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सम्यक्त्वसे रहित होकर तिर्यञ्चयोनिको प्राप्त हुई है ॥१०५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुनः मानुषी हुई है या आयुके अन्त समयमें जिनेन्द्रदेवका स्मरण कर देव पर्यायको प्राप्त हुई है ? ॥१०६॥ ऐसा विचार कर तथा सब निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दुष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुक्षिमें ही विद्यमान है ॥१०७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो वैरका बदला लेनेके

१. यदर्शं म० । २. रामेत्युन्मत्त म० । ३. कूटांश्च म० । ४. स्वमानसान् ब० । ५. -मपि म० ।

ज्योत्स्नाकृताट्टहासायां रात्रौ प्राप्तः पतंस्त्वया । तदा स्मरसि किं नेदं पुष्पवत्यै समर्पितः ॥१०९॥
प्राप्तो भवत्प्रसादेन विद्याधरविधिर्मया । नूनं माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरी ॥११०॥
इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता सर्वा वैद्याधरी सभा । चन्द्रायणश्च संविग्नो न्यस्य भामण्डले श्रियम् ॥१११॥
माता पिता च ते वत्स दुःखं शोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रोत्सवं यच्छेत्येवमुक्त्वा समागतः ॥११२॥
जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः । इति भीतो भवादेष चन्द्रः प्राव्रज्यमाप्तवान् ॥११३॥
अत्रान्तरे विदेहाजः[1] संशयं परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादीनां मयि कस्मात् परः प्रभो ॥११४॥
ततः सर्वहितोऽवोचन्निबोध द्युतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थितौ ॥११५॥
दारुग्रामे तु विप्रोऽभूद् विमुचिस्तस्य भामिनी । अनुकोशातिभूतिश्च तनयः सरसा स्नुषा ॥११६॥
ऊर्या मात्रा सहप्राप्तः कयानाख्योऽन्यदा द्विजः । अहरत् सरसां सारं धनमन्तर्गतं च यत् ॥११७॥
अतिभूतिश्च तद्धेतोः शोकी बभ्राम मेदिनीम् । ततो निष्पुरुषे गेहे शेषं स्वमपि लुण्ठितम् ॥११८॥
विमुचिर्दक्षिणाकांक्षी देशान्तरगतः पुरा । श्रुत्वा कुलकुटं भग्नं निवृत्तस्त्वरयान्वितः ॥११९॥
जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गामनुकोशां सुविह्वलाम् । सान्त्वयित्वा तया सार्धमुर्या चान्वेष्टुमुद्यतः ॥१२०॥
प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे कथ्यमानं समन्ततः । अवधिज्ञानकरणैर्जगद् येनावभासितम् ॥१२१॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मोदयसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपर्णी विद्यासे लघु कर 'जीते रहो' इन शब्दोंका उच्चारण कर आकाशसे छोड़ा ॥१०८॥ जिसमें चाँदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रिमें आकाशसे पड़ते हुए उस बालकको आपने पकड़ा था और अपनी रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था। क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०९॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया। यथार्थमें विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहिन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंकी समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोंको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥

तदनन्तर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भमें स्थित होता है, ऐसा विचार कर चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचमें भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे माता-पिता पूर्व भवमें जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥

दारुग्राममें एक विमुचि नामका ब्राह्मण था उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था। अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कयान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भीतरका सारभूत धन दोनोंका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीकी खोजमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगा। इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी बचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था। वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापिस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रही है और उसके शरीरपर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े ही शेष रह गये हैं। तब उसने उसे सान्त्वना दी और कयानकी माता ऊरीके साथ पुत्रको ढूँढ़नेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवी

१. भामण्डलः।

तमाचार्यं परिप्राप्तः पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महाशोको नष्टचित्तस्तुषात्मजः ॥१२२॥
दृष्ट्वा गणेश्वरीमृद्धिं श्रुत्वा च विविधां स्थितम् । तीव्रं संवेगमासाद्य विमुचिर्मुनितां गतः ॥१२३॥
पार्श्वे कमलकान्ताया आर्याया सुसमाहिता । सममूर्यानुकोशापि प्रव्रज्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः कृत्वाकालमलोलुपाः । लौकान्तिकं गता लोकं नित्यालोकमनाकुलम् ॥१२५॥
अतिभूतिप्रभृतयो हिंसावादस्य शंसकाः । द्वेषकाः संयतानां च कुध्याना दुर्गतिं गताः ॥१२६॥
मृगीत्वं सरसा प्राप्ता वलाहकनगोरसि । व्याघ्रभीता च्युता यूथान्मृता दावानलाहता ॥१२७॥
जाता मनस्विनीदेव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रवीणस्य प्रशमात् पापकर्मणः ॥१२८॥
कयानः क्रमशो भूत्वा पारसीकः क्रमेलकः । मृत्वा पिङ्गलनामाभूद्धूमकेशस्य नन्दनः ॥१२९॥
हंसस्ताराक्षसरसि सोऽतिभूतिः क्रमादभूत् । श्येनैर्विलुप्तसर्वाङ्गश्चैत्यस्य पतितोऽन्तके ॥१३०॥
अध्याप्यमानं गुरुणा यशोमित्रं पुनः पुनः । अश्रौषीदर्हतां स्तोत्रं मुक्तवानथ जीवितम् ॥१३१॥
दशाब्दसहस्रायुः किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
अहरत् पिङ्गलः कन्यां तथा कुण्डलमण्डितः । यदत्राग्रं पुरावृत्तः सम्बन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥
योऽसौ विमुचिरित्यासीत् सोऽयं चन्द्रगतिर्नृपः । अनुकोशा तु जायास्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥
कयानोऽयं सुरो हर्ता सरसा हृदयोत्सवा । ऊरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रभाह्वयः ॥१३५॥

तलपर भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमें एक आचार्य हैं जिन्होंने अपने अवधिज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रक्खा है सो वह उनसे पुत्रकी वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास गया। विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधूका पता न लगनेसे अत्यन्त दुःखी था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तप ऋद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कयानकी माता ऊरी इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और ऊरी ये तीनों प्राणी महानिःस्पृह, धर्म ध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आकुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूति तथा कयान दोनों ही हिंसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले थे। इसलिए खोटे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमें गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा बलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमें मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोंके झुण्डसे बिछुड़कर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पाप कर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कयान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ। फिर मरकर धूम्रकेशका पुत्र पिङ्गल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भव भ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नोंच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको बार-बार अर्हन्तभगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे सो सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिङ्गलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया। इन सबका जो पूर्व भवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कयान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, ऊरी विदेहा हुई और अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथः श्रुत्वा तं वृत्तान्तमशेषतः । भामण्डलं समाश्लिष्य बाष्पपूर्णनिरीक्षणः ॥१३६॥
अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा भृशम् । आनन्दबाष्पलोलाक्षा सभायामभवञ्जनाः ॥१३७॥
उद्गीर्णमाननेनैव प्रीत्या तं वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदती स्नेहाद्धावोद्धृतबाहुका ॥१३८॥
हा भ्रातः प्रथमं दृष्टो मयाद्यासीतिशब्दिनी । तमाश्लिष्य चिरं सीता रुदित्वा धृतिमागता ॥१३९॥
संभाषितः स रामेण संभ्रमालिङ्गितश्चिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥
नमस्कृत्य मुनिं श्रेष्ठं ततः खेचरभूचराः । उद्यानात् प्रमदापूर्णा निरीयुः सुविराजिताः ॥१४१॥
भामण्डलेन संमन्त्र्य द्रुतं दशरथो ददौ । लेखं जनकराजस्य नीतं गगनयायिना ॥१४२॥
प्रेषितं भानुमार्गेण तस्य हंसधृतं वरम् । यानं विद्याधरैर्वीरैर्भूरिभिः परिवारितम् ॥१४३॥
प्रभामण्डलमादाय ततो भूत्यातिकान्तया । तुष्टो दशरथोऽयोध्यां सुत्रामसदृशोऽविशत् ॥१४४॥
अक्षीणसर्वकोशोऽसावुपचारं परं नृपः । प्रीतो भामण्डले चक्रे सर्वलोकसमन्वितः ॥१४५॥
रम्ये सुविपुले तुंगे वाप्युद्यानविभूषिते । गृहे दशरथोद्दिष्टे तस्थौ भामण्डलः सुखम् ॥१४६॥
दारिद्र्यान्मोचितो लोकः परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिक्यं प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
गत्वा पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वर्द्धितो दिष्ट्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
प्रवाच्य चार्पितं लेखं सुदृढप्रत्ययः परम् । प्रमोदं जनकः प्राप रोमाञ्चाञ्चितविग्रहः ॥१४९॥
भद्र किं किमयं स्वप्नः स्याज्जाग्रत्प्रत्ययोऽथवा । एहि ढौकस्व ढौकस्व तावत्त्वाद्य परिष्वजे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र आँसुओंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिङ्गन किया ॥१३६॥ उस समय सभामें जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमें बहुत भारी रोमाञ्च निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे चञ्चल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवश मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुझे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गई और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८–१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिङ्गन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१०४॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उपवनसे बाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश-मार्गसे आ रहा था, हंसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुतसे विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामें प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा वापी और बगीचासे सुशोभित महलमें सुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रको बाँचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ़ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या

१. इन्द्रतुल्यः । २. सुदृढः प्रत्ययः म० । ३. तावत् + त्वा + अद्य ।

इत्युक्त्वानन्दबाष्पेण तरत्तारकलोचनः । साक्षात्पुत्रमिव प्राप्तं लेखहारं स सस्वजे ॥१५१॥
नग्नतापरिहारेण देहस्थं वस्त्रभूषणम् । ससम्भ्रमं ददौ तस्मै मुदा नृत्तमिवाचरन्[1] ॥१५२॥
समेति बन्धुलोकोऽस्य यावद्दिप्यभिवर्द्धकः[2] । तावत्तद्यानमायातं छादयद्गगनं रुचा ॥१५३॥
अपृच्छत्तस्य वृत्तान्तमतृप्तश्च पुनः पुनः । उक्तं विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
ततो यानं समारुह्य समस्तैर्बन्धुभिः समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां तूर्यनादिताम्[3] ॥१५५॥
अवतार्याम्बराद्दाशु पुत्रमालिंग्य निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ क्षणं मूर्छामुपागतः ॥१५६॥
प्रबुध्य च विशालेन चक्षुषा वाष्पवारिणा । आसेचनकमैक्षिष्ट[4] तनयं पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
माता तं मूर्छिता दृष्ट्वा परिष्वज्य प्रबोधिनी । आचक्रन्द सुकारुण्यं तिरश्चामपि कुर्वती ॥१५८॥
परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक हा कथम् । हृतोऽसि जातमात्रस्त्वं केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
त्वदीक्षाचिन्तया देहो दग्धोऽयं वह्नितुल्यया । भवद्दर्शनतोयेन चिरान्निर्वापितोऽद्य मे ॥१६०॥
धन्या पुष्पवती सुस्त्री या तेऽङ्गानि शैशवे । क्रीडता धूसराण्यंके निहितानि सुचुम्बितम् ॥१६१॥
चन्दनेन विलिप्तस्य कुङ्कुमस्थासकाञ्चितम् । दधतः शैशवं दृष्टं कौमारं ते तथा वपुः ॥१६२॥
नेत्राभ्यामस्रमुत्सृज्य स्तनाभ्यां च पयश्चिरम् । सुपुत्रसङ्गमानन्दं विदेहा परमं गता ॥१६३॥

यह स्वप्न है ? अथवा जागृत दशामें होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है ! आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिङ्गन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हर्षसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखें ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जब तक इकट्ठे होते हैं तब तक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अतृप्त हो बार-बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोंने सब वृत्तान्त ज्योंका-त्यों बड़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त भाई-बन्धुओंके साथ विमानपर आरूढ़ हो निमेषमात्रमें अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ़ आलिङ्गन किया । आलिङ्गनजन्य सुखसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल झर रहा था ऐसे विशाल लोचनोंसे तृप्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिङ्गन कर हर्षातिरेकसे मूर्छित हो गई और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यञ्चोंको भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है । आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामें क्रीड़ासे धूलधूसरित तेरे अङ्ग अपनी गोदमें रक्खे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुशोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एवं शैशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे कुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा । वह उत्तम पुत्रका सङ्ग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥

---

१. वृत्तमिवा-म० । २. यावद्विद्याभिवर्धकः म० । ३. नूर्यनोदितां ख० । ४. 'तदासेचनकं तृप्ते नास्त्यन्तो यस्य दर्शनात्' ।

अर्हच्छासनदेवीव जृम्भैरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्थौ मग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६४॥
मासमात्रमुषित्वातो बन्धुसङ्गममोदिवा । पद्मो भामण्डलेनोचे विनयं बिभ्रता[1] परम् ॥१६५॥
वैदेह्याः शरणं देव त्वमेवोत्तमबान्धवः । छन्देऽस्या वर्ततां येन नो यात्युद्वेगमेषका ॥१६६॥
स्वसारं च समालिंग्य स्नेहादेनां [2]सुचेष्टिताम् । उपादिशदसौ भूयो भूयः प्रवरमानसः ॥१६७॥
मातालिंग्यागदत् सीतां सुते श्वसुरयोः प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्याः श्लाघ्यतां येन गच्छसि ॥१६८॥
सर्वानामन्त्र्य विन्यस्य कनके मिथिलेशिताम् । गृहीत्वा पितरौ यातः स्थानं भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।
विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धुः सीता च पत्नी गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

उपजातिः

अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे सकंकटे सीरगदादियुक्ते ।
लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मीनिलयश्च भृत्यः ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
अभीष्टयोगानरुजश्चिराय रविप्रभोऽसौ लभते शुभात्मा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागमाभिधानं नाम त्रिंशत्तमं पर्व ॥३०॥

जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें जृम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई-बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव ! सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बान्धव हो। आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुशोभित बहिनका स्नेहवश आलिङ्गन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटी ! तू अपने सास ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनकके लिए सौंपकर माता पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! पूर्व भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो। धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोंका राजा भामण्डल जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एवं देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये। लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०–१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्ट जनोंके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥

---

१. बिभ्रतं म० । २. सुचेष्टितं म० ।

एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूपः सबन्धुरनरण्यजः[1] । इमां विभूतिं सम्प्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तवैव विदितं सर्वं तन्नो ब्रूहि महायशः ॥२॥
इति पृष्टो महातेजा जगाद मुनिपुङ्गवः । निरवद्यं तथा तत्त्वं यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥३॥
स्वसंशयमशेषज्ञं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राक्षीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥
मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु । वेद्म्येकमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं[2] त्वया ॥५॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति । भवत्प्रसादतो मोहं निराकर्तुमहं यजे ॥६॥
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं[3] भवान्[4] दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः साधुरिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्यट्य संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न त्वयैकेन संसारो भ्रान्तोऽन्यैरपि संसृतः[5] । चिन्वानैः कर्मभिः कर्मदुःखसंजननो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिस्र उद्दिष्टा उत्तमाधममध्यमाः ॥१०॥
[6]अभाव्यी च तथा [7]भाव्यी सैद्धी[8] च गतिरुत्तमा । पुनरावृत्तिनिर्मुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तैर्मोहेनान्धैर्न दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनोंसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ?॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थोंको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुतसे जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमेंसे एक भी भवको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नाङ्कित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा । तुमने इस संसारमें समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्मोंका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्मोदयसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएँ उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गई हैं ॥१०॥ उनमेंसे अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धोंकी उत्तम है । जिनेन्द्रभगवान्ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है ।

१. दशरथः । २. विदितं म० । ३. समुद्यतस्यैव म० । ४. पूर्वपर्यायान् । ५. संसरणविषयीकृतः । ६. अभव्यस्येयम् अभाव्यी । ७. भव्यस्येयं भाव्यी । ८. सिद्धानामियं सैद्धी ।

श्रद्धासंवेगहीनानां हिंसादिष्वनिवर्तिनाम् । चतुर्गतिकसंवर्ता गतिरुग्रतमोरजाः ॥१३॥
अभव्यानां गतिः क्लिष्टा विनाशपरिवर्जिता । भव्यानां तु परिज्ञेया गतिर्निर्वृतिभाविनी ॥१४॥
धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रमुखान् कायानाश्रिताश्चेतनाभृतः ॥१५॥
जीवराशिरनन्तोऽयं विद्यते नास्य संक्षयः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
[1]अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोनिकृताटनम् ॥१७॥
सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथञ्चन ॥१८॥
यः सन्देहकलङ्केन निचितः पापकर्मणा । [2]अभावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धानता ॥१९॥
कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं[3] सम्यक्त्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
अत्युग्रकर्मनिर्मोकै[4]र्वेष्टितानां समन्ततः । मिथ्याधर्मानुरक्तानां स्वाहितादूर[5]वर्तिनाम् ॥२१॥
सेनापुरेऽथ दीपिन्या उपास्तिर्नाम [6]भावनः । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निरर्गलम् ॥२२॥
[7]अश्रद्धाना संरंभमत्सरक्ष्वेडधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासक्तशब्दिका ॥२३॥
प्रयच्छति स्वयं नान्नं यच्छन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन विद्यमानं सुभूर्यपि ॥२४॥

इन्द्रियरूपी व्रणरोगसे पीड़ित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेगसे रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करानेवाली गति अर्थात् दशा होती है। उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और बाकी समस्त आकाश अलोक कहलाता है। संसारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि षट्कायको धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है। इसका क्षय नहीं होता है। इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं हैं, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर अचर पदार्थों अर्थात् त्रस स्थावर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित हैं तथा नाना योनियोंके जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पाप कर्मके कारण संशयरूपी कलङ्कसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्कारसे रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित हैं उसके धर्म और धर्मके फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी काँचलीसे सब ओरसे वेष्टित हैं, जो मिथ्या धर्ममें अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था। उसकी दीपिनी नामकी स्त्री थी। वह दीपिनी मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे। वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेको

१. अनादिमन्त- म० । २. असंस्कृतस्य धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३. विज्ञानं म० । ४. निर्मोकै वेष्टितानां म० । ५. दुःखवर्तिनां । ६. गृहस्थः इति । ७. अश्रद्धानात् म० ।

एवमादिमहादोषा कुतीर्थपरिभाविता। कालमेत्याभ्रमद्भीमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥
उपास्तिर्देहि देहीति समभ्यस्याक्षरद्वयम्। पुण्यकर्मानुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये[1] ॥२६॥
सुतोऽभूद् भद्रधारिण्योर्भाग्यवान्[2] बहुबान्धवः। धारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
देशकालप्रपन्नेभ्यः[3] साधुभ्यः शुद्धभावतः। दत्त्वासौ पारणां सम्यक्काले संत्यज्य विग्रहम् ॥२८॥
विदेहे धातकीखण्डे मेरोरुत्तरतः कुरौ। भुक्त्वा पल्यत्रयं भोगं समारूढस्त्रिविष्टपम्[4] ॥२९॥
च्युतोऽतः पुष्कलावत्यां[5] नगर्यां नन्दिघोषतः। वसुधायां समुत्पन्नो नामतो नन्दिवर्धनः ॥३०॥
नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यानं प्रबुद्धवान्। नन्दिवर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
यशोधरमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्य सुमहत्तपः। कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनुं त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
गृहिधर्मसमासक्तो नमस्कारपरायणः। पूर्वकोटीं महाभोगान् भुक्त्वा श्रीनन्दिवर्धनः ॥३३॥
संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा प्रयातः पञ्चमं दिवम्। ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य[6] पश्चिमे ॥३४॥
ख्याते शशिपुरे स्थाने विजयार्द्धनगोत्तमे। सूर्यञ्जयोऽभवद् विद्युल्लतायां रत्नमालिनः ॥३५॥
अन्यदा सिंहनगरं रत्नमाली महाबलः। प्रस्थितो विग्रहं कर्तुं यत्रासौ वज्रलोचनः ॥३६॥
रथैः प्रभास्वरैर्दिव्यैः पदातिगजवाजिभिः। नानाशस्त्रकृतध्वान्तैः सामन्तैः सुमहाबलैः ॥३७॥

अनुमोदना करती थी। यदि कोई दानादि सत्कार्योंमें प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी। इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतीर्थकी भावनासे युक्त थी। इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयङ्कर तथा पाररहित संसार सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२२-२५॥ इसके विपरीत उपास्ति 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें भद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एवं अनेक बन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ। उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥ वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावसे आहार देता था। जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर धातकीखण्डद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान कुरुक्षेत्रमें आर्य हुआ। वहाँ तीन पल्य तक भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरीमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दिवर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा। तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमें लीन एवं पञ्च-नमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमें तत्पर था। वह एक करोड़ पूर्वतक महाभोगोंको भोगकर तथा संन्याससे शरीर छोड़कर पञ्चम स्वर्गमें गया। वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्ध पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यंजय नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महा बलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

---

१. चन्द्रपुराह्वये म०। २. भद्रनामा पुरुषः, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयोः। ३. प्रयत्नेभ्यो म०। ४. स्वर्गम्। ५. पृथुलावत्यां ज०। ६. सुमेरोः।

तं दृष्ट्वोष्ठं धनुःपाणिं कवचावृतविग्रहम् । [1]दग्धुकाममरिस्थानं क्रोधादाग्नेयविद्यया ॥३८॥
रथाग्रारूढमायान्तं वेगिनं भीषणाकृतिम् । नभस्थं सहसा कश्चिदमरोऽभिद[2]धाविति ॥३९॥
रत्नमालिन् किमारब्धमिदं संरंभमुत्सृज । विबुध्यस्व वदाम्येष वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥
इहासीद् भारते वास्ये मांसादोऽधमकर्मकृत् । गान्धार्यां भूतिरुर्वीभृदुपमन्युः पुरोहितः ॥४१॥
साधोः कमलगर्भस्य श्रुत्वा [3]व्याकरणं च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥
पञ्चपल्योपमं स्वर्गे तेनायुः समुपार्जितम् । उपमन्यूपदेशेन[4] भस्मसाद्भावमाहृतम् ॥४३॥
मुञ्चते सुकृतं चासाववस्कन्देन चारिभिः । प्रपत्य हिंसितः साकमुपमन्यु[5]पुरोधसा ॥४४॥
पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ जर्जरीकृतः । सम्प्राप्य [6]जाप्यमप्राप्तमितरैर्दुःखभाजनैः ॥४५॥
पुनस्तत्रैव गान्धार्यां भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धायां पुत्रोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥
दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासौ ततो मृत्वा [7]शतारेऽहं सुरोऽभवम् ॥४७॥
स त्वं [8]भूतिमृगो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य[9] भूकुना[10] ॥४८॥
कम्बोजेन सताकारि यत्त्वया कर्म दारुणम् । [11]क्लिञ्जाख्येन मृतस्त्वासीच्छर्करानरकं गतः ॥४९॥
[12]मया स्नेहानुबन्धेन ततस्त्वं सम्प्रबोधितः । अयमुद्वृत्य जातोऽसि रत्नमाली खगेश्वरः ॥५०॥

सामन्तोंसे सहित था ॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओंठ डस रहा था, जिसके हाथमें धनुप था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयङ्कर आकारका धारक था। ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमें स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८–३९॥ कि हे रत्नमालिन्! तूने यह क्या आरम्भ कर रक्खा है? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

'इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था। उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था। राजा और पुरोहित दोनों ही मांसभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका सञ्चय किया कि उससे स्वर्गकी पाँच पल्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया। उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया। उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३–४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमें घायल हो अन्य दुःखी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पञ्च नमस्कार मन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान् पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५–४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग में देव हुआ। इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमें मृग हुआ सो वहाँ दावानलमें जलकर उसने अकामनिर्जरा की उसके फलस्वरूप वह क्लिञ्ज नामका नीच पुरुप हुआ। उस पर्यायमें तूने जो दारुण कार्य किये—तीव्र पाप किये। उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७–४९॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ

१. दग्धुं कामं 'तुं काममनसोरपि' इति मलोपः दग्धकामम०। २. जगाद। ३. व्याख्यानम्। ४. उपमन्यूपदेशेन व्रतं त्यक्तम्। ५. उपमन्युः पुरोधसा म०। ६. जप्य म०। ७. शतारस्वर्गे। ८. भूतिनामनृपः। ९. दावदग्धोऽस्य म०, ख०। १०. नीचपुरुषेण। ११. क्लिञ्जाख्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरकं प्राप्तः। १२. महा- म०।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखानीत्युदितश्च सः । सूर्यञ्जयसुतं राज्ये निधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥
वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्परं निर्वेदमीयुषा । सूर्यञ्जयेन सहितं सत्कर्मोद्यचेतसा ॥५२॥
रत्नमाली पुनर्नानादुर्गतित्रस्तमानसः । ययौ शरणमाचार्यं सौम्यं तिलकसुन्दरम् ॥५३॥
सूर्यञ्जयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमत् । च्युतोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
स्वल्पेन सुकृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवैः । न्यग्रोधबीजवद्वृद्धिं सम्प्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
नन्दिवर्धनकाले ते[1] नन्दिघोषपिता च यः । सोऽहं ग्रैवेयकाद् भ्रष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥
यो भूतिरुपमन्युश्च [2]तावेतौ तद्वशानुगौ । जनको कनकश्चेति जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिदञ्जसा । सैषा शुभाशुभैर्जन्तोरुद्वर्तपरिवर्तना ॥५८॥
उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
सर्वादरसमेतश्च सम्पूज्य चरणौ गुरोः । प्रणम्य च विशुद्धात्मा प्रविवेश सुकोशलम् ॥६०॥
एवं च मानसे चक्रे सार्वभूमीश्वरं पदम् । पद्माय सुधिये दत्वा [3]माधवीयां श्रये गतिम् ॥६१॥
धर्मात्मा सुस्थिरो रामस्त्रिसमुद्रां वसुन्धराम् । अनुपालयितुं शक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
चिन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराङ्मुखे । मुक्त्यर्थाहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥
तिरोधानं गता क्वापि स्वच्छज्योत्स्नापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमभीतेव सरोरुहनिरीक्षणा ॥६४॥
प्राप्तः प्रालेयसंपात[4] विच्छायीकृतनीरजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

जाकर तुझे सम्बोधा जिसके प्रभावसे निकल कर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥ तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ?' इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गतियोंसे भयभीत हो गया। इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यंजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यञ्जयके पुत्र कुलनन्दको राज्य देकर तिलकसुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५१-५३॥ तदनन्तर सूर्यंजय तप कर महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥ सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भवोंमें वटबीजकी तरह शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिवर्धनकी पर्यायमें जो तेरा पिता नन्दिघोष था वह तपकर ग्रैवेयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूत-हित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और उपमन्युके जीव थे वे पुण्यके प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है और न अपना है। शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्व भवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त हुआ तथा सब प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके सन्मुख हुआ ॥५९॥ सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुख और मुक्तिके लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चाँदनी ही जिसका वस्त्र थी, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद्-ऋतुरूपी स्त्री हिमसे डरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३॥-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे

१. कालेन म० । २. तावन्तौ म० । ३. माधवीया (?) म० । ४. संघातो विच्छायी म० ।

स्फुटिताधरपादान्ताः पृष्ठन्यस्तपटच्चराः । दन्तवीणाकृतस्वाना रूक्षव्याकुलमूर्धजाः ॥६६॥
तित्तिरच्छदनच्छायक्रोडजङ्घा विभावसोः । सततासेवनात् कुक्षिपूरणाधूनचेतसः ॥६७॥
शरीरच्छायया तुल्याः प्रपक्वत्रपुषत्वचः । दुर्गेहिनीवचःशस्त्रैरत्यन्तं [1]तष्टमानसाः ॥६८॥
[2]काष्ठाद्यानयनासक्ता दिवाभास्करतापिताः । कुठारादिधराः स्कन्धौ दधानाः किणकर्कशौ ॥६९॥
शाकाम्लखलकाद्यन्तपरिपूरितकुक्षयः । दुःखं नयन्ति तत्कालं [3]दुष्कुटीषु धनोज्झिताः ॥७०॥
वरप्रासादयातास्तु शीतसङ्गमहारिभिः । संवीताङ्गा वरैर्वस्त्रैर्धूपामोदानुबन्धिभिः ॥७१॥
षड्रसं स्वादुसम्पन्नं हेमरुक्मादिपात्रगम् । भुञ्जानाः सुरभिस्निग्धमाहारं निजलीलया ॥७२॥
कुङ्कुमप्रविलिप्ताङ्गा असितागुरुधूपिताः । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाक्षकृतवीक्षणाः ॥७३॥
गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता विनोदं परमं सदा । माल्यभूषणसम्पन्नाः सुभाषितकथोद्यताः ॥७४॥
विनीताभिः कलाज्ञाभिः सुरूपाभिः समं नराः । क्रीडन्ति वरनारीभिः तदा पुण्यानुभावतः ॥७५॥
पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिताः[4] । कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपाश्नुते ॥७६॥
तदा दशरथो भीतो भृशं संसारवासतः । [5]निर्वृत्यालिङ्गनाकाङ्क्षी विरक्तो भोगवस्तुतः[6] ॥७७॥
द्वाःस्थमाज्ञापयद्भूमिन्यस्तजानुकरं द्रुतम् । भद्राहूय स्वसामन्तान् मन्त्रिभिः सहितानिति ॥७८॥
नियुज्यात्मसमं द्वारे शासनं तेन तत्कृतम् । आगतास्ते नमस्कृत्य यथास्थानमवस्थिताः ॥७९॥

जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥६५॥ जिनके ओंठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल रूखे तथा बिखरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जाँघें तीतरके पङ्खके समान मटमैली हो गई थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुषफलके वल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्याके वचनरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमें लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो घट्ट पड़ जानेसे कठोर कन्धोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्तकालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६–७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमें रखे हुए, छह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र झरोखोंकी ओर झाँका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदको प्राप्त होते रहते थे, माला तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभाषितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योदयसे क्रीड़ा करते थे ॥७१–७५॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है। प्राणी अपने कर्मोंके अनुरूप ही सब प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय संसारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान

१. नष्ट-ख० । २. काष्ठादानयताशक्त्या म० । ३. तत्कालं म० । ४. दुःखिनो भावो दुःखिता । ५. मुक्तिकान्ताश्लेषणाभिलाषी । ६. भोगवस्तुन- ख०, ज०, ब० ।

नाथाज्ञापय किं कृत्यमिति चोक्तेन भूभृता । विनीता जगदे [1]संसत् प्रव्रजामीति निश्चितम् ॥८०॥
ततस्तन्मन्त्रिणोऽवोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मतावस्यां तवाधुना ॥८१॥
जगादासौ समक्षं भो [2]नन्वेतत्सकलं जगत् । शुष्कं तृणमिवाजस्रं दह्यते मृत्युवह्निना ॥८२॥
अग्राह्यं यदभव्यानां भव्यानां ग्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसौख्यदम् ॥८३॥
त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्मं विशुद्धमुपमोज्झितम् । श्रुतं तन्मुनितो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । गुरुपादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निर्वृतेः ॥८५॥
नानाजन्ममहावर्तां मोहपङ्कसमाकुलाम् । कुतर्कग्राहसम्पूर्णां महादुःखोर्मिसन्तताम् ॥८६॥
मृत्युकल्लोलसंयुक्तां कुदृष्टिजलनिर्भराम् । समाक्रन्दमहारावां विधर्मजववाहिनीम् ॥८७॥
भवापगां मम स्मृत्वा नरकाम्भोधिगामिनीं । पश्यताङ्गानि कम्पन्ते वित्रासेन समन्ततः ॥८८॥
वृथावोचत मा[3] किंचिदात्मानं मोहिता भृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थानं रवौ सति ॥८९॥
अभिषिञ्चत मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
इत्युक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥
लिखन्तो भूमिमङ्गुल्या बाष्पाकुलनिरीक्षणाः । क्षणेन निष्प्रभीभूतास्तस्थुर्मौनं समाश्रिताः ॥९२॥
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा[4] निर्ग्रन्थव्रतसंश्रयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

दूसरे पुरुषको नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया। सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥७९॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण करूँ' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियों तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओंने कहा कि हे नाथ! इस समय आपकी ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमें क्या कारण है? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये! यह समस्त संसार सूखे तृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अभव्य जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला है, तीन लोकमें प्रकट है, सूक्ष्म है। विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावोंमें सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही मुक्तिका मार्ग है। गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमें नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कीचड़से भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयङ्कर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो। भयसे मेरे अङ्ग सब ओरसे कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमें सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो सकता है? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्विघ्न हो तपोवन में प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका दृढ़ निश्चय जानकर मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए। सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अङ्गुलीसे भूमिको खोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमें प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चितरूपसे निर्ग्रन्थ व्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

१. शंसत् म० (?) । २. न त्वेतत् म० । ३. मां म० । ४. ज्ञात्वा म० ।

विनोदान् प्रस्तुतान्मुक्त्वा वाष्पपूरितलोचनाः । भूषणस्वनभूयिष्ठं रुरुदुः प्रमदाङ्गनाः ॥९४॥
पितरं तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयदहो कष्टं दुश्छेद्यं स्नेहबन्धनम् ॥९५॥
अव्यापारेण तातस्य[1] किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छतः ॥९६॥
आपृच्छया न मे किञ्चित्कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥९७॥
देहेनापि किमेतेन व्याधिगेहेन नाशिना । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगिषु ॥९८॥
जन्तुरेकक एवायं[2] भवपादपसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥९९॥
ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येङ्गितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥१००॥
कथं मे न भवेद्भर्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥१०१
एवं चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः । तस्या वरोऽभवच्चित्ते गत्वा च त्वरितं ततः ॥१०२॥
प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावष्टम्भं नराधिपम् । जगादार्धासने स्थित्वा तेजसा पुरुणान्विता ॥१०३॥
सर्वेषां भूभृतां नाथ पत्नीनां च पुरस्त्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥१०४॥
वरं सम्प्रति तं यच्छ मह्यं सत्यसमुज्ज्वला[3] । दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्तिर्भ्रमति निर्मला ॥१०५॥
ततो दशरथोऽवोचद्[4] ब्रूहि त्वं दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्टं ते यच्छाम्येष वराशये ॥१०६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥९३॥ स्त्रियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रक्खे थे उन्हें छोड़कर आँसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगीं ॥९४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ। वह विचार करने लगा कि अहो! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥९५॥ वह सोचने लगा कि सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए? ॥९६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥९७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नश्वर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है? ॥९८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षोंसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥९९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥१००॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं। इन दोनोंको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ? ॥१०१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगनेकी बात याद आ गई ॥१०२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा'। सो हे नाथ! इस समय वह वर मुझे दीजिए। सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥१०३-१०५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये! तू अपना अभिप्राय बता। हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये! जो तुझे इष्ट हो सो

१. तावस्य म० । २. रेककया वार्यं म० । ३. कीर्तिसमुज्ज्वला म० । ४. रक्तत्वादीक्षणां ज०, ख०, ब० ।

इत्युक्ते मुञ्चती बाष्पमवोचज्ज्ञातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेतः कृतं निष्ठुरमीदृशम् ॥१०७॥
वद किं कृतमस्माभिर्येनासि त्यक्तुमुद्यतः । ननु जीवितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०८॥
अत्यन्तं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्त्वामद्य भवता कृता ॥१०९॥
देवेन्द्रसदृशैर्भोगैरिदं ते लालितं वपुः । कथं वक्ष्यति[2] जीवेश श्रामण्यं विविधं परम् ॥११०॥
एवमुक्तो जगादासौ कान्ते समस्य को भरः । वाञ्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यास्यामि साम्प्रतम् ॥१११॥
इत्युक्ता लिखन्ती[3] क्षोणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥११२॥
ततो दशरथोऽवोचत्प्रिये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तः साम्प्रतं गृह्यतामसौ ॥११३॥
एवमस्तु शुचं मुञ्च निर्ऋणोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यथा ॥११४॥
पद्मं लक्षणसंयुक्तमाहूय च कृतानतिम् । ऊचे विनयसम्पन्नं किञ्चिद्विगतमानसः ॥११५॥
वत्स पूर्वं रणे घोरे कलापारगयानया । कृतं केकयया साधु सारथ्यं मम दक्षया ॥११६॥
तदा तुष्टेन पत्नीनां भूभृतां च पुरो मया । मनीषितं प्रतिज्ञातं नीतं न्यासत्वमेतया ॥११७॥
देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना । किमप्याकूतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ॥११८॥
प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रव्रज्यां भरतः कुर्यात् संसारालम्बनोज्झितः ॥११९॥
इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । अमेध्य मम लोकेस्मिन्नकीर्तिर्वितथोद्भवा ॥१२०॥

माँग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी आँसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? बताइए, हमलोगोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगोंको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं। हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७–१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्‌के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगोंसे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता। जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो। शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण मुक्त कर दिया। क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३–११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्षणोंसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयंकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय संतुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाओंके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ'। परन्तु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो संसारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस संसारमें सर्वत्र

१. मायात म० । २. वक्ष्यति म० (?) । ३. लिखितं म० ।

मर्यादा न च नामेयं यद्विहायाग्रजं क्षमम् । राज्यलक्ष्मीवधूसङ्गं कनीयान् प्राप्यते सुतः ॥१२१॥
भरतस्याखिले राज्ये दत्ते स त्वं सलक्ष्मणः । क गच्छेत्परमं तेजो दधानः क्षत्रगोचरम् ॥१२२॥
तदहं वत्स नो वेद्मि किं करोमीति [1]पण्डित । अत्यंतदुःखवेगोरुचिन्तावार्तान्तरस्थितः ॥१२३॥
ततः पद्मो जगादैवं बिभ्रद्विनयमुत्तमम् । [2]सद्भावप्रीतिचेतस्कः पादन्यस्तनिरीक्षणः ॥१२४॥
तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम् । शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥१२५॥
जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्यं गृहैषिणा । येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः ॥१२६॥
पुनाति त्रायते चायं पितरं येन शोकतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२७॥
सभानुरञ्जनी यावत्कथेयं वर्तते तयोः । तावद्भवं निहन्मीति[3] कठोरीकृतमानसः ॥१२८॥
सौधादवतरन्वेगाल्लोकहाकारनादितः । निरुद्धो भरतः पित्रा स्नेहविक्लवचेतसा ॥१२९॥
उपविश्याङ्कमारोप्य परिष्वज्य सचुम्बितम् । इति चाभिदधे भूमौ [4]तिष्ठासुर्वशगः पितुः ॥१३०॥
राज्यं पालय वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्राव्रज्यं तु करोम्यहम् ॥१३१॥
भज तावत्सुखं पुत्र सारं मनुजजन्मनः । नवेन वयसा कान्तः वृद्धः सम्प्रव्रजिष्यसि ॥१३२॥
इत्युक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि मां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा ॥१३३॥
गृहाश्रमे महावत्स श्रूयते धर्मसञ्चयः । अशक्यः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥१३४॥

फैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्यादा भी नहीं है कि समर्थ बड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य-लक्ष्मीरूपी स्त्रीका समागम प्राप्त कराया जाय ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मणके साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ। तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो। अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण बहुत भारी चिन्ताकी बातके मध्यमें स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पैरों पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम विनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए। यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्पन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोकको प्राप्त न हों ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उसकी रक्षा करे यही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जब तक पिता-पुत्रके बीच सभाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तब तक 'मैं संसारको नष्ट करूँ' ऐसा दृढ़ निश्चयकर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा। यह देख लोग हाहाकार करने लगे। पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका। वह पिताका आज्ञाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवीपर खड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठाकर उसका आलिङ्गन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि 'हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर। मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ'। इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१३१॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नवीन वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर। पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३२॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो। मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३३॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममें भी तो धर्मका संचय सुना

१. पीडितं म० । २. सद्भावः प्रीति -ब० । ३. भवंति हन्मीति म० (?) । ४. स्थातुमिच्छुः ।

इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीकवशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥१३५॥
मुनीनां वत्स केषाञ्चिद्भवेनैकेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु सद्मन्यवस्थितः ॥१३६॥
इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्त्यभावः सुनिश्चितः ॥१३७॥
अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न ममान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतङ्गानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
कामार्चिषा परं दाहं व्रजन्तः कुत्सिता नरा[1] । जिह्वाधमाङ्गकार्याणि कुर्वते न च निर्वृतिः ॥१३९॥
निक्षिप्यते हि कामाग्नौ भोगसर्पिर्यथा[2] यथा । नितरां वृद्धिमायाति तापकृत्स तथा तथा ॥१४०॥
भुक्त्वा भोगान् दुरुत्पादान् दुरक्षान् क्षणभंगिनः । नियतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मभीरुकम् । करोमि विधिनारण्ये तपोनिर्वृतिकारणम् ॥१४२॥
अथ गेहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक नैर्वृतम्[3] । त्वमेव कुरुषे कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाभ्यनुमोदते । एतत्तातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥१४४॥
जीवितं वनितामिष्टं पितरं मातरं धनम् । भ्रातरं च परित्यज्य याति जीवोऽयमेककः ॥१४५॥
सुचिरं देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं तृप्तिमागच्छेन्मनुष्यभवभोगकैः ॥१४६॥
पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद वत्स धन्योऽसि विबुद्धो भव्यकेसरी ॥१४७॥

जाता है। यद्यपि क्षुद्र मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! जो इन्द्रियोंके वशीभूत है तथा काम क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवमें मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है। अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती। इसलिए घरमें रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिता जी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी। मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूँगा। अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है। क्या गरुड़ वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ क्षुद्र मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमें ज्यों-ज्यों भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है। ये देखते-देखते क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिता जी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए। जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिता जी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख घरमें भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महा बुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये। हर्षसे उनके शरीरमें रोमाञ्च

१. वराः म० । २. भोगरूपं घृतम् । ३. निर्वाणसम्बन्धि ।

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचित्प्रणयस्य मे । त्वया कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
श्रृणु सारथ्यतुष्टेन मयाजौ[1] जीवसंशये । प्रतिज्ञातं जनन्यास्ते वाञ्छितं नृपसाक्षिकम् ॥१४९॥
ऋणतां तच्चिरं नीतमद्याहं [2]याचितोऽनया । राज्यं प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानतः ॥१५०॥
स त्वं निष्कण्टकं तात राज्यं शक्रोपमं कुरु । असत्यसंधा[3]कीर्तिर्मे माभ्रमीन्निखिलं जगत् ॥१५१॥
इयं च तव शोकेन परमेणाभितापिता । माता म्रियेत सौख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥
न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥१५३॥
ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ गृहीत्वैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया पश्यन् दृष्ट्या मधुरनिस्वनः ॥१५४॥
तातेन भ्रातरुक्तं यत्कोऽन्यस्तद्गदितुं क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरुद्यातु शशिनिर्मला ॥१५६॥
इयं च शोकतप्ताङ्गा माता यथाति पञ्चताम् । न तद्युक्तं महाभागे[4] नन्दने त्वादृशे सति ॥१५७॥
पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतं प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
नद्यां गिरावरण्ये वा तत्र वासं करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५९॥
[5]भागं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि संश्रितः । न करोमि पृथिव्यां ते काञ्चित्पीडां गुणालय ॥१६०॥
माश्वसीर्दीर्घमुष्णं च मुञ्च तावद्भवाद्भयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रक्ष न्यायपरायणः ॥१६१॥

निकल आये। वे बोले कि हे वत्स! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥१४७॥ फिर भी हे धीर! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया। तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४८॥ सुन, एकबार युद्धमें मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था। उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी। उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे माँगा है। इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमें भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर सुखसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे भाई! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४–१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है। इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं। फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है? ॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे पर्वत, अथवा वनमें वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोंके आलय! मैं अपना सब भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ। मैं पृथ्वी पर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम सांस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

१. युद्धे, मयासौ म०। २. प्रापितोऽनया म०। ३. असत्यसंधान- म०। ४. महाभागे ख०। ५. भोगं म०।

इक्ष्वाकूणां कुलं श्रीमद्भूषयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुलं भ्रातः शशी ग्रहकुलं यथा ॥१६२॥
भ्राजते त्रायमानः सन् वाक्यं तत्पितृकस्य यत् । लब्धवर्णैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्वं परिकीर्तितम् ॥१६३॥
इत्युक्त्वा भावतः पादौ शिरसा भूतलस्पृशा । पितुः प्रणम्य तत्पार्श्वान्निर्गतो लक्ष्मणान्वितः ॥१६४॥
अत्रान्तरे नृपो मूर्छां सम्प्राप्तोऽपि न केनचित् । ज्ञातः स्तम्भसमायुक्तवपुः पुस्तसमाकृतिः ॥१६५॥
स तूर्णं धनुरादाय गत्वा नत्वा च मातरम् । आपृच्छ्य तां च गच्छामि तावदन्यमहीमिति ॥१६६॥
सखीत्वं मूर्छया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । क्षणं कृतं परिप्राप्तसंज्ञा चास्राकुलेक्षणा ॥१६७॥
ऊचेऽपराजिता[1] हा त्वं वत्स क्व प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्त्यजसि सच्चेष्ट क्षिप्त्वा शोकमहोदधौ ॥१६८॥
मनोरथशतैः पुत्र त्वं प्राप्तो दुर्लभो मया । प्रारोह इव शाखाया मातुरालम्बनं सुतः ॥१६९॥
परिदेवनमेवं तां कुर्वन्तीं हृदयङ्गमम् । जगाद प्रणतः पद्मो मातृभक्तिपरायणः ॥१७०॥
अम्ब मा गाद् विषादं त्वं दक्षिणस्यामहं दिशि । निरूप्य संश्रयं योग्यं नेष्यामि त्वां विसंशयम् ॥१७१॥
तातेन पृथिवी दत्ता जनन्यावरदानतः । भरतायेति ते[2]कर्णजाहं नूनमुपागतम् ॥१७२॥
अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्रौ मलयेऽथवा । अन्यस्मिन् चार्णवस्यान्ते पश्य मातः कृतं पदम् ॥१७३॥
मयि स्थिते समीपेऽस्मिन् लोके भास्करसंमते । आज्ञैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥
ततः प्ररुदती माता जगादात्यन्तदुःखिता । पुत्रं विनतमाश्लिष्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

मान और न्यायमें तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहोंके समूहको अलंकृत करता है उसी प्रकार तू इक्ष्वाकुओंके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलंकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके वचनकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमें यद्यपि राजा दशरथ मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नहीं चला क्योंकि वे जिस खम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी खम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष उठा कर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गई सो मानो दुःखका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब आँखोंमें आँसू भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमें डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७–१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ों मनोरथोंके बाद मैंने तुझे पाया है । जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमें चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमें तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विषादको प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशामें योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७०–१७१॥ 'पिताने, केकयी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमें किसी महाअटवीमें, विन्ध्याचलमें, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमें हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जब तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥

तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

१. कौशल्या, रामजननी । २. कर्णयोर्मूलमिति कर्णजाहम् ।

तनयाद्यैव मे गन्तुमुचितं भवता समम् । कथं त्वाहमपश्यन्ती प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥१७६॥
पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणां त्रयी गतिः । पितातिक्रान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सुकः ॥१७७॥
जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं मेऽवलम्बनम् । त्वयापि रहिता साहं वद गच्छामि कां गतिम् ॥१७८॥
सोऽवोचदुपलैरम्ब क्षितिरत्यन्तकर्कशा । भवत्या विषमा पद्भ्यां गंतुं सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
तस्मादेकक एवाहं विधाय सुखमाश्रयम् । यानेन केनचिन्नेष्ये भवन्तीं त्यजनं कुतः ॥१८०॥
यथा स्पृशामि ते मातः पादावेव तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतुं [1]त्वां मुञ्च कार्यविचक्षणे ॥१८१॥
एवमुक्ते विमुक्तः सन् [2]परिसान्त्व्य सुभाषितैः । पुनश्च पितरं प्राप्तप्रबोधं प्रणिपत्य सः ॥१८२॥
शेषं मातृजनं [3]नत्वा परिसान्त्व्य सुभाषितैः । अविषण्णमहाचेताः सर्वन्यायविचक्षणः ॥१८३॥
भ्रातृबन्धुपरिष्वङ्गं कृत्वा सम्भाषणं तथा । [4]सीतायाः सदनं प्राप्तः प्रेमनिर्भरमानसः ॥१८४॥
प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वान् परिवर्गं च सादरम् । आपृच्छच्छेकव[5]र्गेऽपि [6]भाषणालापताकुलः ॥१८६॥
प्रीत्या संवर्धितं भूयः कृतालिङ्गनमादृतम्[7] । मित्रवर्गं सबाष्पाक्षं पुनरुक्तं न्यवर्तयत् ॥१८७॥
स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छत्पितुर्गेहान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोती हुई, नम्रीभूत पुत्रका आलिङ्गनकर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुझे बिना देखे मैं प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूँगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्थरोंसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीककर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका छोड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके समझनेमें निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई-बन्धुओंका आलिङ्गन कर उनके साथ मधुर संभाषण किया और तदनन्तर जिनका उदार हृदय विषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमें निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले—'कि हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ' । तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि 'जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी' ॥१८५॥

इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा । नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापिस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरु पर्वतके समान स्थिर था ऐसे राम,

१. त्वं म० । २. परिसान्त्वा म० । ३. गत्वा म०, ज्ञात्वा क०, ख० । ४. जानकीन्यस्तविस्तारिलोचनप्रश्रयान्वितः म०, ज०, क०, ख० एषु पुस्तकेषु इतोग्रे 'प्रिये त्वं तिष्ठ' इत्यादिश्लोको नास्त्येव । ५. च्छेपवर्गेऽपि म० । ६. भीषणाल्लाप म० । ७. मारतं म० ।

आहुढौकन् द्रुतं [1]चारु [2]सामन्ता वाजिवारणम् । पद्मेन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८९॥
विदेशगमनोद्युक्तं दृष्ट्वा तं जानकी भृशम् । श्रीमदंशुकसंवीता विकसत्पद्मलोचना ॥१९०॥
प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रूरापृच्छ्य च सुहृज्जनम् । विनीतानुययौ नाथं पौलोमीव सुराधिपम् ॥१९१॥
दृष्ट्वा तमुद्यतं गन्तुं स्नेहनिर्भरमानसः । लक्ष्मणोऽचिन्तयत् क्रोधं वहन्नयनलक्षकम्[3] ॥१९२॥
अन्यायमीदृशं कर्तुं कथं तातेन वाञ्छितम् । स्वार्थसंसक्तनित्याशं धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ॥१९३॥
अहो महानुभावोऽयं ज्यायान् पुरुषसत्तमः । मुनेरपीदृशं स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९४॥
किमद्यैव करोम्यन्यां सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान्[4] । भरतस्य बलाद्वाहो करोमि विमुखां श्रियम् ॥१९५॥
विधातुरद्य[5] सामर्थ्यं भनज्मि चिरमूर्जितम् । निरुद्ध्य पाद्योर्ज्येष्ठं करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥१९६॥
न युक्तमथवा चिन्तं जातक्रोधानुगस्य मे । क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपाश्रितम् ॥१९७॥
किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रतं बहु ॥१९८॥
सितकीर्तिसमुत्पत्तिर्विधातव्या हि नः पितुः । तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायान्सं साधुकारिणम् ॥१९९॥
प्रशमय्य स्वयं कोपमित्यादाय शरासनम् । [6]प्रणम्यापृच्छ्य चाशेषं जनं गुरुपुरस्सरम् ॥२००॥
महाविनयसम्पन्नो मार्गयोग्यकृताकृतिः । लक्ष्मीनिलयवक्षस्कः पद्मस्यानुपदं ययौ ॥२०१॥
पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षेव कुर्वाणौ तौ धाराभिर्नयनाम्भसा ॥२०२॥

मुख्य-मुख्य घोड़ों तथा हाथियोंको स्नेह पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पड़े ॥१८८॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर घोड़े और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८९॥ पतिको विदेश गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भी, सास श्वसुरको प्रणामकर तथा मित्र जनोंसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०–१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें छलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभावको धिक्कार हो ॥१९२–१९३॥ अहो ! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जब कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनोंको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुख कर दूँ ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोंमें पड़कर बड़े भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बड़े भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्तकर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोंसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महा विनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेष भूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००–२०१॥ उस समयका दृश्य बड़ा ही करुण था । सीताके साथ राम लक्ष्मण आगे बढ़े जाते थे और माता पिता परिवार तथा

१. चारून् म० । २. सामन्तान् म० । ३. नयनलक्षणम् म० । ४. दुर्जनात् म० । ५. मद्य म० । ६. प्रशाम्य म० ।

परिसान्त्वनसूरिभ्यां प्राप्ताभ्यां निश्चयं परम् । कृच्छ्रान्निवर्तितौ ताभ्यां प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥२०३॥
निवर्त्यमानबन्धूनां समूहेनान्विताविमौ । राजगेहाद्विनिष्क्रान्तौ देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
वर्तते किमिदं मातः कस्येदं [1]मतमीदृशम् । अभाग्येयं पुरी कष्टमथवा सकला मही ॥२०५॥
यामोऽनेन समं दुःखमेताभ्यां सह गम्यते । महाशक्ताविमौ कृच्छ्राद्धरणीधरगह्वरात् ॥२०६॥
पश्य सीता कथं याति [2]नाथेनैषानुमोदिता । अस्याः सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
अहो परमधन्येयं जानकी रूपशालिनी । विनयांशुकसंवीता भर्तारं यानुगच्छति ॥२०८॥
अस्माकमपि नारीणामेषैव भवताद् गतिः । उदाहरणभूतेयं भर्तृदैवतयोषिताम् ॥२०९॥
पश्य मातरमुज्झित्वा नेत्राम्बुप्लाविताननाम् । एष लक्ष्मीधरो गन्तुमुद्युक्तो ज्यायसा समम् ॥२१०॥
अहो प्रीतिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो विनयसम्भारः श्रीमतोऽस्य विराजते ॥२११॥
भरतस्य किमाकूतं कृतं दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनीषा व्यवस्थिता ॥२१२॥
कालः कर्मेश्वरो दैवं स्वभावः पुरुषः क्रिया । नियतिर्वा करोत्येवं [3]विचित्रं कः समीहितम् ॥२१३॥
वर्ततेऽनुचितं बाढं क्व गता स्थानदेवता[4] । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्जनसमूहतः ॥२१४॥
कुमाराभ्यां समं गन्तुमुत्सुके सकले जने । पुरी शून्यगृहा जाता नष्टाशेषसमुत्सवा ॥२१५॥
पुष्पप्रकरसंपूर्णाः समस्ता द्वारभूमयः । पिच्छलत्वं समानीताः शोकपूर्णजनाश्रुभिः ॥२१६॥

शेष दो पुत्रोंके साथ धारा-प्रवाह आँसुओंसे मानो वर्षा कर रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई दृढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सान्त्वना देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें गिरकर माता-पिताको बड़ी कठिनाईसे वापिस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-बन्धुओंको बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं। अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता! यह क्या हो रहा है? यह ऐसा किसका मत था? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहनेसे सब दुःख दूर हो जायगा। ये दोनों ही दुःख रूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार करनेमें अत्यन्त समर्थ है ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है? पतिने इसे साथ चलने की अनुमति दे दी है। देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो! जो विनय रूपी वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है-- बड़ी भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोंकी भी ऐसी ही गति हो। यह पतिव्रता स्त्रियोंके लिए उदाहरण स्वरूप है ॥२०९॥ अहो! देखो, जिसका मुख आँसुओंसे भींग रहा है ऐसी माताको छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो! इस लक्ष्मण की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनयका समूह धन्य है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया? राम लक्ष्मण के भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है? ॥२१२॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है। ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता है? ॥२१३॥ यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है। इस स्थानके देवता कहाँ गये'? उस समय लोगोंकी भीड़से इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग रामलक्ष्मणके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरीके समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरोंके दरवाजोंकी जो भूमियाँ पहले फूलोंके समूहसे व्याप्त रहती थीं वे उस समय शोकसे भरे

१. व्रत म० । २. नाथेनानुमोदिता म० (?) । ३. विचित्रकसमीहितम् म० । ४. देवताः म०, ख० ।

जनस्योत्सार्यमाणस्य [1]वरूथिन्यो नरोत्तमैः । वीचयः सागरस्येव विक्षोभमस्ते महानिलैः ॥२१७॥
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि सम्भाषणसमुद्यतः । दाक्षिण्यपरमः पद्मो मेने विघ्नं पदे पदे ॥२१८॥
असक्त इव तं द्रष्टुमसमञ्जसमीदृशम् । मन्दं मन्दांशुसङ्घातो रविरस्तमुपागमत् ॥२१९॥
रविणा दिवसस्यान्ते त्यक्ताः सर्वमरीचयः । [2]ज्येष्ठचक्रधरेणेव सम्पदो मुक्तिमिच्छता ॥२२०॥
दधाना परमं रागमुचिताम्बरयोगिनी । अन्वियाय रविं सन्ध्या सीता दाशरथिं यथा ॥२२१॥
ततो विशेषविज्ञानविध्वंसनविधायिना । रामप्रज्योत्भवेनेव तमसा व्याततं जगत् ॥२२२॥
अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम् । ससीतौ तावरेशस्य[3] स्थानं प्राप्तौ क्षपामुखे ॥२२३॥
भवान्तकस्य भवनं नित्यालङ्कृतपूजितम् । चन्दनाम्भोऽनुलिप्तक्ष्मं[4] त्रिद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
दर्पणादिविभूषं तत्ससीतौ सप्रदक्षिणम् । प्रविष्टावनपेक्षौ तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रुध्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिच्छन् कुदृष्टिवत् ॥२२६॥
स्थापयित्वा धनुर्वर्म पुण्डरीकनिभेक्षणौ । जिनेन्द्रवदनं दृष्ट्वा तौ वरां धृतिमागतौ ॥२२७॥
मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलम्बितभुजद्वयम् । श्रीवत्सभासुरोरस्कं व्यक्तनिःशेषलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आँसुओंसे पङ्किल अर्थात् कर्दम युक्त हो गई थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें क्षोभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पङ्क्तियाँ क्षोभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विघ्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गई थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार मुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सब सम्पत्तियाँ छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमें सूर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात उत्कृष्ट प्रेमको धारण करनेवाली तथा उचित-अम्बर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्बर अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके विशेष ज्ञानको नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको धोखा देनेके लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सायंकालके समय अरहनाथ भगवान्के मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा अलंकृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मङ्गल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था। सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे रहित राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्षकी इच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे

१. पङ्क्तयः। विरूपिण्यो म०। २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन। ३. तौ + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थानं मन्दिरम्। ४. चन्दनाम्भोजलिप्तक्ष्मं

सम्पूर्णचन्द्रवदनं विबुद्धकमलेक्षणम् । अस्मर्यमाणनिर्माणबिम्बमष्टादशं जिनम् ॥२२९॥
प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरौ । स्थितौ तत्र विभावर्यां चिन्तयन्तौ सुहृज्जनम् ॥२३०॥
तत्र तावुषितौ ज्ञात्वा मातरः पुत्रवत्सलाः । एत्य बाष्पाकुलाः स्नेहात् परिष्वज्य पुनः पुनः ॥२३१॥
पुत्राभ्यां सह सम्मंत्र्य दर्शने तृप्तिवर्जिताः । दोलारूढसमात्मानो[1] जग्मुदर्शरथं पुनः ॥२३२॥
सर्वासामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥
ततस्ता गुणलावण्यरूपवेषमहोदयाः । जग्मुर्मधुरवादिन्यः प्रियं मन्दरनिश्चलम् ॥२३४॥
कुलपोतं निमज्जन्तं प्रिय शोकमहार्णवे । संधारय ससौमित्रिं विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥
सोऽवोचन्न ममायत्तं जगद्यत्र विकारिकम् । प्रमाणं चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥
जन्ममृत्युजराव्याधैर्मास्म कश्चिद्विबाध्यताम् । नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥
पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टानामिष्टानां दर्शनेषु वा । बान्धवानां सुखानां च जीवितस्य धनस्य च ॥२३८॥
असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचित्स्थितिसंक्षये । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२३९॥
[2]पुत्रवत्यो [3]भवत्योऽत्र निवर्तयत सत्सुतौ । [4]उपभुङ्क्ष्वं सुविश्रब्धाः पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२४०॥
त्यक्तराज्याधिकारोऽहं निवृत्तः पापचेष्टितात् । भवादुग्रं भयं प्राप्तः करोमि चरितं मुनेः ॥२४१॥

सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिबिम्बकी रचना भुलाई नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन वचन कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोंकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्र वत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आईं। उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिङ्गन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा-सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चञ्चल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गईं ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पुत्र और पति दोनोंका आलिङ्गन करती है परन्तु परिणाम जुदे-जुदे रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर गुण लावण्यरूप वेष आदि महा अभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियाँ मेरुके समान निश्चल पतिके पास गईं और बोलीं कि हे वल्लभ! शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापिस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकार रूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म जरा और मरणरूपी व्याधोंके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादिक इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको तृप्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको लौटा लो और निश्चिन्त होकर पुत्र भोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पाप पूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका

---

१. दोलारूढमिवात्मानो म० । २. पुत्रवन्त्यो म० । ३. भवन्त्यो म० । ४. उपयुक्तं म० ।

आर्याच्छन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रमौदासीन्यम् ।
भेजे रविसमतेजाः सकलकुभावाभिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथप्रव्रज्याभिधानं नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥३१॥

हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोंकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षणं नीत्वा निद्रान्तौ धृतकङ्कटौ । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
विधाय जानकीं मध्ये जिनं नत्वा सकार्मुकौ । सुवेषौ प्रस्थितौ दीपैः पश्यन्ताविव[1] कामिनः ॥२॥
कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढां निषेवते ॥३॥
[2]कृत्वापराधकः पूर्वं कोपिनीं कश्चिदङ्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
अपरो मानमुत्सृज्य कान्तया स्मरतप्तया । कृतकं कोपमायातः सुवाग्भिः परिसांत्व्यते ॥५॥
सुरतायासखिन्नाङ्गा देहे कस्यचिदङ्गना । लीना तत्त्वमिव प्राप्ता गाढां निद्रां निषेवते ॥६॥
नवसङ्गमनां कश्चिज्जायां विमुखवर्तिनीम् । कृच्छ्रात् प्रस्तात्समानीय सम्भाषयति संमदी ॥७॥
कस्मैचित्पूर्ववैगुण्यं कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेदयत्यस्मै विस्रब्धः कृतमाननः ॥८॥
कश्चित् परगृहं प्राप्तो धूर्तः सङ्कुचिताङ्गकः । उद्वासयति मार्जारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
अपरः कृतसंकेता शून्यदेवकुलान्तरे । कुलटामाकुलीभूतो मुहुरुत्थाय वीक्षते ॥१०॥
चिरादुपगतं कञ्चिद् घनरोषाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्वा मेखलया खलम् ॥११॥
अभिसारिकया साकमन्यः प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति त्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम-लक्ष्मण उस मन्दिरमें कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्ध रात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोंका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले। वे सीताको बीचमें करके चल रहे थे। दोनों ही उत्तम वेषके धारक थे तथा दीपक हाथमें लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोंमें कामी जनोंको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर संभोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभाको भुजारूप पञ्जरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार झूठी शपथके द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर जुदा बैठा है और उसकी स्त्री कामसे संतप्त हो उसे मधुर वचनोंसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके श्रमसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमें इस तरह लीन होकर गाढ़ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अभेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठी नवोढा पत्नीको बड़ी कठिनाईसे अनुकूल कर हर्ष पूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ झरोखेमें बैठे बिलावको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूने मठमें आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाका प्रेमी देरसे आया था इसलिए वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे बाँधकर उत्तरीय वस्त्रसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्तकर कुत्तेके

१. विति कामिनः म० । २. कृतापराधकः ज० ।

इति[1] निर्यूहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्तौ [2]वीक्ष्यमाणौ च [3]वृत्तान्तौ जग्मतुः शनैः ॥१३॥
अवद्वारेण[4] निर्गत्य पुरीतः पश्चिमेन तौ । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणौ दक्षिणां दिशम् ॥१४॥
त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । राघवेण समं गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्चनकारिणः । समीपं रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
ते चक्षुर्गोचरीकृत्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसम्पन्नाः पद्भ्यामेव ढुढौकिरे ॥१७॥
प्रणिपत्य च भावेन सक्रमं सम्बभाषिरे । यावत्तावन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययौ ॥१८॥
प्रशशंसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्रौ समागताः ॥१९॥
भयास्यद्यदि नैताभ्यां सममेषा सुमन्थरा । ततः कथमिव प्राप्स्यामेतौ पवनरंहसौ ॥२०॥
इयं नः सुसती माता परमप्रियकारिणी । एतस्याः सदृशी नान्या प्रशस्तास्ति क्षिताविह ॥२१॥
तौ सीतागतिचिन्तत्वान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गव्यूतिमात्रमध्वानं सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
सस्यानि बहुरूपाणि पश्यन्तौ क्षितिमण्डले । सरांसि कञ्जरम्याणि तरूंश्च गगनस्पृशः ॥२३॥
आपूर्यमाणपर्यन्तौ वेगवद्भिर्नराधिपैः[5] । घनागमे नदैर्गङ्गाकालिन्दीप्रवहाविव ॥२४॥
ग्रामखेटमटम्बेषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिरुत्तमौ ॥२५॥
केचिदध्वजखेदेन सामन्ता व्रजतोस्तयोः । पश्चाद्ज्ञापियत्वैव विवृत्ता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य झरोखों और मण्डपोंमें कामीजनोंको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोंकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोंको धोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेगसे घोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणामकर जब तक उनके साथ यथा क्रमसे वार्तालाप करते हैं तब तक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसादसे ही राजपुत्रोंको प्राप्त कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोंको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है। इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम रामलक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यानकर गव्यूति प्रमाण मार्गको ही सुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोंसे सुशोभित तालाब और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें गङ्गा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ ग्राम, खेट, मटंब, घोष तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम वीरोंका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेदसे दुःखी हो रहे थे। जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे

१. गवाक्षप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणौ म० । ३. वृत्तान्तौ म० । ४. लघुनाद्वारेण, अपद्वारेण (?) म० ५. वेगवन्निर्जराधिपैः म० । ६. घनागमेनदी गंगा म० ।

अपरे त्रपया केचिद्भीत्यान्ये भक्तितत्पराः । अव्रजन् विनयात् पद्भ्यां कृत्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
ततो हरिगजव्रातसङ्कुलारावभैरवाम् । [1]परियात्राटवीं प्राप्तौ लीलया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
तस्यां बहुलशर्वर्यां तुल्यध्वान्तां महानगैः । निम्नगां शर्वरीमेतौ शबराश्रितरोधसाम् ॥२९॥
तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वादुफलोचिते । [2]कांश्चिन्न्यवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥
महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिश्चयाः ॥३१॥
ततस्ते निम्नगां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डवेगोर्मिसंघातनिर्मितोदरनिश्चिताम् ॥३२॥
उन्मज्जत्प्रबलग्राहकृतकल्लोलसङ्कुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥
[3]महाद्रिकन्दरास्फाल[4]प्रतिसूत्कारनादिनीम् । उद्वर्तमानमीनांगस्फुरद्भास्कररोचिषम् ॥३४॥
उद्वृत्तनक्रसूत्कारजातदूरगशीकराम् । उड्डीयमाननिश्शेषभयपूर्णपतत्रिकाम् ॥३५॥
सन्त्रासकम्पमानाङ्गा जगू रामं सलक्ष्मणम् । समुत्तारय नाथास्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
भृत्यानां भक्तिपूर्णानां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकि ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
एवमादिगदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । दुढौकिरे प्रसस्रुश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
ततस्तान् राघवोऽवोचद्विश्रब्धो रोधसि स्थितः । अधुना विनिवर्तध्वं भद्रा भीममिदं वनम् ॥३९॥
अस्माभिः सह युष्माकमियानेवैष[5] सङ्गमः । एषा नद्यवधिर्जाता भवतौत्सुक्यवर्जिता ॥४०॥

बिना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने ही सामन्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर विनय पूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर रामलक्ष्मण लीला पूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उग्र शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्ण-पक्षकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था । वहीं, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी । रामलक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्रामकर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो वापिस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उछरते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टक्करसे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंसे व्याप्त थी, लहरोंके समूहका आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें टूट-टूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सूं'सूं' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरनेवाली मछलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रहीं थी, जिसमें उत्पात करनेवाले नाकोंकी सूत्कारसे जलके छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामन्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे । वे लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दीन सामन्त उस नदीमें कूद पड़े तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए बहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयङ्कर है ॥३९॥ हमलोगोंके साथ तुम्हारा

---

१. एतन्नामाटवीं । २. कांश्चित्प्रावर्तयद् म० । ३. महीन्द्र म० । ४. भ्रान्ते सूत्कार म० । ५. मियानेषैव म० ।

तातेन भरतः स्वामी सर्वेषां वो निवेदितः। विसाध्वसास्तमाश्रित्य तिष्ठत क्षितिपालिनः ॥४१॥
ततस्ते पुनरित्यूचुर्नाथास्माकं भवान् गतिः। प्रसादं कुरु मा त्याक्षीरस्मान् कारुण्यकोविद ॥४२॥
निराश्रयाकुलीभूता त्वयेयं रहिता प्रजा। वद कं शरणं यातु सदृशः कस्तवापरः ॥४३॥
व्याघ्रसिंहगजेंद्रादिव्यालजालसमाकुले। वसामो भवता सार्धमरण्ये न विना दिवि ॥४४॥
न नो नि[1]वर्तते चित्तं प्रतियामः कथं वयम्। महत्तरत्वमेतेन हृषीकेष्वर्जितं ननु ॥४५॥
किं नो गृहेण किं भोगैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः। भवता नररत्नेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जातुचित्। सम्मानेनाधुना कस्माज्जातोऽस्यत्यन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
कोऽपराधो वदास्माकं भवच्चरणरेणुना। परमां वृद्धिमेतानां भक्तानां भृत्यवत्सल ॥४८॥
अहो जानकि [2]लक्ष्मीश रचितोऽयं शिरोऽञ्जलिः। प्रसादयतमीशं नः प्रसादी भवतोरयम् ॥४९॥
सीता लक्ष्मीधरश्चैवमुच्यमानौ सुदक्षिणौ। तस्थतुः पद्मपादाग्रन्यस्तनेत्रौ निरुत्तरौ ॥५०॥
ततः पद्मो जगादेदं भवतामुत्तरं स्फुटम्। निवर्तध्वमयं भद्रा यातोऽस्मि सुखमास्यताम् ॥५१॥
इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ परमोत्साहसङ्गतौ। अवतेरतुरत्यन्तगम्भीरां तां महापगाम् ॥५२॥
उत्तीर्णः सरितं पद्मो जानकीं विकचेक्षणाम्। करेण सुखमादाय पद्मिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥
अम्भोविहारविज्ञानबुधयोः सा तयोर्धुनी। नाभिदघ्नी[3] बभूवोद्धां क्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था। अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गई है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पिताने तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीके शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ! हमारी गति तो आप ही हैं इसलिए हे दया-निपुण! प्रसाद करो और हमलोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है आप ही कहो किसकी शरणमें जावे? आपके समान दूसरा है ही कौन? ॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमें रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटें? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जब आप जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है? भोगोंसे क्या मतलब है? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है? ॥४६॥ हे देव! क्रीड़ाओंमें भी कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वञ्चित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यों हो रहे हो? ॥४७॥ हे भृत्यवत्सल! हमलोग आपके चरणोंकी धूलिसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए हैं। बताइये, हमारा क्या अपराध है? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी संबोधित करते हुए कहा कि हे जानकि! हे लक्ष्मण! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर मस्तकपर लगता हूँ आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनों रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये हुए चुपचाप खड़े थे—'क्या उत्तर दिया जाय' यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे भद्रपुरुषो! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइये, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महा नदीमें उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) में कमलिनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमें लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

१. तनोति वर्तते म०। २. लक्ष्मण। ३. नाभिप्रमाणजला।

तदातिशोभते सीता पद्महस्ततलस्थिता । सुधीरा श्रीरिवोत्तुङ्गशतपत्रगृहस्थिता ॥५५॥
पारगः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स क्षणात् । वृक्षैरन्तर्धिमायातश्चेतस्तंभनविग्रहः ॥५६॥
विप्रलापं ततः कृत्वा महान्तं साश्रुलोचनाः । भवनाभिमुखीभूताः केचित्कृच्छ्रेण भूभृतः ॥५७॥
तदाशान्यस्तनेत्रास्तु केचित्पुंस्तमया इव । तस्थुः प्राप्यापरे मूर्छां निपेतुर्धरणीतले ॥५८॥
विबोध्य केचिदत्रोचुर्धिक् संसारमसारकम् । धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविनः ॥५९॥
ईदृशामपि शूराणां यत्रावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणमस्मासु किमेरण्डप्रफल्गुषु ॥६०॥
वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम् । जलबुद्बुदनिस्सारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥६१॥
भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रूभङ्गुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
इति निर्वेदमापन्ना बहवो नरसत्तमाः । प्रव्रज्याभिमुखीभूता बभ्रमुस्तत्र रोधसि ॥६३॥
अथैक्षाञ्चक्रिरे तुङ्गं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिश्याममहानोकहमालया ॥६४॥
अनुसस्रुश्च तं नानापुष्पजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादगुञ्जत्सम्भ्रान्तषट्पदम् ॥६५॥
ददृशुश्च विविक्तेषु[3] देशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायसंसक्तमानसान् पुरुतेजसः ॥६६॥
क्रमेण तांश्चमस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुर्जिननाथस्य भवनं भृशमुज्ज्वलम् ॥६७॥
रम्येष्वद्रिनितम्बेषु काननेषु सरित्सु च । तत्र काले मही प्रायो भूषितासीज्जिनालयैः ॥६८॥

जल-क्रीड़ाके ज्ञानमें निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीड़ा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गई थी ॥५४॥ उस समय रामकी हथेलीपर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी घरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पारकर क्षणभरमें वृक्षोंसे अन्तर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदि के पुतलोंके समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधको प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा साँपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नश्वर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ एरण्डके समान निःसार हमलोगोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलेके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भौंहके समान चञ्चल लक्ष्मीको छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सन्मुख हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने हरे भरे वृक्षोंकी पङ्क्तिसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका वह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्द रसके आस्वादसे गूँजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंको देखा ॥६६॥ मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथा क्रमसे नमस्कार किया । तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतोंके सुन्दर नितम्बोंपर, वनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

५. मृदादिनिर्मिता इव । ६. सर्पफणासदृशान् । १. विवेकेषु म० ।

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभावनाः । [1]रत्नसम्भवगम्भीरं संयतेन्द्रं डुढौकिरे ॥६९॥
प्रणम्य शिरसा तस्य संवेगभरवाहिनः[2] । नाथोत्तारय संसारादस्मादिति बभाषिरे ॥७०॥
सत्यकेतुगणीशेन तथास्त्विति कृतध्वनौ । जग्मुस्ते परमं तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥
[3]विदग्धो विजयो मेरुः क्रूरः संग्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥
विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एवमाद्या नृपा धर्मं नैर्ग्रन्थ्यं समशिश्रियन् ॥७३॥
साधनानि भटास्तेषां गृहीत्वा नगरीं गताः । सुतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रपान्विताः[4] ॥७४॥
अणुव्रतानि संगृह्य केचिन्नियमधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिबुद्धिविभूषणाः ॥७५॥
सम्यग्दर्शनमात्रेण सन्तोषमपरे गताः । श्रुत्वातिविमलं धर्मं जिनानां जितजन्मनाम् ॥७६॥
सामन्तैर्बहुभिर्गत्वा भरताय निवेदितः । वृत्तान्तो सुस्थितश्चायं ध्यायन् किमपि दुःखितः ॥७७॥
अथानरण्यराजस्य [5]तनयः सुप्रबोधनः । राज्याभिषिञ्चनं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
किञ्चित्पद्मवियोगेन सन्तप्तं चित्तमुद्वहन् । शोकाम्भोधिनिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥
कृतसान्त्वनमप्युच्चैर्विलपत्स समाकुलम् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
गुरुपूजां परां कृत्वा द्वासप्ततिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिश्रिये श्रमणश्रिया ॥८१॥
अथाप्येकविहारस्य शुभं ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकेन कलुषं तस्य जन्यते ॥८२॥
अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेवं विचक्षणः । धिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलं बन्धमिमं मम ॥८३॥

वहाँ उज्ज्वल भावनाको धारण करनेवाले सब लोग जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कारकर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६९॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोंने शिर झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ ! हम लोगोंको इस संसार-सागरसे पार कीजिये ॥७०॥ इसके उत्तरमें मुनियोंके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योंही 'तथास्तु' यह शब्द कहा त्योंहीं 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिगम्बर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोंको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहणकर निर्ग्रन्थमुद्राके धारकोंकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवणकर मात्र सम्यग्दर्शनसे ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुखसे बैठा था परन्तु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देने पर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले। उस समय शोकरूपी सागरमें डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरुके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरु पूजाकर बहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोकके कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन योगारूढ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखों

१. सागर इव गम्भीरस्तम् । २. वादिनः म० । ३. निदग्धो म० । निर्दग्धो क०, ख० । ४. त्रपाचिताः म० । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दारा पितृभ्रातृसुतादयः । क गतास्ते ममानादौ संसारे गणनोज्झिताः ॥८४॥
अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च संप्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥
अन्योन्यभक्षणादीनि तिर्यक्त्वे च चिरं मया । प्राप्तानि दुःखशल्यानि बहुरूपासु योनिषु ॥८६॥
श्रुताः सङ्गीतनिस्वाना वंशवीणानुगामिनः[1] । भूयश्च परमाक्रन्दाश्चित्तदारणकारिणः ॥८७॥
स्तनेष्वप्सरसां पाणिर्लालितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्वृत्तेन पृथक्कृतिः ॥८८॥
आस्वादितं महावीर्यमन्नं सुरभि षड्रसम् । त्रपुसीसादिकललं पुनश्च नरकावनौ ॥८९॥
वीक्षितं परमं रूपं मनोद्रवणकारणम् । पुनश्चात्यन्तविन्नासकारणं दत्तवेपथु ॥९०॥
आघ्रातः स चिरामोदो गन्धो मुदितषट्पदः । पुनश्च पूतिरत्यन्तमुद्वासितमहाजनः ॥९१॥
आलिङ्गिता मनश्चौर्यो नार्यो लीलाविभूषणाः । पुनश्च कूटशाल्मल्यः तीक्ष्णकण्टकसङ्कटाः ॥९२॥
किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं किं घ्रातं न किं श्रुतम् । मुहुरास्वादितं किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९३॥
न सा क्षितिर्न तत्तोयं नासौ वह्निर्न सोऽनिलः । देहतां यो न मे प्राप्तो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९४॥
त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्तः सहस्रशः । पितादितां मम स्थानं न तद्यत्रोषितोऽस्मि न ॥९५॥
अध्रुवं देहभोगादिशरणं नास्ति विद्यते । संसारोऽयं चतुःस्थान एकोऽहं दुःखभुक्तिषु ॥९६॥

का मूल कारण तथा मुझे बन्धनमें डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोंमें जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहाँ गये ? यथार्थमें इस अनादि संसारमें सभी सम्बन्धी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेकों बार स्वर्गमें नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यञ्च पर्यायमें मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं। इस प्रकार नाना योनियोंमें मैंने दुःख रूपी अनेक शल्य प्राप्त किये हैं ॥८६॥ मैंने बाँसुरी वीणा आदि मधुर बाजोंका अनुगमन करनेवाले सङ्गीतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदारण करनेवाले तीव्र रुदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओंके सुन्दर स्तनोंपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये हैं ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित छहरसोंसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमें राँगा सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोंको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीला रूपी आभूषणोंसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त सेमरके मायामयी वृक्षोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमें क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिर कालसे संसारमें भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तीनों लोकोंमें वह जीव नहीं है जो हजारों बार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं जुदा हूँ, इन्द्रियाँ कर्मोंके आनेका द्वार हैं,

१. वंशवीणा तु गायिनः (?) म० ।

अशुचेः कायतोऽन्योऽहं द्वारमत्राणि कर्मणाम् । संवरो वारणं तेषां निर्जरा जायते ततः ॥९७॥
लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभा बोधिरुत्तमा । स्वाख्यातोऽयं जिनैर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगतो मया ॥९८॥
ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिना । आर्तध्यानमसौ धीरः क्रमेण निरनीनशत् ॥९९॥
येपूच्छ्रितसितच्छत्रो वरस्तम्बेरमाश्रितः । महाजिषु पराजिग्ये शत्रूनत्यन्तमुद्धतान् ॥१००॥
विषमानधिकुर्वाणः परीषहगणान् भृशम् । शान्तस्तेष्वेव देशेषु निर्ग्रन्थो विजहार सः ॥१०१॥
नाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गतेऽङ्गजे । परं सुमित्रया सत्रा शोकं भेजेऽपराजिता ॥१०२॥
ते दृष्ट्वा दुःखिते वाढमजस्रास्रुतलोचने[1] । भरताभां श्रियं[2] मेने भरतो विषदारुणाम् ॥१०३॥
अथैवं दुःखमापन्ने भृशं ते वीक्ष्य केकया । पश्चादुत्पन्नकारुण्यात् पुत्रमेवमभाषत ॥१०४॥
पुत्र राज्यं त्वया लब्धं प्रणताखिलराजकम् । पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते ॥१०५॥
विना ताभ्यां विनीताभ्यां किं राज्यं का सुखासिका । का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्तता ॥१०६॥
राजपुत्र्या समं बालौ क्व तौ यातां सुखैधितौ । विमुक्तवाहनौ मार्गे पाषाणादिभिराकुले ॥१०७॥
मातरौ दुःखिते एते तयोर्गुणसमुद्रयोः । विरहे मापतां[3] मृत्युमजस्रपरिदेवते ॥१०८॥
तस्मादानय तौ क्षिप्रं समं ताभ्यां महासुखः । सुचिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते ॥१०९॥
व्रज तावत्त्वमारुह्य तुरङ्गं जातरंहसम् । आगच्छाम्यहमप्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥११०॥
इत्युक्तो धृतिमासाद्य साध्वेवमिति सस्वनः । सम्भ्रान्तोऽश्वसहस्रेण भरतस्तत्पथं श्रितः ॥१११॥

कर्मोंको रोक देना संवर है, संवरके बाद कर्मोंकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्टसे पाया है ॥९६–९८॥ इस प्रकार मुनियोंके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानसे धीरवीर दशरथ मुनिने क्रमसे पूर्वोक्त आर्तध्यानको नष्ट कर दिया ॥९९॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमें महायुद्धोंके बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था अब उन्हीं देशोंमें वे अत्यन्त शान्त निर्ग्रन्थ मुनि होकर विषम परिषहोंको सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००–१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) सुमित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु झरते रहते थे ऐसी दोनों विमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीके समान विशाल राज्यलक्ष्मीको विषके समान दारुण मानता था ॥१०३॥ अथानन्तर इस तरह उन्हें अत्यन्त दुखी देख केकयीके मनमें दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत है ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मणके बिना शोभा नहीं देता है ॥१०४–१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके बिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥१०६॥ सुख पूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों बालक, बिना किसी वाहनके पाषाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंके सागर स्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर विलाप करती रहती हैं सो उनके विरहमें मृत्युको प्राप्त न हो जावें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापिस ले आ । उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥

माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न हुआ वह 'साधु-साधु ठीक-ठीक' इस

१. -मजस्रास्रितलोचने म० । २. भरताभिश्रियं म० । ३. नापतां ज० ।

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्श्वात् प्रत्यागतान्नरान् । पवनाश्वसमारूढः स ययौ भृशमुत्सुकः ॥११२॥
प्राप्तश्च तामरण्यानीमनेकपंकुलाकुलाम् । नानावृक्षावृतादित्यां गिरिगह्वरभीषणाम् ॥११३॥
बन्धयित्वा महावृत्तैरुडुपानां[2] सुसंहतीः[3] । तां [4]धुनीमुत्ततारासौ क्षणेन सहवाहनः ॥११४॥
इतो दृष्टावितो दृष्टौ पुरुषौ सह योषिता । इति पृच्छन्स शृण्वंश्च जगामानन्यमानसः ॥११५॥
अथ तौ परमारण्ये विश्रान्तौ सरसस्तटे । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्श्वन्यस्तशरासनौ ॥११६॥
प्रभूतदिवसप्राप्तं ताभ्यां सीताव्यपेक्षया । षड्भिर्दिनैस्तमुद्देशं भरतः प्रतिपन्नवान् ॥११७॥
अवतीर्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्भ्यां[5] समाश्लिष्य पादौ [6]पद्मस्य मूर्छितः ॥११८॥
ततो विबोधितस्तेन कृत्वा सम्भाषणं क्रमात् । मूर्द्धाञ्जलिर्जगादैवं पद्मं विनतविग्रहः ॥११९॥
विडम्बनमिदं कस्मान्नाथ मे भवता कृतम् । परं राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥
आस्तां तावदिदं राज्यं जीवितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥
उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय निश्शेषं यच्छ मेऽतिसुखासिकाम् ॥१२२॥
भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नश्चामराश्रितः । लक्ष्मणः परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥
पश्चात्तापानलेनालं सन्तप्ता जननी मम । तव लक्ष्मीधरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
ब्रवीत्येवमसौ यावत्केकया तावदागता । वेगिनं रथमारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोंको आगेकर बड़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाअटवीमें जा पहुँचा जो हाथियोंके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लट्ठोंसे नावोंके समूहको बाँधकर उनका पुल बना वाहनोंके साथ-साथ क्षण भरमें पार कर गया ॥११४॥ वह मार्गमें मिलनेवाले लोगोंसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे हैं और उनके उत्तरको एकाग्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥

अथानन्तर जो सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रक्खे हुए थे ऐसे सीता सहित रामलक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ रामलक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिख रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोंका आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रीभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! उठो, अपनी नगरीको चलें, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका छत्र धारक होऊँगा, शत्रुघ्न चमर ढोलेगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे ही सब ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरूपी अग्निसे अत्यन्त संतप्त हो रही है तथा आपकी और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही हैं ॥१२४॥ जब तक भरत इस प्रकार कह रहा था तब तक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करने-

१. हस्तिसमूहयुक्ताम् । २. नौकानां । ३. समूहान् । ४. नदीम् । ५. पद्मां म० (?) । ६. रामस्य ।

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुखरा चेतावालिंग्य रुदिता चिरम् ॥१२६॥
ततोऽस्रसरितश्छेदे विप्रलापेऽतिखेदिता । क्रमात्सम्भाषणं कृत्वा केकयैवमभाषत ॥१२७॥
पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः कुरु राज्यं सहानुजः । ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते[1] ॥१२८॥
भरतः शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तमनीषिणः । स्त्रैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥१२९॥
ततः पद्मो जगादैवं किं न वेत्सि त्वमम्बिके । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति सकृत्कार्यमनन्यथा ॥१३०॥
उक्तं तातेन यत्सत्यं तत्कर्तव्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कीर्तिर्माभूदस्य जगत्त्रये ॥१३१॥
पुनश्चोवाच भरतं भ्रातर्मा गा विचित्तताम्[2] । [3]शङ्कसे यदनाचाराज्ञायं मदनुमोदनात् ॥१३२॥
इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रम्ये समक्षं सर्वभूभृताम् ॥१३३॥
प्रणम्य केकयां सान्त्वं सम्भाष्य च पुनः पुनः । भ्रातरं च परिष्वज्य प्राहिणोत् सोऽतिकृच्छ्रतः ॥१३४॥
तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्यातौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥१३५॥
परिध्वस्ताखिलद्वेषं सर्वप्रकृतिसौख्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः ॥१३६॥
राज्ये तथाविधेऽप्यस्य धृतिर्नाभूदपि क्षणम् । दुस्सहं दधमानस्य शोकशल्यं मनस्विनः ॥१३७॥
त्रिकालमरनाथस्य वन्दारुर्भोगमन्दधीः । ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमस्येयतो धृतिः ॥१३८॥

वाली केकयी वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२५॥ राम लक्ष्मणको देखकर उसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया। हा हा कार करती हुई वह दोनोंका आलिङ्गन कर चिर काल तक रोती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त खिन्न हो गई थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदीकी धारा टूटनेपर क्रमसे वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरीको चलें, छोटे भाइयोंके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य वनके समान जान पड़ता है ॥१२७–१२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, स्त्रीपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः मेरे इस कुकृत्यको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ पिताने जो सत्य वचन कहा था उसकी पूर्ति मुझे तुझे तथा भरत-सभीको करनी चाहिये। 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमें न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर उन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू वैचित्य अर्थात् द्विविधाको प्राप्त मत हो। यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुझे अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोहर वनमें सब राजाओंके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणामकर सान्त्वना देते हुए बार-बार संभाषण कर और भाईका आलिङ्गन कर बड़े कष्टसे सबको वापिस विदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित रामलक्ष्मणका यथा योग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा। उसका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाको सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए संतोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्की वन्दना करता था भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

१. विपिनमिवाचरति । २. विचिन्ततां म० । ३. 'संकासय घनारातीन्नायं मदनुमोदनात्' ब० ।

तत्राचार्यो द्युतिर्नाम [1]स्वपरागमपारगः । महता साधुसंघेन सततं कृतसेवनः ॥१३९॥
अग्रतोऽव[2]ग्रहं तस्य चकार भरतः सुधीः । पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१४०॥
कृतावग्रहमेवं तमुवाच भगवान् द्युतिः । कुर्वन् मयूरवृन्दानां नर्तनं धीरया गिरा ॥१४१॥
भव्य भो यावदायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणः । तावद्गृहस्थधर्मेण [3]भ्यासपरिकर्मकः ॥१४२॥
अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । परिकर्म विशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१४३॥
उपरिष्टात् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युमायाति नरोतिजडमानसः ॥१४४॥
अनर्घ्यरत्नसदृशं तपो दिग्वाससामिति । एवमप्यक्षमं वक्तुं परस्तस्योपमा कुतः ॥१४५॥
कनीयांस्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽयं गृहिणां जिनैः । अप्रमादी भवेत्तस्मिन्निरतो बोधदायिनि ॥१४६॥
यथा रत्नाकरद्वीपं मानवः कश्चिदागतः । रत्नं यत्किंचिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम् ॥१४७॥
तथास्मिन्नियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम् । य एव नियमः कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम् ॥१४८॥
अहिंसारत्नमादाय विपुलं यो जिनाधिपम् । भक्त्यार्चयत्यसौ [4]नाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥१४९॥
सत्यव्रतधरः स्रग्भिर्यः करोति जिनार्चनम् । भवत्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टपः ॥१५०॥
अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णानां [5]निधीनां स विभुर्नरः ॥१५१॥
यो रतिं परनारीषु न करोति जिनाश्रितः । सोऽथ गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्लुचः[6] ॥१५२॥
जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः । लभतेऽसावतिस्फीतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥१५३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ स्व और पर शास्त्रोंके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३९॥ उनके आगे बुद्धिमान् भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनिव्रत धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणीसे मयूर समूहको नृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो दी ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंके धर्मको जिनेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिको प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिये ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७–१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेंद्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाओं से भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त संसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियोंमें प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परिग्रहकी सीमा नियतकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र

१. स्वकीयपरकीयशास्त्रपारगामी । २. प्रतिज्ञाम् । ३. प्राप्ताभ्यासः । ४. स्वर्गे । ५. नदीनां म० (?) । ६. सर्वजनमनोहरः ।

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५४॥
अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासङ्कटयातोऽपि निरुपद्रवविग्रहः ॥१५५॥
जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलार्णवामृतं चासौ गण्डूषं कुरुते नरः ॥१५६॥
यः करोति विभावर्यामाहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि यात्यसो सुखदां गतिम् ॥१५७॥
वन्दनं यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
सामोदैर्भूजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
भावपुष्पैर्जिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽत्यन्तसुन्दरः ॥१६०॥
धूपं यश्चन्दनाद्युत्थागुर्वादिप्रभवं सुधीः । जिनानां ढौकयत्येष जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥
यो जिनेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः । स्वयम्प्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसद्मनि ॥१६२॥
छत्रचामरलम्बूषपताकादर्पणादिभिः । भूषयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥
समालभ्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तदिङ्मुखैः । सुरभिः[2] प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥
अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया । विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥
दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् । दध्याभकुट्टिमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥
सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

जिनेन्द्र भगवान्‌की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोंको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं। यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमें प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जिनेन्द्रभगवान्‌की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जिनेन्द्रभगवान्‌की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्‌के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नूस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवान्‌का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोंको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्‌का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानमें उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशोंसे जिनेन्द्र-भगवान्‌का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्सवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो घीसे जिनदेवका अभिषेक करता है वह कान्ति द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी

१. रत्यं म० । २. सुगन्धियुक्तः ।

अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधाः । पुराणेऽनन्तवीर्याद्या [1]खभूलब्धाभिषेचनाः ॥१६९॥
भक्त्या बल्युपहारं यः कुरुते जिनसद्मनि । सम्प्राप्नोति परां भूतिमारोग्यं स सुमानसः ॥१७०॥
गीतनर्तनवादित्रैर्यः करोति महोत्सवम् । जिनसद्मन्यसौ स्वर्गे लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
भवनं यस्तु जैनेन्द्रं निर्मापयति मानवः । तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः ॥१७२॥
प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ । सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम् ॥१७३॥
व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः । सर्वेष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये ॥१७४॥
एकस्मादपि जैनेन्द्रबिम्बाद् भावेन कारितात् । यत्पुण्यं जायते तस्य न सम्मान्त्यतिमात्रतः ॥१७५॥
फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गे सम्प्राप्य जन्तवः । चक्रवर्त्यादितां लब्ध्वा तन्मर्त्येष्वपि भुञ्जते ॥१७६॥
धर्ममेवं विधानेन यः कश्चित्प्राप्य मानवः । संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्रेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य[2] षष्ठस्योद्यानमाग्रतः[3] । [4]अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम् । फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥१७९॥
चैत्याङ्गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम् । फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥१८०॥
फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुंक्ते वर्षशतस्य तु । दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥१८१॥
अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः । नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं भरत गच्छति । क्षीणकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपमं सुखम् ॥१८३॥

देव होता है ॥१६८॥ पुराणमें सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिषेकको प्राप्त हुए हैं ॥१६९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रङ्गावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदयका धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वादित्रोंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोंके उत्तम सुख प्राप्तकर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उत्पन्न हुए पुण्यकी बराबरी नहीं कर सकते ॥१७४–१७५॥ इस कहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्तकर जब मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य इस विधिसे धर्मका सेवन करता है वह संसार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तवन करता है वह वेलाका, जो उद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलाका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है बारह उपवासका, जो बीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छहमासके उपवासका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है। यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८–१८२॥ आचार्य श्रुति कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म क्षयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता

१. स्वर्गवसुधाप्राप्ताभिषेकाः । २. वेलोपवासस्य । ३. दिनत्रयोपवासस्य । ४. चतुर्दिनोपवासस्य ।

इत्युक्तेऽत्यन्तसद्भक्तिः प्रणम्य चरणौ गुरोः । जग्राह भरतो धर्मं सागारं सुविधानतः ॥१८४॥
बहुश्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीतः श्रद्धयान्वितः । विशेषतो ददौ दानं स साधुषु यथोचितम् ॥१८५॥
सम्यग्दर्शनरत्नं स हृदयेन सदा वहन् । चकार विपुलं राज्यं साधुचेष्टापरायणः ॥१८६॥
प्रतापश्चानुरागश्च समस्तां तस्य मेदिनीम् । बभ्राम प्रतिघातेन रहितां गुणवारिधेः ॥१८७॥
अध्यर्द्धं तस्य पत्नीनां शतं देवीसमत्विषाम् । न तत्रासक्तिमायाति शतपत्रं[1] यथाम्भसि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपासीत् कदा नु लप्स्ये निरगारदीक्षाम् ।
तपः करिष्यामि कदा नु घोरं सङ्गैर्विमुक्तो विहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रवज्रा

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्गान् परिवर्ज्य धीराः।
दग्ध्वाखिलं कर्म तपोबलेन प्राप्ताः पदं निर्वृतिसौख्यसारम् ॥१९०॥

उपजातिः

तिष्ठामि पापो भवदुःखमग्नः पश्यन्नपीदं क्षणिकं समस्तम् ।
पूर्वाह्णदृष्टोऽत्र जनोऽपराह्णे न दृश्यते कश्चिदहोऽस्मि मूढः ॥१९१॥

इन्द्रवज्रा

व्यालाज्जलाद् वा विषतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शस्त्रात् ।
शूलाद् वराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति[2] दीनाननबन्धुमध्ये ॥१९२॥

है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तिसे युक्त भरतने गुरुके चरणोंको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥१८४॥ अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मके मर्मको जाननेवाला, विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत अब साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके पालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारण करता हुआ विशाल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागरस्वरूप भरतका प्रताप और अनुराग दोनों ही बिना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥ उसके देवियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें आसक्तिको प्राप्त नहीं होता था। जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता है उसी प्रकार वह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती थी कि मैं निर्ग्रन्थ दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता हुआ घोर तप कब करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीर-वीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागकर तथा तपोबलसे समस्त कर्मोंको भस्म कर सन्तोषरूपी सुखसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को क्षणभङ्गुर देखता हुआ भी संसारके दुःखमें मग्न हूँ। इस संसारमें जो मनुष्य पूर्वाह्ण कालमें देखा गया है वही अपराह्ण कालमें नहीं दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ़ बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन मुखको धारण करनेवाले बन्धुजनोंके बीचमें बैठा हुआ यह प्राणी सर्पसे, जलसे, विषसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके

१. कमलम् । २. दीनो ननु वन्धुमध्ये म० ।

उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणैर्जनोऽयं प्रतर्क्यते दुःखसहस्रभागी ।
[1]क्षाराणंवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसृतोर्मिजालैः ॥१६३॥

विधाय राज्यं घनपापदिग्धो हा कं प्रपत्स्ये नरकं तु घोरम्[2] ।
शरासिचक्रागनगान्धकारं किं वा नु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥१६४॥

लब्ध्वापि जैनं समयं यदेतन्मनो मदीयं[3] दुरितानुबद्धम् ।
करोति नो निस्पृहतामुपेत्य विमुक्तिदक्षं निरगारधर्मम् ॥१६५॥

एवं च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।
पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रविं न चन्द्रम् ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्व ॥३२॥

द्वारा छोड़े हुए शस्त्रसे, अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥१६२॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणोंसे हजारों प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोंके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥१६३॥ हाय हाय, मैं राज्य कर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शाल्मली आदि वृक्षों और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पड़ूँगा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यञ्च पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥१६४॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥१६५॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमें कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन और भरतके राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला बत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥

१. लवणसमुद्रस्येव, क्षीरार्णव-म० । २. कुघोरं म० । ३. न्मदान्मदीयं म० ।

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व

ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परिप्राप पद्मस्तापससंश्रयान् ॥१॥
तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्वादुफलसम्पूर्णाः पादपा इव भूरयः ॥२॥
विशालपत्रसञ्छन्ना मठकाः [1]सवितर्दिकाः । पलाशोदुम्बरैधानां पूलिकाभिर्युताः क्वचित् ॥३॥
[2]अकृष्टपच्यबीजेन शुष्यता पूरिताङ्गणाः । वर्तयद्भिः सुविश्रब्धैः रोमन्थं राजिता मृगैः ॥४॥
सजटैर्वटुभिर्युक्ता रटद्भिः सततं पटु । ललितोच्छ्रितपुच्छेण तार्णकेन कृताजिराः ॥५॥
पठद्भिर्विशदं युक्ताः शारिकाशुककौशिकैः । वीरुधां पुष्परम्याणां छायासु समवस्थितैः ॥६॥
कन्याभिर्घटकैः स्वादु वारिणा भ्रातृतेक्षितैः । पूर्णालवालकैर्बालैस्तरु[3]भिः कृतराजनाः[4] ॥७॥
फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वादुवारिभिः । सादरैः स्वागतस्वानैः सार्घदानैस्तथाशनैः ॥८॥
सम्भाषणैः कुटीदानैः शयनैर्मृदुपल्लवैः । तापसैरुपचारैस्ते पूजिता श्रमहारिभिः ॥९॥
[5]आतिथेयाः स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसाः । रूपेष्वेवं प्रकारेषु विशेषेण सुवृत्तयः ॥१०॥
उषित्वा गच्छतां तेषां ययुर्मार्गेण तापसाः । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवीकुर्यात् किमन्यकैः ॥११॥
शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपायिनः । सीतारूपहृतस्वान्ता धृतिं दूरेण तत्यजुः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्वियोंके सुन्दर आश्रममें पहुँचे। वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पक्षमें जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोंको धारण करनेवाले और स्वादिष्ट फलोंसे युक्त बहुतसे तापस रहते थे ॥१-२॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे। सबके आगे बैठनेके लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रक्खी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड्डियोंसे सहित थे ॥३॥ बिना जोते बोये अपने आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निश्चिन्ततासे रोमन्थ करते हुए हरिणोंसे वे सुशोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी बालकोंसे युक्त गायोंके बछड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठोंके आँगनोंमें चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता मैना तथा उलूक आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझ कर घड़ों द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्घके साथ दिये गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटीका दान और कोमल पत्तोंकी शय्या आदि थकावटको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सन्मान किया ॥८-९॥ तापस लोग स्वभावसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरुषोंके मिलनेपर तो उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ रामलक्ष्मण वहाँ बसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्गमें आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पानकर जीवन बिताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरजको

१. वितर्दिकासहिताः । २. अकृष्टपच्यमानेन म० । ३. बालस्तरुभिः म० । ४. कृतराजनः म० ।
५. अतिथिषु साधवः ।

तानूचुस्तापसा वृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठतं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१३॥
सर्वातिथ्यसमेतास्वप्यटवीषु विचक्षणौ । विश्रम्भं जातु मा गातां नारीष्विव नदीष्विव ॥१४॥
तापसप्रमदा दृष्ट्वा पद्मं पद्मनिरीक्षणम् । लक्ष्मणं च जहुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥
काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्मार्गाहितलोचनाः । व्रजन्त्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥
मधुरं ब्रुवते काश्चिद्भवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥
अतीत्य त्रीनितः कोशानरण्यानी[1] जनोज्झिता । महानोकहसञ्छन्ना हरिशार्दूलसङ्कुला ॥१८॥
समित्फलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां भुवम् । न व्रजन्ति महाभीमां दर्भसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
चित्रकूटः सुदुर्लङ्घ्यः प्रविशालो महीधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गच्छतः ॥२०॥
तापस्योऽवश्यमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कथां चिरम् ॥२१॥
ततस्ते भूमहीध्राग्रग्रावव्रातसुकर्कशम् । महातरुसमारूढवल्लीजालसमाकुलम् ॥२२॥
क्षुदतिक्रुद्धशार्दूलनखवि[2]क्षतपादपम् । सिंहाहतद्विपोद्गीर्णरक्तमौक्तिकपिच्छलम् ॥२३॥
उन्मत्तवारणस्कन्धतष्ट[3]स्कन्धमहातरुम् । केसरिध्वनिवित्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ॥२४॥
सुप्ताजगरनिश्वासवायुपूरितगह्वरम् । वराहयूथपोत्राग्रविषमीकृतपल्वलम् ॥२५॥
महामहिषशृङ्गाग्रभग्नवल्मीकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहाभोगसञ्चरद्भोगिभीषणम् ॥२६॥

दूर छोड़ दिया ॥१२॥ वृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिये ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियाँ सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विश्वास नहीं कीजिये । आप स्वयं बुद्धिमान् हैं ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गईं ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं ? हम आपका सब कार्य यथा योग्य रीतिसे कर देंगीं ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाअटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा डाभकी सूचियोंसे व्याप्त है । ईंधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लङ्घ्य, तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे हैं ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहने पर वे बड़ी कठिनाईसे लौटीं और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रहीं ॥२१॥

अथानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभाग के चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखोंसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी कीच से युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्मत्त हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे । जहाँ सिंहोंकी गर्जनासे भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुफाएँ भरी हुई थीं । तथा सूकर समूहके मुखके अग्रभागके आघात से छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ

१. महद् अरण्यम् अरण्यानी । २. विकृत- म० । ३. छिन्न । तट- म० ।

तरक्षुक्षतसारङ्गरुधिरभ्रान्तमक्षिकम् । कण्टकासक्तपुच्छाग्रप्रताम्यच्चमरीगणम् ॥२७॥
दर्पसम्पूरितश्वाविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् । विषपुष्परजोघ्राणघूर्णितानेकजन्तुकम् ॥२८॥
खड्गिखड्गसमुत्कीर्णतरुस्कन्धच्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगवयव्रातभग्नपल्लवजालकम् ॥२९॥
[1]नानापक्षिकुलक्रूरकूजितप्रतिनादितम् । शाखामृगकुलाक्रान्तचलत्प्राग्भारपादपम् ॥३०॥
तीव्रवेगगिरिस्रोतःशतनिर्दारितक्ष्मम्[2] । वृक्षाग्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्करम् ॥३१॥
नानापुष्पफलाकीर्णं विचित्रामोदवासितम् । विविधौषधिसम्पूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥३२॥
क्वचिन्नीलं क्वचित्पीतं क्वचिद्रक्तं हरित्क्वचित् । पिञ्जरच्छायमन्यत्र विविशुर्विपिनं महत् ॥३३॥
तत्र ते चित्रकूटस्य निर्झरेष्वतिचारुषु । क्रीडन्तो दर्शयन्तश्च सद्वस्तूनि परस्परम् ॥कुलकं (द्वादशभिः)
फलानि स्वादुहारीणि स्वदमानाः पदे पदे । गायन्तो मधुरं हारि किन्नरीणां त्रपाकरम् ॥३५॥
पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्भूषयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैरङ्गं लिम्पन्तस्तरुसम्भवैः ॥३६॥
उद्यानमिव निर्याता विकसत्कान्तिलोचनाः । स्वच्छन्दकृतसंस्काराः सत्त्वलोचनतस्कराः ॥३७॥
लतागृहेषु विश्रान्ता मुहुर्नयनहारिषु । कृतनानाकथासङ्गा किञ्चित्कर्मविधायिनः ॥३८॥
व्रजन्तो लीलया युक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वनं चारु त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३९॥
पक्षोनैः पञ्चभिर्मासैस्तमुद्देशमतीत्य ते । जनैः समाकुलं प्रापुर्देशमत्यन्तसुन्दरम् ॥४०॥

वामियोंके शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलनेवाले साँपोंसे भयङ्कर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मक्खियाँ भिन-भिना रहीं थीं और कटीली झाड़ियोंमें पूँछके बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके झुण्ड बेचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहङ्कारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विषपुष्पोंकी परागके सूँघनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गेंडा हाथियोंके गण्ड-स्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी झर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी क्रूरध्वनि गूँज रही थी तथा वानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेग से बहनेवाले सैकड़ों पहाड़ी झरनोंसे जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गई थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे सुवासित था, नाना ओषधियोंसे परिपूर्ण था, और जङ्गली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिङ्गल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूटके सुन्दर निर्झरोंमें क्रीड़ा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पदपर किन्नरियोंको लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरेको भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगंधित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमणकर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों । उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रों का अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंको हरण करनेवाले निकुञ्जोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावार्ता करते थे और तरह-तरहकी क्रीड़ाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव । ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थान को पारकर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे । वह देश गायोंकी गरदनों

१. नानापक्षि कुलं क्रूरकूजितं प्रतिनादितं म० । २. निर्धारितक्ष्मं म० ।

गोघण्टारवसम्पूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तीविषयं स्फीतं ग्रामपत्तनसङ्कुलम् ॥४१॥
मार्गं तत्र कियन्तं चिदतिक्रम्य जनोज्झितम् । विषयैकान्तमापुस्ते पृथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥
जायां न्यग्रोधजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्मादयं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥
सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽत्रातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्चैते फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥
पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना ग्रामास्तुङ्गावनिस्थिताः । सरांस्यच्छिन्नपद्मानि युक्तानि विविधैः खगैः ॥४५॥
अध्वायं घटकैर्भग्नैः शकटैश्च विसङ्कटः । करण्डैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥
विकीर्णास्तण्डुला माषा मुद्गाः सूर्पादयस्तथा । वृद्धोक्षोयं मृतो जीर्णगोण्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
देशोऽयमतिविस्तीर्णः शोभते न जनोज्झितः । अत्यन्तविषयासक्तो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥
ततोऽत्यन्तमृदुस्पर्शे निषण्णं रत्नकम्बले । देशोद्वासकृतालापं राम पार्श्वस्थकार्मुकम् ॥४९॥
पद्मगर्भदभाभ्यां पाणिभ्यां पूजितेहिता । द्राग्विश्रमयितुं सक्ता सीता प्रेमाम्बुदीर्घिका ॥५०॥
उत्सार्य [1]चोरुलग्नां तां सादरक्रमकोविदः । संवाहयितुमासक्तो लक्ष्मणो ज्यायसोदितः ॥५१॥
निरूपय क्वचित्तावद् ग्रामं नगरमेव वा । घोषं वा लक्ष्मण क्षिप्रं श्रान्तेयं हि प्रजावती ॥५२॥
ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य वृक्षस्योर्ध्वंसमाश्रितः । दृश्यते किञ्चिदत्रेति पद्मेनोच्यत लक्ष्मणः ॥५३॥
सोवोचद्देव पश्यामि रूप्यपर्वतसन्निभान् । शारदाभ्रसमुत्तुङ्गैः शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

में बँधे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यके सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोंसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनों, कितना ही मार्ग उल्लंघकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक वट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेकों धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँचो भूमिपर बसे गाँव पौंडों और ईखोंके बागोंसे युक्त है, जिनके कमलोंको किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, कूँड़ों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोंकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊजड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पाद मर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जाँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गई है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोंको बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चाँदीके पर्वतके समान हैं, शरद् ऋतुके

---

१. चारु म० ।

प्राग्भारसिंहकर्णस्थजिनबिम्बोपलक्षितान् । प्रासादान् परमोद्यानान् [1]प्रचलद्धवलध्वजान् ॥५५॥
ग्रामांश्चायतवापीभिः सस्यैश्च कृतवेष्टनान् । नगराणि च गन्धर्वपुरैर्बिभ्रन्ति तुल्यताम् ॥५६॥
दृष्टिगोचरमात्रे तु सन्निवेशाः सुभूरयः । दृश्यन्ते न पुनः कश्चिदेकोऽप्यालोक्यते जनः ॥५७॥
समं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः । उपानीताः किमु म्लेच्छैर्बन्दित्वं क्रूरकर्मभिः ॥५८॥
एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः । स्थाणुर्न पुरुषो यं तु ननु चैष चलाकृतिः ॥५९॥
यात्येष किमुतायाति पश्याम्यागच्छतीत्ययम् । तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥
अयं मृग इवोद्विग्नो द्रुतमायाति मानवः । रूक्षोर्द्धमूर्धजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
कूर्चाच्छादितवक्षस्को वसानश्चीरखण्डकम् । स्फुटितांघ्रिः स्रवत्स्वेदो दर्शयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
आनयेममितः क्षिप्रमिति पद्मेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सविस्मय इवान्तिकम् ॥६३॥
दृष्ट्वा तं पुरुषो हृष्टरोमा विस्मयपूरितः । विलम्बितगतिः किञ्चिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
समाकम्पितवृक्षोऽयमवतीर्य समागतः । किमिन्द्रो वरुणो दैत्यः किं नागः किन्नरो नरः ॥६५॥
[2]वैवस्वतः शशाङ्को नु वह्निर्वैश्रवणो नु किम् । भास्करो नु भुवं प्राप्तः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥
इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलीकृत्य लोचने । निश्चेष्टावयवो भूमौ पपाताव्यक्तचेतनः ॥६७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं मा भैषीरिति भाषितः । प्रत्यागतधृतिर्नीतो लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः[3] ॥६८॥

बादलोंके समान ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचोंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफ़ेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरों को देख रहा हूँ ॥५४–५५॥ लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिकाएँ दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६–५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गई है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चञ्चल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता। कुछ देर तक गौरसे देखनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रूखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैलसे दूषित है, लम्बी दाढ़ीसे इसका वक्षःस्थल ढक रहा है, यह फटे चिथड़े पहिने है, इसके पैर फटे हुए हैं, पसीना झर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१–६२॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ। तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्चर्यके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमाञ्च उठ आये। वह आश्चर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृक्षको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५–६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ डर मत। कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

१. प्रचलच्चलध्वगान् ब० । २. यमः । ३. ज्येष्ठभ्रातुः ।

ततः सौम्याननं राममभिरामं समन्ततः । दृष्ट्वा कान्तिसमुद्रस्थं चक्षुरुत्सवकारिणम् ॥६९॥
सीतया शोभितं पार्श्ववर्तिन्यातिविनीतया । मुमोच पुरुषः सद्यः क्षुधादिजपरिश्रमम् ॥७०॥
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा शिरसा स्पृष्टभूतलः । छायायां भव विश्वस्त इति चोक्त उपाविशत् ॥७१॥
अपृच्छत्तं ततः पद्मः क्षरन्निव गिरामृतम् । आगतोऽसि कुतो भद्र को वा किंसंज्ञकोऽपि वा ७२॥
सोऽवोचद् दूरतः स्थानाच्छीरगुप्तिः[1] कुटुम्बिकः । देशोऽयं विजनः कस्मादिति पृष्टोऽवदत् पुनः ॥७३॥
सिंहोदर इति ख्यातो देवोऽस्त्युज्जयिनीपतिः । प्रतापप्रणतोदारसामन्तः सुरसन्निभः ॥७४॥
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य वज्रकर्णश्रुतिर्महान् । अत्यन्तदयितो भृत्यः कृतानेकाद्भुतक्रियः ॥७५॥
मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं भगवन्तं जिनाधिपम् । निर्ग्रन्थांश्च नमस्कारं न करोत्यपरस्य सः ॥७६॥
साधुप्रसादतस्तस्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । पृथिव्यां ख्यातिमायातं देवेन किमु न श्रुतम् ॥७७॥
प्रसादः साधुना तस्य कृतः कथमितीरितः । लक्ष्मीधरकुमारेण पद्माभिप्रायसूरिणा ॥७८॥
उवाच पथिको देव समासात् कथयाम्यहम् । प्रसादः साधुना तस्य यथायमुपपादितः ॥७९॥
अन्यदा वज्रकर्णोऽयं दशारण्यसमाश्रिताम् । प्राविशत् सत्त्वसम्पूर्णामटवीं मृगयोद्यतः ॥८०॥
जन्मनः प्रभृति क्रूरः ख्यातोऽयं विष्टपेऽखिले । हृषीकवशगो मूढः सदाचारपराङ्मुखः ॥८१॥
लोभसंज्ञासमासक्तः सूक्ष्मतत्त्वान्धचेतनः[2] । भोगोद्भवमहागर्वपिशाचग्रहदूषितः ॥८२॥
तेन च भ्रमता तत्र कर्णिकारवनान्तरे । दृष्टः शिलातले साधुर्दधानः शममुत्तमम् ॥८३॥
परित्यक्तावृतिर्ग्रीष्मे समाप्तनियमस्थितिः । विहङ्ग इव निश्शङ्कः केसरीव भयोज्झितः ॥८४॥

तदनन्तर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकारसे सुन्दर थे, मानो कान्तिके समुद्रमें ही स्थित थे, नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले थे, और पासमें बैठी हुई अतिशय नम्र सीतासे सुशोभित थे ऐसे रामको देखकर उस पुरुषने क्षुधा आदिसे उत्पन्न हुए श्रमको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६९-७०॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा 'छायामें विश्रामकर' इस प्रकार कहे जाने पर वह बैठ गया ॥७१॥ तदनन्तर रामने वाणीसे मानो अमृत झराते हुए उससे पूछा कि हे भद्र ! तू कहाँसे आ रहा है और तेरा क्या नाम है ? ॥७२॥ उसने कहा कि मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ और सीरगुप्ति मेरा नाम है। 'यह देश मनुष्योंसे रहित क्यों है ?' इस प्रकार रामके पूछनेपर वह पुनः कहने लगा ॥७३॥ कि जिसने अपने प्रतापसे बड़े-बड़े सामन्तोंको नम्रीभूत कर दिया है तथा जो देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नामसे प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीका राजा है ॥७४॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्चर्यजनक कार्य किये हैं इसका अत्यन्त प्रिय सेवक है ॥७५॥ वह तीन लोकके अधिपति जिनेन्द्रभगवान् और निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करता है ॥७६॥ 'साधुके प्रसादसे उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥७७॥ इसी बीचमें रामका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने उससे पूछा कि हे भाई ! साधुने इस पर किसी तरह प्रसाद किया है ? सो तो बता ॥७८॥ इसके उत्तरमें उस पथिकने कहा कि हे देव ! साधुने जिस तरह इसपर प्रसाद किया यह मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥७९॥

एक समय शिकार खेलनेके लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरके समीपमें स्थित जीवोंसे भरी अटवीमें प्रविष्ट हुआ ॥८०॥ यह वज्रकर्ण जन्मसे ही लेकर समस्त संसारमें अत्यन्त क्रूर प्रसिद्ध था, इन्द्रियोंका वशगामी था, मूर्ख था, सदाचारसे विमुख था, लोभ अर्थात् परिग्रह संज्ञामें आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्वके विचारसे शून्य था, और भोगोंसे उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच ग्रहसे दूषित था ॥८१-८२॥ उस अटवीमें घूमते हुए उसने कनेर वनके बीचमें शिलापर विद्यमान उत्तम शान्तिके धारक एक साधु देखे ॥८३॥ उन साधुके ऊपर कोई प्रकारका

१. क्षीरगुप्तिः म० । हलवाहकः । २. चेतसः म० ।

स ग्रावभिः करैर्भानोरतितप्तः समन्ततः । अभ्याख्यानशतैस्तीव्रैर्दुर्जनस्येव सज्जनः ॥८५॥
अश्वारूढः स तं दृष्ट्वा कृतान्तसमदर्शनः । रत्नप्रभवगम्भीरं परमार्थनिवेशनम् ॥८६॥
पापघातकरं सर्वभूतकारुण्यसङ्गतम् । कुन्तपाणिरुवाचैवं भूषितं श्रमणश्रिया ॥८७॥
अत्र किं क्रियते साधो सोऽवोचद्धितमात्मनः । अनाचरितपूर्वं यज्जन्मान्तरशतेष्वपि ॥८८॥
जगाद विहसन् भूभृदनया खल्ववस्थया । न किञ्चिदपि ते सौख्यं कीदृशं हितमात्मनः ॥८९॥
मुक्तलावण्यरूपस्य कामार्थरहितस्य च । अचेलस्यासहायस्य कीदृशं हितमात्मनः ॥९०॥
स्नानालङ्काररहितैः परपिण्डोपजीविभिः । भवादृशैर्नरैः कीदृक् क्रियते हितमात्मनः ॥९१॥
दृष्ट्वा तं कामभोगार्तं दयावान् संयतोऽवदत् । हितं पृच्छसि किं त्वं मां छिन्नाशापाशबन्धनम् ॥९२॥
इन्द्रियैर्वञ्चितान् पृच्छ हितोपायबहिष्कृतान् । [2]मोहेनात्यन्तवृद्धेन भ्राम्यन्ते ये भवाम्बुधौ ॥९३॥
हन्ता सत्त्वसहस्राणामात्मानर्थपरायणः । यास्येव नरकं घोरमवश्यं नष्टचेतनः ॥९४॥
नूनं त्वया न विज्ञाता घोरा नरकभूमयः । उत्थायोत्थाय पापेषु[3] यत्परां कुरुषे रतिम् ॥९५॥
पृथिव्यः सति सप्ताधो नरकाणां सुदारुणाः । सुदुर्गन्धा सुदुष्प्रेक्षाः सुदुस्स्पर्शा सुदुस्तराः ॥९६॥
तीक्ष्णायस्कीलसङ्कीर्णा नानायन्त्रसमाकुलाः । क्षुरधाराद्रिसंयुक्तास्तप्तलोहतलाधिकाः ॥९७॥
रौरवाद्यवटाक्रान्ता महाध्वान्ता महाभयाः । असिपत्रवनच्छन्ना महाक्षारनदीयुताः ॥९८॥

आवरण नहीं था, वे घाममें बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पक्षीके समान निःशङ्क और सिंहके समान निर्भय थे ॥८४॥ जिस प्रकार दुर्जनके अत्यन्त तीखे सैकड़ों कुवचनोंसे सज्जन सन्तप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरों और ऊपरसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा सब ओरसे सन्तप्त हो रहे थे ॥८५॥ जो यमराजके समान दिखाई देता था ऐसे वज्रकर्णने घोड़ेपर चढ़े-चढ़े, समुद्रके समान गम्भीर, परमार्थके ज्ञाता, पापोंका विनाश करनेवाले, समस्त प्राणियोंकी दयासे युक्त एवं श्रमण लक्ष्मीसे विभूषित साधुसे भाला हाथमें लेकर कहा ॥८६-८७॥ कि हे साधो ! यह क्या कर रहे हो ? साधुने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्माका हित करता हूँ ॥८८॥ राजा वज्रकर्णने हँसते हुए कहा कि इस अवस्थामें तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्माका हित कैसा ? ॥८९॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थसे रहित है, जिसके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥९०॥ स्नान तथा अलङ्कारसे रहित एवं परके द्वारा प्रदत्त भोजनपर निर्भर रहनेवाले आप जैसे लोगोंके द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥९१॥ कामभोगसे पीडित राजा वज्रकर्णको देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बन्धनको तोड़नेवाले मुझसे हित क्या पूछ रहा है ? उनसे पूछ कि जो इन्द्रियोंके द्वारा ठगे गये हैं, हितके उपायोंसे दूर है और अत्यन्त बढ़े हुए मोहसे जो संसार-सागरमें भ्रमण कर रहे हैं ॥९२-९३॥ यह जो तू हजारों प्राणियोंका घात करनेवाले, आत्माके अनर्थ करनेमें तत्पर एवं सद्-असद्के विचारसे रहित है सो अवश्य ही भयङ्कर नरकमें पड़ेगा ॥९४॥ जो तू उठ-उठकर पापोंमें परम प्रीति कर रहा है सो जान पड़ता है कि तूने भयङ्कर नरककी पृथिवियोंको अब तक जाना नहीं है ॥९५॥ इस पृथिवीके नीचे नरकोंकी सात पृथिवियाँ हैं जो अत्यन्त भयङ्कर हैं, अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त हैं, जिनका देखना अत्यन्त कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यन्त दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यन्त दुःखकारक है ॥९६॥ लोहेके तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त हैं, नाना प्रकारके यन्त्रोंसे युक्त हैं, छुराकी धाराके समान पैने पर्वतोंसे युक्त हैं, जिनका तल भाग तपे हुए लोहेसे भी अधिक दुःखदायी है ॥९७॥ जो रौरव आदि बिलोंसे युक्त हैं, महाअन्धकारसे भरी हैं, महा भय उत्पन्न करनेवाली हैं, असिपत्र-

५. अभ्याख्यात म० । १. मांदेना- म० । २. पापेषु म० ।

पापकर्मपरिक्लिष्टैर्गजैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषाधमैः ॥९९॥
भवन्तमेव पृच्छामि त्वादृशैर्विषयातुरैः । क्रियते पापसंसक्तैः कीदृशं हितमात्मनः ॥१००॥
इन्द्रियप्रभवं सौख्यं किम्पाकसदृशं कथम् । अहन्यहन्युपादाय मन्यसे हितमात्मनः ॥१०१॥
हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः । दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥१०२॥
कृतं तैरात्मनः श्रेयो ये महाव्रततत्पराः । अथवाणुव्रतैर्युक्ताः शेषा दुःखस्य भाजनम् ॥१०३॥
परलोकादि[1]हैतस्त्वं कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽधुना पापं कृत्वा यास्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥
अमी निरागसः क्षुद्रा वराकाः क्षितिशायिनः । अनाथा लोलनयना नित्योद्विग्ना वने मृगाः ॥१०५॥
आरण्यतृणपानीयकृतविग्रहधारिणः । अनेकदुःखसंकुलाः पूर्वदुष्कृतभोगिनः ॥१०६॥
रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रां चकितचेतसः । साध्वाचारैर्न युक्तं ते कुलजैर्हिंसितुं नरैः ॥१०७॥
अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां यदीच्छस्यात्मनो हितम् । त्रिधा हिंसां परित्यज्य कुर्वहिंसां प्रयत्नतः ॥१०८॥
उक्तैरित्युपदेशोघैर्यदासौ प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायातः फलैरिव महीरुहः ॥१०९॥
उत्तीर्य [2]प्रसृतः सप्तेर्जानुपीडितभूतलः । प्रणनामोत्तमाङ्गेन सुसाधुं रचिताञ्जलिः ॥११०॥
निरीक्ष्य सौम्यया दृष्ट्या तमेवं चाभ्यनन्दयत् । श्लाघ्योऽयं वीक्षितः सिद्धो मुनिस्त्यक्तपरिग्रहः ॥१११॥
शकुन्तयो मृगाश्चामी धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिषण्णं ये पश्यन्तीमं समाहितम् ॥११२॥
अतिधन्योऽहमप्यद्य मुक्तः पापेन कर्मणा । यदेतं त्रिजगद्वन्द्यं प्राप्तः साधुसमागमम् ॥११३॥

वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियोंसे युक्त हैं ॥९८॥ जो पाप कार्योंसे संक्लेशको प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियोंके समान निरङ्कुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंमें हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥९९॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोंसे पीड़ित तथा पापोंमें लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजन्य सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमें तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतोंसे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र हैं ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमें पाप कर दुर्गतिको जायगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग; जो अनाथ हैं, चञ्चल नेत्रोंके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जङ्गलके तृण और पानीसे बने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवमें किये पापको भोग रहे हैं और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमें भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं; उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५–१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुझसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन वचन कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जब राजा सम्बोधा गया तब वह फलोंसे वृक्षके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़ शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रहरहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमें निवास करनेवाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य

१. परलोकादिहेतुं त्वं । २. अश्वात् ।

बन्धुस्नेहमयं बन्धं छित्वा ज्ञाननखैरयम् । केसरीव विनिष्क्रान्तः प्रभुः संसारपञ्जरात् ॥११४॥
अनेन साधुना पश्य वशीकृतमनोरिपुम् । नाग्न्योपकारयोगेन शीलस्थानं प्रपाल्यते ॥११५॥
अहं पुनरतृप्तात्मा तावदस्मिन् गृहाश्रमे । अणुव्रतविधौ रम्ये करोमि परमां धृतिम् ॥११६॥
इति सञ्चिन्त्य जग्राह तस्मात्साधोर्गृहस्थितिम् । चकारावग्रहं[1] चैवं भावप्लावितमानसः ॥११७॥
देवदेवं जिनं मुक्त्वा परमात्मानमच्युतम् । निर्ग्रन्थांश्च महाभागान्न नमाम्यपरानिति ॥११८॥
प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य मुनेस्तस्य महादरः । चकार महतीं पूजामुपवासं समाहितः ॥११९॥
[2]उपासीनस्य चाख्यातं परमं साधुना हितम् । यत्समाराध्य मुच्यन्ते संसाराद् भव्यदेहिनः ॥१२०॥
सागारं निरगारं च द्विधा चारित्रमुत्तमम् । सावलम्बं गृहस्थानां निरपेक्षं [3]खवाससाम् ॥१२१॥
दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानसमन्विता । प्रथमाद्यनुयोगाश्च प्रसिद्धा जिनशासने ॥१२२॥
सुदुष्करं [4]विगेहानां चारित्रमवधार्य सः । पुनः पुनर्मतिं चक्रेऽणुव्रतेष्वेव पार्थिवः ॥१२३॥
निधानमधनेनेव प्राप्तं बिभ्रदनुत्तमम् । धर्म्यध्यानमसौ बुद्ध्वा परमां धृतिमागतः ॥१२४॥
नितान्तक्रूरकर्मायमुपशान्तो महीपतिः । इति प्रमोदमायातः संयतोऽपि विशेषतः ॥१२५॥
गते साधौ तपोयोग्यं स्थानं सुकृतसत्रिणि । विभूत्या परया युक्तः सुलाभः सुखतर्पितः ॥१२६॥
विहितातिथिसन्मानोऽपरेद्युः कृतपारणः । प्रणम्य चरणौ साधोः स्वस्थानमविशन्नृपः ॥१२७॥

हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नखोंके द्वारा बन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देखो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वशकर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है । अतः मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुव्रतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥

इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अङ्गीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोंसे अच्युत परमात्मा जिनेन्द्रदेव और उदार अभिप्रायके धारक निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७–११८॥ इस प्रकार उसने बड़े आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और स्थिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वज्रकर्णको मुनिराजने उस परम हितका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनागार । इनमेंसे पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनमें सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके संयोगसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होती है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्ग्रन्थ मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुव्रत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम संतोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धनको उत्तम खजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त क्रूर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यज्ञके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुखसे संतृप्त था ॥१२६॥ दूसरे दिन अतिथिका

१. प्रतिज्ञां । २. समीपस्थितस्य । ३. दिगम्बराणाम् । ४. मुनीनाम् ।

वहन् परमभावेन वज्रकर्णः सदा गुरुम् । बभूव वीतसन्देहश्चिन्तामेवमुपागतः ॥१२८॥
भृत्यो भूत्वा विपुण्योऽहं सिंहोदरमहीभृतः । अकृत्वा विनयं भोगान् कथं सेवे [1]निकारिणः ॥१२९॥
इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्नेनान्तरात्मना । विधिना प्रेर्यमाणस्य मतिरेवं समुद्गता ॥१३०॥
कारयाम्यूर्मिकां स्वार्णीं सुव्रतस्वामिबिम्बिनीम् । दधामि दक्षिणाङ्गुष्ठे तां नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥
घटिता सा ततस्तेन पाणिभासुरपीठिका । पिनद्धा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥
स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे कृत्वाङ्गुष्ठं पुरः कृती । प्रतिमां तां महाभागो नमस्यति स सन्ततम् ॥१३३॥
रन्ध्रविन्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽन्यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोपं पापः सिंहोदरोऽगमत् ॥१३४॥
माययाहूयत्वैनं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसम्पदा ॥१३५॥
वृहद्गतितनूजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽश्वतेनास्य विनीतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥
दण्डपाणिरुवाचैकः पीवरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्थासकोद्भासी तमागत्यैवमुक्तवान् ॥१३७॥
यदि भोगशरीराभ्यां सुनिर्विण्णोऽसि पार्थिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेन्नो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
क्रुद्धः सिंहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । अनमस्कारदोषेण कुरु राजन्नभीप्सितम् ॥१३९॥
एवं स गदितो दध्यौ केनाप्येष दुरात्मना । मात्सर्यहतचित्तेन भेदः कर्तुमभीप्सितः ॥१४०॥
तं विसर्पमदामोदं किञ्चित्खेदमुपागतम् । सोऽपृच्छत्कोऽसि किंनामा कुतो वासि समागतः ॥१४१॥

सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराजके चरणोंको प्रणाम कर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति-भावसे गुरुको सदा हृदयमें धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसको विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशामें भोगोंका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवान्‌की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अंगूठी बनवा कर दाहिने हाथके अंगूठामें धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नीतिनिपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमें सुशोभित थी ऐसी अंगूठी बनवाई और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अंगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरमें रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहद्गतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुड़सवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया। उसी समय जिसके हाथमें लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६–१३७॥ कि हे राजन्! यदि तुम भोग और शरीरसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन्! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है। अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहने पर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमें और सिंहोदरमें फूट डालनेका उद्योग किया है। इस प्रकार

१. दमनकर्तुः।

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽत्यन्तदुर्गमः । एतद्भद्र समाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
सोऽब्रोचत् कुन्दनगरे वणिग्धनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य भामिनी ॥१४३॥
विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । बन्धुभिर्विद्युदङ्गाख्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
क्रमाच्च यौवनं बिभ्रदवन्तीनगरीमिमाम् । आगतोऽस्म्यर्थलाभाय युक्तो वाणिज्यविद्यया ॥१४५॥
वेश्यां कामलतां दृष्ट्वा कामबाणेन ताडितः । न रात्रौ न दिवा यामि निर्वृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
एकां रात्रिं वसामीति तया कृतसमागमः । प्रीत्या दृढतरं बद्धो यथा वागुरया मृगः ॥१४७॥
जनकेन ममासंख्यैर्यद्वर्षैरर्जितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण षड्भिर्मासैर्विनाशितम् ॥१४८॥
पद्मे द्विरेफवत् सक्तः कामतद्गतमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥१४९॥
अन्यदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निजम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥
धन्या सा श्रीधरा देवी महासौभाग्यभाविनी । यस्यास्तद्राजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
चिन्तितं च मया तच्चेदपहृत्य सकुण्डलम् । आशां न पूरयाम्यस्यस्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
ततो जिहीर्षया तस्य दयितं प्रोह्य जीवितम् । गतोऽहं भवनं राज्ञो रजन्या तमसावृतः ॥१५३॥
पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिंहोदरं श्रुता । निद्रां न लभसे कस्मान्नाथोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥
सोऽवोचद्देवि निद्रा मे कुतो व्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुर्यावन्नमस्कारपराङ्मुखः ॥१५५॥

विचार कर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किञ्चित् खेदको प्राप्त था ऐसे उस दूतसे पूछा कि तू कौन है ? कहाँसे आया है ? ॥१४०–१४१॥ और इस अत्यन्त दुर्गम मन्त्रका तुझे कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमें धनसञ्चय करनेमें तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनोंने मेरा विद्युदङ्ग नाम रक्खा ॥१४३–१४४॥ क्रमसे यौवनको धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वेश्याको देख कर कामबाणसे ताड़ित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बाँध रक्खा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बाँध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन सञ्चित किया था मुझ सुपूत ने उसे केवल छह माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वेश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियोंके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वेश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महा-सौभाग्यका उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०–१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुरा कर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलको अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्धकारसे आवृत होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराको सिंहोदरसे यह पूछती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्नसे क्यों मालूम होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जब तक मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले

१. वर्षैः । २. भागिनी म० ।

अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्यार्णचिन्तया[1] । अजितप्रत्यर्थिकस्य विटाक्रान्ताबलस्य च ॥१५६॥
सशल्यस्य दरिद्रस्य भीरोश्च [2]भवदुःखतः । निद्रा कृपापरीतेव सुदूरेण पलायते ॥१५७॥
निहन्तास्मि न चेदेनं नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं ततः किं मे जीवितेन हतौजसः ॥१५८॥
ततोऽहं कुलिशेनेव हृदये कृतताडनः । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलशेमुषीं ॥१५९॥
धर्मोद्यतमनस्कस्य सततं साधुसेविनः । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥
नागैरञ्जनशैलाभैः प्रक्षरद्गण्डभित्तिभिः । सप्तिभिश्च महावेगैर्भटैश्च कवचावृतैः ॥१६१॥
तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तैः परमं क्रूरैर्भवन्तं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥
प्रसादं कुरु गच्छाशु प्रतीपं धर्मवत्सल । पतामि पादयोरेष तव मद्वचनं कुरु ॥१६३॥
अथ प्रत्येषि[3] नो राजन् ततः पश्यैतदागतम् । धूलीपटलसंछन्नं परचक्रं महारवम् ॥१६४॥
तावत्परागतं दृष्ट्वा साधनं कुलिशश्रवाः[4] । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुधीरः प्रत्यवस्थितः[5] । विधाय वज्रितारोधं[6] सामन्ताश्चावतस्थिरे ॥१६६॥
प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा वज्रकर्णं रुषा ज्वलन् । सिंहोदरः समायातः सर्वसाधनसंयुतः ॥१६७॥
पुरस्यात्यन्तदुर्गत्वात् साधनक्षयकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा नृपः ॥१६८॥
समावास्य समीपे च त्वरितं प्राहिणोच्चरम् । वज्रकर्णं स गत्वेति बभाणात्यन्तनिष्ठुरम् ॥१६९॥

शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥१५५॥ जो अपमानसे जल रहा हो, जो ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुषके चक्रमें पड़ गई हो, जो शल्यसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६–१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन सदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं। हे नाथ ! यह जान कर आप लौट जाइए उज्जैन मत जाइए ॥१५९–१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद झर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१–१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापिस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलीके समूहसे व्याप्त तथा महा कल-कल शब्द करता हुआ यह शत्रुका दल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्गके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापिस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गम नगरमें प्रवेश कर धीरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया। बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोक कर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था। इसलिए सेनाके क्षयसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा। वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी

१. ऋणसम्बन्धिचिन्तया । २. भवदुखितः म० । ३. विश्वासं नो करोषि । ४. वज्रकर्णः म० । ५. समवस्थितः म० । ६. प्रतोलीरोधं ।

जिनशासनवर्गेण सदावष्टब्धमानसः । ऐश्वर्यकंटकस्त्वं मे जातः सद्भाववर्जितः ॥१७०॥
कुटुम्बभेदने दक्षैः श्रमणैर्दुर्विचेष्टितैः । प्रोत्साहितो गतोऽस्येतामवस्थां नयवर्जितः ॥१७१॥
भुंक्षे देशं मया दत्तमर्हन्तं च नमस्यति । अहो ते परमा माया जातेयं दुष्टचेतसः ॥१७२॥
आगच्छाशु ममाभ्याशं प्रणामं कुरु सन्मतिः । अन्यथा पश्यं यातोऽसि मृत्युना सह सङ्गतम् ॥१७३॥
ततस्तद्वचनाद्गत्वा दूतोऽवददिदं पुनः । एवं वज्रश्रुतिर्नाथ ब्रवीति कृतनिश्चयः ॥१७४॥
नगरं साधनं कोषं गृहाण विषयं विभो । धर्मद्वारं सभार्यस्य यच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥
कृता मया प्रतिज्ञेयं मुञ्चाम्येनां मृतोऽपि न । द्रविणस्य भगवान् स्वामी शरीरस्य तु नो मम ॥१७६॥
इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्तक्रोधः सिंहोदरः पुरः । कृत्वा रोधमिमं देशमुद्वासयदुज्ज्वलम् ॥१७७॥
इदं ते कथितं देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि साम्प्रतं शून्यग्रामधानमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥
तस्मिन् विमानतुल्येषु दह्यमानेषु सद्मसु । मदीया दुष्कुटी दग्धा तृणकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
तत्र गोपायितं सूर्पं घटं पिठरमेव च । आनयामि कुगेहिन्या प्रेरितः क्रूरवाक्यया ॥१८०॥
गृहोपकरणं भूरि शून्यग्रामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मां भाषते मुहुः ॥१८१॥
अथवात्यन्तमेवेदं तया मे जनितं हितम् । देव कोऽपि भवान् दृष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
इत्युक्ते करुणाक्लिष्टः पथिकं वीक्ष्य दुःखितम् । पद्मोऽस्मै रत्नसंयुक्तं ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
प्रतीतः प्रणिपत्यासौ तदादाय त्वरान्वितम् । प्रतियातो निजं धाम बभूव च नृपोपमः ॥१८४॥

निष्ठुरतासे बोला ॥१६९॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहङ्कार पूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्टक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बों के भेदन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनियोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है। अहो, तुझ दुष्ट हृदयकी यह बड़ी माया ॥१७२॥ तू सुबुद्धि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणामकर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागम को प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापिस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे नाथ ! निश्चय को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्माराधनामें बाधा नहीं डालिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देव और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो मरते-मरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा। आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव ! मैंने आपसे इस देशके ऊजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उजड़े गाँवको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गाँवमें विमानके तुल्य जो अच्छे-अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी टूटी फूटी कुटिया भी जल गई ॥१७९॥ उस कुटियामें एक जगह सूपा घट तथा भटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलनेवाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गाँवोंमें घर गृहस्थीके बहुतसे उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार वह बार-बार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दुःखी देख दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित स्वर्णसूत्र दे दिया ॥१८३॥ वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वास पूर्वक

१. पश्य जातोऽसि मृत्युना सहसंगतः ज०, ब० । २. वज्रकर्णः । ३. जनरहितमकरोत् ।

अथावोचत्ततः पद्मो लक्ष्मणाय[1] दिवाकरः । नैदाघो यावदत्यन्तं दुस्सहत्वं न गच्छति ॥१८५॥
तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्यास्यान्तिकं भुवम् । जानकीयं तृषाक्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
एवमित्युदिते याता[2] दशाङ्गनगरस्य ते । समीपे चन्द्रभासस्य चैत्यालयमनुत्तमम् ॥१८७॥
तस्मिन् सजानकीरामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलम्भाय लक्ष्मणः सधनुर्गतः ॥१८८॥
विशन् सिंहोदरस्यासौ शिबिरं रक्षिमानवैः[3] । निरुद्धः कृतनिस्वानैः[4] समीरण इवाद्रिभिः ॥१८९॥
[5]इमकैर्दुष्कुलोत्पन्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सञ्चिन्त्य यातोऽसौ नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥
गोपुरं च समासीददनेकभटरक्षितम् । यस्योपरि स्थितः साक्षाद्वज्रकर्णः प्रयत्नवान् ॥१९१॥
ऊचिरे तस्य भृत्यास्तं कस्त्वमेतः कुतोऽपि वा । किमर्थं वेति सोऽवोचद्दूरात्प्राप्तोऽन्नलिप्सया ॥१९२॥
ततस्तं बालकं कान्तं दृष्ट्वा विस्मयसङ्गतः । आगच्छ प्रविश क्षिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ समीपं कुलिशश्रुतेः । विनीतवेषसम्पन्नो वीक्षितं सादरं नरैः ॥१९४॥
जगाद वज्रकर्णश्च नरमाप्तमयं द्रुतम् । अन्नं प्रसाधितं मह्यं भोज्यतां रचितादरः ॥१९५॥
सोऽवोचन्नात्र भुञ्जेऽहमिति मे गुरुरन्तिके । तमादौ भोजयाम्यन्नं नयाम्यस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य नृपोऽन्नमतिपुष्कलम् । अदीदपद् वरं तस्मै चारुव्यञ्जनपानकम् ॥१९७॥
लक्ष्मीधरस्तदादाय गतो द्विगुणरंहसा । भुक्तं च तैः क्रमेणैतत्तृप्तिं च परमां गताः ॥१९८॥

उन्हें प्रणामकर अपने घर वापिस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकालका सूर्य जब-तक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तब-तक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चलें । यह जानकी प्याससे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५–१८६॥ इस प्रकार कहनेपर वे तीनों दशाङ्गनगरके समीप चन्द्रप्रभ भगवान्‌के उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुखसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिंहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषोंने जोरसे ललकार कर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुको रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वार पर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके भृत्योंने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर देख आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेषमें वज्रकर्णके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥ वज्रकर्णने एक आप्त पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है वह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही में मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमस्तु–ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । सबने उसे यथा क्रमसे खाया और खाकर परम तृप्तिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोऽयं म० । २. जाता म० । ३. रक्ष्यमानसैः म० । ४. निरुद्धकृतिनिस्वानैः म० ।
५. द्रुमकैः म० ।

ततस्तुष्टोऽवदत् पद्मः पश्य लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् विना ॥१९९॥
जामात्रेऽपि सुसम्पन्नमीदृगन्नं न दीयते । पानकानामहो शैत्यं व्यञ्जनानां च मृष्टता ॥२००॥
अनेनामृतकल्पेन भुक्तेनान्नेन मार्गजः । नैदाघोऽपहृतः सद्यः श्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
चन्द्रबिम्बमिवाचूर्ण्य शालयोऽमी विनिर्मिताः । धवलत्वेन बिभ्राणा मार्दवं भिन्नसिक्थकाः ॥२०२॥
दुग्ध्वेव दीधितीरिन्दोः कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छतायुक्तं सौरभाकृष्टषट्पदम् ॥२०३॥
घृतक्षीरमिदं जातं कल्पधेनुस्तनादिव । रसनामीदृशी व्यक्तिर्व्यञ्जनेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥
अणुव्रतधरः साधुर्वर्णितः पथिकेन सः । अतिथीनां करोत्यन्यः संविभागं क ईदृशम् ॥२०५॥
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽयमनन्यप्रणतिः सुधीः । भवार्तिमथनं नाथं जिनेन्द्रं यो नमस्यति ॥२०६॥
ईदृक्शीलगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । तिष्ठत्यरातिना रुद्धस्ततो नो[1] जीवितं वृथा ॥२०७॥
अपराधविमुक्तस्य साधुसेवार्पितात्मनः । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाविरोधिनः ॥२०८॥
तोद्यमानमिमं नूनं सिंहोदरकुभूभृता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नूतनेशतः ॥२०९॥
तस्मादन्यपरित्राणरहितस्यास्य सन्मतेः । क्षिप्रं कुरु परित्राणं व्रज सिंहोदरं वद ॥२१०॥
इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिक्ष्यते भवान् । उत्पन्नः प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणिः ॥२११॥
गुणोच्चारणसव्रीडः कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य [2]प्रमदान्वितः ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके बिना ही यह किया है ॥१९९॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यञ्जनोंकी मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके खानेसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके बिम्बको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त स्वच्छतासे युक्त है तथा जो अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमाकी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यञ्जनोंमें रसोंकी ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो संसारकी पीड़ाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक सुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होने पर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रक्षकोंसे रहित इस बुद्धिमानकी रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रज्ञाके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अथानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

१. अस्माकम् । २. हर्षान्वितः ।

विनीतं धारयन् वेषमनुपादाय कार्मुकम् । प्रयातो रयसम्पन्नो लक्ष्मणः कम्पितक्षितिः ॥२१३॥
दृष्ट्वा संरक्षकैः पृष्टः कतरस्य पुमान् भवान् । सोऽवोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
क्रमेणातीत्य शिविरं भूरि प्राप्तो नृपास्पदम् । अविशद्वेदितो द्वाःस्थै सदः सिंहोदरस्य सः ॥२१५॥
प्रस्पष्टमिति चोवाच मन्यमानस्तृणं नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाहं सिंहोदर [1]निबोध माम् ॥२१६॥
आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सद्‌गुणः । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
ततः सिंहोदरोऽवार्द्रान्मनः कर्कशमुद्वहन् । दूत ब्रूतां त्रिर्नातेशमिति मद्वचनाद् भवान् ॥२१८॥
यथा किलाविनीतानां भृत्यानां विनयाहृतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
वज्रकर्णो दुरात्मायं मानी नैकृतिकः[2] परः । पिशुनः क्रोधनः क्षुद्रः सुहृन्निन्दापरायणः ॥२२०॥
आलस्योपहतो मूढो वायुग्रहगृहीतधीः । विनयाचारनिर्मुक्तो दुर्विदग्धो दुरीहितः ॥२२१॥
एतं मुञ्चन्त्वमी दोषा दमेन मरणेन वा । तमुपायं करोम्यस्य स्वैरमत्रास्यतां त्वया ॥२२२॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् किमत्र [3]प्रत्युरोत्तरैः । कुरुतेऽयं हितं यस्मात् क्षम्यतां सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
इत्युक्तः प्रकटक्रोधः सन्धिदूरपराङ्मुखः । सिंहोदरोऽवदत्तारं वीक्ष्य सामन्तसंहतिम् ॥२२४॥
न केवलमसौ मानी हतात्मा वज्रकर्णकः । तत्कार्यवाञ्छया प्राप्तो भवानपि तथाविधः ॥२२५॥
पाषाणेनैव ते गात्रमिदं दूत विनिर्मितम् । न [4]नामर्माषदप्येति दुर्भृत्यः कोशलापतेः ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला। वह उस समय विनीत वेषको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२–२१३॥ रक्षक पुरुषोंने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छावनीको उलँघ कर वह राजाके निवासस्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा खबर देकर राजा सिंहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको तृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिंहोदर! तू मुझे बड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तमगुणोंको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैरसे क्या लाभ है? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिंहोदर बोला कि हे दूत! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है? ॥२१८–२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितम्मन्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है। ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे; इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिये ॥२२०–२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें उत्तर-प्रत्युत्तरोंसे क्या प्रयोजन है? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाय ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुख था ऐसा सिंहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देख गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किन्तु उसके कार्यकी इच्छासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२५॥ अरे दूत! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पाषाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट भृत्य, रञ्च मात्र भी नम्रताको

१. नृपाधम ब० । २. मायी । ३. प्रचुरोत्तरैः । ४. नमनम् नामः तम् ।

तत्र देशे नरा नूनं सर्वं एव भवद्विधाः । स्थालीपुलाकधर्मेण परोक्षं ज्ञायते ननु ॥२२७॥
इत्युक्ते कोपमायातः किञ्चिल्लक्ष्मीधरोऽवदत् । साम्यहेतोरहं प्राप्तो न ते कर्तुं नमस्कृतिम् ॥२२८॥
बहुनात्र किमुक्तेन हरे संक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमद्यैव मरणं वा समाश्रय ॥२२९॥
इत्युक्ते परिषत्सर्वा परं क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वाक्या नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥
आकृष्य छुरिकां केचिन्निस्त्रिंशानपरे भटाः । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकम्पितमूर्तयः ॥२३१॥
वेगनिर्मुक्तहुङ्काराः परस्परसमाकुलाः । ते तं समन्ततो ब्रमुर्मशका इव पर्वतम् ॥२३२॥
अप्राप्तानेव धीरोऽसौ क्रियालाघवपण्डितः । चिक्षेप चरणाघातैर्दूरं तान् विह्वलान् समम् ॥२३३॥
जघान जानुना कांश्चित्कूर्परेणापरान् भ्रमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशर्करान् ॥२३४॥
कचेषु कांश्चिदाकृष्य निपात्य धरणीतले । पादेनाचूर्णयत् कांश्चिदंसघातैरपातयत् ॥२३५॥
कांश्चिदन्योन्यघातेन परिचूर्णितमस्तकान् । चकार जंघया कांश्चिदरं प्राप्तविमूर्च्छनान् ॥२३६॥
एवमेकाकिना तेन परिषत्सा तथाविधा । महाबलेन विध्वंसं नीता भयसमाकुला ॥२३७॥
एवं विध्वंसयन् यावन्निष्क्रान्तो भवनाजिरम् । तावद्योधशतैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥
सामन्तैरथ सन्नद्धैर्वारणैः ससिभी रथैः । परस्परविमर्देन बभूवाकुलता परा ॥२३९॥
नानाशस्त्रकरेष्वेषु लक्ष्म्यालिङ्गितविग्रहः । चकार चेष्टितं वीरः शृगालेष्विव केसरी ॥२४०॥

प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने बिलकुल भी नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सब लोग तेरे ही जैसे हैं जिस प्रकार बटलोईके दो चार सीथ जाननेसे सब सीथोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँके सब लोगोंका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहने पर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुझे नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गई, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे काँप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारें निकालकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणको चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमें नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे विह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे घूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोंको घुटनोंसे, कितने ही लोगोंको कोहनीसे, और कितने ही लोगोंको मुट्ठियोंके प्रहारसे शतखण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोंके बाल खींचकर तथा पृथिवी पर पटक कर उन्हें पैरोंसे चूर्ण कर डाला और कितने ही लोगोंको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोंको परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोंको जङ्घाके प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आङ्गणमें निकला तब सैकड़ों अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तों, हाथियों, घोड़ों और रथोंके द्वारा उत्पन्न परस्परकी धक्काधूमीसे बहुत भारी आकुलता उत्पन्न हो गई ॥२३९॥ हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य [1]प्रावृषेण्यघनाकृतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोद्धुं लक्ष्मीनिलयमुद्यतः ॥२४१॥
तस्मिन् रणशिरोयाते किञ्चिद्धैर्यमुपागताः । दूरगाः पुनराजग्मुः सामन्ता लक्ष्मणं प्रति ॥२४२॥
घनानामिव सङ्घास्ते बभ्रुस्तं शशिनं यथा । वातूल इव तानेष तूलराशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
उदारभटकामिन्यो गण्डविन्यस्तपाणयः । जगुराकुलताभाजः प्रविलोलविलोचनाः ॥२४४॥
पश्यतैनं महाभीमं सख्यः पुरुषमेककम् । वेष्टितं बहुभिः क्रूरैरसाम्प्रतमिदं परम् ॥२४५॥
अन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि केनायं परिभूयते । पश्यतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृताः ॥२४६॥
आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिमुखं बलम् । विहस्य वारणस्तंभं महान्तमुदमूलयत् ॥२४७॥
ततः सरभसस्तत्र सान्द्रहुङ्कारभीषणः । जजृम्भे लक्ष्मणः कक्षे यथोच्चैराशुशुक्षणिः[3] ॥२४८॥
विस्मितो गोपुराग्रस्थो दशाङ्गनगराधिपः । पार्श्ववर्तिभिरित्यूचे सामन्तैर्विकचेक्षणैः ॥२४९॥
कोऽप्येष पुरुषो नाथ पश्य सैंहोदरं बलम् । भग्नध्वजरथच्छत्रं करोति परमद्युतिः ॥२५०॥
एष खड्गधनुश्छायमध्यवर्ती सुविह्वलः । आवर्त इव निक्षिप्तो भ्राम्यतीभाहितोदरः[4] ॥२५१॥
इतश्चेतश्च विस्तीर्णमेतत्सैन्यं पलायते । एतस्मात्त्रासमागत्य सिंहान् मृगकुलं यथा ॥२५२॥
वदन्त्यन्योन्यमत्रैते सामन्ता दूरवर्तिनः । अवतारय सन्नाहं मण्डलाग्रो विमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोंके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमें आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारणकर फिरसे वापिस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीव्र वायु रुईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालोंपर हाथ लगा रक्खे थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी स्त्रियाँ परस्परमें कह रही थीं कि हे सखियो ! इस महा-भयङ्कर पुरुषको देखो। इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रक्खा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४–२४५॥ उन्हींमें कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार कह रहीं थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बाँधनेका एक बड़ा खम्भा उखाड़ा ॥२४७॥ और जिस प्रकार वनमें जोरदार अग्नि वृद्धिङ्गत होती है उसी प्रकार सघन हुंकारोंसे भयङ्करताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे टूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठा-बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया। जिनके नेत्र हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है। उसने उसकी सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९–२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी छायाके बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमें पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कर रहे हैं कि कवच उतार दो, तलवार छोड़

१. प्रावृषेण म० । २. जाते म० । ३. अग्निः । ४. सिंहोदरः ।

कार्मुकं क्षिप मुञ्चाश्वं वारणादवतीर्यताम् । गदां निरस्य गर्तायां माकार्षीरवमुन्नतम् ॥२५४॥
आलोक्य शस्त्रसङ्घातं श्रुत्वा वा रभसान्वितः । कोप्येष पुरुषोऽस्माकमा[1]पतदतिदारुणः ॥२५५॥
[2]अपसर्पामुतो देशादेहि मार्गमहो भट । वारणं सारयैतस्मात्किमत्र स्तंभितोऽसि ते ॥२५६॥
अयं प्राप्तोऽयमायातो दुःसूत स्यन्दनं त्यज । तुरङ्गाश्चोदय क्षिप्रं घातिता स्मो न संशयम् ॥२५७॥
एवमादिकृतालापाः केचित्सङ्कटमागताः । परित्यज्य [3]भटाकल्पमेते पण्ढ[4]कवत् स्थिताः ॥२५८॥
किमेष रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशसम्भवः । विद्याधरो नु वान्यस्य कस्येयं शक्तिरीदृशी ॥२५९॥
कालो नाम यमो वायुः कोऽपि लोके प्रकीर्त्यते । सोऽयं किमु भवेच्चण्डो[5] विद्युद्दण्डचलाचलः ॥२६०॥
कृत्वे[6]दमीदृशं सैन्यं पुनरेष करिष्यति । किमित्येवं मनोऽस्माकं नाथ शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥
[7]निरीक्षस्वैनमुत्पत्य संग्रामे रोमहर्षणे । सिंहोदरं समाकृष्य विह्वलं वरवारणात् ॥२६२॥
गले तदंशुकेनैव प्राध्वंकृत्य[8] सुविस्मितः । एष याति पुरःकृत्वा[9] बलीवर्दं यथा वशम् ॥२६३॥
एवमुक्तः स[10] तैरूचे स्वस्था भवत मानवाः । देवाः शान्तिं करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥
स्थिता [11]मूर्द्धसु हर्म्याणां दशाङ्गनगराङ्गनाः । परं विस्मयमापन्ना जगुरेवं परस्परम् ॥२६५॥
सखि पश्यास्य वीरस्य चेष्टितं परमाद्भुतम् । येनैकेन नरेन्द्रोऽयमानीतोंऽशुकबन्धनम् ॥२६६॥
अहो कान्तिरमुष्येयं द्युतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरियं कोऽयं भवेत् पुरुषसत्तमः ॥२६७॥
भूतोऽयं भविता वापि पुण्यवत्याः सुयोषितः । पतिः कस्याः प्रशस्तायाः समस्तजगतीश्वरः ॥२६८॥
सिंहोदरमहिष्योऽथ वृद्धबालसमन्विताः । रुदत्यः पादयोः पेतुर्लक्ष्मणस्यातिविक्लवाः ॥२६९॥

दो, धनुष फेंक दो, घोड़ा छोड़ दो, हाथीसे नीचे उतर जाओ, गदा गड्ढेमें गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रोंका समूह देखकर यह अतिशय भयङ्कर पुरुष वेगसे कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े; इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढ़ा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकटमें पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओंका वेष छोड़ कर नपुंसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३–२५८॥ क्या युद्धमें यह कोई देव क्रीड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति संसारमें प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अत्यन्त तीक्ष्ण और बिजलीके समान चञ्चल है ॥२५९–२६०॥ सेनाको इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शङ्काको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमाञ्चकारी युद्धमें उछलकर भयभीत सिंहोदरको हाथीसे खींचकर उसीके वस्त्रसे गलेमें बाँध लिया है और यह बैलकी तरह वशकर उसे आगे कर आश्चर्यसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२–२६३॥ इस प्रकार सामन्तोंके कहनेपर वज्रकर्णने कहा कि हे मानवो ! स्वस्थ होओ, देव शान्ति करेंगे, इस विषयमें बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलोंके शिखरों पर बैठी दशाङ्गनगरकी स्त्रियाँ परम आश्चर्यको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रहीं थीं ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजाको वस्त्रसे बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रीका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामी है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोंसे सहित सिंहोदरकी रानियाँ भयसे अत्यन्त विह्वल हो रोती

१. मा पतदतिदारुणः म० । २. अपसर्प्या म० । ३. योधवेषम् । ४. नपुंसकवत् स्थिताः । ५. भवेश्चन्द्रो (?) म० । ६. त्वयेद- म० । ७. निरीक्षस्व + एनम् । ८. बद्ध्वा । ९. परः कृत्वा ज०, ख० । १०. वज्रकर्णः । ११. हर्म्याणां प्रासादानां मूर्द्धसु पृष्ठेषु ।

ऊचुश्च देव मुञ्चैनं भर्तृभिक्षां प्रयच्छ नः । अद्य प्रभृतिभृत्योऽयं तवाज्ञाकरणोद्यतः ॥२७०॥
सोऽवोचत् पश्यतोदारं द्रुमखण्डमिमं पुरः । अत्र नीत्वा दुराचारमेतमुल्लम्बयाम्यहम् ॥२७१॥
करुणं बहु कुर्वन्त्यः पुनः साञ्जलयोऽवदन् । रुष्टोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
प्रसादं कुरु मा दुःखं दर्शय प्रियसम्भवम्[1] । ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥२७३॥
पुरो मोचयामि सेवध्वं स्वस्थतामित्यसौ वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राघवः स्थितः ॥२७४॥
अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं सोऽयं वज्रश्रुतेररिः । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यन्मया ॥२७५॥
ततः सिंहोदरो मूर्ध्ना करकुड्मलयोगिना । पपात वेपमानाङ्गः पद्मस्य क्रमपद्मयोः ॥२७६॥
जगाद च न देव त्वां वेद्मि कोऽसीति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महीध्रपतिसन्निभः ॥२७७॥
मानवो भव देवो वा गम्भीरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुभिः प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
गृह्णातु रुचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुतिः[2] । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सततं तव ॥२७९॥
[3]धवभिक्षां प्रयच्छेति योषितोऽप्यस्य पादयोः । रुदत्यः प्रणिपत्योचुः कुर्वन्त्यः करुणं बहु ॥२८०॥
देवि स्त्रैणास्त्वमस्माकं कारुण्यं कुरु शोभने । इत्युदित्वा च सीतायाः पतितास्ताः क्रमाब्जयोः ॥२८१॥
ततः सिंहोदरं पद्मो जगाद विनताननम् । कुर्वन् वापीषु हंसानां मेघनादोद्भवं भयम् ॥२८२॥
शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तत्सुधीः । एवं ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
आहूतोऽथ हितैः पुम्भिः कृतदष्ट्यादिवर्धनः[4] । वज्रकर्णः परीवारसहितश्चैत्यमागमत् ॥२८४॥
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपाणिर्जिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्राभं भक्तिहृष्टतनूरुहः ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणोंमें आ पड़ी ॥२६९॥ वे बोलीं कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिक्षा देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्षखण्ड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोंको पतिका दुःख न दिखाओ उत्तम पुरुष स्त्रियों पर दया करते ही हैं ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ। इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णका शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ। अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता। आप कान्तिमान् हैं उत्कृष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी स्त्रियाँ भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुईं, रामके चरणोंमें प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिक्षा दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि ! तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हम पर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ीं ॥२८१॥

तदनन्तर वापिकाओंमें स्थित हँसोंको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुखकर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी ! तुझे वज्रकर्ण जो कहे सो कर ! इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषोंके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनालयकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं

१. संगमं म० । २. वज्रकर्णः । ३. पतिभिक्षां । ४. कृतदष्टाभिवर्धनः म० ।

ततश्च विनयी गत्वा स्तुत्वा तौ भ्रातरौ क्रमात् । अपृच्छद् वपुरारोग्यं सीतां च विधिकोविदः ॥२८६॥
भद्र ते कुशलेनाद्य कुशलं नः समन्ततः । इति तं राघवोऽवोचन्मितान्तं मधुरध्वनिः ॥२८७॥
सङ्कथेयं तयोर्यावद् वर्तते शुभलीलयोः । चारुवेषोऽथ सैन्येन विद्युदङ्गः समागतः ॥२८८॥
स तयोः प्रणतिं कृत्वा स्तुत्वा च क्रमपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्य सन्निविष्टः प्रतापवान् ॥२८९॥
विद्युदङ्गः सुधीः सोऽयं वज्रकर्णसुहृत्परः । इति शब्दः समुत्तस्थौ तदा सदसि मांसलः ॥२९०॥
पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितसितं मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरियं परा ॥२९१॥
कुमतैस्तव धीरेषा मनागपि न कम्पिता । उत्पातवातसङ्घातैः[1]मन्दरस्येव चूलिका ॥२९२॥
ममापि सहसा दृष्ट्वा न ते मूर्धायमानतः । अहो परमिदं चारु तव शान्तं विचेष्टितम् ॥२९३॥
अथवा शुद्धतत्त्वस्य किमु पुंसोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥२९४॥
प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्यं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९५॥
मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो[2] मधुव्रतः[3] । रासभस्य पदं पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ॥२९६॥
बुद्धिमानसि धन्योऽसि दधास्यासन्नभव्यताम् । चन्द्रादपि सिता कीर्तिस्तव भ्राम्यति विष्टपे ॥२९७॥
विद्युदङ्गोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । भव्योऽयमपि यः सेवां तव कर्तुं समुद्यतः ॥२९८॥
सद्भूतगुणसत्कीर्तेरथ लज्जामुपागतः । किञ्चिन्नताननोऽवोचच्चुनाशीरायुधश्रवाः[4] ॥२९९॥
अत्रावसीदतो देव प्राप्तस्य व्यसनं महत् । सञ्जातोऽसि महाभाग त्वं मे[5] परमबान्धवः ॥३००॥

फिर भक्तिसे रोमाञ्चित हो चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार किया ॥२८५॥ तत्पश्चात् विधि-विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंकी क्रमसे स्तुति की और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२८६॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२८७॥ इस प्रकार शुभलीलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जब-तक यह वार्तालाप चलता है तब-तक सुन्दर वेषका धारक विद्युदङ्ग सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२८८॥ क्रमके जाननेमें पण्डित प्रतापी विद्युदङ्ग राम लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२८९॥ उसी समय सभामें यह जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदङ्ग वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२९०॥

तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२९१॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयकालकी वायुके आघातसे कम्पित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतोंसे रञ्चमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥२९२ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर तथा शान्त है ॥१९३॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषको क्या कठिन है ? खासकर धर्मानुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्य को ॥२९४॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकके द्वारा वन्दनीय परम कल्याणस्वरूप जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंको कैसे प्रणाम किया जाय ? ॥२९५॥ मकरन्द रसके आस्वादनमें निपुण भौंरा उन्मत्त होने पर भी क्या गधेके पूँछपर अपना स्थान जमाता है ? ॥२९६॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भव्यपना धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रही है ॥२९७॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युदङ्ग भी तुम्हारा मित्र है। सो यह भी भव्य है जो कि तुम्हारी सेवा करनेके लिये उद्यत रहता है ॥२९८॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

१. सुमेरोः । २. निपुणः । ३. भ्रमरः । ४. वज्रकर्णः । ५. मे त्वं म० ।

नियमस्त्वत्प्रसादेन ममायं जीवतोऽधुना[1]। [2]पालितो मम भाग्येन[3] त्वमानीतो नरोत्तमः ॥३०१॥
वदन्नेवमसा ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षणः। यदाभिलषितं यत्ते क्षिप्रं सम्पादयाम्यहम् ॥३०२॥
सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य भवन्तमतिदुर्लभम्। न किञ्चिदस्ति लोकेऽस्मिन्निदं तु प्रवदाम्यहम् ॥३०३॥
तृणस्यापि न वाञ्छामि पीडां जिनमताश्रितः। अतो विमुच्यतामेष मम सिंहोदरप्रभुः ॥३०४॥
इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः साधुकारः समुद्ययौ। प्राप्तद्वेपेऽपि पश्यायं मतिं धत्ते शुभामिति ॥३०५॥
अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः। मध्यो कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३०६॥
एवमस्त्विति भाषित्वा लक्ष्मणेन तयोः कृता। हस्तग्रहणसम्पन्ना प्रीतिः समयपूर्विका ॥३०७॥
उज्जयिन्या ददावर्धं वज्रकर्णाय शुद्धधीः। सिंहोदरो हृतं पूर्वं विषयोद्वासने च यत् ॥३०८॥
चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकानां धनस्य च। विभागं समभागेन निजस्याप्यकरोदसौ ॥३०९॥
वार्हद्गतप्रसादेन तां वेश्यां तच्च कुण्डलम्। लेभे सेनाधिपत्यं च विद्युदङ्गः सुविश्रुतः[4] ॥३१०॥
वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयोः पराम्। पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वराः ॥३११॥
[5]सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन ढौकिताः। लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विताः ॥३१२॥
नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्यकाः। एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥३१३॥
ढौकित्वा वज्रकर्णस्ताः समं सिंहोदरादिभिः। जगाद लक्ष्मणं देव तवैता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग! आप मेरे परम बान्धव हुए हैं ॥२९९-३००॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुरुषोत्तम यहाँ पधारे हैं ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीड़ा हो। इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाय ॥३०३-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोंके मुखसे 'धन्य धन्य' शब्द निकल पड़ा। देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारीके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है। वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोंकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरङ्ग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदङ्गने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपनी आठ पुत्रियाँ बुलवाईं ॥३११॥ चूँकि बड़े भाई राम स्त्रीसे सहित दिखाई देते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणोंको धारण करनेवालीं तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मणको व्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओंने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं। इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुईं ॥३१३॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाओंके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव! ये आपकी स्त्रियाँ हैं ॥३१४॥

१. जीविताधुना क०, ख०, ज०। २. पालिता क०। ३. भागेन म०। ४. शुचिश्रुतः म०।
५. 'तत्र ज्यायान् ज्येष्ठो भ्राता रामः सजायो सवल्लभो दृश्यते अतस्त्वमपि सजाया भव' इति निर्दिश्य तेन ता दुहितरो लक्ष्मणं प्रापिता इति भावः।

लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद् दारसङ्गं करोम्यहम् । न तावन्न कृतं यावत् पदं भुजबलार्जितम् ॥३१५॥
पद्मश्च तानुवाचैवं नास्माकं वसतिः क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गतलोपमे ॥३१६॥
देशान् सर्वान् समुल्लङ्घ्य करिष्याम्यालयं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
एकां वेलामिह ततो जनन्यौ नेतुमुत्सुके । आगन्तव्यं मयावश्यं द्रागयोध्यामनेन वा ॥३१८॥
काले तत्रैव नेष्यन्ते कन्यका अपि भो नृपाः । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसंग्रहः ॥३१९॥
एवमुक्ते कुमारीणां तद्वृन्दं शुशुभे न च । आकुलं पङ्कजवनं हिमवाताहतं यथा ॥३२०॥
प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्ष्यामो यदि तत्पुनः । अवाप्स्यामः कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
प्राणांश्च धारयन्तीनां कैतवं मन्यते जनः । दह्यते च समिद्धेन मनो विरहवह्निना ॥३२२॥
सुमहान् भृगुरेकत्र व्याघ्रोऽन्यत्रातिदारुणः । अहो कष्टं कमाधारं व्रजामोऽत्यन्तदुस्सहाः ॥३२३॥
अथवा विरहव्याघ्रं सङ्गमाशयविद्यया । संस्तंभ्य धारयिष्यामः शरीरमिति साम्प्रतम् ॥३२४॥
एवं विचिन्तयन्तीभिः सार्धं ताभिर्महीभृतः । गता यथागतं कृत्वा रामादीनां यथोचितम् ॥३२५॥
सच्चेष्टाः पूज्यमानास्ताः पितृवर्गेण कन्यकाः । नानाविनोदनासक्तास्तस्थुस्तद्गतमानसाः ॥३२६॥
आनायितः पिता भूत्या सबन्धुर्देशमात्मनः । विद्युदङ्गेन चक्रे च परमः सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥
परमेऽथ निशीथे ते[1] नत्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गत्य पादाभ्यां स्वेच्छया सुधियो ययुः ॥३२८॥
चैत्यालयं प्रभाते तं दृष्ट्वा शून्यं जनोऽखिलः । रहिताशेषकर्तव्यो वितानहृदयस्थितः[2] ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें में लक्ष्मणने कहा कि मैं जब तक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तब तक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है। स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश हैं उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके आस-पास अपना घर बनावेंगे। वहाँ उत्कण्ठासे भरीं अपनी माताओंको ले जानेके लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे। हे राजाओ ! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले जावेंगे। तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा ? ॥३१६-३१९॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओंका समूह तुषार वायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित नहीं हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देवेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी ? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देदीप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो ! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है। अतः अत्यन्त दुःखसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हों ? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगा कर रह गईं ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युदङ्गने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताको बड़े ठाट-बाटसे अपने देशमें बुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारी उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आधी रातके समय भगवान्को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयको शून्य देख सबलोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो

१. रामादयः । २. शून्यहृदयः ।

समं कुलिशकर्णेन जाता प्रीतिरनुत्तराः । सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवर्धिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैरं स्वैरं जनकतनयां तौ च सञ्चारयन्तौ स्थायं स्थायं विकटसरसां काननानां तलेषु ।
पायं पायं रसमभिमतं स्वादुभाजां फलानां क्रीडं क्रीडं सुरसवचनं चारुचेष्टासमेतम् ॥३३१॥
प्राप्तौ नानारचनभवनोत्तुङ्गशृङ्गाभिरामं रम्योद्यानावततवसुधं चैत्यसङ्घातपूतम् ।
[1]नाकच्छायं सततजनितात्युत्सवोदारपौरं श्रीमत्स्वानं रविसमरुचि[2]ख्यातिमत्कूवराख्यम् ॥३३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३॥

गये ॥३२९॥ सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम लक्ष्मण सीताको धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए, कूवरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट थे, श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य रचित पद्मचरितमें
वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३३॥

---

१. स्वर्गसदृशम् । २. सत्ख्याति म०, ब० ।

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परमं सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जद्भ्रमरसङ्घाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥
कानने सीतया साकमग्रजन्मा[1] स्थितः सुखम् । अन्तिकां सलिलार्थी तु लक्ष्मणः सरसीं गतः ॥२॥
अत्रान्तरे सुरूपाढ्यो नेत्रतस्करविभ्रमः । एकोऽपि सर्वलोकस्य हृदयेषु समं वसन् ॥३॥
महाविनयसम्पन्नः कान्तिनिर्झरपर्वतः । वरवारणमारूढश्चारुपादातमध्यगः ॥४॥
तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानसः । प्राप्तः कल्याणमालाख्यो जनस्तन्नगराधिपः ॥५॥
महतः सरसस्तस्य दृष्ट्वा[2] तं तीरवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्यामं लक्ष्मणं चारुलक्षणम् ॥६॥
ताडितः कामबाणेन स जनोऽत्यन्तमाकुलः । मनुष्यमब्रवीदेकमयमानीयतामिति ॥७॥
गत्वा कृत्वाञ्जलिं दक्षः स तमेवमभाषत । एह्ययं राजपुत्रस्ते प्रसादात् सङ्गमिच्छति ॥८॥
को दोष इति सञ्चिन्त्य दधानः कौतुकं परम् । जगाम लीलया चार्व्या समीपं तस्य लक्ष्मणः ॥९॥
उत्तीर्य स जनो नागात् पद्मतुल्येन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाम्बरम् ॥१०॥
एकासने च तेनातिप्रतीतः सहितः स्थितः । अपृच्छच्च सखे कस्त्वं कुतो वा समुपागतः ॥११॥
सोऽवोचद् विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दुःखेन तिष्ठति । तावन्नयामि तस्यान्नं कथयिष्यामि ते ततः ॥१२॥
ततः शाल्योदनः सूप उपदंशनवं[3] घृतम् । अपूपा घनबन्धानि व्यञ्जनानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गूँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमें राम तो सुखसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमें गये ॥१-२॥ इसी अवसरमें जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमें एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था। कान्तिरूपी निर्झरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था। मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करनेमें लीन था। जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमें क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलोंके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामबाणसे ताडित होकर अत्यन्त आकुल हो गया। फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइये, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तम्बूमें भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्वस्त हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुखसे बैठा। कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे! तुम कौन हो? और कहाँसे आये हो? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥

अथानन्तर शालिके चावलोंका भात, दाल, ताजा घृत, पुए, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शक्कर और खाँडके लड्डू, पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, साधारण पूड़ियाँ,

१. रामः । २. दृष्टा म० । ३. वस्त्रनिर्मितम् । ४. उपदेशनवं म० । ५. 'घेवर' इति प्रसिद्धानि ।

पानकानि विचित्राणि शर्कराखण्डमोदकाः[1] । शष्कुल्यो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूर्णिकाः ॥१४॥
वस्त्रालङ्कारमाल्यानि लेपनप्रभृतीनि च । अमत्राणि[2] च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
सर्वमेतत् समासन्नपुरुषैः[3] सुमहाजवैः[4] । भाविनानायितं तेन जनेनान्तिकमात्मनः ॥१६॥
अन्तरङ्गः प्रतीहारो जनस्य वचनात् ततः । गत्वा सीतान्वितं पद्मं प्रणम्यैवमभाषत ॥१७॥
अमुष्मिन् वस्त्रभवने भ्राता ते देव तिष्ठति । एतन्नगरनाथश्च विज्ञापयति सादरः ॥१८॥
प्रसादं कुरु तच्छाया शीतलेयं मनोहरा । तस्मादियन्तमध्वानं स्वेच्छया गन्तुमर्हथ ॥१९॥
इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योत्स्नयेव निशाकरः । पद्मः समाययौ बिभ्रन् मत्तद्विरदविभ्रमम् ॥२०॥
दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन समं ततः । अभ्युत्थानं चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥
सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽत्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मानं प्राप्तश्च जनकल्पितम् ॥२२॥
ततः कर्मणि निर्वृत्ते स्वैरं स्नानाशनादिके । समुत्सार्याखिलं लोकमात्मा नीतस्तुरीयताम् ॥२३॥
दूतः पितुः सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशनः[5] । प्रयत्नपरमं कक्ष्यां प्रविश्यानन्यगोचराम् ॥२४॥
नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽत्र बध्योऽसौ[6] ममेति कृतभाषणः ॥२५॥
सद्भावज्ञापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपाटयदसौ तेषां समक्षं कञ्चुकं जनः ॥२६॥
स्वर्गादिव ततोऽपप्तत् काऽप्यसौ वरकन्यका । उपयातेव पातालात् किञ्चिल्लज्जानतानना ॥२७॥
तत्कान्त्यां भवनं लिप्तं लग्नानिलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितांशुभिः ॥२८॥

गुड़मिश्रित पूड़ियाँ, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदि की सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मँगवा ली ॥१३–१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरङ्ग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव ! उस तम्बूमें आपके भाई विराजमान हैं वहीं इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तम्बूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिये ॥१८–१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चाँदनीके सहित चन्द्रमा ही हों ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सन्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमारने अन्य सब लोगोंको दूर कर दिया। वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमें गया। वहाँ उसने नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥२४–२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है। अथवा पातालसे ही निकली है। उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ-कुछ नम्रीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म० । २. पात्राणि । ३. समासन्नपुरुषैः क०, ख० । ४. समहाजवैः म० । ५. इत्युपदेशतः क०, ख०, प्रसन्नः परमो -म० । ६. मध्योऽसौ समेति म०, ख० ।

छेकहंसाश्चिरं त्रस्ताश्चक्षुषी समचूकुचन् । लक्ष्मीरिव स्थिता साक्षात् श्रीरिवोज्झितपङ्कजा ॥२९॥
गृहं प्लावितुमारब्धामिव लावण्यवारिधौ । उत्कीर्णामिव रत्नानां रजसा काञ्चनस्य वा ॥३०॥
कल्लोला इव निर्जग्मुः स्तनाभ्यां कान्तिवारिणः । तरङ्गा इव सञ्जाता मध्ये त्रिवलिराजिते ॥३१॥
[1]चण्डातकं समुल्लङ्घ्य जघनस्य घनं महः । निर्जगामापरं छातं जीमूतं शशिनो यथा ॥३२॥
सुचिरं प्रथितं लोके [2]चञ्चलत्वायशोमलम् । गृहजीमूतवर्तिन्या निर्धौतमिव विद्युता ॥३३॥
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या[3] रामराज्या विराजिता । नितम्बाज्जातया हैमान् महानीलत्विषा यथा ॥३४॥
ततोऽसौ सहसामुक्तनररूपा सुलोचना । ढौकिता जानकीं तेन [4]रतिश्रीरिव लज्जया ॥३५॥
अन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिष्वक्तो मनोभुवा । अवस्थां कामपि प्रापच्चलमन्थरलोचनः ॥३६॥
ततो विशुद्धया बुद्ध्या पद्मस्तामित्यभाषत । दधाना विविधं वेषं का त्वं क्रीडसि कन्यके ॥३७॥
ततोऽशुंकेन संवीय गात्रं प्रवरभाषिणी । जगाद देव ! वृत्तान्तं शृणु सद्भाववेदिनम् ॥३८॥
बालिखिल्य इति ख्यातः पुरस्यास्य पतिः सुधीः । सदाचारपरो नित्यं मुनिवल्लोकवत्सलः ॥३९॥
पृथिवीति प्रिया तस्य गर्भाधानमुपागता । म्लेच्छाधिपतिना चासौ गृहीतः संयुगे नृपः ॥४०॥

कान्तिसे लिप्त हुआ कपड़ेका तम्बू ऐसा दीखने लगा मानो उसमें आग ही लग गई हो तथा लज्जासे युक्त मन्द मुसकानकी किरणोंसे लिप्त होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसोंने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमें उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नों और स्वर्णकी परागसे मानो आच्छादित ही किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल रहे हों और त्रिबलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरङ्गें ही उठ रहीं हों ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लाँघ कर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लँहगाको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघके समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या बिजलीके समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोकमें चञ्चलताके कारण बिजलीके यशमें जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे बिलकुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्वर्णनिर्मित की तरह देदीप्यमान नितम्बस्थलसे उत्पन्न महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित थी ॥३४॥

तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्वचनीय अवस्थाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चञ्चल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! विविध वेषको धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह क्रीड़ा करती है ? ॥३७॥ इसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँक कर कहा कि हे देव ! सद्भावको सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥३८॥

इस नगरका स्वामी 'बालिखिल्य' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करने वाला है ॥३९॥ उसकी

१. 'लहँगा' इति प्रसिद्धं स्त्रीवस्त्रम् । २. चञ्चलत्वायसोमलं (?) म० । ३. रुच्या म० । ४. रतिं श्रीरिव म० ।

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहीभृता । पुत्रश्चेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
ततोऽहं पापिनी जाता मन्त्रिणा वसुबुद्धिना[1] । सिंहोदराय पौंस्नेन कथिता राज्यकांक्षया ॥४२॥
नीता कल्याणमालाख्यां जनन्या रहिताथिकाम्[2] । प्रायो[3] माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
मन्त्री माता च मे वेत्ति कन्येयमिति नापरः । इयन्तं कालमधुना भवन्तः पुण्यवीक्षिताः ॥४४॥
दुःखं तिष्ठति मे तातः प्राप्तश्चारकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सक्तस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
यदत्र द्रविणं किञ्चिद्देशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते[4] दुर्गमायुषे ॥४६॥
वियोगवह्निनात्यन्तं तप्यमाना ममाम्बिका । जाता कलावशेषेव चन्द्रमूर्तिर्गतप्रभा ॥४७॥
इत्युक्त्वा दुःखभारेण पीडिताशेषगात्रिका । सद्यो विच्छायतां प्राप्ता मुक्तकण्ठं रुरुद सा ॥४८॥
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः पद्मेनाश्वासिता ततः । सीतया च निधायाङ्के कुर्वन्त्या मुखधावनम् ॥४९॥
सुमित्रासूनुना चोक्ता शुचं विसृज सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेषेणोचितकारिणी ॥५०॥
शुभे कांश्चित्प्रतीक्षस्व दिवसान् धैर्यसङ्गतान् । म्लेच्छेनग्रहणं किं मे पितरं पश्य मोचितम् ॥५१॥
इत्युक्ते परमं तोषं ताते मुक्त इवागताः । समुल्लसितसर्वाङ्गा कन्यका द्युतिपूरिता ॥५२॥
तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रमः । देवा इव सुखं तस्थुः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
ततः [5]सुप्तजने काले रजन्यां रामलक्ष्मणौ । ससीतौ रन्ध्रमाश्रित्य निष्क्रान्तौ काननालयात् ॥५४॥

प्रियाका नाम पृथिवी है। जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमें म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमें पुत्र होगा तो वह राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुबुद्धि मन्त्रीने राज्यकी आकांक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रक्खा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मङ्गलमय व्यवहारमें ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अब तक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं। आज पुण्योदयसे आप लोगोंके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमें हैं। सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥इस देशमें जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गई है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके समान भारसे जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गई तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमें उसे सान्त्वना दी, सीताने गोदमें बैठाकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि! शोक छोड़ो, इसी वेषसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९–५०॥ हे शुभे! हे कल्याणरूपिणि! धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो। मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसी बात है? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छूटा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो। उस कन्याके समस्त अङ्ग हर्षसे उल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गई ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनमें नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवोंके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१. सुबुद्धिना म० । च सबुद्धिना क०, ख० । २. रहितार्थिकं म० । ३. प्राप्तौ म० । ४. प्रेक्ष्यते म० । ५. सुपूजने म० ।

विबुद्धा तानपश्यन्ती कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुखरा शोकं परमं समुपागता ॥५५॥
महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया[1] निर्घृणेति मनस्विनी ॥५६॥
कृच्छ्रस्त्रियम्य शोकं च वरवारणवर्तिनी । प्रविश्य कूवरं तस्थौ पूर्ववद्दीनमानसा ॥५७॥
ततः कल्याणमालाया रूपेण विनयेन च । हृतचित्ताः क्रमेणैते प्रापुर्मेकलनिम्नगाम्[2] ॥५८॥
उत्तीर्य विहितक्रीडास्तां सुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिक्रम्य प्राप्ता विन्ध्यमहाटवीम् ॥५९॥
स्कन्धावारमहासार्थपरिक्षुण्णेन[3] वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपैः कीनाशैश्च[4] निवारिताः ॥६०॥
क्वचित्सालादिभिर्वृक्षैर्लतालिङ्गितमूर्तिभिः । तद्वनं शोभतेऽत्यन्तं स्वामोदं नन्दनं यथा ॥६१॥
क्वचिद्दावेन[5] निर्दग्धप्रान्तस्थितमहीरुहम् । न शोभते यथा गोत्रं दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
अथावोचत् ततः सीता कर्णिकारवनान्तरे । वामतोऽयं स्थितो ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि[6] कण्टकिनस्तरोः ॥६३॥
[7]वाससमानो मुहुः क्रूरं कलहं कथयत्यरम् । अन्योऽपि क्षीरवृक्षस्थो जयं शंसति वायसः ॥६४॥
तस्मात् तावत् प्रतीक्षेतां मुहूर्तं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभात्यतिसुन्दरः ॥६५॥
ततः क्षणं विलम्ब्यैतौ प्रयातौ पुनरुद्यतौ । तदेव च पुनर्जातं निमित्तं निकटेऽन्तरे ॥६६॥
ब्रुवत्या अपि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्तौ गन्तुमग्रे च म्लेच्छानां सैन्यमुद्गतम् ॥६७॥
तौ निरीक्ष्यैव निर्भीतावायान्तौ वरकार्मुकौ । क्षणेनैकेन तत्सैन्यं काान्दिशीकं पलायितम् ॥६८॥

राम, लक्ष्मण, छिद्र पाकर वनके उस तम्बूसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागने पर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ । वह हाहाकार करती हुई परम शोकको प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें बड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूवर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीडा करते हुए उस नदीको पारकर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलवाहकोंने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आलिङ्गित सागौन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें बाईं ओर कटीले वृक्षकी चोटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आपलोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहान्तर जय प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें म्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो

१. निद्रां समेतायां म० । २. नर्मदां । ३. परिक्षुणेन (?) म० । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्धं प्रान्त म० । ६. कण्टकितस्तरौ म० । ७. शब्दं कुर्वन् । ८. परः म० ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सन्नद्धान्ये समागताः । प्रावृड्मेघसमानेन तेऽपि हासेन निर्जिताः ॥६९॥
ततस्तेऽत्यन्तवित्रस्ता म्लेच्छाः पतितकार्मुकाः । कुर्वन्तः परमं रावं गत्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥७०॥
ततोऽसौ परमं क्रोधं वहंश्चापं च दारुणम् । निर्जगाम महासैन्यः शस्त्रसन्तमसावृतः ॥७१॥
काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वमांसादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥७२॥
तैरावृतां दिशं प्रेक्ष्य पुरो घनकुलासितैः[1] । धनुरारोपयत् कोपं किञ्चिल्लक्ष्माधरो भजन् ॥७३॥
तथा चास्फालितं सर्वंवनमाकम्पितं यथा । ज्वरश्च वनसत्त्वानां जज्ञे प्रकटवेपथुः ॥७४॥
सन्दधानं शरं वीक्ष्य लक्ष्मणं त्रस्तचेतसः । बभ्रमुश्चक्रतां प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषो यथा ॥७५॥
ततः साध्वससम्पूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथाद्वेतौ प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥७६॥
अब्रवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रभुः । आहिताग्निर्द्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥७७॥
प्रतिसन्ध्येति तज्जाया[2] जातोऽहं तनयस्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शस्त्रद्यूतकलान्वितः ॥७८॥
बाल्यात् प्रभृति दुष्कर्मनिरत्यानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्चौर्ये कदाचिच्च शूले भेत्तुमभीप्सितः ॥७९॥
[3]धनिनैकेन तत्राहं श्रद्दधानेन साधुना । मोचितो वेपमानाङ्गः त्यक्त्वा देशमिहागतः ॥८०॥
प्राप्तः कर्मानुभावेन काकोनदजनेशताम् । भ्रष्टस्तिष्ठामि सद्वृत्तात् पशुभिः समतां गतः ॥८१॥
इयन्तं यस्य मे कालं सैन्याढ्या अपि पार्थिवाः । चक्षुषो गोचरीभावमासन् शक्ता न सेवितुम् ॥८२॥
सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विक्लवः । धन्योऽस्मि वीक्षितौ येन भवन्तौ पुरुषोत्तमौ ॥८३॥

क्षणभरमें भाग गई ॥६७–६८॥ तदनन्तर भागती सेनासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोंका स्वामी निकला। बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खाने वाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला ज्वर उत्पन्न हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतर कर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है निरन्तर अग्निमें होम करने वाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है। विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसंध्या है। मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६–७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर खोटे कार्य करनेमें निपुण था। किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया। तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताको प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचारसे भ्रष्ट हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया। मैं धन्य हूँ जिससे

१. मेघसमूहवत्कृष्णैः । २. यजाया म० । ३. धनिनैकेन म० ।

शासनं यच्छतां नाथौ किं करोमि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा वहे पावनपण्डिते ॥८४॥
[1]विन्ध्योऽयं निधिभिः पूर्णो वरयोषिच्छतैस्तथा । भुजिष्यमिच्छतां देवौ मामतो निभृतं परम् ॥८५॥
इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन् पुनरार्तिं परां गतः । पपात विह्वलो भूमौ छिन्नमूलस्तरुर्यथा ॥८६॥
कष्टावस्थां ततः प्राप्तं तमेवं राघवोऽवदत् । कृपालतापरिष्वक्तवीरकल्पमहातरुः ॥८७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वालिखिल्यं विबन्धनम् । कृत्वाऽऽनय द्रुतं प्राप्य सन्मानं परमं सुधीः ॥८८॥
तस्यैवाभिमतो भूत्वा सचिवः सज्जनान्वितः । विहाय सङ्गतिं म्लेच्छैर्विषयस्य [2]हितोऽभवत् ॥८९॥
एतत् चेत् कुरुषे सर्वमन्यथात्वविवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरद्यैव म्रियसेऽन्यथा ॥९०॥
एवं प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादतः । [3]महारथसुतं गत्वा मुमोच विनयान्वितः ॥९१॥
अभ्यङ्गोद्वर्त्य [4]सुस्नातं भोजयित्वा स्वलङ्कृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारेभे तं तदन्तिकम् ॥९२॥
स दध्यौ नीयमानः सन् विस्मयं परमं गतः । इतोऽपि गहनावस्था प्रायो मेऽद्य भविष्यति ॥९३॥
क्वायं म्लेच्छो महाशत्रुः कुकर्मात्यन्तनिर्दयः । क्व चायमतिसन्मानो न मन्येऽद्यासुधारणम् ॥९४॥
इति दीनमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणौ । दृष्ट्वा परां धृतिं प्राप्तोऽवतीर्य सनमस्कृतिः ॥९५॥
अब्रवीत् तौ युवां नाथावागतावतिसुन्दरौ । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
गच्छ क्षिप्रं निजं धाम लभस्वाभीष्टसङ्गमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीत्युक्ते बालिखिल्यः सुधीर्गतः ॥९७॥

पुरुषोंमें उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८२-८३॥ हे नाथ ! आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेमें निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियों तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव ! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्वकी इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृक्षके समान भूमि पर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिङ्गित कल्पवृक्षके समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्थाको प्राप्त हुए म्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुबुद्धि ! उठ-उठ, डर मत, बालिखिल्यको बन्धन रहित कर तथा उत्तम सन्मानको प्राप्त करा कर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री हो सज्जनोंकी संगति कर और म्लेच्छोंकी संगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुझे शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायगा ॥९०॥ 'हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने बड़े आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र बालखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलंकृत किया गया था। ऐसे बालखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामके पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ कहाँ तो यह कुकर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावैरी म्लेच्छ ? और कहाँ यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेंगे ॥९४॥ इस प्रकार बालखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ। उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारे हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ९५-९६॥ राम लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

१. वन्ध्योऽयं ज०, ब० । २. हितोऽभवत्(?) म० । ३. बालखिल्यं म० । ४. सुस्नानं म० ।

कृत्वा सुनिभृतं भृत्यं तस्य विश्वानलाङ्गजम् । यातौ सीतान्वितौ स्वेष्टं कृतिनौ रामलक्ष्मणौ ॥९८॥
बालिखिल्यस्तु सम्प्राप्तः समं रौद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिकां क्षोणीं स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥९९॥
प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा विभूत्या परयान्वितम् । पितरं निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥१००॥
प्रतीतां सनमस्कारां तां समाघ्राय[1] मस्तके । निजयाने पुनः कृत्वा प्रविष्टः कूवरं नृपः ॥१०१॥
पृथिवी महिषी तोषसञ्जातपुलका क्षणात् । पुरातनीं तनुं भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥१०२॥
सिंहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिलाः । गुणैः कल्याणमालायाः परमं विस्मयं गताः ॥१०३॥

उपजातिवृत्तम्

यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचित्रं समार्जयच्चौर्यपरायणः स्वं[2] ।
अनेकदेशप्रभवं विशालं तद्वालिखिल्यस्य गृहं विवेश ॥१०४॥
जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्रभूतौ वशीकृत[3]म्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
सिंहोदरोऽपि प्रतिपन्नशङ्कः स्नेहं ससन्मानमलञ्चकार ॥१०५॥
सोऽयं समासाद्य परां विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
महारथी प्राणसमासमेतो रविर्यथैवं शरदा रराज ॥१०६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३४॥

समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुँचने पर तुम हम लोगोंको जान सकोगे' । इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमान् बालखिल्य अपने घर चला गया ॥९७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥९८॥ बान्धवजनोंकी चेष्टाका स्मरण करता हुआ बालखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा तब निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥९९–१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहिचान कर राजा बालखिल्यने उसका मस्तक सूँघा फिर अपने रथपर बैठाकर कूबर नगरमें प्रवेश किया ॥१०१॥ बालखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये और वह कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण भरमें पुनः प्राप्त हो गई ॥१०२॥ सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणोंसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१०३॥ रौद्रभूतिने चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन इकट्ठा किया था वह सब बालखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति बालखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शङ्काको प्राप्त हुआ सिंहोदर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार महारथी बालखिल्य राम-लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राण प्रियासे इस तरह सुशोभित होने लगा जिस तरह कि शरद्ऋतुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालिखिल्यका वर्णन करनेवाला चौंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

---

१. माघाय म० । २. धनम्, ३. वशीकृते म्लेच्छ म० ।

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशाभिख्याः काननं नन्दनोपमम् । विहरन्तः सुखं प्राप्ता देशमत्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
मध्ये यस्य नदी भाति प्रसिद्धजलवाहिनी । तापीति विश्रुता नानापक्षिवर्गानुनादिता ॥२॥
अरण्ये तत्र निस्तोये सिताऽत्यन्तश्रमान्विता । जगाद राघवं नाथ कण्ठशोषो ममोत्तमः ॥३॥
यथा भवशतैः खिन्नो भव्यो दर्शनमर्हतः । वाञ्छत्येवमहं तीव्रतृष्णयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
[1]इत्युक्त्वा वार्यमाणापि निषण्णा सुतरोरधः । रामेण जगदे देवि विषादं मागमः शुभे ॥५॥
आसन्नोऽयं महाग्रामो दृश्यते विकटालयः । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽत्र शिशिरं वारि [2]पास्यति ॥६॥
एवमुक्ते तया स्वैरं स्वैरं प्रस्थितया समम् । प्राप्तौ तावरुणग्रामं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
आहिताग्निर्द्विजस्तत्र कपिलो नाम विश्रुतः । गेहे तस्यावतीर्णौ तौ यथाक्रममुपागते ॥८॥
अत्राग्निहोत्रशालायामपनीय श्रमं क्षणम् । तद्ब्राह्मण्या जलं दत्तं पपौ सीता सुशीतलम् ॥९॥
यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावदरण्यतः । बिल्वाश्वत्थपलाशैधोभारवाही समागतः ॥१०॥
दावानलसमं यस्य मानसं नित्यकोपिनः । कालकूटविषं वाक्यमुलूकसदृशं मुखम् ॥११॥
कमण्डलुशिखाकूर्चवालसूत्रादिभिः परम् । बिभ्राणः कुटिलं वेषमुञ्छवृत्तिं भजन् किल ॥१२॥
दृष्ट्वा तान् कुपितोऽत्यन्तभ्रुकुटीकुटिलाननः । उवाच ब्राह्मणीं वाचा तक्षन्निव सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनों, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पक्षी समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥१-२॥ वहाँके निर्जल वनमें जब सीता अत्यन्त थक गई तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ बिलकुल सूख गया है ॥३॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्‌के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥४॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गई। रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषादको प्राप्त मत होओ ॥५॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोंसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलें, वहीं शीतल पानी पीना ॥६॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उतरे ॥८॥ वहाँ यज्ञ-शालामें क्षण भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बेल, पीपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जङ्गलसे वापिस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिर पर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुख पर लम्बी चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेषको धारण कर रहा था तथा उञ्छ वृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहोंसे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनोंसे

---

१. इत्युक्ता म० । २. पश्यति म० ।

अयि पापे किमित्येषामिह दत्तं प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्धं गोरपि दुस्सहम् ॥१४॥
पश्येमे निस्त्रपा धृष्टाः केऽपि पांशुलपाण्डुकाः । अग्निहोत्रकुटीं पापा कुर्वन्त्युपहतां मम ॥१५॥
ततः सीताऽब्रवीत् पद्ममार्यपुत्र कुकर्मणः । अस्येदमास्पदं दग्धं परमाक्रोशकारिणः ॥१६॥
वरं पुष्पफलच्छन्नैः पादपैरुपशोभिते । सरोभिश्चातिविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
सारङ्गैरुषितं सार्धं क्रीडद्भिर्निजयेच्छया । श्रूयते नेदृशं तत्र नितान्तं परुषं वचः ॥१८॥
अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषतः ॥१९॥
विप्रस्य रूक्षया वाचा क्षोभितोऽसौ ततोऽखिलः । ग्रामः समागतो दृष्ट्वा तेषां रूपं सुरोपमम् ॥२०॥
अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते[१] पथिकाः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोषं कुर्वन्ति विनयान्विताः ॥२१॥
ततो निर्भर्त्स्य सकलं तं लोकं कोपलोहितः[२] । बभाषे तौ द्विजः प्राप सारमेयो गजाविव ॥२२॥
निष्क्रामत परं गेहान्मदीयादपवित्रकौ । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मीमान् कुपितस्ततः ॥२३॥
ऊर्ध्वपादमधोग्रीवं कृत्वा तं ब्राह्मणाधमम् । अब्रह्मण्यं प्रकूजन्तं शोणितारुणलोचनम् ॥२४॥
भ्रमयित्वा क्षितौ यावदास्फालयितुमुद्यतः । रामेण वारितस्तावदिति कारुण्यधारिणा ॥२५॥
सौमित्रे किमिदं क्लीबे प्रारब्धं भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवत्प्रेतेन ते ननु ॥२६॥
मुञ्चैनं त्वरितं क्षुद्रं यावत्प्राणैर्न मुच्यते । अयशः परमेतस्मिन्नभ्यते केवलं मृते ॥२७॥
श्रमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीबालवृद्धकाः । सदोषा अपि शूराणां नैते वध्याः किलोदिताः ॥२८॥

उसे छील ही रहा हो ॥१३॥ उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुझे पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, ढीठ व्यक्ति मेरी यज्ञ शालाको दूषित कर रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपशब्द कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोंसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नहीं पड़ते ॥१७–१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रूक्ष वचनोंसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥२०॥ गाँवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकानमें एक ओर क्षण भरके लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोंको डाँटते हुए, राम-लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे निकलो । ब्राह्मणका राम-लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हें देखकर भोंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सम्बन्धी आघातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया, वे रुधिरके समान लाल-लाल नेत्रोंके धारक तथा अमाङ्गलिक अपशब्द बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोग्रीव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवी पर पछाड़नेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणाके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए रोका ॥२२–२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस बेचारे दीन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान है, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जब तक यह निष्प्राण नहीं होता है तब तक इस क्षुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरने पर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर

३. ब्राह्मणकान्तां म० । ४. लोललोहितः म० ।

इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । सीतयाऽनुगतो रामः कुटीरान्निरगात्ततः ॥२९॥
धिग् धिग् नीचसमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम् । मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३०॥
वरं तरुतले शीते[1] दुर्गमे विपिने स्थितम् । परित्यज्याखिलं ग्रन्थं विहृतं[2] भुवने वरम् ॥३१॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरणं सेवितुं[3] सुखम् । अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३२॥
कूलेषु सरितामद्रेः कुक्षिष्वत्यन्तहारिषु । स्थास्यामो न पुनर्भूयः प्रवेक्ष्यामः खलालयम् ॥३३॥
[4]निन्दन्नेवं खलासङ्गमभिमानं परं वहन् । निर्गत्य ग्रामतः पद्मो वनस्य पदवीं श्रितः ॥३४॥
घनकालस्ततः प्राप्तो नीलयन्नखिलं नभः । पटुगर्जितसन्तानप्रतिनादितगह्वरः ॥३५॥
ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । सरावविद्युदुद्योतं जहासेव नभःस्फुटम् ॥३६॥
ग्रीष्मडामरकं घोरं समुत्सार्य घनाघनः । जगर्ज विद्युदङ्गुल्या [5]प्रोषितानिव तर्जयन् ॥३७॥
नभोऽन्धकारितं कुर्वन् धाराभिर्नीलतोयदः । अभिषेक्तुं समारेभे सीतां गज इव श्रियम् ॥३८॥
तिम्यन्तस्ते ततोऽभ्यर्णं पृथुन्यग्रोधपादपम् । उपसस्रुः पुरो गेहसमानस्कन्धमुन्नतम् ॥३९॥
[6]इभकर्णो गणस्तेषामभिभूतोऽथ[7] तेजसा । गत्वा स्वामिनमित्यूचे नत्वा विन्ध्यवनाश्रितम्[8] ॥४०॥
आगत्य नाकतः केऽपि मदीये नाथ सद्मनि । स्थिता यैस्तेजसैवाहं तस्मादुद्वासितो द्रुतम् ॥४१॥
श्रुत्वा तद्वचनं स्मित्वा विनायकपतिः समम् । वधूभिः प्रस्थितो गन्तुं न्यग्रोधं वरलीलया ॥४२॥

भी शूर वीरोंके द्वारा वध्य नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे छुड़ाया और लक्ष्मणको आगेकर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२९॥ 'जो दुर्वचन सुननेका कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष जिसे दूरसे ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें वृक्षके नीचे बैठा रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुख पूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूसरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियोंके तटों और पर्वतोंकी अतिशय मनोहर गुफाओंमें रहेंगे परन्तु अब फिर दुर्जनोंके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन संसर्गकी निन्दा करते तथा परम अभिमानको धारण करते हुए रामने गाँवसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्जनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलको सब ओरसे छिपाकर कड़कती हुई बिजलीके प्रकाशके बहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ ग्रीष्म कालके भयंकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजली रूपी अंगुलीके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंको डाँट ही दिखा रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिषेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भीगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृक्षके नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इभकर्ण नामका यक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इभकर्णके वचन सुनकर मन्दहास्य करता हुआ

१. सीते म०, ब० । २. भावे क्तः, विहरणमित्यर्थः । ३. सेविते म० । ४. निन्दन्नेव म० । ५. प्रेषितामिव म० । ६. इभकर्णनामधेयो यक्षः । ७. भूतोऽपि ब०, म० । ८. विन्ध्यमुपाश्रितम् ।

अथेश्वरः स यक्षाणां महाविभवसङ्गतः । रम्यकाननसंसक्तः क्रीडन्पूतनसंज्ञकः ॥४३॥
दूरादेव च तौ दृष्ट्वा महारूपौ गणाधिपः । प्रयुज्यावधिमज्ञासीद् बलनारायणाविति ॥४४॥
ततस्तदनुभावेन वात्सल्येन च भूयसा । क्षणेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
ततस्ते सुखसम्पन्नं सुप्ताः किल सुचारुगा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोधं समुपागताः ॥४६॥
तल्पेऽवस्थितमात्मानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासादं च महारम्यं बहुभूमिकमुज्ज्वलम् ॥४७॥
देहोपकारणव्यग्रं परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥
तेषां महानुभावानां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्धि क्षुद्रविचेष्टितम् ॥४९॥
अशेषवस्तुसम्पन्नास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥
यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महीतले ख्यातिं गता रामपुरीति सा ॥५१॥
प्रतीहारा भटाः शूरा अमात्याः [1]सप्तयो गजाः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवाभवन् ॥५२॥
[2]कुशाग्रनगरेशोऽयं गणिनं पृष्टवानिति । तयोर्नाथ तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातरुत्थाय दात्रहस्तो वनस्थलीम् ॥५४॥
भ्रमंश्च समिदा[3]द्यर्थमकस्मादूर्ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरीं पृथ्वीमपश्यद् विस्मिताननः ॥५५॥
असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिभासुरैः ॥५६॥

यक्षराज, अपनी स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यक्षोंका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य वनोंमें क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधि ज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खण्डका अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको दीखने पर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनाई थी इसलिए महीतल पर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम लक्ष्मणके साथ उस प्रकारका व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिये ॥५३॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफ़ेद तथा अन्य रङ्गोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समान अतिशय देदीप्यमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफ़ेद कमल रूपी छत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका बच्चा ही हो ॥५७॥ यह सब देख,

१. अश्वाः । २. राजगृहनगराधिपः श्रेणिकराजः । ३. समिदाभ्यर्ण-म० ।

पुण्डरीकातपत्रेण मध्ये समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च कैलासस्येव शावकम् ॥५७॥
अचिन्तयच्च कौरेषा अटव्यासीन्मृगाश्रिता । यस्यां समित्कुशाद्यर्थं दुःखं पर्यटितं सदा ॥५८॥
अकस्मात् सेयमुत्तुङ्गशृङ्गमालोपशोभितैः । रत्नपर्वतसंकाशैर्विराजति पुरी गृहैः ॥५९॥
सरांस्यमूनि रम्याणि पद्मादिपिहितानि च । दृश्यन्ते यानि नो पूर्वं मया दृष्टानि जातुचित् ॥६०॥
उद्यानानि सुरम्याणि सेवितानि जनैर्भृशम् । दृश्यन्ते देवधामानि लक्षितानि महाध्वजैः ॥६१॥
वारणैः सप्तिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्कटा । अस्योपकण्ठधरणी घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥
किमेषा नगरी नाकादवतीर्णा भवेदिह । पातालादुद्गताहोस्वित् कस्यापि शुभकर्मणः ॥६३॥
स्वप्नमेवं नु पश्यामि मायेयं वत कस्यचित् । किमु गन्धर्वनगरं पित्तव्याकुलितोऽस्मि किम् ॥६४॥
[1]उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेणास्यान्तिकस्य मे । इति सञ्चिन्तयन् प्राप्तो विषादं परमं द्विजः ॥६५॥
दृष्ट्वा च प्रमदामेकां नानालङ्कारधारिणीम् । अपृच्छदुपसृत्येयं भद्रे कस्य पुरीत्यसौ ॥६६॥
सा जगौ जातु पद्मस्य पुरीयं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीधरो भ्राता सीता च प्राणवल्लभा ॥६७॥
एतत् पश्यसि यद् विप्र पुर्या मध्ये महागृहम् । शरदभ्रसमच्छायमत्रासौ पुरुषोत्तमः ॥६८॥
लोको दुर्लभदर्शेन सर्वोनेनातिदुर्विधः[2] । यच्छता वाञ्छितं द्रव्यं जनितः पार्थिवोपमः ॥६९॥
विप्रोऽवोचदुपायेन केन पश्यामि सुन्दरि । पद्मं सद्भावतः पृष्टा निवेदयितुमर्हसि ॥७०॥
इत्युक्त्वा समिधाभारं निक्षिप्य भुवि साञ्जलिः । पपात पादयोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा मृगोंसे सेवित वही अटवी है ? जिसमें मैं इन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुःख पूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोंके समान दीखनेवाले भवनोंसे अकस्मात् ही सुशोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियों, घोड़ों, गायों और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥ क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्माके प्रभावसे पातालसे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसीकी माया है ? या गन्धर्वका नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमें मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विषादको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं ? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! नगरीके बीचमें जो यह शरद् ऋतुके मेघके समान कान्तिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसीमें वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन वाञ्छित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः बतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने ईन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमें गिर पड़ा, सो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी ? ॥७१॥

१. उपलिङ्ग क० । उपालिङ्गं मरणचिह्नम् इति टिप्पणपुस्तके टिप्पणी । २. अतिदरिद्रः ।

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यक्षिणी । जगाद विप्रं परमं त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
अस्याः पुरः समासन्नां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरलं घोरैर्नूनं नश्यति वीक्षितः ॥७३॥
अस्या द्वारत्रयं पुर्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वीरैः रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोज्ज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्युं मानुषा यान्त्यसंशयम् ॥७५॥
पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य पश्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकापक्षपाण्डुरान् ॥७६॥
मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्द्यानाममीषु [1]प्रतियातनाः ॥७७॥
सामायिकं पुरस्कृत्य तासां यस्तवनं नरः । नमोऽर्हत्सिद्धनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
गुरूपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्द्वारं हन्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥
अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्ध्वोपायं धनागमे ॥८१॥
नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चार्चितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥
मुनेश्चारित्रशूरस्य गत्वासन्नं कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥
ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सद्मनिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुधीः ॥८४॥
धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुश्रूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽवोचत् सुमानसः । नाथ तेऽत्रोपदेशेन चक्षुरुन्मीलितं मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंको भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं। इन रक्षकोंके द्वारा डराये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४–७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पङ्खके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं। उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६–७९॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया। वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा बार-बार उसकी स्तुति कर चारित्र पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बाँध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२–८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोंका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

१. प्रतिम्बाः ।

तृषार्तेनेव सत्तोयं छायेवाश्रयकांक्षिणा । क्षुधार्तेनेव मिष्टान्नं रोगिणेव सुभेषजम् ॥८७॥
दुष्पथप्रतिपन्नेन वर्त्मेवेप्सितदेशगम् । यानपात्रमिवाम्भोधौ व्याकुलेन निमज्जताम् ॥८८॥
मयेदं शासनं जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । [1]लब्धं भवत्प्रसादेन दुर्लभं पुरुषाधमैः ॥८९॥
त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चिद्भवता विद्यते समः । येनायमीदृशो मार्गो तोषितो जिनदेशनः ॥९०॥
इत्युक्त्वा शिरसा पादौ वन्दित्वाऽञ्जलियोगिना[2] । गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य द्विजः स भवनं गतः ॥९१॥
जगाद चाऽतिहृष्टस्तां प्रसन्नविकचेक्षणः । दयिते परमाश्चर्यं गुरोरद्य मया श्रुतम् ॥९२॥
श्रुतं तव न तत्पित्रा जनकेनाथ वा पितुः । किं चाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥
दृष्टं ब्राह्मणि यातेन यदरण्यं मयाद्भुतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानीं विस्मयाय मे ॥९४॥
किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्टं किंवा त्वया श्रुतम् । उक्तोऽवोचन्न शक्नोमि हर्षात्कथयितुं प्रिये ॥९५॥
आदरेणानुयुक्तश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विप्रोऽवोचत शृण्वार्ये यन्मया श्रुतमद्भुतम् ॥९६॥
समिदर्थं प्रयातेन वनं तस्य समीपतः । दृष्टा पुरी मया रम्या यत्रासीद् गहनं वनम् ॥९७॥
तदासन्ने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता [3]कापि मनोहरणभाषिता ॥९८॥
पृष्टा च सा मयाख्यातं तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्धनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीडित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीडित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है। यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७–८९॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन-प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥९०॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९१॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो। ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्ये ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लकड़ियाँ लानेके लिए जङ्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी। जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

१. लब्धोपायं म० । २. योगिनः म० । ३. क्वापि म० ।

ततो गत्वा मया साधोर्जिनेन्द्रवचनं श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुदृष्टिपरितापितः ॥१००॥
मुनयो यं[1] समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
सोऽर्हद्धर्मो मया लब्धस्त्रैलोक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः क्लिश्यन्ते त्वन्यवादिनः ॥१०२॥
यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥
ब्राह्मणी विनिशम्यैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः ॥१०४॥
विधेः पश्य मया योगं मोहाद् विषफलार्थिना । [2]वांच्छेनापि त्वया लब्धमर्हन्नामरसायनम् ॥१०५॥
मयासीन्मन्दधीभाजा मणिर्हस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥
उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्यान्नवेलायां मार्गोऽन्यस्यैव वीक्षितः ॥१०७॥
अर्हन्तं समतिक्रम्य [3]पाकशासनवन्दितम् । ज्योतिष्कव्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
अहिंसानिर्मलं सारमर्हद्धर्मरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भक्षितं विषम् ॥१०९॥
मानुषद्वीपमासाद्य त्यक्त्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्नं कृतः कष्टं बिभीतकपरिग्रहः ॥११०॥
सर्वमद्यप्रवर्तेषु दिवारात्रौ च भोजिषु । अव्रतेषु विशीलेषु दत्तं फलविवर्जितम् ॥१११॥
यं किलातिथिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
परित्यक्तोत्सवतिथिः सर्वस्वैकान्तनिस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयमतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥
येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तारयन्ति निर्ग्रन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

धन देते हैं ॥९९॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अरहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया। वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१–१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणीके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ 'मेरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोह वश विषफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रञ्चमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अर्हन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहाङ्गणमें साधु आये और मैंने उनका अपमान कर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे खिन्न दिगम्बर मुनि घर आये सो उन्हें हटा कर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हन्तको छोड़कर मैंने ज्यौतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंको शिर झुका-झुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अर्हन्त भगवान्का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अङ्गीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त हैं, रात दिन इच्छा-नुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे बिलकुल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके हाथमें न

१. यत् समाश्रित्य म० । २. विगता इच्छा यस्य स तेन । ३. इन्द्रवन्दितं ।

स्वशरीरेऽपि निस्संगा ये लुभ्यन्ति न जातुचित् । ते निष्परिग्रहा ज्ञेया मुक्तिलक्षणभूषिताः ॥११५॥
एवमुद्गतसद्दृष्टिः कुदृष्टिमलवर्जिता । सुशर्मा शुशुभे पत्यौ भरणीव बुधे परम् ॥११६॥
पादमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुव्रतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्भिता ॥११७॥
विज्ञाय कपिलं रक्तं परमं जिनशासने । कुलान्याशीविषोग्राणि विप्राणां भेजिरे शमम् ॥११८॥
मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य सुदृढं मतम् । बभूवुः श्रावकास्तीव्रा ऋजुश्चैव सुबुद्धयः ॥११९॥
कर्मभारगुरूभूता मानोत्तानितमस्तकाः । स्तोकेन नरकं घोरं न याता[1] स्मः प्रमादिनः ॥१२०॥
अज्ञातमिदमप्राप्तं जन्मान्तरशतेष्वपि । जिनेन्द्रशासनं ब्रह्म कृच्छ्रात् प्राप्तं सुनिर्मलम् ॥१२१॥
ध्यानाशुशुक्षणाविद्धे मनऋत्विक्समाहिताः । स्वकर्मसमिधो भावसर्पिषा जुहुमोऽधुना ॥१२२॥
इति केचित् समाधाय मनः संवेगनिर्भराः । विरक्ताः सर्वसंगेभ्यो बभूवुः श्रमणोत्तमाः ॥१२३॥
सागारधर्मरक्तस्तु कपिलः परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणीमूचे सदभिप्रायवर्तिनीम् ॥१२४॥
कान्ते रामपुरीं किं नो व्रजामोऽद्य तमूर्जितम् । विशुद्धचेष्टितं द्रष्टुं रामं [2]राजीवलोचनम् ॥१२५॥
आशापरायणं नित्यमुपायगतमानसम् । दारिद्र्यवारिधौ मग्नमाधूनं[3] कुक्षिपूरणे ॥१२६॥
जनमुत्तारयत्येष किल भव्यानुकम्पकः । इति कीर्तिर्भ्रमत्यस्य निर्मलाह्लादकारिणी ॥१२७॥
उत्तिष्ठैवं गृहाणैवं प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिमं शिशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्ग्रन्थ साधु ही संसार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निःस्पृह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिगम्बर मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ जानना चाहिये' ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणीको उन्हीं गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीविष साँपके समान अत्यन्त उग्र थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जान कर शान्तिभावको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुबुद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान्‌का अत्यन्त सुदृढ़ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जावेंगे ॥११९–१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भाव रूपी घीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्निमें होमेंगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था। एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६–१२७॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलोंका पिटारा तुम ले

१. याताः स्म म०, ज० । २. कमललोचनम् । ३. जन्मदरिद्रम् । इति ज० पुस्तके टिप्पणम् ।

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती सम्पदान्वितौ । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेषविभूषितौ ॥१२९॥
व्रजतोश्च तयोरुग्रा तस्थुः पन्नगाः पथि । दंष्ट्राकरालवक्त्राश्च वेतालास्तारहासिनः ॥१३०॥
एवमादीनि वस्तूनि भीषणान्यवलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागतौ ॥१३१॥
नमस्त्रिलोकवन्द्येभ्यो जिनेभ्यः सततं त्रिधा । उत्तीर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१३२॥
एतयोः स्तुवतोरेवं विदित्वा जिनभक्तिताम् । भेजिरे प्रशमं यक्षास्तौ च प्राप्तौ जिनालयम् ॥१३३॥
ततो नमो निषद्याया इत्युक्त्वा रचिताञ्जली । कृत्वा प्रदक्षिणं स्तोत्रमुदचीचरतमिदम् ॥१३४॥
विहाय लौकिकं मार्गं महादुर्गतिदुःखदम् । भवन्तं शरणं नाथ चिरेण समुपागताः ॥१३५॥
चतुर्भिर्विंशतिं युक्तामक्षरणां महात्मनाम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३६॥
पञ्चस्वैरावताख्येषु भरताख्येषु पञ्चसु । जिनान्नमामि वास्येषु तान्नमामि जिनांस्त्रिधा ॥१३७॥
यैः संसारसमुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकालं सर्ववास्येषु तान्नमामि जिनांस्त्रिधा ॥१३८॥
मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं यस्य सुविशुद्धं प्रकाशते ॥१३९॥
इति कृत्वा स्तुतिं जानुमस्तकस्पृष्टभूतलौ । नेमतुस्तौ जिनं भक्त्या परिहृष्टतनूरुहौ ॥१४०॥
ततोऽसौ कृतकर्तव्यो रक्षैः सौम्यैः प्रियंवदैः । अनुज्ञातः समं पत्न्या द्रष्टुं हलिनमुद्ययौ ॥१४१॥
राजमार्गेऽद्रिसंकाशान् प्रासादान् विमलत्विषः । ब्राह्मण्यै दर्शयन् याति दिव्यनारीसमाकुलान् ॥१४२॥

लो और मैं इस सुकुमार बच्चेको कन्धे पर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कह कर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनों दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए। अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डाँटोंसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयङ्कर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे। वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय हैं, जो भयङ्कर संसाररूपी कर्दमसे पार हो चुके हैं तथा जो उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोंकी जिन-भक्तिको जान कर यक्ष शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्‌की वसतिकाके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोंने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनों ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपकी शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थङ्करोंकी चौबीसीको हम नमस्कार करते हैं। पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थङ्कर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६–१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोंको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थङ्करोंको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुव्रत भगवान्‌को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुति कर घुटनों और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया। उस समय भक्तिके कारण उन दोनोंके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रक्षकोंने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य स्त्रियोंसे भरे जो

१. रामम्। २. द्रिसंकाशान् म०।

ऊचे च कुन्दसंकाशैः सर्वकामगुणान्वितैः । राजते भवनैर्यस्य पुरीयं स्वर्गसन्निभा ॥१४३॥
तस्यैतद्भवनं भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्या मध्ये विराजते ॥१४४॥
ब्रुवन्निति महाहृष्टः स विवेश च तद्गृहम् । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं दूराद्भृशमाकुलतां गतः ॥१४५॥
दध्यौ सञ्जातकम्पश्च सोऽयमिन्दीवरप्रभः । व्यथितो दुर्विदग्धोऽहं चित्रैर्येन तदा वधैः ॥१४६॥
कर्णयोरतिदुःखानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे जिह्वे निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥
किं करोमि क्व गच्छामि विवरं प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहीनस्य भवेच्छरणमद्य कः ॥१४८॥
अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेत् । समुल्लंघ्योत्तरामाशां देशत्यागः कृतो भवेत् ॥१४९॥
एवमुद्वेगमापन्नो विहाय ब्राह्मणीं द्विजः । प्रपलायितुमुद्युक्तो लक्ष्मणेन विलोकितः ॥१५०॥
स्मित्वा च स जगादार्य कुतो विप्रः समागतः । वनसंवर्धितात्मेव किमित्याकुलतामितः ॥१५१॥
समाश्वासमिमं नीत्वा द्रुतमानय तं द्विजम् । पश्यामस्तावदेतस्य चेष्टितं किमयं वदेत् ॥१५२॥
न भेतव्यं न भेतव्यं निवर्तस्वेति चोदितः । अधिगम्य समाश्वासं निवृत्तः स्खलितक्रमः ॥१५३॥
उपसृत्य भयं त्यक्त्वा प्रसृतो धवलाम्बरः । पुष्पाञ्जलिस्तयोरग्रे स्थित्वा स्वस्त्यित्यशब्दयत् ॥१५४॥
ततो लब्धासनासीनो निकटस्थाङ्गनो द्विजः । ऋग्भिः स्तवनदक्षाभिरस्तौषीद् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥
ततः पद्मो जगादैवं तां नः कृत्वा विमानताम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विजः ॥१५६॥
सोऽब्रवीन्न मया ज्ञातं त्वं प्रच्छन्नमहेश्वरः । मोहाद्विमानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिलः ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित, भवनोंसे जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर रामका यह भवन समीपवर्ती अन्य महलोंसे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भवनमें प्रवेश किया। वहाँ वह दूर से ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कँपकँपी छूटने लगी। वह विचार करने लगा कि नील कमलके समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस उसय मुझ मूर्खको नाना प्रकार के वधसे दुखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गई। वह मन ही मन अपनी जिह्वासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानोंके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यों है ? बाहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस बिलमें घुस जाऊँ ? आज मुझ शरणहीनका यहाँ कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यदि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लाँघकर देशत्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्वेगको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणीको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिये, नहीं डरना चाहिये, लौटो', इस प्रकार कहने पर वह सान्त्वनाको प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापिस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अञ्जलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ ऋचाओंके द्वारा रामलक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा हे देव !

स्थितिरेषा जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥१५८॥ *
अधुना त्वं मया ज्ञातः सोऽसि नान्यः कदाचन । द्रविणानीह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥
नित्यमर्थयुतं देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्त्यर्थपरित्यक्तं निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१६१॥
अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वितः । सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥१६३॥
मांसाशनान्निवृत्तानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन सम्पन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥१६४॥
राजन् विचित्ररूपोऽयं लोको मानुषलक्षितः । मादृशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽत्र यो जनः ॥१६५॥
आस्तां तावद्भवानत्र वन्द्यते ये भवद्विधैः । पराभवं विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधवः ॥१६६॥
पूर्वं सनत्कुमाराख्यः किं ते ज्ञातो न चक्रभृत् । महर्द्धयः सुरा यस्य रूपं द्रष्टुमिहागताः ॥१६७॥
सोऽपि श्रामण्यमासाद्य सम्प्राप्तः परिभूतताम् । पर्यटन् क्वचिन्नेभे भिक्षामाचारकोविदः ॥१६८॥
वनस्पत्युपजीविन्या तर्पितः सोऽन्यदा मुनिः । [1]पञ्चाश्चर्यगुणैश्वर्यमाददे विजये पुरे ॥१६९॥
सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा करं कटकभास्वरम् । केयूरभूषितभुजो वदरार्थमढौकयत् ॥१७०॥
वदरं नैकमप्यस्मै निःस्वोऽसावददात्ततः । अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कमवाप्नुयात् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्निके समान मोहवश मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवान्‌की ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान मनुष्यका ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जब मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई। पर वही मनुष्य जन-धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मांस भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अन्य त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगोंको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपकी बात जाने दीजिये आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए। आचार-शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पञ्चाश्चर्यरूपी गुणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ जिनकी भुजा बाजूबन्दसे विभूषित थी ऐसे सुभूमने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ बेरके लिए बढ़ाया परन्तु यह दरिद्र है यह समझकर उनके लिए किसीने एक बेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि विशेषको नहीं

१. पञ्चाश्चर्यं जगुश्चर्यं म० ।

अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥१७२॥
न कृता मन्दभागेन कस्मादभ्यागतक्रिया । तदा मयेति मेऽद्यापि तप्यते मानसं भृशम् ॥१७३॥
रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । भृशं क्रुद्धोऽपि को नाम न यथावतिविस्मयम् ॥१७४॥
एवमुक्त्वा शुचा ग्रस्तं रुदन्तं कपिलं गिरा । शुभयासान्त्वयद् रामः सुशर्माणं च जानकी ॥१७५॥
ततो हेमघटाम्भोभिः किङ्करै राघवाज्ञया । कपिलः श्रावकः प्रीत्या स्नापितः सह भार्यया ॥१७६॥
परमं भोजितश्चायं वस्त्रै रत्नैश्च भूषितः । सुभूरिधनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं यद्यपि यातोऽयं[1] तथापि सुविचक्षणः ॥१७८॥
सन्मानविशिखैर्विद्धो दष्टो[2] गुणमहोरगैः । उपचारहतात्मासौ धृतिं न लभते द्विजः ॥१७९॥
दध्यौ चाहं पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धभारकः । यथा शोषितदेहः स तृषितोऽत्यन्तदुर्विधः ॥१८०॥
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि पश्य यक्षाधिपोपमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविवर्जितः ॥१८१॥
आसीन्मे शीर्णपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकाद्यशुचिसंलिप्तं गृहं गोमयवर्जितम् ॥१८२॥
अधुना धेनुभिर्व्याप्तं बहुप्रासादसङ्कुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥
हा मया पुण्डरीकाक्षौ भ्रातरौ गृहमागतौ । निर्भर्त्सितौ विना दोषं तौ मृगाङ्कनिभाननौ ॥१८४॥

जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कब प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई-सभी लोग, स्वकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे विवश हैं । जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपको आतिथ्य-क्रिया क्यों नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिशय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रान्त हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री सुशर्माको समझाया ॥१७५॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे किंकरोंने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोंमें रक्खे हुए जलसे प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलंकृत किया । तदनन्तर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापिस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान् ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगोपभोगके पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी बाणोंसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा-शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोष को प्राप्त नहीं होता था । भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात-दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहाँ तो मैं दुष्ट कि जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहाँ ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गाँवमें इतना अधिक दरिद्र था कि कन्धेपर लकड़ियोंका गट्ठा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गाँव में मैं रामके प्रसादसे यक्षराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था, अनेक छिद्रोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्री रामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलोंसे संकीर्ण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, बड़े खेदकी बात है कि मैंने

१. जातोऽयं म० । २. दृष्टो म० ।

यद्ग्रीष्मातपतप्ताङ्गौ समं देव्या विनिर्गतौ । तन्मे प्रतिष्ठितं शल्यं हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥
तावन्मे नास्ति दुःखस्य छेदो यावदिदं गृहम् । परित्यज्य निरारम्भः प्रव्रजिष्याम्यसंशयम् ॥१८६॥
उपलभ्यास्य वैराग्यं बन्धुवर्गः ससम्भ्रमः । धाराभिरुत्ससर्जास्रं दीनः साकं सुशर्मणा ॥१८७॥
निरीक्ष्य स्वजनं विप्रो निमग्नं शोकसागरे । अपेक्षापेतया बुद्धया निर्जगाद शिवोत्सुकः ॥१८८॥
विचित्रस्वजनस्नेहैरत्युत्तुङ्गमनोरथैः । मूढोऽयं दह्यते लोकः किं न जानीथ[1] भो जनाः ॥१८९॥
इति संवेगमापन्नः प्रियां दुःखेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविक्लवकारिणम् ॥१९०॥
अष्टादश सहस्राणि धेनूनां सिततेजसाम् । रत्नपूर्णं च भवनं दासीयोषित्समाकुलम् ॥१९१॥
सुशर्मायां समारोप्य तनयं द्रविणं तथा । बभूव कपिलः साधुर्निरारम्भो निरम्बरः ॥१९२॥
सद्यानन्दमतेः शिष्यः सुप्रतीतस्तपोधनः । चकार गुरुतां तस्य गुणशीलमहार्णवः ॥१९३॥

वियोगिनीवृत्तम्

विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीवधः[2] ।
परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रहः ॥१९४॥
य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रह्वमतिः शृणोति वा ।
उपवाससहस्रसम्भवं लभतेऽसौ रविभासुरः फलम् ॥१९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व ॥३५॥

कमलके समान नेत्रोंके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुशोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयों का अपराधके विना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ ग्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर संतप्त हो रहे थे ऐसे दोनों भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमें सदा शल्यकी तरह गड़ा हुआ चञ्चल हो उठता है ॥१८५॥ निःसन्देह मेरे दुःखका अन्त तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निरारम्भ हो दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥

तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके घबड़ाये हुए दीन-हीन भाई बन्धु, सुशर्मा ब्राह्मणीके साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनको शोकरूपी सागरमें निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे मानवो! बड़े-बड़े मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जनोंके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८–१८९॥ इस प्रकार संवेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणीके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०–१९२॥ सद्यानन्द मतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९३॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी काँवरको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ व्रत रूपी लक्ष्मीसे आलिङ्गित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें कपिलका वर्णन करनेवाला पैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३५॥

---

१. जानाति भो जनः । २. धीरधीः म०, ब० ।

षट्त्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुक्रमतः [1]काले विकालप्रतिमे गते । घोरान्धकारसंरुद्धे विद्युच्चकितभीषणे ॥१॥
जातायां सुप्रसन्नायां शरदि प्रीतिनिर्भरः । ऊचे यक्षाधिपः पद्मं प्रस्थातुं कृतमानसम् ॥२॥
क्षन्तव्यं देव यत्किञ्चिदस्माकमिति दुष्कृतम् । विधातुं शक्यते केन योग्यं सर्वं भवादृशाम् ॥३॥
इत्युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे गुह्यकाधिपम् । त्वयापि निखिला स्वस्य क्षन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
सुतरां तेन वाक्येन जातः ससम्भावनः । यक्षाणामधिपो नत्वा सम्भाष्य विपुलक्रियम् ॥५॥
हारं स्वयंप्रभाभिख्यं ददौ पद्माय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे [2]हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याणं सीतायै विलसत्प्रभम् । महाविनोददक्षां च वीणामीप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यक्षराजः पुरीकृताम् । मायां समहरत्किञ्चिद्दधानः शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्तव्यकरणाच्च ससम्मदः । अमन्यत परिप्राप्तमुदारं शिवमात्मनः ॥९॥
पर्यटन्तो महीं स्वैरं नानारसफलाशिनः । विचित्रसङ्कथासक्ताः रममाणाः सुरा इव ॥१०॥
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं द्विपसिंहसमाकुलम् । जनोपभुक्तमुद्देशं वैजयन्तपुरं गताः ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिक्चक्रे तमसावृते । नक्षत्रमण्डलाकीर्णे सञ्जाते गगनाङ्गणे ॥१२॥
अपरोत्तरदिग्भागे क्षुद्रलोकभयावहे । यथाभिरुचिते देशे ते पुरो निकटे स्थिताः ॥१३॥
अथात्र नगरे राजा प्रसिद्धः पृथिवीधरः । इन्द्राणी महिषी तस्य योषिद्गुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त और बिजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जब क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गई तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उसी समय यक्षोंका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव ! हमारी जो कुछ त्रुटि रह गई हो वह क्षमा कीजिये क्योंकि आप जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहने पर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिये अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिये ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयंप्रभ नामका अद्भुत हार दिया। लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदीप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामाङ्गलिक देदीप्यमान चूड़ामणि तथा महाविनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जब वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यक्षराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥

अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवोंके समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहोंसे व्याप्त महावनको पारकर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी आँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे क्षुद्र मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस

१. वर्षाकाले । २. लक्ष्मणाय ।

तनया वनमालेति तयोरत्यन्तसुन्दरी । बाल्यात् प्रभृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणश्रुतेः ॥१५॥
श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रव्रज्यासमये वचः । [1]रक्षितुं क्वापि [2]निर्यातं रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥१६॥
ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायातियोग्याय पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥
तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥
अंशुकेन वरं कण्ठं विवेष्ट्यासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
विधिच्छलेन केनापि गत्वारण्यं दिनक्षये । ध्रुवमद्यैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
प्रयाहि भगवन् भानो संप्रेषय निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं दीना पादयोः प्रपतामि ते ॥२१॥
शर्वरीं भण्यतां यात्वा कांक्षन्ती दुःखभागिनी । संवत्सरसमं वेत्ति दिनं द्रागागम्यतामिति ॥२२॥
इति सञ्चिन्त्य सा बाला गतेऽस्तं तिग्मतेजसि । सोपवासा समासाद्य पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥
प्रवरं रथमारुह्य सखीजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवीं किलार्चितुम् ॥२४॥
यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगतः ॥२५॥
अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुप्तश्च सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥
[3]निश्शब्दपदनिक्षेपातितो वनमृगीव सा । निष्क्रम्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे भयवर्जिता ॥२७॥
ततस्तस्याः समाघ्राय गन्धं परमसौरभम् । एवं सूनुः सुमित्राया दध्यौ सम्मदमुद्वहन् ॥२८॥
ज्योतीरेखेव काप्येषा मूर्तिरत्रोपलक्ष्यते । कुमार्या श्रेष्ठया भाव्यमनया कुलजातया ॥२९॥

नगरका राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि स्त्रियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी। वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमें अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके दीक्षा लेनेके समय कथित वचनोंका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वस्त्रसे कण्ठ लपेट वृक्षपर लटक कर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके बहाने सायंकालके समय वनमें जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो। मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंमें पड़ती हूँ। जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता पिताकी आज्ञा प्राप्तकर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोंके साथ वैभव पूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गई ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमें तथा वनके जिस प्रदेशमें राम सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमें उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन देवताकी पूजा की। तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशङ्क हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नांई उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

---

१. रक्षितं क०, ख० । २. निर्जातं ज० । ३. निःशब्दवननिक्षेपामतो म० ।

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्ती परं दुःखवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥
अज्ञातचिन्तिता नूनमेषात्मानं जिघांसति । पश्यामि तावदेतस्याश्चेष्टामन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
इति सञ्चिन्त्य निरशब्दो भूत्वा वटतरोरधः । तस्थौ कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
तमेव पादपं सापि प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवक्त्रा तनूदरी ॥३३॥
लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुक्तिभिः । वेद्मि तावदिमां सम्यक् कुतः कृत्यं भविष्यति ॥३४॥
अंशुकेनाम्बुवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
एतत्तरुनिवासिन्यः शृणुताहो सुदेवताः । भवतीभ्यो नमाम्येषा प्रसादः क्रियतां मयि ॥३६॥
वाच्यो मद्वचनादेवं भवन्तीभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् ध्रुवम् ॥३७॥
यथा त्वद्विरहे बाला वनमाला सुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥
अंशुकेन समालम्ब्य स्वं सा न्यग्रोधपादपे । त्वन्निमित्तमसून् तन्वी त्यजन्त्यस्माभिरीक्षिता ॥३९॥
एवमुक्तं त्वया नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमः कृतोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
एवं निगद्य शाखायां समर्पयति पाशकम् । सम्भ्रान्तश्च समालिङ्ग्य सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥४१॥
अयि मुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन् मद्भुजालिङ्गनोचिते । कस्मादंशुकपाशोऽयं त्वया सुमुखि सज्ज्यते ॥४२॥
अहं स लक्ष्मणो मुञ्च पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येषि बालिके ॥४३॥
इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सान्त्वनकोविदः । जहार लक्ष्मणः फेनपुञ्जं तामरसादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥२९॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ' ॥३१॥ इस प्रकार विचार कर कौतुक भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्प वृक्षके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसीके समान थी, जो स्तनोंके भारसे झुकी हुई सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देख लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शब्दोंसे ठीक-ठीक मालूम तो करूँ कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णवाले वस्त्रसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोंका भी मन हरण करनेमें समर्थ वाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो इस वृक्षके निवासी देवताओ ! सुनिये, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्न पूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्यु लोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वट-वृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टाँगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशाङ्गीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गई है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कह कर वह ज्यों ही शाखा पर फाँसी बाँधती है त्यांही घबड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिङ्गन कर यह कहा कि हे मूर्खे ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिङ्गन के योग्य है, हे सुमुखि ! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुझे विश्वास न हो तो जैसा सुन रक्खा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कह कर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

---

१. प्रसादं म० ।

ततोऽसौ त्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मणं नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
परं विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसङ्गमजन्मना ॥४६॥
किमयं वनदेवीभिः प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभिः सन्देशवचनैः परम् ॥४७॥
सोऽयं यथाश्रुतो नाथः सम्प्राप्तो दैवयोगतः । भवेद्येन मम प्राणाः प्रयान्तो विनिवारिताः ॥४८॥
इति सञ्चिन्तयन्ती सा किञ्चित्प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषं लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसंस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥
अपश्यंश्च समुत्थाय पप्रच्छ जनकात्मजाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुतः ॥५१॥
प्रदोषे संस्तरं कृत्वा सोऽस्माकं पुष्पपल्लवैः । आसीदनतिदूरस्थः कुमारो ह्यत्र नेक्ष्यते ॥५२॥
नाथ वाह्वायतां तावदिति तस्यां कृतध्वनौ । क्रमादत्युच्चया वाचा वचो व्याहृतवानिति ॥५३॥
एह्यागच्छ क्व यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं तात त्वरितं बालकानुज ॥५४॥
अयमायामि देवेति दत्वास्मै संभ्रमी वचः । वनमालासमेतोऽसौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागतः ॥५५॥
अर्धरात्रे तदा स्पष्टे निशानाथः समुद्ययौ । ववौ कुमुदगर्भाश्लेषी वायुः सामोदशीतलः ॥५६॥
ततः पल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां रचिताञ्जलिः । अंशुकावृतसर्वाङ्गा त्रपाविनमितानना ॥५७॥
ज्ञातनिश्शेषकर्तव्या बिभ्राणा विनयं परम् । बालावन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा सीता लक्ष्मणमब्रवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कृतः ॥५९॥
कथं जानासि देवीति पद्मेनोक्ता जगाद सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुल्यप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फाँसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देख कर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गई ॥४५॥ नवसमागमके कारण कुछ-कुछ काँपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि क्या मेरे सन्देश वचनोंसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिङ्गन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंकी उत्कृष्ट शय्या पर पड़े रामकी जब निद्रा हटी तो उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ? ॥५०–५१॥ सायंकालके समय तो वह फूल तथा पत्तोंसे हमारी शय्याकर यहीं पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए । तब रामने यथाक्रमसे उच्च-वाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहाँ चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहाँ हो, आवाज देओ ॥५३–५४॥ रामको आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ा कर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अग्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और कुमुदोंके गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु बह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अञ्जलि बाँध रक्खी थी, वस्त्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७–५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ?

ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागतः । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालयानया ॥६१॥
यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति ब्रुवन् । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्थौ ह्रिया किञ्चिन्नताननः ॥६२॥
उत्फुल्लनेत्रराजीवाः प्रमोदार्पितचेतसः । प्रसन्नवक्त्रतारेशाः सुशीला विस्मयान्विताः ॥६३॥
कथाभिः स्मितयुक्ताभिः याताभिः स्थानयुक्तताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया नष्टनिद्राः सुखं स्थिताः ॥६४॥
सख्योऽत्र वनमालायाः समये बोधमागताः । शयनीयं तथा शून्यं ददृशुस्त्रस्तमानसाः ॥६५॥
ततोऽश्रुपूर्णनेत्राणां गवेषव्याकुलात्मनाम् । तासां हाकारशब्देन प्रबोधं भेजिरे भटाः ॥६६॥
उपलभ्य च वृत्तान्तं सन्नद्धारूढसप्तयः । शूराः पदातयश्चान्ये कुन्तकार्मुकपाणयः ॥६७॥
दिशः सर्वाः समास्तीर्य दधावुद्भ्रान्तमानसाः । भीतिप्रीतिसमायुक्ताः समीरस्येव शावकाः ॥६८॥
ततः कैरपि ते दृष्टाः समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहनैः ॥६९॥
ज्ञातनिश्शेषवृत्तान्तैस्तैरलं सम्मदान्वितैः । पृथिवीधरराजस्य कृतं दिष्ट्याभिवर्धनम् ॥७०॥
उपायारम्भमुक्तस्य तवाद्य नगरे प्रभो । जगाम प्रकटीभावं महारत्ननिधिः स्वयम् ॥७१॥
पपात नभसो वृष्टिर्विना मेघसमुद्भवात् । परिकर्मविनिर्मुक्तं सस्यं क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥
जामाता लक्ष्मणोऽयं ते वर्तते निकटे पुरः । जीवितं हातुमिच्छन्त्या सङ्गतो वनमालया ॥७३॥
पद्मश्च सीतया साकं परमो भवतः प्रियः । शच्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विराजते ॥७४॥
वदतामिति भृत्यानां वचनैः प्रियशंसिभिः । सुखनिर्झरचेतस्को मुमूर्छ नृपतिः क्षणम् ॥७५॥

इसके उत्तरमें सीताने कहा कि हे देव ! मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिये ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चाँदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रही हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नतानन हो पास ही में बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुख रूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गई थी ऐसे वे सब, स्थानकी अनुकूलताको प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुखसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियाँ जागीं तो शय्याको सूनी देख भयभीत हो गईं ॥६५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रहीं थीं ऐसी उन सखियोंकी हाहाकारसे योद्धा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो घोड़ोंपर आरूढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमें ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमें वायुके बच्चोंके समान जान पड़ते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दौड़े ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाओंने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देख कर शीघ्रगामी वाहनोंसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाओंने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्य वृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वयं ही महारत्नोंका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना बखेरना आदि क्रियाओंके बिना ही खेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरके निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्द्रके समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले भृत्योंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुखका

ततः प्रबुद्धचित्तेन परं प्रमदर्मायुषा । दत्तं बहुधनं तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७६॥
अचिन्तयच्च ह्री साधु सञ्जातं दुहितुर्मम । अनिश्चितगतिः प्राप्तो यदयं सुमनोरथः ॥७७॥
सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥७८॥
योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥
अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥८१॥
इति सञ्चिन्त्य जायायै तं वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथयद्रोषादक्षरैः कृच्छ्रनिर्गतैः ॥८२॥
पुनः पुनरपृच्छत् सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । सञ्जातनिश्चयादाप स्वसंवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥
ततो रामाधरच्छाये समुद्यति दिवाकरे । प्रेमसम्पूरितो राजा सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८४॥
वरवारणमारुह्य द्युत्या परमया युतः । प्रतस्थे परमं द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसङ्गमम् ॥८५॥
माता च वनमालायाः पुत्रैरष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिविकां रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
अनन्तरं नृपादेशात् कशिपुः प्रचुरं हितम् । गन्धमाल्या दिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥
ततो दूरात् समालोक्य संफुल्लेक्षणपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा ढुढौके राममादरी ॥८८॥
परिष्वज्य महाप्रीत्या सहितं लक्ष्मणेन तम् । अपृच्छत् कुशलं कृष्टि[1] जानकीं च सुमानसः ॥८९॥

झरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षातिरेकसे क्षण भरके लिए मूर्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुख रूपी चन्द्रमा मन्द मुसकानसे धवल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्मसुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमें सौ योजनका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमें प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथमें आई हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंमें बीचमें, पहाड़की चोटीपर विषम मार्ग तथा समुद्र के मध्यमें भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा सब समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशङ्कासे बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल-लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था। तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोंसे सहित, परम कान्तिसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठों पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथी से उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि विधानके वेत्ता तथा शोभा हृदयके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम लक्ष्मणका आलिङ्गनकर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

१. विधिवेदी ।

[1]तद्देव्यपि तयोः पृष्ट्वा क्षेमं सुस्निग्धलोचना। निखिलाचारनिष्णाता जानकीं परिषस्वजे ॥९०॥
उपचारो यथायोग्यं तयोस्तैरपि निर्मितः। आचार्यकं हिते[2] याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥९१॥
वीणावेणुमृदङ्गादिसहितो गीतनिःस्वनः। क्षुब्धार्णवसमो जज्ञे वन्दिवृन्दानुनादितः ॥९२॥
उत्सवः स महाञ्जातः पूजिताखिलसज्जनः। नृत्यल्लोक[3]क्रमन्यासादतिकम्पितभूतलः ॥९३॥
दिशस्तूर्यनिनादेन प्रतिशब्दसमन्विताः। चक्रुः परस्परालापमिव सम्मदनिर्भराः[4] ॥९४॥
शनैः प्रसन्नतां याते तस्मिन्नथ महोत्सवे। शरीरकर्म तैः सर्वं कृतं स्नानाशनादिकम् ॥९५॥
ततः सप्तिद्विपारूढसामन्तशतवेष्टितौ। सारङ्गोपमपादातमहाचक्रपरिच्छदौ ॥९६॥
पुरःप्रवृत्तसोत्साहराजस्थपृथिवीधरौ। विदग्धसूतलोकेन कृतमङ्गलनिस्वनौ ॥९७॥
हारराजितवक्षस्कावनर्घांशुकधारिणौ। हरिचन्दनदिग्धाङ्गावारूढौ रथमुत्तमम् ॥९८॥
नानारत्नांशुसम्पर्कसमुद्भूतेन्द्रकार्मुकौ। शशाङ्कभास्कराकारावशक्यगुणवर्णनौ ॥९९॥
सौधर्मैशानदेवाभौ जानकीसहितौ पुरम्। कुर्वाणौ विस्मयं तुङ्गं प्रविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥१००॥
वरमालाधरौ गन्धबद्धषट्पदमण्डलौ। सम्पूर्णचन्द्रवदनौ विनीताकारधारिणौ ॥१०१
यक्षेणेव कृते तस्मिन्नलामे पुटभेदने। रेमाते परमं भोगं भुञ्जानौ निजयेच्छया ॥१०२॥

चार पूछा ॥८९॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम-लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सीताका आलिङ्गन किया ॥९०॥ उन सबने भी राजा रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अतिशय निपुणताको प्राप्त थे ॥९१॥ तदनन्तर जो वीणा बाँसुरी मृदङ्ग आदिके शब्दसे सहित था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें बन्दीजनोंके द्वारा उच्चारित विरुदावलीका नाद गूँज रहा था ऐसा सङ्गीतका शब्द होने लगा ॥९२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे जिसमें भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥९३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रही थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रहीं थीं ॥९४॥ अथानन्तर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उन्होंने स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥९५॥

तदनन्तर जो हाथी घोड़ों पर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियोंका बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर वन्दीजन जिनके आगे मङ्गल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्षःस्थल हारोंसे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नाना रत्नोंकी किरणोंके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान जिनके आकार थे, जिनके गुणोंका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पड़ी थीं, सुगन्धिके कारण जिनके आस-पास भ्रमरोंने मण्डल बाँध रक्खे थे, जिनके मुख चन्द्रमाके समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥९६–१०१॥ जिस प्रकार पहले, यक्षके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भी वे इच्छानुसार उत्कृष्ट

१. तद्देव्यापि म० । २. हितो याता ज० । ३. नृत्यलोक म० । ४. सम्मदनिर्झराः म० ।

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति वनगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।
अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थलाभान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-पुराणे-पद्मायने वनमालाभिधानं नाम षट्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३६॥

भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत हैं तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक हैं ऐसे मनुष्य सघन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

अन्यदाथ सुखासीनं समुदीरिततत्कथम् । राघवालङ्कृतास्थानं राजानं पृथिवीधरम् ॥१॥
दूराध्वपरिखिन्नाङ्गो लेखवाहः समाययौ । प्रणम्य च समासीनो द्रुतं लेखं समार्पयत्[1] ॥२॥
गृहीत्वासौ ततो राज्ञा वाहनामकलक्षितः[2] । लेखकायार्पितः साधुं सन्धिविग्रहवेदिने[3] ॥३॥
स विमुच्यानुवाच्यैनं वाचितो[4] राजचक्षुषा । लिपिचुञ्चुर्विधौ चारुरित्यवाचयदुच्चगीः ॥४॥
स्वस्तिस्वस्तिलकोदारप्रभावमतिकर्मणे । श्रीमते नतराजानामतिवीर्याय शर्मणे ॥५॥
श्रीनन्द्यावर्तनगरान्नगराज इवोत्थितः[5] । ख्यातः पञ्चमहाशब्दः शस्त्रशास्त्रविशारदः ॥६॥
राजाधिराजताश्लिष्टः प्रतापवशिताहितः । अनुरञ्जितसर्वक्ष्मः समुद्यद्भास्करद्युतिः ॥७॥
अतिवीर्यः समस्तेषु कर्तव्येषु महानयः । राजमानगुणः श्रीमानतिवीर्यः क्षितीश्वरः ॥८॥
आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अक्षरैर्लेखसंक्रान्तैः कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥९॥
यथा मे केचिदेतस्मिन् सामन्ता धरणीतले । सकोपवाहनास्ते मे वर्तन्ते पार्श्ववर्तिनः ॥१०॥
आयान्बहुविधा म्लेच्छाश्चतुरङ्गसमन्विताः । नानाशास्त्रकरा वाश्यमर्चन्ति समभूतयः ॥११॥
वराञ्जननगाभानां करिणामष्टभिः शतैः । समीरशावतुल्यानां सहस्रैर्वाजिनां त्रिभिः ॥१२॥
महाभोगो महातेजा मद्गुणाकृष्टमानसः । राजा विजयशार्दूलः सोऽद्य प्राप्तो ममान्तिकम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें सुखसे विराजमान थे, पास ही में राम भी सभाको अलंकृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमें दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-२॥ वह पत्र जिसे दिया जाता था उसके नामसे अङ्कित था। राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्धिविग्रहको अच्छी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सब लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सन्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला। एक बार स्वयं बाँचा और फिर उच्च स्वरसे इस प्रकार बाँच कर सुनाया ॥४॥ उसमें लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान् है लक्ष्मीमान् है, तथा नम्रीभूत राजाओंके लिए सुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है मङ्गलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, प्रसिद्ध है, महायशका धारी है, शस्त्रमें निपुण है, राजाधिराजपनासे आलिङ्गित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुरञ्जित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्योंमें महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्द्यावर्तपुरसे विजयनगरमें वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरोंसे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी तल पर मेरे जो सामन्त हैं वे खजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देदीप्यमान हैं तथा जो एक सदृश विभूतिके धारक हैं ऐसे म्लेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरङ्ग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी है तथा जिसका मन हमारे गुणोंसे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अंजनगिरिके समान आभावाले आठ

१. समर्पयत् म० । २. वाहनामाङ्कलक्षितः म० । ३. साधुः सन्धि म० । ४. वापितो म०, ख० । ५. इव स्थितः ख० ।

मृगध्वजो रणोर्मिश्च कलभः केसरी तथा । अङ्गा महीभृतः षड्भिरमी करटिनां शतैः ॥१४॥
प्रत्येकं पञ्चभिः सप्तिसहस्त्रैश्च समावृताः । प्राप्ताः कृतमहोत्साहा नयपण्डितबुद्धयः ॥१५॥
उत्साहयन् छलोद्वृत्तं नयशास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमात्मार्थकारिणं ज्ञातकारणम् ॥१६॥
द्विरदानां सहस्रेण तैर्युतानां च सप्तभिः । पौण्ड्रपमापतिरालीनः प्रतापं परमं वहन् ॥१७॥
साधनेन तदग्रेण सम्प्राप्तो मगधाधिपः । पूर्यमाणो नृपैर्वाहो रैवो नदशतैरिव ॥१८॥
सहस्रैरागतोऽष्टाभिर्दन्तिनां जलदत्विषाम् । अश्वीयेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधृक् ॥१९॥
सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च[२] नन्दनः । तुल्या वज्रधरस्यैते सम्प्राप्ता यवनाधिपाः ॥२०॥
अवार्यवीर्यसंप्राप्तः सिंहवीर्यो महीपतिः । वाङ्गः सिंहरथश्चैतौ मातुलौ बलशालिनौ ॥२१॥
पदातिभी रथैर्नागैः स्थूरीपृष्ठैः प्रतिष्ठितैः । वत्सस्वामी समायातो मारिदत्तोऽतिभूरिभिः ॥२२॥
आंवष्ठः प्रोष्ठिलो राजा सौवीरो धीरमन्दिरः । प्राप्तौ दुर्वेदसंख्येन साधनेनान्विताविमौ ॥२३॥
एतेऽन्ये च महासत्त्वा राजानः श्रुतशासनाः । अक्षौहिणीभिरायाता दशभिस्त्रिदशोपमाः ॥२४॥
अमीभिरनुयातोऽहं प्रस्थितो भरतं प्रति । त्वामुदीक्षे यतो लेखदर्शनानन्तरं ततः ॥२५॥
आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या कार्याप्रेक्षितया तथा । पश्यामोऽत्यादरेण त्वां यथा वर्षं कृषीवलाः ॥२६॥
एवं च वाचिते लेखे न यावत्पृथिवीधरः । किञ्चिदूचे सुमित्रायाः सूनुस्तावदभाषत ॥२७॥

सौ हाथियों और वायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ, और केसरी नामके अङ्ग देशके राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोड़ोंसे समावृत हो आ पहुँचे हैं ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीति शास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सब गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पञ्चाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ोंके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाह में सैकड़ों नदियाँ आकर मिलती है इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ वज्रको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथियों और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोड़ोंकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भवनोंके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वङ्ग देशका राजा सिंहरथ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ोंके साथ आया है ॥२२॥ अम्बष्ठ देश का राजा प्रोष्ठिल और सुवीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोनों असंख्यात सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवोंकी उपमा धारण करने वाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवणकर सेनाओंके साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सब राजाओं को साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र

१. अश्वानाम्। २. सानुभद्रस्यनन्दन म०,

अतिवीर्ये तथाक्रुद्धे भरतस्य विचेष्टितम् । तव कीदृगिति ज्ञातं भद्रस्य[1] दूतस्य ते ॥२८॥
एवं वायुगतिः पृष्टो जगाद निखिलं मम । विदितं राजचरितमन्तरङ्गो ह्ययं परः ॥२९॥
इच्छामि विशदं श्रोतुमित्युक्ते पुनरब्रवीत् । शृणु चित्तं समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वामिनास्माकं गत्वा भरतमब्रवीत् ॥३१॥
दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य प्रणताखिलभूभृतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यासमनीषिणः ॥३२॥
सम्प्राप्य साध्वसं यस्मान्नरकेसरिणः परम् । भजन्ते रिपुसारङ्गा न निद्रां वसतिष्वपि ॥३३॥
विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमेखला । आज्ञां पाणिगृहीतेव कुरुते परिपालिता ॥३४॥
आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सत्क्रियः । वर्णैर्मदास्यविन्यस्तैरूर्जितात्मा समन्ततः ॥३५॥
यथा भज समागत्य भृत्यतां भरत द्रुतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य भज पारमुदन्वतः ॥३६॥
ततः क्रोधपरीताङ्गः शत्रुघ्नश्चण्डया गिरा । जगाद निष्प्रतीकारो दावानल इवोत्थितः ॥३७॥
भजत्येव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा सञ्जायते युक्तमिदं तावत्प्रभाषितम् ॥३८॥
विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुर्भुवम् । यात्येवोदन्वतः[2] पारं वशीकुर्वन् कुमानवान् ॥३९॥
वचस्त्वां ज्ञापयामीति नितरां तस्य नोचितम् । रासभस्य यथा मत्तवारणाधिपगर्जितम् ॥४०॥
सूचयत्यथवा तस्य मृत्युमेतद्वचः स्फुटम् । उत्पातभूतमेतो वा स नूनं वायुवश्यताम् ॥४१॥

बाँचे जानेपर राजा पृथिवीधर जब तक कुछ नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुझे मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह रुष्ट होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होने का क्या कारण है ? ॥२७–२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरङ्ग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है। जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१–३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रु रूप मृग अपनी वसतिकाओंमें निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी स्त्रीके समान बड़ी विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सब ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुखमें स्थापित किये हुए अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४–३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर क्रोधसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियों पर छोड़ क्षुद्र मनुष्योंको वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७–३९॥ परन्तु मैं तुझसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना बिलकुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है

१. भद्रास्य दूत सन्मते ब० । भद्रस्य इतस्य ते म० (!) । २. यात्येवोन्नतः म० ।

वैराग्याद्थवा ताते तपोवनमुपागते । [1]नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
यद्यप्युपशमं यातस्तातानिर्मुक्तिकाम्यया । तथापि निर्गतस्तस्मात्स्फुलिङ्गस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥
सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिघातनम् ॥४४॥
इत्युक्त्वा दह्यमानोरुवेणुकान्तारभीषणम् । जहास तेजसास्थानं प्रसमानः इवाखिलम् ॥४५॥
जगाद च कुदूतस्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽल्पवीर्यस्य सत्यङ्कार इव द्रुतम् ॥४६॥
इत्युक्ते पादयोर्दूतो गृहीत्वा कुपितैर्भटैः । सारमेय इवागस्वी[2] हन्यमानः कृतध्वनिः ॥४७॥
आकृष्टो नगरीमध्यं यावन्मुक्तश्च दुःखितः । दग्धो दुर्वचनैर्धूलीधूसरो निरगात्ततः ॥४८॥
ततः सागरगम्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्वं दुर्वचः श्रुत्वा किञ्चित्कोपमुपागतः ॥४९॥
केकयानन्दनः श्रीमान्सुप्रभानन्दनान्वितः । विनिर्नाथुररिं पुर्या निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥
श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः कनकः पुरुसाधनः । प्राप सिंहोदराद्याश्च राजानो भक्तितत्पराः ॥५१॥
चक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्यावर्तं प्रजा रक्षन् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥
अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारप्रदर्शिना । परमं क्रोधमानीतः क्षुब्धाकूपारभीषणः ॥५३॥
भरतायाग्निरोचिष्णुर्गन्तुं संविदधे मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः कृतानेकमहाद्भुतैः ॥५४॥
ततो ललाटभागेन युवचन्द्राकृतिः[3] श्रितः । वनमालापितुः संज्ञां कृत्वा स्वैरं बलोऽवदत् ॥५५॥

कि वह उत्पातरूपी भूतसे ग्रस्त है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जाने पर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पङ्कसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जाने पर भी उसका बच्चा हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए बाँसोंके बड़े वनके समान भयङ्कर वचन कह कर तेजसे समस्त सभाको ग्रसता हुआ शत्रुघ्न जोरसे हँसा ॥४५॥ और बोला कि वयानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाय ॥४६॥ शत्रुघ्नके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे योद्धाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़ कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान काँय-काँय करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्यतक घसीट कर उसे छोड़ दिया। तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोंसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर कुछ क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मन्त्रियोंको साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ वह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिंहोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय-नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिखानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्य पूर्ण कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसा राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

* १. नरेन्द्रेशा समाविष्टो नरेन्द्रो स समा० म०, ज० । २. अपराधी (?) ३. कृतिः श्रितः म० ।

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्येन समो भ्राता ज्येष्ठोऽसावपमानितः ॥५६॥
आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा लेखवाहं महीधरः । प्रतिप्रेष्याकरोन्मंत्रं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥
अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छद्मना तं व्रजाम्यहम् । एवं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्रब्धमब्रवीत् ॥५८॥
अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्यं संरंभेण तु पार्थिव ॥५९॥
तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः सुप्रयुक्तमहं तव । पुत्रजामातृभिः सार्धमन्तं तस्य व्रजाम्यरेः ॥६०॥
इत्युक्त्वा रथमारुह्य परं सारबलान्वितैः । महीधरसुतैः साकं ससीतो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥
नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रववृते जवी । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटेंतरे ॥६२॥
तनुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयैः सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥
जगाद जानकी नाथ भवतः सन्निधौ मम । वक्तुं नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भास्करे ॥६४॥
तथापि देव भाषेऽहं प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वंशलतातोऽपि मणिः संगृह्यते ननु ॥६५॥
अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महासाधनसंगतः । क्रूरकर्मा कथं शक्यो जेतुं भरतभूभृता ॥६६॥
[1]अतस्तन्निर्जये तावदुपायाश्चिन्त्यतां द्रुतम् । सहसारभ्यमाणं हि कार्यं भजति संशयम् ॥६७॥
त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्धं प्रशस्यते ॥६८॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्किमेवं देवि भाषसे । पश्य श्वो निहितं पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
रामपादरजःपूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थातुं क्षुद्रवीर्ये तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५–५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो विदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७–५९॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जँवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१–६२॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ग्राह्य होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमें पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरण-धूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

१. अतस्तं निर्जये म० ।

न यावदथवा याति भानुरस्तं कुतूहली । वीक्ष्यतां तावदद्यैव क्षुद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
युवगर्वसमाध्माता सम्बन्धितनया अपि । एतदेव वचोऽमुञ्चन्प्रतिशब्दमिवोन्नतम् ॥७२॥
ततः पद्मो निवार्यैतां भ्रूभङ्गेन महामनाः । अब्रवील्लक्ष्मणं धैर्याद्दब्धिं गण्डूषयन्निव ॥७३॥
युक्तमुक्तमलं तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटीकृतं तु नात्यन्तमत्यासादनभीतया ॥७४॥
अस्याः शृणु यदाकूतमतिवीर्यो बलोद्धतः । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तुं रणाजिरे ॥७५॥
भागो न भरतस्तस्य दशमोऽपि भवत्यतः । तस्य दावानलस्यायं किं करोति महागजः ॥७६॥
दन्तिभिश्च समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमैः । भरतो नैव [2]शक्तोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
भरतस्य जये नात्र संशयोऽपि समीक्ष्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥
कष्टमेककयोर्जाते विरोधे कारणं विना । पक्षद्वयं मनुष्याणां जायते [3]विवशक्षयम् ॥७९॥
दुरात्मनातिवीर्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुगोत्रस्य कलङ्कः पश्य कीदृशः ॥८०॥
नेक्ष्यते सन्धिरप्यत्र शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृतं दोषं शत्रावत्युद्धते शृणु ॥८१॥
विभावर्यां तमिस्रायां किलावस्कन्ददायिना । रौद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥
निद्रावशीकृतान् वीरान् बहून् कृत्वा मृतक्षतान् । हस्तिनश्च दुरारोहान् प्रगलद्दाननिर्झरान् ॥८३॥
चतुःषष्टिसहस्राणि वाजिनां वातरंहसाम् । शतानि सप्त चेभानामञ्जनाद्रिसमत्विषाम् ॥८४॥
बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभिः । भरतस्यान्तिकं किं ते न श्रुतानि जना[4]स्यतः ॥८५॥

सामने देव भी खड़े होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्यकी तो बात ही क्या है ? ? ॥७०॥ अथवा कुतूहलसे भरा सूर्य जब तक अस्त नहीं होता है तब तक आज ही अणुवीर्यकी मृत्यु देख लेना ॥७१॥ तरुण लक्ष्मणके गर्वसे फूले राजा पृथिवीधरके पुत्रोंने भी प्रतिध्वनिके समान यही जोरदार शब्द कहे ॥७२॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रकुटिके भंगसे पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाय इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूँकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अतः भरतके द्वारा रणाङ्गणमें वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोंसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोंसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नहीं कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है अथवा दो में से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोंका विनाश तो होगा ही ॥७८॥ जब बिना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्षके मनुष्योंका विवश होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥ इस विषयमें सन्धि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानी शत्रुघ्नने लड़कपनके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोष—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्नने अन्धेरी रातमें छापा मार-मार कर उसके बहुतसे निद्रानिमग्न वीरोंको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और जिनसे मदके निर्झर झर रहे थे ऐसे बहुतसे हाथियोंको मारा । पवनके समान वेगशाली चौंसठ हजार घोड़े और अञ्जनगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे तीन दिन तक चुराकर भरतके पास ले गया सो क्या लोगोंके मुँहसे तुमने सुना नहीं

१. मृत्युम् । २. शक्योऽस्य । ३. विवशः क्षयम् । ४. लोकमुखात् ।

दृष्ट्वा कलिङ्गराजस्तान् गाढशल्यान् बहून्नृपान् । जीवेन च विनिर्मुक्तान् हृतं ज्ञात्वा च साधनम् ॥८६॥
सम्प्राप्तः परमं क्रोधमप्रमत्तः समन्ततः । वैरिनिर्यातनं कृत्वा बुद्धौ रणमुदीक्ष्यते ॥८७॥
दण्डोपायं परित्यज्य भरतो मानिनां वरः । हेतुं तज्जिजये नान्यं प्रयुङ्क्ते बुद्धिमानपि ॥८८॥
अथ त्वं साधयस्येयं केनैतन्न प्रतीयते । शक्तिस्ते प्रभवेत्तात तीव्रांशोरपि पातने ॥८९॥
किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव प्रदेशे भरतोऽधुना । निर्गत्य च तथायुक्तं प्रकटीकरणं ननु ॥९०॥
अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् । तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गताः ॥९१॥
इति मंत्रयमाणस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवीर्यग्रहोपाये ततो मंत्रः समापितः ॥९२॥
प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसङ्कथः । सुखेन शर्वरीं नीत्वा रामः स्वजनसङ्गतः ॥९३॥
आवासान्निर्गतोऽपश्यदार्यिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवनं भक्त्या प्रविवेश च साञ्जलिः ॥९४॥
नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधायार्यांजनस्य च । सकाशे वरधर्माया गणपाल्याः सशस्त्रिकाम् ॥९५॥
स्थापयित्वा कृती सीतां कृत्वात्मानं च [1]वर्णिनीम् । स्त्रीवेषधारिभिः सार्धं सुरूपैर्लक्ष्मणादिभिः ॥९६॥
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वारं प्रतस्थे लीलयान्वितः ॥९७॥
सुरेन्द्रगणिकातुल्यं[2] वीक्ष्य तं वर्णिनी जनम् । सर्वः पौरजनो लग्नः पश्चाद्गन्तुं सविस्मयः ॥९८॥
सर्वलोकस्य नेत्राणि मनांसि च सुचेष्टिताः । हरन्त्यस्ता नृपागारं प्राप्ता द्वारि सुमण्डनाः ॥९९॥

है ? ॥८१-८५॥ कलिङ्गाधिपति अतिवीर्यने जब देखा कि बहुतसे राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्प्राण हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ । अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिमें वैरीसे बदला लेनेका विचार कर रणकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीति नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुममें तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकल कर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरस कर गये हुए रात्रिके मेघोंके समान अत्यन्त प्रशंसनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते-करते रामको, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनोंके साथ मिले हुए रामने, प्रमाद रहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुखसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्यिकाओंसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेशकर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्यिकाओंको नमस्कार किया । वहाँ आर्यिकाओंकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रक्खा तथा सीताके पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े । तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्‌की मङ्गलमयी पूजाकर सबलोगोंके साथ रामने लीलापूर्वक राजमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकी की तुलना करनेवाली उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओं और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणी सब लोगोंके नेत्र और मनको हरतीं हुई राजमहलके द्वारपर पहुँचीं ॥९९॥

१. नृत्यकारिणीम् । २. तुल्यं वीक्षितुं वर्णिनीं जनः म० ।

ते चतुर्विंशतिर्भक्त्या जिनेन्द्रा भक्तितत्परैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेवातेवा[1] ध्वनिं पुरः ॥१००॥
कृत्वा पुराणवस्तूनि गातुमुत्फुल्ललोचनाः । गम्भीरभारतीतानासक्ताश्चारणयोषितः[2] ॥१०१॥
ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा तासां नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोदके ॥१०२॥
ततो रेचकमादाय ललिताङ्गविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभावं जगाम वरवर्तनी ॥१०३॥
सस्मितालोकितैस्तस्या विगलद्भ्रूसमुद्गमैः । गमकानुगतैः कम्पैस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥
मन्थरैश्चारुसञ्चारैर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलताहारैः सुलीलकरपल्लवैः ॥१०५॥
पादन्यासैर्लघुस्पृष्टविमुक्तधरणीतलैः[3] । आशु सम्पादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः[4] ॥१०६॥
त्रिकस्य वलनैर्भोगगात्रसन्दर्शितात्मभिः । कामबाणैरिमैर्लोकैः[5] सकलः समताड्यत ॥१०७॥
मूर्छनाभिः स्वरैर्ग्रामैर्यथास्थानं नियोजितैः । नर्तकी सा जगौ वल्गु परिलीनसखीस्वरम् ॥१०८॥
यत्र यत्र समुद्देशे[6] नर्तकी कुरुते स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वा नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥
तस्या रूपेण चक्षूंषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्द्वयेनापि बद्धानि सदसो दृढम् ॥११०॥
उत्फुल्लमुखराजीवा सामन्ता दानतत्परा । बभूवुर्निरलङ्कारा संव्यानाम्बरधारिणः[7] ॥१११॥
आतोद्यानुगतं[8] नृत्यं तत्तस्याश्चिद्दशानपि । वशीकुर्वीत कैवास्था सुहरेष्वन्यजन्तुषु[9] ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान खींचनेमें आसक्त थीं ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमें तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थंकरोंको भक्ति पूर्वक नमस्कार करती हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-तेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोंमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियोंकी अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे खिंचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रस्सीसे खिंचा काष्ठका भार खींचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अङ्गोंको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सन्मुख गई ॥१०३॥ वहाँ उसका मन्द-मन्द मुसकानके साथ देखना, भौंहोंका चलाना, विज्ञ मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, धीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मटकाना, भुजा रूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्त रूपी पल्लवोंका फिराना, जिनमें शीघ्रतासे स्पर्शकर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीरके अवयवोंका दिखलाना आदि कामके बाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़े गये थे ॥१०४-१०७॥ वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरों तथा ग्रामों—स्वरोंके समूहसे सखियोंके स्वरको अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥ वह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ सारी सभाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन, रूप तथा स्वर दोनोंसे मजबूत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियोंको पुरस्कार देते-देते अलङ्काररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पहिननेके वस्त्र ही बाकी रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन वादनसे सहित उस नृत्यकारिणीका वह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल बात थी

१. तेवा तेवा इत्यनुकरणशब्दम् । २. नानाशक्त्याश्चारण म० । ३. स्पष्ट म० । ४. विवर्तने म० । ५. इमैः इति छान्दसिक सयोगः । ६. च सद्देशे म० । ७. संख्यानां वरधारिणी म० । ८. आताद्यानुगतं (?) म० । ९. समरेष्वन्य ख० ।

विधाय वृषभादीनां चरितस्य प्रकीर्तनम् । संक्षेपेण वशीकृत्य समितिं[1] सकलां भृशम् ॥११३॥
संगीतेन समुद्युक्ता राजानमिति नर्तकी । दधाना परमां दीप्तिमुपालब्धुं[2] सुदुस्सहम् ॥११४॥
अतिवीर्य किमेतत्ते दुष्टं व्यवसितं महत् । नयहीनमिदं वस्तु तेनात्र त्वं नियोजितः ॥११५॥
किमिति स्वविनाशाय केकयानन्दनस्त्वया । शान्तचेताः शृगालेन केसरीव प्रकोपितः ॥११६॥
एवं गतेऽपि बिभ्राणः परमं विनयं द्रुतम् । सम्प्रसादय तं गत्वा यदि ते जीवितं प्रियम् ॥११७॥
जाता विशुद्धवंशेषु वरक्रीडनभूमयः । माभूवन् विधवा भद्र तवैता वरयोषितः ॥११८॥
एतास्त्वया परित्यक्ता विमुक्ताशेषभूषणाः । ध्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमसा यथा ॥११९॥
निवर्तय द्रुतं चित्तमशुभध्यानतत्परम् । उत्तिष्ठ व्रज निर्मानो[3] नमस्य भरतं सुधीः ॥१२०॥
एवं कुरु न चेदेवं कुरुषे पुरुषाधम । ततोऽद्यैव विनष्टोऽसि संशयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥
जीवत्येवानरण्यस्य पौत्रे राज्यं समीहसे । चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ॥१२२॥
पतितस्याद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलभस्येव मूढस्य दुष्पक्षस्य प्रियद्युतेः ॥१२३॥
देवेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । [4]अलगर्दोपमो भूत्वा प्रतिस्पर्धनमिच्छति ॥१२४॥
ततो निर्भर्त्सनं स्वस्य भरतस्य च शंसनम् । निशम्य संसदा साकमभूत्ताम्रेक्षणो नृपः ॥१२५॥
विरक्ता च सभात्यन्तपरं रूषितमानसा[5] । जुघूर्णार्णववेलेव भ्रूतरङ्गसमाकुला ॥१२६॥

ऐसे अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११२॥ इस तरह संक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरों के चरित्रका कीर्तन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह सङ्गीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिसे रहित है, किसने तुझे इस कार्यमें लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह शृगाल सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुझे अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमि स्वरूप तेरी ये स्त्रियाँ विधवा न हों ॥११८॥ तुझसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभित नहीं होंगी ॥११९॥ इसलिए अशुभ ध्यानमें जाने वाले अपने चित्तको शीघ्र ही लौटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान् है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पोता भरतके जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देदीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्ति के लोभी तथा कमजोर पङ्खोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हमलोगोंके रूपपर आसक्त तथा खोटे सहायकोंसे युक्त तुझ मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके साँपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत हैं उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणीके मुखसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अतिवीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रूक्ष हो गया था जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रकुटिरूपी तरङ्गोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१२६॥

१. सन्मतिं म० । २. मुपलब्धुं म० । ३. मान-रहितः । ४. अलगर्दो जलव्यालः । ५. परुपत्वत-मानसा म० ।

अतिवीर्यो रुषा कम्पो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पत्य नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
मण्डलाग्रं समाक्षिप्य वीक्षमाणेषु राजसु । जीवग्राहं विषण्णात्मा केशेषु जगृहे दृढम् ॥१२८॥
उद्यम्य नर्तकी खड्गं पश्यन्ती नृपसंहतिम् । जगादाविनयी योऽत्र स मे वध्यो विसंशयम् ॥१२९॥
परित्यज्यातिवीर्यस्य पक्षं विनयमण्डनाः । भरतस्य द्रुतं पादौ नमत प्रियजीविताः ॥१३०॥
भरतो जयति श्रीमान् गुणस्फीतांशुमण्डलः । दशस्यन्दनवंशेन्दुर्लोकानन्दकरः परः ॥१३१॥
लक्ष्मीकुमुद्वती यस्य विकासं भजते तराम् । द्विषत्तपननिर्मुक्ता कुर्वतः परमाद्भुतम् ॥१३२॥
उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वरः । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपमं महत् ॥१३३॥
यस्य चारणकन्यानामिदमीदृग्विचेष्टितम् । भरतस्य स्वयं तस्य शक्तिः शक्रं जयेदपि ॥१३४॥
न विद्मः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवम् ॥१३५॥
ततः करिणमारुह्य राघवः सातिवीर्यकः । सहितः परिवर्गेण ययौ जिनवरालयम् ॥१३६॥
अवतीर्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वितः । चक्रे सुमहतीं पूजां कृतमङ्गलनिस्वनः ॥१३७॥
वरधर्मापि सर्वेण सङ्घेन सहिता[1]परम् । राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाय समर्पितः । तस्यासौ वधमुद्युक्तः कर्तुमोच्यत[2] सीतया ॥१३९॥
मावीवधोऽस्य लक्ष्मीमन् कन्धरां निष्ठुराशय । केशेषु मागृहीगाढं कुमारं भज सौम्यताम् ॥१४०॥
को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापदं नराः । रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम्[3] ॥१४१॥

क्रोधसे काँपते हुए अतिवीर्यने ज्योंही तलवार उठाई त्योंही नर्तकीने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उछल कर तलवार छीन ली और सब राजाओंके देखते-देखते अतिवीर्यको जीवित पकड़ कर मजबूतीसे उसके केश बाँध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठा कर राजाओंकी ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह निःसन्देह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वंशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंकी यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रको भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालों पर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथी पर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतर कर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मङ्गलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वसंघके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थीं रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्रायके धारी हो इसकी ग्रीवा मत छेदो और न जोरसे इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस बेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

१. सहितः म० । २. भणितं । ३. साधुना म० ।

इतरोऽपि[1] खलीकर्तुं साधूनां नोचितो जनः । किमुतायं नरेशानां सहस्राणां प्रपूजितः ॥१४२॥
कुर्वेनं मुक्तकं भद्र भवतायं वशीकृतः । जानानः स्वस्य सामर्थ्यं कानुगच्छति साम्प्रतम् ॥१४३॥
गृहीत्वा समयेनास्य सन्मानमुपलम्भिताः । विमुच्यन्ते पुनर्भूयो मर्यादेयं चिरन्तनी ॥१४४॥
इत्युक्तो मस्तके कृत्वा करराजीवकुड्मलम् । जगाद लक्ष्मणो देवि यद्ब्रवीषि तथैव तत् ॥१४५॥
आस्तां स्वामिनि ते वाक्यात्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यमुं पूज्यं कुर्वीयं त्वत्प्रसादतः ॥१४६॥
एवं प्रशान्तसंरम्भे सद्यो लक्ष्मीधरे स्थिते । अतिवीर्यो विबुद्धात्मा स्तुत्वा पद्ममभाषत ॥१४७॥
साधु साधु त्वया चित्रं कृतमीदृग्विचेष्टितम् । कदाचिदप्यनुत्पन्ना ममाद्य मतिरुद्गता ॥१४८॥
विमुक्तहारमुकुटं दृष्ट्वा तं करुणान्वितः । विश्रब्धं राघवोऽवोचत् सौम्याकारपरिग्रहः ॥१४९॥
मा व्रजीरङ्ग दैन्यं त्वं धत्स्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विताः ॥१५०॥
न चात्र काचिदापत्ते नंद्यावर्ते[2] क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५१॥
अतिवीर्यस्ततोऽवोचन्न मे राज्येऽधुना स्पृहा । राज्येन मे फलं दत्तमधुनान्यत्र सज्यते ॥१५२॥
आसीन्मया कृता वांछा हिमवत्सागरावधि । जेतुं वसुन्धरा येन बिभ्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥
सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविवर्जितः । कुर्यां प्रणतिमन्यस्य कथं पुरुषतां दधत् ॥१५४॥
षट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेयं महानरैः । न तृप्तास्तेऽप्यहं ग्रामैः पञ्चभिस्तु किमेतकैः ॥१५५॥
जन्मान्तरकृतस्यास्य बलितां पश्य कर्मणः । छायाहानिमहं येन राहुणेन्दुरिवाहृतः ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने वश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायगा ? ॥१४३॥ प्रबल शत्रुओंको पकड़ कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सन्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओंका भी पूज्य हो जाय ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होने पर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिवीर्य रामकी स्तुतिकर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सो बड़ा भला किया । मेरी जो बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आज उत्पन्न हो गई ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दीनताको प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियोंसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोंको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है ! इस क्रमागत नन्द्यावर्तनगरमें भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामें लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उत्कट मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी पृथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उखाड़कर निःसार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अन्यको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस छहखण्डकी पृथिवीकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गाँवोंसे कैसे संतुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मान्तरमें किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता तो देखो कि जिस प्रकार राहु चन्द्रमाकी कान्ति

१. इतरो ये म० । २. नन्द्यावर्तं क्रमागते म०, नन्द्यावर्तक्रमागते ख० ।

मानुष्यकमिदं जातं सारमुक्तं मयाधुना । सुराणामपि वार्तैषा किमन्यत्राभिधीयताम् ॥१५७॥
सोऽहं पुनर्भवाद्भीरुस्त्वया सम्प्रतिबोधितः । तथाविधां भजे चेष्टां यया मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं परिवर्गसमन्वितम् । गत्वा केसरिविक्रान्तो मुनिं श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५९॥
कराब्जकुड्मलाङ्केन विधाय शिरसा नतिम् । जगाद नाथ वाञ्छामि दीक्षां दैगम्बरीमिति ॥१६०॥
आचार्येणैवमित्युक्ते परित्यज्यांशुकादिकम् । केशलुञ्चं विधायासौ महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
आत्मार्थनिरतस्त्यक्तरागद्वेषपरिग्रहः । विजहार क्षितिं धीरो यत्रास्तमितवास्यसौ ॥१६२॥
क्रूरश्वापदयुक्तेषु गहनेषु वनेषु सः । चकार वसतिं निर्भीर्गह्वरेषु च भूभृताम् ॥१६३॥

उपजातिः

विमुक्तनिःशेषपरिग्रहाशं गृहीतचारित्रभरं सुशीलम् ।
नानातपःशोषितदेहमुग्रं महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६४॥
रत्नत्रयापादितचारुभूषं दिगम्बरं साधुगुणावतंसम् ।
सम्प्रस्थितं योग्यवरं विमुक्तेर्महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६५॥
इदं परं चेष्टितमातिवीर्यं शृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।
प्राप्नोति वृद्धिं सदसोऽपि मध्ये रविप्रभोऽसौ व्यसनं न लोकः ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरितेऽतिवीर्यनिष्क्रमणाभिधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥

रहित कर देता है उसी प्रकार इसने मुझे कान्तिरहित—निस्तेज कर दिया है॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरोंकी तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मैंने अब तक निःसार खोया ॥१५७॥ अब मैं दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर तथा परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूर वीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि युक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मैं दैगम्बरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यके कहते ही वह वस्त्रादिका त्यागकर तथा केश लोंचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्थमें तत्पर, तथा राग द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह धीर-वीर पृथिवीमें विहार करने लगा। विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनों तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणोंसे जो सहित थे, दिशाएँ ही जिनके अम्बर—वस्त्र थे, मुनियोंके अट्ठाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह सभाके बीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा सूर्यके समान प्रभाको धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिवीर्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनयं नयकोविदः । विजयस्यन्दनाभिख्यमभ्यषिञ्चत्पितुः पदे ॥१॥
दर्शिताशेषवित्तोऽसावरविन्दातनूभुवम् । स्वसारं रतिमालाख्यां लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥२॥
एवमस्त्वित्यभीष्टायां[1] तस्यां पद्मेन लक्ष्मणः । लक्ष्मीमिवाङ्कमायातां ज्ञात्वा [2]सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां विस्मयदायिनीम् । ह्याय विजयस्थानं लक्ष्मणाद्यन्वितो बलः[3] ॥४॥
दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुकाम् । शत्रुघ्नं हाससध्यानं निषिध्य भरतोऽवदत् ॥५॥
अतिवीर्यो महाधन्यस्तस्य किं भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कष्टान्[4] परां शान्तिमुपाश्रितः ॥६॥
प्रभावं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीन्नः सम्प्राप्तोऽसौ प्रणम्यताम् ॥७॥
श्लाघामित्यतिवीर्यस्य यावत्कुर्वन् स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्तावत्प्राप्तः सामन्तमध्यगः ॥८॥
प्रणम्य भरतायासौ स्थितः सङ्कथया क्षणम् । ज्यायसीं रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दरीम् ॥९॥
उपनिन्ये शुभां कन्यां नानालङ्कारधारिणीम् । कोशं च विपुलं सारं साधनं च प्रसन्नदृक् ॥१०॥
कन्यामेकामुपादाय केकयानन्दनस्ततः । तस्यैवानुमतं सर्वं स्थितिरेषा महात्मनाम् ॥११॥
कौतुकोत्कलिकाकीर्णमानसोऽथ महाजवैः । अश्वैः प्रववृते द्रष्टुमतिवीर्यदिगम्बरम् ॥१२॥
क्वासौ महामुनिः क्वासाविति पृच्छन्सुभावनः । एषोऽयमित्यमुं भृत्यैः कथ्यमानमियाय सः ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके वेत्ता श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पद पर अभिषेक किया ॥१॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्नमाला नामक बहिन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमें आई है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे सहित राम, जिनेन्द्र भगवान्‌की आश्चर्यदायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापिस आये ॥४॥ नर्तकीके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने दीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरतने मनाकर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयोंको छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है उसकी तू क्या हँसी करता है ? ॥६॥ जो देवोंके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख। जो हमारा शत्रु था अब मुनि होने पर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जब तक बैठा था तब तक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ क्षणभर बैठा। तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी बहिन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलङ्कारोंको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की। साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी खजाना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पा कर भरत बहुत प्रसन्न हुआ उसने विजयरथकी इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ोंसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहाँ हैं ? और सेवक कहते

१. स्वीकृतायाम् । २. सहर्षोऽभूत् । ३. रामः । ४. कष्टां क०, ख० ।

ततो विषमपाषाणनिवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमामोदवासितम्[1] ॥१४॥
तज्ज्ञैर्नं कथितं रम्यं पर्वतं श्वापदाकुलम् । आरुरोहावतीर्याश्वाद्विनीताकारमण्डितः ॥१५॥
रोषतोषविनिर्मुक्तं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिषण्णं तमेकसिंहमिवाभयम् ॥१६॥
अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा सुघोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगतात्मानं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
उत्फुल्लनयनो लोकः सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मयं परमं प्राप्तो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
कृत्वास्य महतीं पूजां भरतः श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरूचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
नाथ शूरस्त्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा धृता जिनवरोदिता ॥२०॥
विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणां महात्मनाम् । ज्ञातसंसारसाराणामीदृगेव विचेष्टितम् ॥२१॥
मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदभिवाञ्छ्यते । तदुपात्तं त्वया साधो वयमन्यतदुःखिनः[2] ॥२२॥
क्षन्तव्यं दुरितं किञ्चिद्यदस्माभिस्त्वयीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्यं प्राप्तायातिप्रतीक्ष्यताम्[3] ॥२३॥
इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतीर्णः कथां मौनीं[4] कुर्वाणो धरणीधरात् ॥२४॥
स्थूरीपृष्ठं[5] समारुह्य पूर्यमाणः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवाम्भोधिमध्यगः ॥२५॥
महासाधनसामन्तमण्डलस्यान्तरे स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
क गतास्ता नु नर्तक्यः कृतलोकानुरञ्जनाः । स्वजीवितेऽपिनिर्लोभा विदधुर्या मयि प्रियम् ॥२७॥

जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥१३॥ तदनन्तर जो ऊँचे नीचे पाषाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जङ्गली जानवरोंसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा बताये हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेसे उतरकर विनीत वेषसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला। ॥१४–१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विषादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोंके धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिंहके समान निर्भय थे, घोर तपमें स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६–१७॥ मुनिराजके दर्शनकर सबलोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमें हर्षसे रोमाञ्च निकल आये। सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अञ्जलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९–२०॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी हैं ॥२२॥ हे नाथ! हमलोगोंसे आपके विषयमें जो कुछ अनिष्ट-पाप रूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए। आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अञ्जलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिसके साथ थे तथा जो विभव रूपी समुद्रके बीचमें गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनीके पृष्ठ पर सवार हो अयोध्याके लिए वापिस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमें स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुरञ्जित करने-

१. वस्थितम् म० । २. दुःखिताः म० । ३. अतिपूज्यताम् । ४. मुनिसम्बन्धिनीम् । ५. हस्तिनीपृष्ठम् ।

पुरः कृत्वातिवीर्यस्य महीयां परमां स्तुतिम् । नर्तकीभिः कृतं कर्म चित्रमेतदहो परम् ॥२८॥
स्त्रीणां कुतोऽथवा शक्तिरीदृशी विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूनमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
चिन्तयन्नयमित्यादि सुप्रसन्नेन चेतसा । जगाम धरणीं पश्यन्नानासस्यसमाकुलाम् ॥३०॥
व्याप्ताशेषजगत्कीर्तिः प्रभावं परमं दधत् । सशत्रुघ्नो विवेशासौ विनीतां[1] परमोदयः ॥३१॥
साकं विजयसुन्दर्या तस्थौ तत्र रतिं भजन् । सुलोचनापरिष्वक्तो यथा जलदनिस्वनः[2] ॥३२॥
आनन्दं सर्वलोकस्य कुर्वाणौ रामलक्ष्मणौ । कञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा पृथिवीधरभूभृतः ॥३३॥
जानक्या सह सम्मन्त्र्य कर्तव्याहितमानसौ । भूयः प्रस्थातुमुद्युक्तौ समुद्देशमभीप्सितम् ॥३४॥
वनमाला ततोऽवोचल्लक्ष्मणं चारुलक्षणा । सबाष्पे बिभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥
अवश्यं यदि मोक्तव्या मन्दभाग्याहकं त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमूर्षन्ती वद प्रिय ॥३६॥
सौमित्रिरगदद् भद्रे विषादं मा गमः प्रिये । अत्यल्पेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
सम्यग्दर्शनहीना यां गतिं यान्ति सुविभ्रमे । व्रजेयं तां पुनः क्षिप्रं न चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥
नराणां मानदग्धानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽहं यदि नायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥
रक्षितव्यं पितुर्वाक्यमस्माभिः प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वतः कूलं गन्तव्यं निर्विचारणम् ॥४०॥
मलयोपत्यकां[3] प्राप्य कृत्वा परममालयम् । नेष्यामि भवतीमेत्य वरोरु धृतिमाव्रज[4] ॥४१॥
समर्थैः[5] सान्त्वयित्वेति वनमालां सुभाषितैः । भेजे लाङ्गलिनः पार्श्वं सुमित्राकुक्षिसम्भवः ॥४२॥

वाली वे नर्तकियाँ कहा गई होंगी ? ॥२७॥ राजा अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोंने जो काम किया । अहो ! वह बड़े आश्चर्यकी बात है॥२८॥ अथवा समस्त संसारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है ।' तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभावको धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुघ्नके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थान पर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थी और आँसुओंसे भीगे चञ्चल कनीनिकाओंवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय ! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरनेसे क्यों बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने ! विषादको प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोंको धारण करनेवाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये ! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे ! हमें पिताके बचनकी रक्षा करनी है और विना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुन्दर जाँघोंवाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोंसे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्तकर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमारः, मेघस्वर इति तस्यैवापरं नाम । ३. मलयापत्यकां म० । ४. माव्रत म० । ५. शपथैः । समग्रैः म० ।

ततः सुप्तजने काले विदितौ तौ न केनचित् । निर्गत्य नगराद्गन्तुं प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं पुरं दृष्ट्वाखिलो जनः । परमं शोकमापन्नः कृच्छ्रेणाधारयत्तनुम् ॥४४॥
वनमाला गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिनी स्थिता ॥४५॥
विहरन्तौ ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणौ । मुमुदाते महासत्त्वौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
युवत्युज्ज्वलवल्लीनां मनोनयनपल्लवान् । तावनङ्गतुषारेण दहन्तावाटतुः शनैः ॥४७॥
कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलंकृतम् । सुजाता जननी सैका लोके यैतावजीजनत् ॥४८॥
धन्येयं वनितैताभ्यां समं या चरति क्षितिम् । ईदृशं यदि देवानां रूपं देवास्ततः स्फुटम् ॥४९॥
कुतः समागतावेतौ व्रजतो वा क्व सुन्दरौ । वाञ्छतः किमिमौ कर्तुं सृष्टिरीदृगियं कथम् ॥५०॥
सख्योऽनेन पथा दृष्टौ पुण्डरीकनिरीक्षणौ । व्रजन्तौ सहितौ नार्या क्वचिच्चन्द्रनिभाननौ ॥५१॥
यदिमौ शोभिनौ मुग्धे मनुष्यावथवा सुरौ । तत्किमर्थं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना । लभ्यते सुचिरं द्रष्टुमेवंविधनराकृतिः ॥५३॥
निवर्तस्व भज स्वास्थ्यं स्रस्तं वसनमुद्धर । मा नैषीर्लोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
नेत्रमानसचौराभ्यां दृष्टाभ्यामपि बालिके । निष्ठुराभ्यां किमेताभ्यां काभ्यामपि धृतिं भज ॥५५॥
इत्याद्यालापसंसक्तं कुर्वाणावबलाजनम् । रेमाते शुद्धचित्तौ तौ स्वेच्छाविहृतिकारिणौ ॥५६॥
नानाजनपदाकीर्णां पर्यट्य धरणीमिमौ । क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं सम्प्राप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥
उद्याने निकटे तस्य [1]जलदोत्करसन्निभे । अवस्थिताः सुखेनैते यथा सौमनसे सुराः ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकल कर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथोंका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए। उन्हें देख लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्रीरूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुषारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ 'हे सखि ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलंकृत किया है ? वह कौन-सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है। यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनकी यह ऐसी रचना कैसे हो गई ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य है ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सखियो ! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हों अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्खे ! ऐसे मनुष्योंका रूप बहुत भारी पुण्यके बिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिए लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्रको सँभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको खेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंको वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्ध-चित्तके धारक वे दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि

१. मेघसमूहसदृशे ।

अन्नं वरगुणं भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीकं सीतया सार्धमसेवत हलायुधः ॥५९॥
प्रासादगिरिमालाभिस्ततो हृतनिरीक्षणः । लक्ष्मणः पद्मतोऽनुज्ञां प्राप्य प्रश्रययाचिताम् ॥६०॥
दधानः प्रवरं माल्यं पीताम्बरधरः शुभः । स्वैरं क्षेमाञ्जलिं द्रष्टुं प्रतस्थे चारुविभ्रमः ॥६१॥
नानालतोपगूढानि काननानि वराण्यसौ । सरितः स्वच्छतोयाश्च शुभ्राभ्रसमसैकताः ॥६२॥
विचित्रधातुरङ्गांश्च परिक्रीडनपर्वतान् । देवधामानि तुङ्गानि कूपान् वापीः सभाः प्रपाः ॥६३॥
लोकं च विविधं पश्यन् दृश्यमानः सविस्मयम् । विवेश नगरं धीरो नानाव्यापारसङ्कुलम् ॥६४॥
शृणु शृण्विति तत्रायं प्रधानविशिखागतम् । अशृणोत्पौरतः शब्दमिति विश्रब्धभाषितम् ॥६५॥
पुरुषः कोऽन्वसौ लोके यो मुक्तां राजपाणिना । शक्तिं प्रसह्य शूरेन्द्रो जितपद्मां[2] गृहीष्यति ॥६६॥
स्वर्गे राज्यं ददामीति राजा चेत्प्रतिपद्यते । तथापि नानया कृत्यं कथया शक्तियातया ॥६७॥
जातश्चाभिमुखः शक्तेः प्राणैश्च परिवर्जितः । किं करिष्यति कन्यास्य राज्यं वा त्रिदशालये ॥६८॥
समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् । तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
श्रुत्वैवं कौतुकी कञ्चिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेयं यदर्थं भाषते जनः ॥७०॥
सोऽवोचन्मृत्युकन्यासावतिपण्डितमानिनी । किं न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥
एतन्नगरनाथस्य राज्ञः शत्रुन्दमश्रुतेः । कनकाभासमुत्पन्ना दुहिता गुणशालिनी ॥७२॥
यतोऽनया जितं पद्मं कान्त्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदिता ततः ॥७३॥

सौमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दाखोंका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर बड़े-बड़े महल रूपी पर्वतोंकी पंक्तियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनय पूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्तकर इच्छानुसार क्षेमाञ्जलि नगर देखनेके लिए चले। उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०–६१॥ नाना लताओंसे आलिङ्गित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरीं तथा शुक्लमेघोंके समान उज्ज्वल तटोंसे शोभित नदियों, नाना प्रकारकी धातुओंसे रङ्ग-विरङ्गे क्रीड़ा-पर्वतों, ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देखते हुए उन्होंने नाना प्रकारके व्यापार-कार्योंसे युक्त नगरीमें बड़ी धीरतासे प्रवेश किया। लोग उन्हें बड़े आश्चर्य से देख रहे थे ॥६२–६४॥ जब वे नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ वह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति झेलनेके लिए सन्मुख हुआ और प्राणोंसे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ 'संसारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुक वश किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ! जिसके लिए लोग इस प्रकार बार्ता कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याको क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुदमनकी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे

१. प्रसाद-ख० । २. एतन्नामधेयां कन्यां ।

नवयौवनसम्पन्ना कलालङ्कारधारिणी । पुंसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवर्तिनम् । व्यवहारः समस्तोऽस्याः पुरुषार्थविवर्जितः ॥७५॥
अदः पश्यसि कैलाससदृशं भवनं वरम् । अत्र तिष्ठत्यसौ कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
शक्तिं यः पाणिना मुक्तां पित्रास्याः सहते नरः । वृणुते तमियं दग्ध-समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७७॥
लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य सकोपस्मयविस्मयः । दध्यौ सा कीदृशी नाम कन्या यैवं समीहते ॥७८॥
दुष्टचेष्टामिमां तावत्कन्यां पश्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्रायः प्रौढोऽयमनया कृतः ॥७९॥
ध्यायन्निति महोक्षेती[1] राजमार्गेण चारुणा । विमानाभान् महाशब्दान् प्रासादान्विधुपाण्डुरान् ॥८०॥
दन्तिनो जलदाकारांस्तुरङ्गांश्चलचामरान् । वलभीर्नृत्यशालांश्च पश्यन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
नानानिर्व्यूहसम्पन्नं विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभ्रराशिसङ्काशं प्राप शत्रुन्दमालयम् ॥८२॥
भास्वद्भक्तिशताकीर्णं तुङ्गप्राकारयोजितम् । द्वारं तस्य ढुढौकेऽसौ शक्रचापाभतोरणम् ॥८३॥
शस्त्रिवृन्दावृते तस्मिन्नानोपायनसङ्कुले । निर्गच्छद्भिर्विशद्भिश्च सामन्तैरतिसङ्कटे ॥८४॥
द्वाःस्थेन प्रविशन्नेव बभाषे सौम्यया गिरा । कस्त्वमज्ञापितो भद्र विशसि क्षितिपालयम् ॥८५॥
सोऽवोचद्द्रष्टुमिच्छामि राजानं गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
दिदृक्षुस्त्वां महाराज पुमानिन्दीवरप्रभः । राजीवलोचनः श्रीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

कमलको अथवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥ नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोंको धारण करनेवाली यह कन्या पुंवेदधारी देवोंसे भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे पुंलिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब पुरुषोंके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो कैलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो उसीमें यह सैकड़ों प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह बरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले रक्खी है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रक्खा है ॥७९॥ इस प्रकार विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाईं सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमें आगे बढ़े । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भवनों, मेघोंके समान हाथियों, चञ्चल चमरोंसे सुशोभित घोड़ों, छपरियों और नृत्यशालाओंको धीमी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०–८१॥ तदनन्तर जो नाना प्राकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रङ्ग विरङ्गी ध्वजाओंसे सुशोभित था, तथा जो सफ़ेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुंदमके महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सैकड़ों देदीप्यमान बेलबूटोंसे सहित था, ऊँचे प्रकारसे युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-विरङ्गे तोरणोंसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमें लक्ष्मण प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही राजमहलमें प्रवेश कर रहा है ॥८४–८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरेको नियुक्तकर द्वारपालने भीतर जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

१. मोहोक्षेण न० । महोक्षेति म० । 'महावृषगतिः' इति 'ज' पुस्तके टिप्पणी ।

अमात्यवदनं वीक्ष्य राजावोचद्विशस्त्विति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशत् ॥८८॥
तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं सुगम्भीरापि सा सभा । समुद्रमूर्तिवत्क्षोभं गता शीतांशुदर्शने ॥८९॥
प्रणामरहितं दृष्ट्वा विकटांसं सुभासुरम् । किञ्चिद्विकृतचेतस्कस्तमपृच्छदरिन्दमः ॥९०॥
कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं क्व कृतश्रमः । ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् प्रावृषेण्यघनध्वनिः ॥९१॥
वाह्योऽहं भरतस्यापि महीहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सर्वत्र ते भङ्क्तुं दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
अभग्नमानशृङ्गेयं दुष्टकन्यागवी त्वया । पोषिता सर्वलोकस्य वर्तते दुःखदायिनी ॥९३॥
सोऽवोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीच्छितुम् । कोऽसौ नु[1] जितपद्माया मानस्य ध्वंसको भवेत् ॥९४॥
उवाच लक्ष्मणः शक्त्या ग्रहणं मे किमेकया । शक्तीः पञ्च विमुञ्च त्वं मयि शक्त्या समस्तया ॥९५॥
विवादो गर्विणोरेवं प्रवृत्तो यावदेतयोः । गवाक्षा निबिडास्तावत्पिहिता वनिताननैः ॥९६॥
परित्यक्तनरद्वेषा दृष्ट्वा लक्ष्मणपुङ्गवम् । निर्व्यूहस्था जिताम्भोजा संज्ञादानाद्वारयत् ॥९७॥
दत्तबद्धाञ्जलिं भीरुं सौमित्रिरिति संज्ञया । चकार जातबोधां तां मा भैषीरिति सम्मदी ॥९८॥
जगाद च किमद्यापि कातर त्वं प्रतीक्षसे । विमुञ्चारिन्दमाभिख्य शक्तिं[2] शक्तिं[3] निवेदय ॥९९॥
इत्युक्तः कुपितो राजा बद्ध्वा परिकरं दृढम् । ज्वलत्पावकसंकाशां शक्तिमेकामुपाददौ ॥१००॥
प्रतीच्छेच्छसि मर्तुं चेदित्युक्त्वा भ्रुकुटीं दधत् । वैशाखं स्थानकं कृत्वा तां मुमोच विधानवित् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुशोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८७॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे'। तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८८॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर क्षोभको प्राप्त हो गई ॥८९॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोंके धारक तथा अतिशय देदीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुंदमने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०–९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मानरूपी सींग अभग्न हैं ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकनी गाय तुमने पाल रक्खी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुंदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिको सहन करनेमें समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिको क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तियाँ छोड़॥९५॥यहाँ जब तक दोनों अहंकारियोंके बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन झरोखे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गई और पुरुषोंके साथ द्वेषको छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़ कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुंदम नाम रख फिरता है । शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठाई ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले झेल' यह कहकर भौंहको धारण करनेवाले विधि-विधानके

१. न म०, ज० । २. शक्तिनामकशस्त्रम् । ३. पराक्रमम् । ४. प्रतीच्छेच्छसि म० ।

[1]अयत्नेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ॥१०२॥
द्वितीयेतरहस्तेन कक्षाभ्यां द्वे सुविभ्रमः । शुशुभे सुभृशं ताभिश्चतुर्दन्त इव द्विपः ॥१०३॥
संक्रुद्धभोगिभोगा[2]भां सम्प्राप्तामथ पञ्चमीम् । दन्ताग्राभ्यां दधौ शक्तिं पेशीमिव मृगाधिपः ॥१०४॥
ततो देवगणाः स्वस्था ववृषुः पुष्पसंहतिम् । ननृतुस्ताडयांचक्रुर्दुन्दुभींश्च कृतस्वनाः ॥१०५॥
[3]प्रतीच्छारिन्दमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥
तमक्षततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मीनिलयवक्षसम् । विस्मितोऽरिन्दमो जातस्त्रपावनमिताननः ॥१०७॥
जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायानतानना । लक्ष्मीधरं समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
धृतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वी शुशुभेतराम् । कुलिशायुधपार्श्वस्था शचीव[4] विनतानना ॥१०९॥
नवेन संगमेनास्या हृदयं तस्य कंपितम् । यन्नासीत् कंपितं जातु संग्रामेषु महत्स्वपि ॥११०॥
पुरस्तात्तनेरशानां कन्यया लक्ष्मणो वृतः । विभिद्यापत्रपापालीं तन्नरन्यस्तनेत्रया ॥१११॥
सद्यो विनयनम्रांगो राजानं लक्ष्मणोऽब्रवीत् । मामकार्हसि मे क्षंतुं शैशवाद्दुर्विचेष्टितम् ॥११२॥
बालानां प्रतिकूलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगंभीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
ततः शत्रुंदमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तंबेरमकराभाभ्यां कराभ्यां परिषस्वजे ॥११४॥
उवाच च परिक्लिष्टगण्डांश्चण्डान् गजान् क्षणात् । योऽजैषं भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

ज्ञाता राजाने आलीढ़ आसनसे खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी॥१०१॥ लक्ष्मणने बिना किसी यत्नके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि बटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलोंमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतोंको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित साँपकी फणकी नाईं जो पाँचवीं शक्ति आई उसे लक्ष्मणने दाँतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी डलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बजाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर 'शत्रुंदम ! अब तू मेरी शक्ति झेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुन्दम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुख नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे खिंचकर लक्ष्मण के पास आई ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कृशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्रके धारक इन्द्रके पास खड़ी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंसे आप जैसे महागम्भीर पुरुष विकार भावको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रमसे सहित राजा शत्रुंदमने भी हाथीकी सूंडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंसे लक्ष्मणका आलिङ्गन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

१ अयत्नेनैव म० । २. भोगानां म० । ३. प्रतीक्ष्व म० । ४. शची विनमितानना म० ।

वन्यानपि महानागान् गंडशैलसमत्विषः। विमर्दीकृतवानस्मि सोऽयमन्य इवाभवम् ॥११६॥
अहो वीर्यमहो रूपं सदृशाः शुभ ते गुणाः। अहोनुद्धततात्यन्तं प्रश्रयश्च तवाद्भुतः ॥११७॥
भाषमाणे गुणानेवं राज्ञि संसदवस्थिते। लक्ष्मीधरस्त्रपातोऽभूत् क्वापि यात इव क्षणम् ॥११८॥
अथ लब्धाम्बुदव्रातघोषभेर्यः समाहताः। राजादेशात् समाध्माताः शंखाः [1]संशितवारणाः ॥११९॥
यथेष्टं दीयमानेषु धनेषु परमस्ततः। आनन्दोऽवर्तताशेषनगरक्षोभदक्षिणः ॥१२०॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि राज्ञा पुरुषपुङ्गव। त्वया दुहितुरिच्छामि पाणिग्रहणमीक्षितुम् ॥१२१॥
सोऽवोचन्नगरस्यास्य प्रदेशे निकटे मम। ज्येष्ठतिष्ठति तं पृच्छ स जानाति यथोचितम् ॥१२२॥
ततः स्यन्दनमारोप्य जितपद्मां सलक्ष्मणाम्। सदारबन्धुरभ्याशं प्रतस्थे तस्य सादरः ॥१२३॥
ततः क्षुब्धापगानाथनिर्घोषप्रतिमध्वनिम्। श्रुत्वा वीक्ष्य विशालं च धूलीपटलमुद्गतम् ॥१२४॥
जानुन्यस्तमुहुःस्वस्तकरा कृच्छ्रात्समुत्थिता। सीता जगाद सम्भ्राता गिरा प्रस्खलिता मुहुः ॥१२५॥
कृतं सौमित्रिणा नूनं राघवोद्धतचेष्टितम्। आशेयमाकुलात्यन्तं दृश्यते कृत्यमाश्रय ॥१२६॥
आश्लिष्य जानकीं देवि मा भैषीरिति शब्दयन्। उत्तस्थौ राघवः क्षिप्रं दृष्टिं धनुषि पातयन् ॥१२७॥
तावच्च नरवृन्दस्य महतः स्थितमग्रतः। सुतारगीतनिस्वानमीक्षाञ्चक्रेऽङ्गनाजनम् ॥१२८॥
क्रमेण गच्छतश्चास्य प्रत्यासत्तिं मनोहराः। विभ्रमाः समदृश्यन्त सुदारावयवोत्थिताः ॥१२९॥
नृत्यन्तं च समालोक्य तारनूपुरशिञ्जितम्। विश्रब्धः सीतया साकं पद्मः पुनरुपाविशत् ॥१३०॥

भयङ्कर युद्धोंमें मदस्रावी कुपित हाथियोंको क्षणभरमें जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११५॥ जिसने गोल काली चट्टानोंवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जङ्गली हाथियोंको मदरहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय। अहो शोभनीक! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार सभामें बैठा राजा शत्रुंदम जब लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हों ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आज्ञासे मेघसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाईं गईं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शङ्ख फूँके गये ॥११९॥ इच्छानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेमें समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्माको रथ पर बैठाकर स्त्रियां तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुंदम बड़े आदरके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटलको देखकर घुटनों पर बार-बार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और घबड़ाकर स्खलित वाणीमें रामसे बोली कि हे राघव! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है। यह दिशा अत्यन्त आकुल दिखाई देती है इसलिए सावधान होओ और जो कुछ करना हो सो करो ॥१२४–१२६॥ तब सीताका आलिङ्गन कर 'हे देवि! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा शीघ्र ही धनुष पर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे उच्चस्वरसे मङ्गल गीत गानेवाली स्त्रियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह स्त्रियोंका समूह जब क्रम क्रमसे पास आया तब सुन्दर स्त्रियोंके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी

१. शंसित म०।

स्त्रियो मङ्गलहस्तास्तं सर्वालङ्कारभूषिताः । ढुढौकिरेऽतिहारिण्यः समदस्फीतलोचनाः ॥१३१॥
रथादुत्तीर्य पद्मास्यः सहितो जितपद्मया । पतिः पपात [1]पद्मायाः पद्मस्य चरणौ द्रुतम् ॥१३२॥
पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा सीताया अपि सत्रपः । निविश्य नातिनिकटे पद्मस्य विनयी स्थितः ॥१३३॥
नृपाः शत्रुन्दमाद्याश्च क्रमात्कृत्वा नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहसीतस्य यथास्थानमवस्थिताः ॥१३४॥
तत्र सङ्कथया [2]स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वया । कृते च पुनरानन्दनर्तने पार्थिवैरपि ॥१३५॥
ऋद्ध्या परमया युक्तः ससीतो लक्ष्मणो बलः । प्रविष्टः स्यन्दनारूढो नगरं प्रमदान्वितः ॥१३६॥
तत्र लावण्यकिञ्जल्कयोषित्कुवलयाकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपक्षिणि ॥१३७॥
नरेभकलभौ सत्यव्रतसिंहध्वनेरलम् । त्रासात् सङ्कुचितस्वान्तौ कुमारश्रीसमन्वितौ ॥१३८॥
शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ किञ्चित्कालं महासुखौ । उषितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनौ ॥१३९॥
जितपद्मां ततो भीतां विरहादतिदुःखिताम् । परिसान्त्व्य प्रियैर्वाक्यैर्वनमालामिवादरात् ॥१४०॥
पद्मः सीतानुगो भूत्वा निशीथे स्वैरनिर्गतः । यातो लक्ष्मीधरो दत्त्वा पौराणामधृतिं पराम् ॥१४१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृताः सर्वासुभाजां[3] प्रियाः ।
यं यं देशमुपव्रजन्ति विविधं कृत्यं भजन्तः परम् ॥
तस्मिन्सर्वहृषीकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया ।
मृष्टाशादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभः ॥१४२॥

जोरदार झनकार फैल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताके साथ पुनः बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मङ्गल द्रव्य थे, जो सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत थी अतिशय मनोहर थीं और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियाँ रामके पास आईं ॥१३१॥ कमलके समान मुखको धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामके चरणोंमें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणामकर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम-क्रमसे राम तथा सीताको नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सब वार्तालाप करते हुए सुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदा से युक्त तथा हर्षसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ वहाँ राजमहलमें पहुँचे सो वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि सौन्दर्य रूपी केशरसे युक्त स्त्रियां रूपी नील कमलोंसे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियोंसे युक्त था ॥१३७॥ सत्यव्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त सङ्कुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुखसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक सुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमालाके समान विरहसे भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माको प्रिय वचनों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले। इन सबके जानेसे नगरवासियोंका धैर्य जाता रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने जन्मान्तरमें बहुत

१. पद्मायाः पतिः = लक्ष्मणः । २. छित्वा म० । ३. निखिलप्राणिनाम् ।

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खलाः
इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः।
एतैः सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्गं गिरेः
नित्यं [1]याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जनः सङ्गमम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥

भारी पुण्यका सञ्चय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाना प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें उन्हें बिना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४२॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है। ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंकी निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वतके शिखरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समागमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारकी सुख-सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥१४३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जितपद्माका वर्णन करनेवाला अड़तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥

१. यान्ति म०।

एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानाद्रुमाढ्यासु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तासु सेवितासु सुखं मृगैः ॥१॥
देवोपनीतनिश्शेषशरीरस्थितिसाधनौ । आयातौ रममाणौ तौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
क्वचिद्विद्रुमसङ्काशं रामः किसलयं लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णे जानक्याः साध्विति ब्रुवन् ॥३॥
सुतारौ [1]सङ्गतां वल्लीं क्वचिदारोप्य जानकीम् । स्वैरं दोलयतः पार्श्ववर्तिनौ रामलक्ष्मणौ ॥४॥
द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा नितान्तघनपल्लवे । कथाभिः सुविदग्धाभिः कुरुतस्तद्विनोदनम् ॥५॥
इयमेतदयं[2] वल्ली पलाशं तरुरीक्ष्यताम् । हारिणी हारि हारीति सीतोचे राघवं क्वचित् ॥६॥
क्वचिद् भ्रमरसङ्घातैर्मुखसौरभलोलुपैः । कृच्छ्राद्रक्षतामेतौ राजपुत्रीं कदर्थिताम् ॥७॥
शनैर्विहरमाणौ तौ ससीतौ शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु [3]स्ववनेषु सुराविव ॥८॥
नानाजनोपभोग्येषु देशेषु निहितेक्षणौ । [4]धीरौ क्रमेण सम्प्राप्तौ पुरं वंशस्थलद्युतिम् ॥९॥
सुदीर्घोऽपि तयोः कालो गच्छतोः सहसीतयोः । पुण्यानुगतयोर्नासीदपि दुःखलवप्रदः ॥१०॥
अपश्यतां च तस्यान्ते वंशजालातिसङ्कटम् । नगं वंशधराभिख्यं भित्त्वेव भुवमुद्गतम् ॥११॥
छायया तुङ्गशृङ्गाणां यः सन्ध्यामिव सन्ततम् । दधाति निर्झराणां च हसतीव च शीकरैः ॥१२॥
निर्गच्छन्तीं प्रजां दृष्ट्वा पुरादथ स एककाम् । रामः पप्रच्छ भोः कस्मात् त्रासोऽयं सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोंमें आये जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे सहित थी, जिनमें नाना फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डपोंसे सहित थीं तथा मृगगण जिनमें सुखसे निवास करते थे ॥१-२॥ कहीं राम, मूंगके समान कान्तिवाले पल्लवको तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताको बैठाकर बगलमें दोनों ओर खड़े हो राम-लक्ष्मण उसे झूला झुलाते थे ॥३-४॥ कहीं सघन पत्तोंवाले द्रुम-खण्डमें बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताको पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी कठिनाईसे उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वर्गके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाओंके धारक दोनों भाई सीताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमें धीरे-धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्योंसे उपभोग्य देशोंमें दृष्टि डालते हुए वे धीर-वीर क्रमसे वंशस्थद्युति नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामी महा-पुरुषोंको यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वंशधर नामका पर्वत देखा जो बाँसोंके समूहसे अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवीको भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानो सदा सन्ध्याको धारण कर रहा था और निर्झरनोंके छींटोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११-१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल-निकल कर कहीं

१. संस्तुताम् म० । २. इयं हारिणी वल्ली, एतत् हारि पलाशं, अयं हारी तरुः । ३. स्ववनेषु म० । ४. धारौ म० ।

सोऽवोचदद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते नरः । नक्तमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्नगे नादस्य[1] मस्तके ॥१४॥
ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं प्रतिनादी भयावहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
संक्षुभ्यतीव भूः सर्वा नन्दतीव दिशो दश । सरांसि सञ्चरन्तीव निर्मूल्यन्त इवाङ्घ्रिपाः ॥१६॥
रौरवारावरौद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । श्रवणौ सर्वलोकस्य ताड्येतेऽयोघनैरिव ॥१७॥
निशागमे किमस्माकं वधार्थमयमुद्यतः । करोति क्रीडनं तावत् कोऽपि विष्टपकण्टकः ॥१८॥
भयेन स्वनतस्तस्मादयं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
साग्रं योजनमेतस्मादतीत्यान्योन्यभाषितम्[2] । शृणोत्ययं जनः किञ्चित् प्राप्नोति च सुखासिकाम् ॥२०॥
निशम्योक्तमिदं सीता बभाषे रामलक्ष्मणौ । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
कालं देशे च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदैः । क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥२२॥
प्रहस्यावोचतामेतामुद्विग्नां जनकात्मजाम् । गच्छ त्वं यत्र लोकोऽयं व्रजत्यलंबुसाध्वसे ॥२३॥
अन्विष्यन्तौ प्रभाते नौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशैलान्ते गतभीरागमिष्यति ॥२४॥
अस्मिन् महीधरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तभीषणः । कस्यायमिति पश्यामो वयमद्येति निश्चयः ॥२५॥
प्रभीष्यते वराकोऽयं लोकः शिशुसमाकुलः । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
वैदेही [4]सज्वरेवोचे सततं भवतोरिमम् । हर्तुमेकं ग्रहं शक्तः कः कुलीरग्रहोपमम् ॥२७॥

अन्यत्र जा रहे हैं। तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयङ्कर है। किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविज्ञानी वृद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और वृक्ष मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रौद्रतामें नरकके शब्दकी तुलना करनेवाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहेके घनोंसे ही ताडित होते हों ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका वार्तालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं' ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चलें ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने घबड़ाई हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुझे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयङ्कर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये दीन लोग बाल-बच्चोंसे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे ज्वर चढ़ रहा हो ऐसी काँपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगों की हठ केंकड़ेकी पकड़के समान विलक्षण ही है उसे

१. नादोऽस्य म०। २. भाषितः ब० । ३. अतिभययुक्ते । ४. सज्वरा इव ऊचे । सद्धरेवोचे म० ।

वदन्ती पुनरेवं सा पद्मनाभस्य पृष्ठतः । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुरः ॥२८॥
आरोहन्ती गिरिं देवी प्रखिन्नक्रमपङ्कजा । रराज शृङ्गमब्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
चन्द्रकान्तेन्द्रनीलान्तःस्थिता पुष्पमणेरसौ । शलाकेवाभवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
भृगुपातपरित्रस्तां क्वचिदुत्क्षिप्य तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विश्रब्धहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥
विषमग्रावसङ्घातं [1]निस्तीर्य त्रासवर्जितौ । विस्तीर्णनगमूर्धानं ससीतौ तावपापतुः ॥३२॥
अथ सद्ध्यानमारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्यां प्रतिमां चतुराननाम् ॥३३॥
परेण तेजसा युक्तावब्धिधीरौ नगस्थिरौ । शरीरचेतनान्यत्ववेदिनौ मोहवर्जितौ ॥३४॥
जातरूपधरौ कान्तिसागरौ नवयौवनौ । संयतौ प्रवराकारौ ददृशुस्ते यथोदितौ ॥३५॥
दध्युश्च विस्मयं प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभार्जनम् । निस्सारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३६॥
मित्राणि द्रविणं दाराः पुत्राः सर्वे [2] च बान्धवाः । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखावहः ॥३७॥
डुढौकिरे च भक्त्याढ्या मूर्धविन्यस्तपाणयः । दधानाः परमं तोषं विनयानतविग्रहाः ॥३८॥
यावद्ददृशुरत्युग्रैर्विस्फुरद्भिर्महास्वनैः । भिन्नाञ्जनसमच्छायैश्चलजिह्वैः [3]पृदाकुभिः ॥३९॥
समुद्यतालकैर्भीमैश्चलद्भिरनिशं घनैः । नानावर्णैरतिस्थूलैर्वेष्टितौ वृश्चिकैश्च [4] तौ ॥४०॥

दूर करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल खेदखिन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमें स्थित पद्मरागमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोंसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठा कर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोंका समूह पारकर भयसे रहित राम-लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमें आरूढ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माकी भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिगम्बर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे नूतन तारुण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयका परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसारमें प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बन्धु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तिसे युक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्खे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अञ्जनके समान कान्तिवाले थे, तथा जिनकी जीभें लपलपा रही थीं ऐसे साँपोंसे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्खी थी, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, रात-दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रङ्गके थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओंसे उन दोनों मुनियोंको

---

१. विस्तीर्य म० । २. सर्वेऽपि क० । ३. पृसर्पैः । ४. वेष्टितैर्वृश्चिकैश्च म० ।

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायातो भेजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
वैदेही भयसम्पन्ना भर्तारं परिषस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे भयं त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥
उपसृत्य ततः स्वैरं ताभ्यां पन्नगवृश्चिकाः । अपास्ता कार्मुकाग्रेण मुहुः कृतविवर्तनाः ॥४३॥
अथोद्वर्त्य चिरं पादौ तयोर्निर्झरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तौ चारुणा पुरुभावया ॥४४॥
आसन्नानां च वल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरार्पितैः शुक्लैः पूरितान्तरमर्चितौ ॥४५॥
ततस्ते करयुग्माब्जमुकुलभ्राजितालिकाः । चक्रुर्योगीश्वरौ भक्त्या वन्दनां विधिकोविदाः ॥४६॥
वीणां च सन्निधायाङ्के वधूमिव मनोहराम् । पद्मोऽवादयदत्युद्धं गायन् सुमधुराक्षरम् ॥४७॥
अन्वगायदिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः । वाक्कोकिलरवः पुत्रः कैकय्यास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । वन्द्यास्ते साधवो नित्यं सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥
उपमानविनिर्मुक्तं यैरव्याहतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिभुवनख्यातं सुभाग्यैरर्हदक्षरम् ॥५०॥
भिन्नं यैर्ध्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दीनं विदन्ति ये विश्वं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
गायतोरक्षराण्येवं तयोर्गानविधिज्ञयोः । तिरश्चामपि चेतांसि परिप्राप्तानि मार्दवम् ॥५२॥
ततो विदितनिश्शेषचारुनर्तनलक्षणा । मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमाल्यादिभूषिता ॥५३॥
लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम् । चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा ॥५४॥

घिरा देखा ॥३९-४०॥ उक्त प्रकार के मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गई, तब रामने क्षण एकमें भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वहीं लौट कर आते थे ऐसे साँप, बिच्छुओंको धनुषके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिसे भरी सीताने निर्झरके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिप्त किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओंके फूलोंसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अञ्जलिरूपी कमलकी बोंड़ियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधानके जाननेमें निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोंमें गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान वीणाको गोदमें रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया। उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृक्षके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी मीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अखण्डित, तथा तीन लोकमें प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है। जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान–धर्माचरणसे रहित विश्वको दीन समझते हैं ऐसे साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे वन्दनीय हैं ॥४९-५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यञ्चोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थी, मनोहर वेषभूषासे युक्त थी, हार माला आदिसे अलंकृत थी, परम लीलासे सहित थी, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थी, जिसकी बाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमें निपुण

१. भ्राजितललाटाः । २. -माचरन् म० ।

लयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला । निश्शब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितोरुका ॥५५॥
गीतानुगमसम्पन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता । [1]मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्जानकी भक्तिचोदिता ॥५६॥
उपसर्गादिव त्रस्ते यातेऽस्तं भास्करे ततः । सन्ध्यायां चानुमार्गेण यातायां चलतेजसि ॥५७॥
नक्षत्रमण्डलालोकं निघ्नन्[2] नीलाभ्रसन्निभम् । व्याप्नुवानं दिशः सर्वा गहनं ध्वान्तमुद्गतम् ॥५८॥
जनस्याश्रावि कस्यापि दिक्षु संक्षोभनं परम् । साराविणं तथा चित्रं [3]भिन्दानमिव पुष्करम्[4] ॥५९॥
विद्युज्ज्वालामुखैर्लम्बैरम्बुदैर्व्याप्तमम्बरम् । क्वापि यात इवाशेषो[5] लोकस्त्राससमाकुलः ॥६०॥
अलंप्रतिभयाकारा दंष्ट्रालीकुटिलाननाः । अट्टहासान् महारौद्रान् भूतानां ससृजुर्गणाः ॥६१॥
क्रव्यादा विरसं रेसुः सानलं चाशिवाः[6] शिवाः[7] । सस्वनुर्ननृतुर्भीमं कलेवरशतानि च ॥६२॥
मूर्धोरोभुजजङ्घादीन्यङ्गानि ववृषुर्घनाः । दुर्गन्धिभिः समेतानि स्थूलशोणितबिन्दुभिः ॥६३॥
करवालीकरा क्रूरविग्रहा दोलितस्तनी । लम्बोष्ठी डाकिनी नग्ना दृश्यमानास्थिसञ्चया ॥६४॥
मांसखण्डाभभग्नाक्षी शिरोघटितशेखरा । ललाटप्रसरोजिह्वा पेशीशोणितवर्षिणी ॥६५॥
सिंहव्याघ्रमुखैस्तप्तलोहचक्राभलोचनैः । शूलहस्तैर्विदष्टोष्ठैर्भ्रूकुटीकुटिलालिकैः ॥६६॥
राक्षसैः परुषारावैर्नृत्यद्भिरतिसङ्कुलम् । कम्पिताद्रिशिलाजालं चुक्षोभ वसुधातलम् ॥६७॥

थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण-कमलोंका विन्यास शब्द रहित था; जिसकी एक जाँघ चल रही थी। जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेन्द्रके जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर श्री देवीने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चञ्चल तेजको धारण करनेवाली संध्या भी जब चली गई तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम क्षोभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अग्रभागमें बिजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घन-घटासे आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँढ़ोंकी पंक्ति से कुटिल थे, ऐसे भूतोंके झुण्ड महा भयङ्कर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमङ्गल रूप शृगालियाँ अग्नि उगलती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों कलेवर भयङ्कर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ी मोटी बूँदोंसे सहित मस्तक वक्षःस्थल, भुजा तथा जङ्घा आदि अवयवोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियोंका समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी फूटी आँखें मांसखण्डके समान थीं, जिसने नरमुण्डका सेहरा पहिन रक्खा था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रुधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी डाकिनी दिखाई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शूल विद्यमान थे, जो ओंठको डश रहे थे, जिनके ललाट भौंहोंसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहाँका भूतल

१. सुमेरुपर्वते, मन्दिरे ख०, ज०, म० । २. निघ्नलीलाप्रसंभ्रमं, म० । ३. भिन्दन्तमिव म० । ४. आकाशम् । ५. इवाशेष आलोकस्त्रासमाकुल म० । ६. अमङ्गलभूताः । ७. शृगाल्यः ।

विचेष्टितमिदं व्यर्थं नाज्ञासिष्टां महामुनी । तयोर्हि [1]ज्ञानकर्मान्तशुक्लध्यानमयं तदा ॥६८॥
तथाविधं तमालोक्य वृत्तान्तं वरभीतिदम् । संहृत्य जानकी नृत्यमाश्लिष्यत्कम्पिनी पतिम् ॥६९॥
पद्मो जगाद तां देवि मा भैषीः शुभमानसे । उपगुह्य मुनेः पादौ तिष्ठ सर्वभयच्छिदौ ॥७०॥
[2]इत्युक्त्वा पादयोः कान्तां मुनेरासाद्य लाङ्गली । लक्ष्मीधरकुमारेण साकं सन्नाहमाश्रितः ॥७१॥
सजलाविव जीमूतौ गर्जितौ तौ महाप्रभौ । [1]निर्घातमिव मुञ्चन्तौ समास्फालयतां धनुः ॥७२॥
ततस्तौ सम्भ्रमी ज्ञात्वा रामनारायणाविति । सुरो वह्निप्रभाभिख्यस्तिरोधानमुपेयिवान् ॥७३॥
ज्योतिर्वरे[3] गते तस्मिन् समस्तं तद्विचेष्टितम् । सपदि प्रलयं [4]यातं जातं च विमलं नभः ॥७४॥
प्रातिहार्ये कृते ताभ्यामिच्छद्भ्यां परमं हितम् । उत्पन्नं केवलज्ञानं मुनिपुङ्गवयोः क्षणात् ॥७५॥
चतुर्विधास्ततो देवा नानायानसमाश्रिताः । समाजग्मुः प्रशंसन्तो मुदितास्तपसः फलम् ॥७६॥
प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताञ्जलयो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
केवलज्ञानसम्भूतिसमाकृष्टसुरागमात् । [5]दोषादिनात्मकौ कालावभूतां भेदवर्जितौ ॥७८॥
भूमिगोचरिणो मर्त्यास्तथा विद्यामहाबलाः । उपविष्टा यथायोग्यं कृत्वा केवलिनो महम्[6] ॥७९॥
प्रसन्नमानसौ सद्यः कृत्वा केवलिपूजनम् । प्रणम्य सीतया साकं निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥
अथ तत्क्षणसम्भूतपरमार्हासनस्थितौ । प्रणम्य साञ्जलिः पद्मः पप्रच्छैवं महामुनी ॥८१॥

क्षोभको प्राप्त हो गया और पर्वतकी चट्टानें हिल उठीं ॥६६–६७॥ यह सब हो रहा था परन्तु उन महामुनियोंको इस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उनका ज्ञानोत्पादक प्रयत्न उस समय अन्तरङ्गमें युक्त ध्यानमग्न था ॥६८॥ अच्छे-अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ काँपती हुई पतिसे लिपट गई ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभीत मत हो। सब प्रकारका भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणोंका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामने सीताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजने वाले एवं महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने-अपने धनुष टङ्कोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे हों ॥७२॥ तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी सबकी सब चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गईं और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम-लक्ष्मणके द्वारा प्रतिहारीका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंको क्षणभरमें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनोंपर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निकायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वहाँ विधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे खिंचे हुए देवोंका समागम होनेसे रात-दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबलको धारण करनेवाले विद्याधर–सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य स्थानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चित्तके धारक राम-लक्ष्मण भी सीताके साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनों पर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१. ज्ञानकर्म = ज्ञानोत्पादिका क्रिया, अन्तः आभ्यन्तरे इति टिप्पणी पुस्तके । २. इत्युक्त्वा म० ।
१. वज्रम् । ३. ज्योतिर्वासम् म० । ४. जातं म०, क० । ५. रात्रिदिवसरूपौ । ६. पूजाम् ।

भगवन्तौ कुतो नक्तं केनायं [1]वामुपद्रवः । अथवा स्वस्य युवयोरिदं जातं हितं परम् ॥८२॥
त्रिकालगोचरं विश्वं विदन्तावपि तौ समम् । गिरं [2]यामूचतुः (गिरायामूचतुः) साम्यपरिणाममितौ क्रमात् ॥८३॥
नगर्यां पद्मिनीनाम्नि राजा विजयपर्वतः । गुणसस्योत्तमक्षेत्रं भामिनी यस्य धारिणी ॥८४॥
अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य दूतः शास्त्रविशारदः । राजकर्तव्यकुशलो लोकविद् गुणवत्सलः ॥८५॥
उपयोगेति भार्यास्य द्वौ तस्यां कुक्षिसम्भवौ । [3]उदितो मुदिताख्यश्च व्यवहारविशारदौ ॥८६॥
असौ दूतोऽन्यदा राज्ञा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवासं सेवितुं सक्तः स्वामिरक्तमतिर्भृशम् ॥८७॥
वसुभूतिः समं तेन सखा तद्भक्तजीवितः । निर्गतस्तत्प्रियासक्तिनिष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८८॥
सुप्तं तमसिना[4] हत्वा निवृत्तां नगरीं [5] पुनः । जनायावेदयत्तेन किलाहं विनिवर्तितः ॥८९॥
उपयोगा जगादेवं जहि मे तनयावपि । विश्रब्धं येन तिष्ठाव इति बध्वा निवेदितम् ॥९०॥
त्वरितं चोदितायासौ वृत्तान्तो विनिवेदितः । सा हि तेन समं श्वश्र्वाः[6] सङ्गं ज्ञातवती पुरा ॥९१॥
ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमीर्ष्यया । कथितं तत्तथाभूतं परमाकुलचित्तया ॥९२॥
बभूव चोदितस्यापि सन्दिग्धं विदितं पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनात् स्फुटतां गतम् ॥९३॥
ततो रोषपरीतेन हतः सन्नुदितेन सः । [7]कुद्विजो म्लेच्छतां प्राप क्रूरकर्मपरायणः ॥९४॥

मुनियोंको नमस्कार कर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य ध्वनिमें क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होंने कहा कि—

पद्मिनी नामा नगरीमें राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमें निपुण था, राजकर्तव्यमें कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणोंमें स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे । ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमें अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो स्वामीके कार्यमें अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया । वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्त था तथा अमृतस्वर की स्त्रीमें आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरको तलवारसे मारकर नगरीमें वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे । सासका यह कहना उसकी बहूने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बता दिया, यथार्थमें वह बहू 'सासका वसुभूतिके साथ संगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०–९१॥ वसुभूतिकी खास स्त्री उसकी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदित की स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ सन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था फिर वसुभूतिके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गई ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममें तत्पर रहनेवाला वह कुब्राह्मण म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

१. युवयोः ज०, क० । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयौ । ४. छुरिकया । ५. निवृत्तिनगरीं म० । ६. श्वश्र्वा म० । ७. मृत्वा च म० ।

अन्यदा प्रथितः क्षोण्यां गणेशो मतिवर्धनः । विहरन् पद्मिनीं प्राप श्रमणः सुमहातपाः ॥९५॥
अनुद्धरेति विख्याता धर्म्यध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदार्यिका गणपालिनी ॥९६॥
वसन्ततिलकाभिख्ये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । सङ्घेन सहितस्तस्थौ चतुर्भेदेन सद्भुवि ॥९७॥
अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ताः पालकाः किङ्करा भृशम् । नृपं व्यज्ञापयन्नेवं भूमिविन्यस्तपाणयः ॥९८॥
अग्रतो भृगुरत्युग्रः शार्दूलः पृष्ठतो नृप । वद कं शरणं यामो नाशो नः सर्वथोदितः ॥९९॥
भद्रा किं किमिति [1]ब्रूथेत्युक्ता नृपतिनागदन् । नाथोद्यानभुवं प्राप्य श्रमणानां गणः स्थितः ॥१००॥
यद्येनं वारयामोऽतः शापं ध्रुवमवाप्नुमः । न चेत्ते जायते कोप इति नः सङ्कटो महान् ॥१०१॥
कल्पोद्यानसमच्छायमुद्यानं ते प्रसादतः । नरेन्द्रकृतमस्माभिरप्रवेश्यं पृथग्जनैः[2] ॥१०२॥
नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोतिदुर्गमाः । त्रिदशैरपि दिग्वस्त्राः किमुतास्मादृशैर्जनैः ॥१०३॥
मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यानं प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥१०४॥
ऋद्ध्या च परया युक्तो वन्दिभिः कृतनिस्वनः । उद्यानभुवमासीदत् प्रतापप्रकटः किरीट् ॥१०५॥
ददर्श च महाभागान् वनरेणुसमुक्षितान् । मुक्तियोग्यक्रियायुक्तान् प्रशान्तहृदयान् मुनीन् ॥१०६॥
प्रतिमावस्थितान् कांश्चित् प्रलम्बितभुजद्वयान् । षष्ठाष्टमादिभिस्तीव्रैरुपवासैर्विशोषितान् ॥१०७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसंघके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥९५॥ उसी समय धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाली, अतिशय श्रेष्ठ और आर्यिकाओंके संघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥९६॥ चतुर्विध संघसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमिसे युक्त वसन्ततिलक नामक उद्यानमें ठहर गये ॥९७॥ तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! आगे तो बड़ी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइये हम किसकी शरणमें जावें। हमारा तो सब प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥९८-९९॥ 'भले आदमियो ! क्या ? क्या ??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहने पर किङ्करोंने कहा कि हे नाथ ! मुनियोंका एक संघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥१००॥ यदि इस संघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगों पर बड़ा संकट आ पड़ा है ॥१०१॥ हे राजन् ! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्पवृक्षोंके उद्यानके समान बना रक्खा है, उसमें साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ॥१०२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥१०३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करोंको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥१०४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, वन्दीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥१०५॥ वहाँ जाकर उसने महाभाग्यवान् मुनियोंके दर्शन किये। वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिके योग्य क्रियाओंमें तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥१०६॥ उनमेंसे कितने ही मुनि दोनों भुजाओंको नीचे की ओर लटका कर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा वेला-तेला आदि कठिन उपवासोंसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥१०७॥ कितने ही स्वाध्यायमें तत्पर हो भ्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमें

१. ब्रूतेत्युक्ता नृपतिनागदं म० । २. पामरजनैः । पृथुस्तनैः (?) म० ।

स्वाध्यायनिरतानन्यान् [1]षडङ्घ्रिमधुरध्वनीन् । तन्निवेशितचेतस्कान् पाणिपात्रसमाहितान् ॥१०८॥
अवलोक्य मुनीनित्थं भग्नगर्वाङ्कुरोऽभवत् । अवतीर्य गजाद् भार्वी ननाम जयपर्वतः ॥१०९॥
क्रमेण प्रणमन् साधूनाचार्यं समुपागतः[3] । प्रणम्य पादयोरूचे भोगे सद्बुद्धिमुद्वहन् ॥११०॥
नरप्रधानदीप्तिस्ते यथेयं शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिताः ॥१११॥
जगाद मुनिमुख्यस्तं का ते मतिरियं तनौ । स्थास्नुतासक्ततालीका संसारपरिवर्धिनी ॥११२॥
करिबालककर्णान्तचपलं ननु जीवितम् । मानुष्यकं च कदलीसारसाम्यं बिभर्त्ययं ॥११३॥
स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं[4] सक्तं च सह बान्धवैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्र[5] चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
नरकप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसङ्कुले । रक्तश्लेष्मादिसरसि प्रभूताशुचिकर्दमे ॥११५॥
उषितोऽनेकशो जीवो गर्भवासेऽतिसङ्कटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
धिगत्यन्ताशुचिं देहं सर्वाशुभनिधानकम्[6] । क्षणनश्वरमत्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥११७॥
स्नसाजालकसंश्लिष्टमतिच्छातत्वगावृतम् । अनेकरोगविहतं[7] जरागमजुगुप्सितम् ॥११८॥
एवंधर्मिणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना धृतिम् । तेभ्यश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति सञ्जायते कथम् ॥११९॥
शरीरिसार्थ एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि । [8]मुष्णन्तः प्रशमं लोकं तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥१२०॥
रमते जीवनृपतिः कुमतिप्रमदावृतः । [9]अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदर्थयितुमिच्छति ॥१२१॥

चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देख कर राजाका गर्वरूपी अङ्कुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतर कर मुनियोंको नमस्कार किया। राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम-क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं है ? ॥११०–१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी वह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो झूठी है और संसारको बढ़ानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोंके समान चञ्चल है तथा मनुष्यका यह जीतव्य केलेके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और बन्धुजनोंका समागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इनमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका ज्यों-ज्यों विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयङ्कर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ोंसे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों बार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५–११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नसोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे घिरा है, अनेक रोगोंसे खण्डित है, और बुढ़ापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७–११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचाराविचारकी शक्तिसे रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जबरदस्ती लूटनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोक कर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धि रूपी स्त्रीसे घिरकर क्रीड़ा कर रहा है और मृत्यु उसे अचानक ही

१. भ्रमरमधुरध्वनीन् । स्वनान् ख०, म० । २. दृग्ल म० । ३. समुपागतं म० । ४. ऐश्वर्यं म० । ५. क्वात्र म० । ६. सर्वा शुभ-म० । ७. विहितं म०, ख० । ८. मुषन्तः म०, ज० । ९. अवस्कन्देन म० ।

मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् । वैराग्यबलिना शक्यं रोद्धुं ज्ञानाङ्कुशाश्रिता ॥१२२॥
परस्त्रीरूपसस्येषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥१२३॥
शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुवर्त्मसु । चित्तप्रग्रहमत्यन्तं योग्यं कुरुत तद् दृढम् ॥१२४॥
नमस्यत जिनं भक्त्या स्मरतानारतं तथा । संसारसागरं येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥
मोहारिकण्टकं हित्वा तपःसंयमहेतिभिः[1] । लोकाग्रनगरं प्राप्य राज्यं कुरुत निर्भयाः ॥१२६॥
जैनं [2]व्याकरणं श्रुत्वा सुधीर्विजयपर्वतः । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं बभूव मुनिपुङ्गवः ॥१२७॥
तावपि भ्रातरौ तस्मिन् श्रुत्वा भक्त्या जिनश्रुतिम् । प्रव्रज्य सुतपोभारौ सङ्गतावाटतुर्महीम् ॥१२८॥
[3]सम्मेदं च व्रजन्तौ ताविष्टनिर्वाणवन्दनौ । कथञ्चिन्मार्गतो भ्रष्टावरण्यानीं समाश्रितौ ॥१२९॥
वसुभूतिचरेणाथ रौद्रम्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिक्रुद्धेन चाहूतौ गिराक्रोशकठोरया[4] ॥१३०॥
जिघांसन्तं तमालोक्य ज्यायान्मुदितमब्रवीत् । मा भैषीर्भ्रातरद्य त्वं समाधानं समाश्रय ॥१३१॥
म्लेच्छोऽयं हन्तुमुद्युक्तो दृश्यते नौ दुराकृतिः । चिराभ्याससमृद्धाया क्षान्तेरद्य विनिश्चयः ॥१३२॥
प्रत्युवाच स तं भीतिः का नौ जिनवचस्थयोः । नूनं मूढतयास्माभिरप्ययं प्रापितो वधम् ॥१३३॥
एवं तौ विहितालापौ सविचारं समाश्रितौ । प्रत्याख्यानं शरीरादेः प्रतिमायोगमागतौ ॥१३४॥
समीपतां च सम्प्राप्तो म्लेच्छो हन्तुं समुद्यतः । आलोक्य दैवयोगेन सैनेशेन निवारितः ॥१३५॥
रामः पप्रच्छ तेनैतौ व्यापादयितुमीप्सितौ । सेनाधिपेन निर्मुक्तौ रक्षितौ केन हेतुना ॥१३६॥

दुःखी करना चाहती है ॥१२१॥ विषयोंके मार्गमें मदोन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अङ्कुशको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुषके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महा मोहरूपी वेग को धारणकर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमें गिरा देते हैं,इसलिए मन रूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चय पूर्वक संसार-सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुरूपी कंटकको नष्टकर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभवका परित्याग कर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥

दूतके पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी वन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवीमें जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटवीमें पुष्टम्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उत्सुक देख बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई ! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आकृतिको धारण करनेवाला यह म्लेच्छ हम दोनोंको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालके अभ्याससे जिस क्षमाको समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंमें स्थिर रहनेवाले हम लोगोंको भय किस बातका है ? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार पूर्वक खड़े हो गये और शरीर आदिसे ममता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भील उनके पास आया परन्तु दैवयोगसे भीलोंके सेनापतिने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने केवलीसे पूछा

१. हेतुभिः म० । २. व्याख्यानं । ३. सम्मोदं ख० । ४.क्रोशकुठारया म० ।

केवल्यास्यात् समुद्भूता भारतीति भवान्तरे । सुरपः कर्षकश्चास्तां यक्षस्थाने सहोदरौ ॥१३७॥
लुब्धकेनाहृतो जीवः शकुनिर्ग्राममन्यदा । ताभ्यां कारुण्ययुक्ताभ्यां दत्त्वा मूल्यं विमोचितः ॥१३८॥
ततोऽसौ शकुनो मृत्वा बभूव म्लेच्छभूपतिः । सुरपः कर्षकश्चैतावुदितो मुदितस्तथा ॥१३९॥
पक्षीभवन्नसौ यस्मादेताभ्यां रक्षितं पुरा । तस्मात् सेनापतिर्भूयो ररक्षासाविमौ मुनी ॥१४०॥
लुब्धको जीवमोक्षेण वसुभूतिर्द्विजोत्तमः । सञ्जातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१४१॥
यद्यथा निर्मितं पूर्वं तद्योग्यं जायतेऽधुना । संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥१४२॥
किमर्थार्तैरिहानर्थग्रन्थैरौशनसादिभिः । एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥१४३॥
निःसृतावुपसर्गात्तौ मुनी कर्मानुभावतः । निर्वाणसदनं प्राप्तावकार्ष्टां जिनवन्दनाम् ॥१४४॥
एवं तौ चारुधामानि पर्यट्य समयं चिरम् । रत्नत्रयं समाराध्य मृत्वा स्वर्गमुपागतौ ॥१४५॥
तिर्यग्योनिषु पर्यट्य वसुभूतिः सुकृच्छ्रतः । मनुष्यत्वं समासाद्य तापसव्रतमाश्रितः ॥१४६॥
कृत्वा बालतपः कष्टं कालधर्मेण सङ्गतः । अग्निकेतुरिति ख्यातः क्रूरो ज्योतिःसुरोऽभवत् ॥१४७॥
तथास्ति भरतक्षेत्रे नाम्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यातः पुरुभोगोऽत्र पार्थिवः ॥१४८॥
महादेव्यावुभे तस्य योषिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावत्यपरोदिता ॥१४९॥
च्युतौ तौ सुन्दरौ नाकाज्जातौ पद्मावतीसुतौ । नाम्ना रत्नरथोऽन्यश्च विचित्ररथसंज्ञकः ॥१५०॥
उत्पन्नः कनकाभायां ज्योतिर्देवः परिच्युतः । अनुन्धर इति ख्यातिं गुणैस्ते चावनिं गताः ॥१५१॥
राज्यं पुत्रेषु निक्षिप्य षड्दिनानि जिनालये । कृतसंलेखनः सम्यक् स्वर्गं यातः प्रियव्रतः ॥१५२॥

कि भील इन्हें क्यों मारना चाहता था औरसेनापतिने किस कारणसे छुड़ा कर इनकी रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरमें यक्षस्थान नामक नगरमें सुरप और कर्षक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षीको पकड़ कर उस गाँवमें ले आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्षकने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मर कर म्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्षक मर कर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामें इन दोनोंने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनों मुनियोंकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मर कर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्व भवमें जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है। संसारी प्राणियोंकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रोंके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही संचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनों मुनियोंने निर्वाण क्षेत्र—सम्मेदाचल पहुँच कर जिन-वन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मर कर दोनों मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटी योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके व्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तप कर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्यौतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राजा राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियाँ थी एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर रानी पद्मावतीके रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्यौतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ। पृथिवी पर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्रोंके ऊपर राज्य

१. केवलिमुखात् । २. अयं श्लोकः क०, ख०, ज० प्रतिषु नास्ति ।

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकाभाङ्गजेन च ॥१५३॥
लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागतः । अनुन्धरो महीं तस्य विनाशयितुमुद्यतः ॥१५४॥
ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्यन्दनेन च । निर्जित्य समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराकृतः ॥१५५॥
खलीकारात्ततः पूर्वजन्मवैराच्च कोपतः । जटावल्कलधारी स तापसोऽभूद् विषाङ्घ्रिवत् ॥१५६॥
भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरौ तु प्रबोधिनौ । प्रव्रज्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
तौ महातेजसौ तत्र सुखं प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमङ्करमहीभृतः ॥१५८॥
उत्पन्नौ विमलाख्यायां महादेव्यां सुसुन्दरौ । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीयः कुलभूषणः ॥१५९॥
विद्यार्जनोचितौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरघोषश्च विद्वान् भ्राम्यन्नुपागतः ॥१६०॥
राज्ञा च संगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽखिलाः कलाः । शिक्षितौ तावुदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥
[1]स्वजनं नैव तौ कञ्चिज्जानीतस्तद्गतात्मकौ । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं [2]विद्याशालागतं तदा ॥१६२॥
उपाध्यायेन चानीतौ सुचिरात् पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥
आवयोः किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यकाः । आनायिता इति श्रोत्रपथं वार्ता तयोर्गता ॥१६४॥
ततस्तौ परया युक्त्या बाह्यालीं गन्तुमुद्यतौ । वातायनस्थितां कन्यां पुरशोभामपश्यताम् ॥१६५॥
तत्सङ्गमार्थमन्योन्यं मानसेऽकुरुतां वधम् । ततश्च वन्दिनो वक्त्रादिति शब्दः समुत्थितः ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमें छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमें श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे व्याह करलिया। इसी पुत्रीको काञ्चनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था। वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३–१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमें जीत कर तथा पाँच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमान से तथा पूर्वभव सम्बन्धी बैरसे कुपित होकर जटा और वल्कलको धारण करनेवाला विषवृक्षके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोंके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमङ्करकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए। प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८–१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घर पर क्रीडा करते रहते थे। एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रख लिया। उत्कृष्ट विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखीं ॥१६०–१६१॥ दोनों पुत्रोंका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोंको भी नहीं जानते थे। यथार्थमें उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमें ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिर कालके बाद पुत्रोंको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोंको योग्य देख उपाध्यायका यथायोग्य सन्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राजा कन्याएँ बुलवाई हैं यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने झरोखेमें बैठी नगरकी शोभा स्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमें परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया। तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह

१. स्वजनेनैव म० । २. विद्यार्शालागतं ब० । विद्याशालगतं म० ।

साकं विमलया देव्या श्रीमान् क्षेमङ्करो नृपः । चिरं जयति यस्यैतौ तनयौ त्रिदशोपमौ ॥१६७॥
वातायनस्थितैषापि कन्यका कमलोत्सवा । जयति भ्रातरावेतौ यस्याश्चारुगुणोत्कटौ ॥१६८॥
ततस्तौ तद्गिरो ज्ञात्वा सोदर्यैषावयोरिति । वैराग्यं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥१६९॥
धिग्धिग्धिगिदमत्यन्तं पापमस्माभिरीहितम् । अहो मोहस्य दारुण्यं सोदरा येन कांक्षिता ॥१७०॥
चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्माकमीदृशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेषां त्वत्यन्तसाहसम् ॥१७१॥
असारोऽयमहोऽत्यन्तं संसारो दुःखपूरितः । तत्र नामेदृशा भावाः जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् । सम्प्राप्य बोधमस्माभि[1] सद्वृत्तश्चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥
इति सञ्चिन्त्य सन्त्यज्य मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षां दैगवासीं[2] श्रितौ ॥१७४॥
नभोविहरणीं लब्धिं प्राप्य तौ सुतपोधनौ । आंहिपातां जैगन्मानाजिनतीर्थाभिपूजितम्[3] ॥१७५॥
क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकानलदीपितः । युगपत्सकलं त्यक्त्वाऽऽहारं[4] पञ्चत्वमागतः[5] ॥१७६॥
भवादारभ्य[6] पूर्वोक्तात् स एव हि पितावयोः । तेन नौ प्रति वात्सल्यं तस्य नित्यमनुत्तमम् ॥१७७॥
गरुडाधिपतिश्चासौ जातः ख्यातो महत्त्वतः । सुन्दरोऽद्भुतविक्रान्तो महालोचनसंज्ञकः ॥१७८॥
क्षुब्धः स्वासनकम्पेन प्रयुज्यावधिमूर्जितः । आगतोऽयं स्थितो भाति व्यन्तरामरसंसदि ॥१७९॥
अनुन्धरस्तु विहरंस्तापसाचारतत्परः । कौमुदीनगरीं यातः शिष्यसङ्घेन वेष्टितः ॥१८०॥
नरेशः सुमुखस्तत्र रतवत्यस्य भामिनी । कान्ता शतप्रधानत्वं प्राप्ता परमसुन्दरी ॥१८१॥

राजा क्षेमङ्कर सदा जयवन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र हैं ॥१६७॥ तथा झरोखेमें बैठी यह कमलोत्सवा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि सुन्दर गुणोंसे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दीके कहनेसे 'यह हमारी बहिन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोंके द्वारा इच्छित इस भारी पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो ! मोहकी दारुणता देखो कि जिससे हमने बहिन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-बूझकर सदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिये ॥१७१॥ अहो ! दुःखसे भरा यह संसार बिलकुल ही असार है जिसमें पापी मनुष्योंके ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दुःखसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोंने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपरूपी धनको धारण करनेवाले दोनों मुनियोंने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्‌के नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमङ्कर उस शोकाग्निसे दग्ध हो कर एक साथ समस्त आहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमङ्कर पहले कहे हुए भवसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिए हम दोनोंके प्रति उसका निरन्तर भारी स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह मरकर भवनवासी देवोंमें सुपर्णकुमार जातिके देवोंका अधिपति, प्रसिद्ध, सुन्दर अद्भुत-पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनके कम्पित होनेसे क्षुभित हो अवधि ज्ञानके द्वारा सब जान कर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोंकी सभामें बैठा है ॥१७९॥

उधर तपस्वियोंका आचार पालन करनेमें तत्पर अनुंधर, शिष्य समूहके साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमें आया ॥१८०॥ वहाँका राजा सुमुख था और रतवती उसकी स्त्री थी

१. -भिः सद्वृत्तश्चित्तमुत्तमम् म० । २. दैगम्बरीम् । ३. जगन्मान्याजिनतीर्थाभिपूजिताम् म० । ४. हारे म० । ५. मृत्युम् । ६. सर्वदारभ्य म० ।

अवरुद्धा च सच्चेष्टा मदनेति विलासिनी । पताका मदनेनेव जित्वा लोकमुपार्जिता ॥१८२॥
साधुदत्तमुनेः पार्श्वे सम्यग्दर्शनमैदसौ । तत्प्राप्येतरतीर्थानि तृणतुल्यान्यमन्यत ॥१८३॥
तस्याः पुरोऽथ रहसि कदाचिदवदन्नृपः । अहोऽसौ तापसः स्थानं महतां तपसामिति ॥१८४॥
ततो मदनयाऽवाचि कीदृग्नाथेदृशां तपः । मिथ्यादृशामविज्ञानलोकदम्भनकारिणाम् ॥१८५॥
तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै क्रुद्धः सा चागदत् पुनः । मा क्रुधः पश्यनाथेमं मेऽचिरात्पादवर्तिनम् ॥१८६॥
इत्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा शिक्षयित्वा मनोहरम् । आत्मजां नागदत्ताख्यां प्रैषयत्तापसाश्रमम् ॥१८७॥
तस्मै सैकान्तयाताय योगस्थाय सुविभ्रमा । आस्थितामरकन्येव परमाकल्पधारिणी ॥१८८॥
वातेहिताम्बरव्याजादूरूकाण्डमदर्शयत् । मारस्यान्तःपुरस्थानं लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८९॥
समाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिञ्जरम् । मारवारणकुम्भाभं तथा वक्षसिजद्वयम् ॥१९०॥
कुसुमग्रहणव्याजात् स्रस्तनीविरतेर्गृहम् । नाभिमण्डलमुत्तेजः कक्षोद्देशं च सुन्दरी ॥१९१॥
अज्ञानयोगमेतस्य भित्त्वा लोचनमानसे । अपसृतां प्रदेशेषु तेषु तस्याः सुबन्धने ॥१९२॥
ताडितः स्मरबाणैश्च [1]समुत्थाय समाकुलः । गत्वा शनैरपृच्छत्तां त्वं बाले कात्र वर्तसे ॥१९३॥
सन्ध्याकालेऽत्र ये केचित् प्राणिनः क्षुद्रका अपि । आलयं स्वं निषेवन्ते ननु त्वं सुकुमारिका ॥१९४॥
सावोचन्मधुरैर्वर्णैः भिन्दन्ती हृदयस्थलीम् । लीलया बाहुलतिकामुन्नयन्ती मुखं प्रति ॥१९५॥
चलन्नीलोत्पलच्छाये धारयन्ती विलोचने । किञ्चिद्दैन्यमिव प्राप्ता बहुविस्फुरिताधरा ॥१९६॥

जो सैकड़ो स्त्रियोंमें प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करने वाली एक मदना नामकी विलासिनी (वेश्या)स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसार को जीत कर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पताका ही हो ॥१८२॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्यधर्मोंको तृणके समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अथानन्तर किसी दिन राजाने मदनाके सामने कहा कि अहो! यह तापस महातपोंका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगोंको ठगने वाले लोगोंका तप कैसा? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोंमें वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कह कर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नामकी सुन्दरी पुत्रीको सिखा कर उस तापसके आश्रममें भेजा ॥१८७॥ सुन्दर हावभाव और उत्तम वेष-भूषाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवकन्याके समान जान पड़ती थी। वह एकान्तमें योग लेकर बैठे हुए उस तापसके पास जाकर खड़ी हो गई ॥१८८॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके बहाने उसने काम-देवके अन्तःपुरके समान, सौन्दर्य रससे भरे अपने ऊरू दिखाये ॥१८९॥ समाधानके बहाने केशरके द्रवसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥१९०॥ पुष्प ग्रहणके बहाने नीवी ढीलीकर जघन स्थान दिखाया, देदीप्यमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगलें भी दिखलाई ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदन कर उस नागदत्ताके उन-उन प्रदेशों पर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ तदनन्तर कामके बाणोंसे ताडित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरेसे उससे पूछने लगा कि हे बाले! तू कौन है? और यहाँ कहाँ आई है? ॥१९३॥ इस सन्ध्याके समय छोटे-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त सुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णोंसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक भुजलताको मुखकी ओर ऊपर उठाती, चञ्चल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुछ-कुछ

१. समुच्छ्राय म० ।

शृणु नाथ ! दयाधार ! शरणागतवत्सल ! । अम्बयाऽहं विना दोषादद्य निर्वासिता गृहात् ॥१९७॥
काषायप्रावृता चाहं भवदीयामिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नाथानुमोदनात् ॥१९८॥
शुश्रूषां भवतः कृत्वा दिवा नक्तं च सक्तया । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च जायते ॥१९९॥
किं तद्धर्मार्थकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्यानां मया पुण्येन वीक्षितः ॥२००॥
इति सम्भाषिते तस्याः विज्ञाय प्रगुणं मनः । स्मरेण दह्यमानोऽसावब्रवीदिति विक्लवः[1] ॥२०१॥
भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसीद त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीवं करोमि ते ॥२०२॥
इत्युक्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति सादरा[2] ॥२०३॥
न वर्तते इदं कर्तुं कन्याहं विधिवर्जिता । पृच्छ मे[3] मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्यतोरणे ॥२०४॥
परा कारुण्ययुक्तेयं भवतः शेमुषी यथा । एतां प्रसादयावश्यं तुभ्यमेषा ददाति माम् ॥२०५॥
एवमुक्तस्तया साकं त्वरया व्याकुलक्रमः । वेश्माविशद्विलाम्निम्न्याः सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥
मन्मथाकृष्टनिःशेषहृषीकविषयो ह्यसौ । किञ्चिद्वेत्ति स्म नोपायं[4] विशन्वारीमिव द्विपः ॥२०७॥
न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥२०८॥
आश्चर्यं[5] मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते । अन्धो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
वेश्याचरणयोश्चासौ कृत्वा विलुठितं शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसंज्ञितश्चाविशन्नृपः ॥२१०॥

दीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको बार-बार हिलाती हुई बोली ॥१९५-१९६॥ कि हे नाथ ! हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिये, आज मेरी माताने मुझे अपराधके बिना ही घरसे निकाल दिया है ॥१९७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारणकर आपकी इस वृत्तिका आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिये ॥१९८॥ रात-दिन आपकी सेवा करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१९९॥ धर्म अर्थ और काममें ऐसा कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं। पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए हैं ॥२००॥ इस प्रकार कहने पर उसका मन वशीभूत जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥ कि हे भद्रे ! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तमे ! तुम्हीं मुझपर प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥ ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आदरके साथ उसे हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी मातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहने पर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके थे, ऐसा वह तापस वारी (बन्धन) में प्रवेश करनेवाले हाथीके समान कुछ भी उपाय नहीं जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे ग्रस्त मनुष्य न सुनता है, न सूँघता है, न देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित ही होता है ॥२०८॥ जिस प्रकार अन्धा मनुष्य साँपोंसे भरे कुएँमें गिरकर कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥ तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर झुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय

१. विस्तु वः म० । २. विशारदा म० । ३. पृच्छाव म० । ४. तत्कथा म० । ५. विशल्वारीं म० । दिशन्वारीं ख० । ६. आचार्यं म० ब० ।

स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ राज्ञा नक्तं समीक्षितः । खलीकारं प्रभाते च प्रकटं प्रापितः परम् ॥२११॥
ततोऽपमाननिर्दग्धः परं दुःखं समुद्वहन् । भ्राम्यन् महीं मृतः क्लेशयोनिषु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नं जनादरविवर्जितम् ॥२१३॥
गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेशं जनको गतः । उद्वेजितः कुटुम्बिन्या कलहक्रूरवाक्यया ॥२१४॥
कुमारे च हता माता म्लेच्छेन विषयाहतौ । दुःखं च परमं प्राप्तः सर्वबन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
ततस्तापसतां प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारुह्य नाम्ना वह्निप्रभोऽभवत् ॥२१६॥
अनन्तवीर्यनामाथ केवली सेवितः सुरैः । इत्यन्तेवासिना पृष्टो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्योऽनुभविता भव्यो लोकस्योत्तरकारणम् ॥२१८॥
सोऽवोचन्मयि निर्वाणं गतेऽत्र श्रमणक्षितौ । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
भवितारौ जगत्सारौ केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥
सोऽपि वह्निप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुखात् । अवस्थानं निजं यातो दध्यौ केवलिभाषितम् ॥२२१॥
अन्यदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविह नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यावाक्यं करोम्यहम् ॥२२२॥
एवमुक्त्वाभिमानेन परमेणातिमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
चरमाङ्गधरं दृष्ट्वा स भवन्तमतिद्रुतम् । सुरेन्द्रकोपभीत्या च तिरोधानमुपागतः ॥२२४॥
नारायणसमेतेन प्रातिहार्ये त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं घातिपरिक्षये ॥२२५॥

पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥ राजाने उसे बँधवा कर रात्रिभर रक्खा और सबेरे छान-बीन कर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्मोंके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दरिद्रतारूपी कीचड़में निमग्न तथा लोगोंके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहनेवाली स्त्रीसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देश पर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गई । इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतपकर ज्यौतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्म की चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिसुव्रत भगवान्के इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७–२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चलेजानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत्के सारभूत तथा केवल-ज्ञान और दर्शनके धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे २१९–२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हींके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्यसर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२–२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्मोंका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

६. देशाघाते सति ।

इति गत्यागतीः श्रुत्वा प्राणिनां वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२२६॥
महापूतमिति श्रुत्वा वचनं केवलीरितम् । मुहुः सुरासुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२२७॥
तावच्च गरुडाधीशः परमं सम्पदं श्रितः । नत्वा केवलिनः पादौ शयकअर्पितालिकः[1] ॥२२८॥
ऊचे रघुकुलोद्योतं विलसन्मणिकुण्डलम् । स्निग्धां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतर्पितमानसः ॥२२९॥
प्रातिहार्यं कृतं येन त्वया मत्सुतयोः परम् । ततस्तुष्टोऽस्मि याचस्व वस्तु यत्तेऽभिरोचते ॥२३०॥
क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा जगाद रघुनन्दनः । त्वयासुरप्रसन्नेन स्मर्तव्या वयमापदि ॥२३१॥
साधुसेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अङ्गीकर्तव्यमस्माभिर्भवद्वारविनिर्गतम् ॥२३२॥
एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्मुः शङ्खान् दिवौकसः । भेर्यश्च[2] मेघनिनदाः सानुवाद्याः समाहताः ॥२३३॥
साधुपूर्वभवं श्रुत्वा संवेगं परमं श्रिताः । प्राव्रजन्नुर्जनाः केचिदन्येऽणुव्रतमाश्रिताः ॥२३४॥

इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणमुनी नु जगदर्च्यौ सर्वभवदुःखमलसङ्गमविमुक्तौ ।
ग्रामपुरपर्वतमटम्बपरिरम्यान् बभ्रमतुरुत्तमगुणैरुपचिन्तागान् ॥२३५॥

देशकुलभूषणमहामुनिभवं ये वृत्तमतिपूतमिदमुत्कटसुभावाः ।
[3]श्रोत्रवचसोर्विषयतामुपनयन्ते ते रविनिभा दुरितमाशु विसृजन्ति ॥२३६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते देशकुलभूषणोपाख्यानं नामैकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥३९॥

है ॥२२५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी गति आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्णकुमारोंके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवानके चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा। उस समय वह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम क्षणभर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो आपत्तिके समय हम लोगोंका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहने पर देवोंने शङ्ख फूँके तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाई ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वभव सुन कर परम संवेगको प्राप्त हुए कितने ही लोगोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतोंके धारी हुए ॥२३४॥ जगत्के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपी मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्रामपुर पर्वत तथा मटम्ब आदि रमणीय स्थानोंमें विहारकर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अतिशय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें देशभूषण कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३९॥

१. हस्तकमलार्पितभालः । २. भेर्यश्च म० । ३. श्रोतवचसा म० ।

चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिनः पद्मनन्त्यविग्रहधारिणम्¹ । स्तुत्वा सजयनिस्वानं प्रणेमुः सर्वपार्थिवाः ॥१॥
वंशस्थलपुरेशश्च महाचित्तः सुरप्रभः । सलक्ष्मणं सपत्नीकं पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥
प्रासादशिखरच्छायाधवलीकृतपुष्करम्² । नावृणोन्नगरं गन्तुं रामो राज्ञापि याचितः ॥३॥
वंशाद्रिशिखरे रम्ये हिमवच्छिखरोपमे⁴ । समविस्तीर्णसद्वर्णरमणीयशिलातले ॥४॥
नानावृक्षलताकीर्णे नानाशकुनिनादिते । सुगन्धानिलसम्पूर्णे नानापुष्पफलाकुले ॥५॥
पद्मोत्पलवनाढ्याभिर्वापीभिरतिशोभिते । सर्वर्तुसहितोद्युक्त⁵वसन्तकृतसेवने ॥६॥
⁶सज्जिता परमा भूमिः शुद्धादर्शतलोपमा । दशार्धवर्णरजसा कल्पितानेकभक्तिका ॥७॥
कुन्दातिमुक्तकलता वकुलाः कमलानि च । यूथिका मल्लिका नागा अशोकाश्चारुपल्लवाः ॥८॥
एते चान्ये च भूयांसश्चारुभासः सुगन्धयः । भावारम्यविलासाभिः प्रमदाभिः प्रकल्पिताः ॥९॥
बद्ध्वा परिकरं पुम्भिः सुविदग्धैः सुसम्भ्रमैः । मङ्गलालापसम्पन्नैः स्वामिभक्तिपरायणैः ॥१०॥
मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रुद्राणि⁷ वैजयन्तीशतानि च ॥११॥
किङ्किणीजालयुक्तानि मुक्तादामशतानि च । चामराणि विचित्राणि लम्बूषमणिपट्टिका ॥१२॥
दर्पणा बुद्बुदावल्यो विस्फुरद्भास्करांशवः । न्यस्तान्येतानि तुङ्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥
अवनौ पूर्णकलशाः स्थापिता विधिसंयुताः । हंसा इव निविष्टास्ते विरेजुर्नलिनीवने ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्‌के मुखसे रामको चरमशरीरी जानकर समस्त राजाओंने जयध्वनि के साथ स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वंशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी की भक्ति की ॥२॥ जो महलोंके शिखरोंकी कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा था ऐसे नगरमें चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उन्होंने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे चौड़े अच्छे रङ्गके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनोंसे युक्त वापिकाओंसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सब ऋतुओंके साथ आकर वसन्त ऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वतके शिखर पर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार की गई। उस भूमि पर पाँच वर्णकी धूलि से अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावोंसे रमणीय चेष्टाओंको धारण करनेवाली स्त्रियोंने वहाँ उसी पञ्चवर्णकी परागसे कुन्द, अतिमुक्तकलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुतसे अन्य वृक्ष बनाये ॥८-९॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओंके धारक, मङ्गलमय वार्तालापमें तत्पर और स्वामि भक्तिमें निपुण मनुष्योंने बड़ी तैयारीके साथ नाना चित्रोंको धारण करनेवाले बादली रङ्गके वस्त्र फैलाये, सैकड़ों सघन पताकाएँ फहराईं ॥१०-११॥ छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त सैकड़ों मोतियोंकी मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओंमें लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवी पर

१. चरमशरीरिणम् । २. गगनम् । ३. आवृणोन्नगरं ख० । ४. हिमवच्छिशिरोपमं म० । ५. युक्ते म० । ६. सर्जिता म० । ७. सघनानि रुद्राणि म० ।

यत्र यत्र पदन्यासं करोति रघुनन्दनः । तत्र तत्रोरुपद्मानि स्थापितानि महीतले ॥१५॥
शयनान्यासनैः साकं रचितानि यतस्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शधराण्यलम् ॥१६॥
सलवङ्गादिताम्बूलं प्रवराण्यंशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्याभरणानि च ॥१७॥
सूदगेहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदान्नपूर्णानि कृतयत्नानि सर्वतः ॥१८॥
गुडेन सर्पिषा दध्ना भूः क्वचिद् भाति पङ्किला । इति कर्तव्यताभाजा जनेनादरिणान्विता ॥१९॥
स्वाहारेण क्वचित्तृप्ताः पथिकाः स्वेच्छया स्थिताः । प्रसादयन्ति विश्रब्धाः सङ्कथाबद्धगुल्मकाः ॥२०॥
क्वचिद्धा शेखरी भाति मदिरामत्तलोचनः । क्वचित् सीमन्तिनी मत्ता वकुलामोदवाहिनी ॥२१॥
क्वचिन्नाट्यं क्वचिद् गीतं क्वचित्सुकृतसङ्कथा । क्वचित् कान्तैः समं नार्यो रमन्ते चारुविभ्रमाः ॥२२॥
दत्तप्रेङ्खाः क्वचित् स्मेरैः सलीलैर्विटपुङ्गवैः । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वाणगणिकोपमाः ॥२३॥
रामलक्ष्मणयोर्यानि रचितानि ससीतयोः । क्रीडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितुं क्षमः ॥२४॥
नानाभूषणयुक्ताङ्गौ सुमाल्याम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥
सीता चाक्लिष्टसौभाग्या दुरितासङ्गवर्जिता । रमते तत्र चेष्टाभिः शास्त्रदृष्टाभिरुज्ज्वलम् ॥२६॥
तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्रशः ॥२७॥
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः । गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिताः ॥२८॥
सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः । सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाचिताः ॥२९॥

जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रक्खे गये थे जो कमलिनीके वनमें बैठे हुए हंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवी तल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे ॥१५॥ जहाँ-तहाँ मणियों और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुख-दायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लवंग आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ-तहाँ रक्खे गये थे ॥१७॥ जो सब ओरसे नाना प्रकारकी भोजन-सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गईं थीं ॥१८॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड़, घी और दहीसे पंकिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥१९॥ कहीं मधुर आहारसे तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामें झूमते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्रीकी सुगन्धिको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर विलासोंसे सहित स्त्रियाँ पतियोंके साथ क्रीड़ा कर रही थीं ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान वेश्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित रामलक्ष्मणके जो क्रीड़ास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥२५॥ और अखण्ड सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओंसे उज्वल क्रीड़ा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वंशगिरि पर जगत्‌के चन्द्र स्वरूप रामने जिनेन्द्र भगवान्‌की हजारों प्रतिमाएँ बनवाईं थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणोंसे युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखासे सहित थे, सफेद और

मृदङ्गवंशमुरजसङ्गीतोत्तमनिस्वनाः । झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः ॥३०॥
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः । विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः ॥३१॥
रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः । पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः ॥३२॥
अन्यदाथ महीपालरामो राजीवलोचनः । लक्ष्मीधरमुवाचेदं क्रियते किमतः परम् ॥३३॥
इह संप्रेरितः कालः सुखेन परमे गिरौ । जिनचैत्यसमुत्थाना स्थापिता कीर्तिरुज्ज्वला ॥३४॥
अनेन भूभृता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हृताः । अत्रैव [1]यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥
इह तावदलं भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न मुञ्चति क्षणमपि [2]प्रवरा भोगसन्ततिः ॥३६॥
इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते । पुराकृतानां पुण्यानां इह सम्पद्यते फलम् ॥३७॥
अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसम्पदम् । अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः ॥३८॥
नदीनां चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥३९॥
नद्याः कर्णरवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । श्रूयते दण्डकारण्यं दुर्गमं क्षितिचारिभिः ॥४०॥
[3]भारती न विशत्याज्ञा तस्मिन् जनपदोज्झिते । तत्रार्णवतटं [4]श्रित्वा विदध्मः क्वचिदालयम् ॥४१॥
यदाज्ञापयसीत्युक्ते कुमारेण ससम्भ्रमम् । सुरेन्द्रसदृशं भोगं [5]भुक्त्वा ते निर्गतास्त्रयः ॥४२॥
अनुगम्य सुदूरं तौ बलोपेतः सुरप्रभः । कृच्छ्रान्निवर्तितस्ताभ्यां शोकी पुरमुपागतः ॥४३॥

सुन्दर पताकाओंसे युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शङ्खों और भेरियोंके शब्दसे अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके बनवाये जिनमन्दिरोंकी पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं ॥२८-३१॥ उन मन्दिरोंमें सब लोगोंके द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पञ्चवर्णकी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३२॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वत पर समय सुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोंके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकड़ों प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो संकल्पित कार्य नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३६॥ जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख-सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेगसे बहनेवाली नदियों, आयुके दिन और यौवनका जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशोंसे रहित उस वनमें भरतकी आज्ञाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर बनावेंगे ॥४१॥ 'जो आज्ञा हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वंशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुँचानेके लिए गया। राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे लौटा सके। तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापिस आया ॥४३॥

१. इह दि म० । २. प्रवरो म० । ३. भरत सम्बन्धिनी । ४. तटं च्छ्रुत्वा म० (?) । ५. मुक्त्वा म० ।

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो बहुधातुसानुः ।
विलम्पतीभिः ककुभां समूहं भासार्चकाज्जैनगृहावलीभिः ॥४४॥
रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि ।
निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्रविप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४०॥

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभासे सम्पन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिप्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पंक्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्‌के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

४. अत्वकात् शुशुभे ।

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनप्तारौ श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदृक्षू दक्षिणाम्भोधिमायातौ [1]सुखभागिनौ ॥१॥
पुरग्रामसमाकीर्णानतीत्य विषयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्यं नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
यस्मिन्न विद्यते पन्थाः स्थानं नार्यनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चरं यन्नगाकुलम् ॥३॥
नानावृक्षलताकीर्णं महाविषमगह्वरम् । गुहान्धकारगम्भीरं बहुनिर्झरनिम्नगम् ॥४॥
क्रोशं क्रोशं शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकीवशात् । निर्भयौ क्रीडनोद्युक्तौ प्राप्तौ कर्णरवां नदीम् ॥५॥
यस्यास्तटानि रम्याणि तृणैर्युक्तानि भूरिभिः [2]समान्यायतदेशानि स्पर्शं बिभ्रति सौख्यदम् ॥६॥
अनत्युच्चैर्घनच्छायैः फलपुष्पविभूषितैः । रेजुस्तटद्रुमैस्तस्याः समीपधरणीधराः ॥७॥
वनमेतदलं चारु नदी चेति [3]निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरुच्छायेऽवस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकतान्यवगाह्य च । जलावगाहनं चक्रुस्ते रम्यक्रीडयोचितम् ॥९॥
ततो मृष्टानि पक्वानि फलानि कुसुमानि च । यथेच्छमुपभुक्तानि तैः सुखं कृतसत्कथैः ॥१०॥
तत्र भाण्डोपकरणं सकलं कैकयीसुतः । [4]मृदावंशैः पलाशैश्च विविधैराशु निर्ममे ॥११॥
अमीषु स्वादचारूणि फलानि सुरभीणि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्री समस्करोत् ॥१२॥
अन्यदातिथिवेलायां गगनाङ्गणचारिणौ । प्रभापटलसंवीतविग्रहौ चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पारकर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सघन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विषम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गंभीर जान पड़ता था, और जहाँ झरने तथा अनेक नदियाँ बह रही थीं ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकीके कारण धीरे-धीरे एक कोश ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रीड़ा करनेमें उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीके पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी तृणोंसे व्याप्त, समान, लम्बे-चौड़े और सुखकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षोंसे सुशोभित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचार कर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीड़ाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीड़ा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वनके पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारकी मिट्टी, बाँस तथा पत्तोंसे सब प्रकारके बर्तन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सब बर्तनोंमें राजपुत्री सीताने स्वादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानके भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति

१. सुखभोगिनौ म० । २. सामान्यायत-म० । ३. चैतौ निरूपितौ म० । ४. मृदावंशैः म० ।

ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ महाव्रतपरिग्रहौ । परेण तपसा युक्तौ दुस्पृहामुक्तमानसौ ॥१४॥
मासोपवासिनौ वीरौ गुण्यौ शुभसमीहितौ । यच्छन्तौ नयनानन्दं[1] बुधचन्द्रमसाविव ॥१५॥
मुनी सुगुप्तिगुप्ताख्यावायान्तौ सम्मुखं भुवः[2] । यथोक्ताचारसम्पन्नौ सहसा सीतयेक्षितौ ॥१६॥
ततः प्रमदसम्भारविकसन्नेत्र[3] शोभया । दयिताय तया ख्यातमिति रोमाञ्चिताङ्गया ॥१७॥
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ ! तपसा कृशविग्रहम् । दैगम्बरं परिश्रान्तं भदन्तयुगलं शुभम् ॥१८॥
क तत् क तत्प्रिये साध्वि पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगलं दृष्टं भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥
यन्निरीक्ष्य वरारोहे सुचिरं पापमर्जितम् । क्षणात् प्रणाशमायाति जनानां भक्तचेतसाम् ॥२०॥
इत्युक्ते रघुचन्द्रेण सीतोवाच ससम्भ्रमा । इमाविमाविति प्रीत्या स तदाभूत् समाकुलः ॥२१॥
ततो युगमितक्षोणीदेशविन्यस्तलोचनौ । मुनी प्रशान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
अभ्युत्थानाभियानाभिस्तुष्टैः[4] प्रणमनादिभिः । दम्पतीभ्यां कृतावेतौ पुण्यनिर्झरपर्वतौ ॥२३॥
शुच्यङ्गया च वैदेह्या महाश्रद्धापरीतया । परिविष्टं तयोः[5] श्राद्धं रमणेन समेतया ॥२४॥
गवामरण्यजातानां महिषीणां च चारुणा । हैयङ्गवीनमिश्रेण पयसा तत्समुद्भवैः ॥२५॥
खर्जूरैरिङ्गुदैराम्रैर्नालिकेरै रसान्वितैः । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितैः ॥२६॥
आहार्यैर्विविधैः[6] शास्त्रदृष्टिशुद्धिसमन्वितैः । पारणां चक्रतुर्गृद्धासम्बन्धोज्झितचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशाङ्गणमें विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोंसे सहित थे, महाव्रतोंके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाओंसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणोंसे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो ॥१७-१८॥ रामने संभ्रममें पड़ कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पण्डिते ! हे सुन्दरदर्शने ! हे गुणमण्डने ! तुमने निर्ग्रन्थमुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दरि ! भक्त मनुष्योंका चिरसञ्चित पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहने पर सीताने संभ्रम पूर्वक कहा कि 'ये हैं, ये हैं' । उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्तिपूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खड़े होना, संमुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपी निर्झरके झरानेके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमें उत्पन्न हुई गायों और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इङ्गुद, आम, नारियल, रसदार बेर तथा भिलामा आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा

१. नन्दो म० । २. भुवा म०, ख० । ३. विकशन्नेत्र म० । ४. यानाभिस्तुष्टः प्रणयनादिभिः म०, यानाभितुष्टि प्रणयनादिभिः ब० । ५. भोजनं । ६. दृष्टिताडिताः म० ।

एवं च पर्युपास्यैतौ मुनी रामः प्रियान्वितः । समस्तभावसम्भारकृतनिर्ग्रन्थमाननः ॥२८॥
तावद्दुन्दुभयो नेदुर्गगनेऽदृष्टताडिताः । ववौ समीरणः स्वैरं घ्राणरञ्जनकारणम् ॥२९॥
साधु साध्विति देवानां मधुरो निस्वनोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णानि कुसुमानि नभस्तलम्[1] ॥३०॥
पात्रदानानुभावेन दिव्या सकलवर्णिका । पूरयन्ती नभोऽपप्तद्वसुधारा महाद्युतिः ॥३१॥
अथात्रैव वनोद्देशे गहनस्य महातरोः । निषण्णोऽग्रे महागृध्रः स्वेच्छयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
स दृष्ट्वाऽतिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावतः । बहूनात्मभवान् स्मृत्वा तत्रैवमचिन्तयत् ॥३३॥
मनुष्यभावसुकरं प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न कृतं तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥
भाव प्रतप्यसे किं त्वमधुना पापचेष्टितः । कमुपायं करोम्येतां कुत्सितां योनिमागतः ॥३५॥
अनुकूलारिभिः पापैर्मित्रशब्दनधारिभिः[2] । प्रेरितेन सता त्यक्तं धर्मरत्नं सदा मया ॥३६॥
सुभूरिचरितं पापमपकर्ण्य गुरूदितम् । मोहध्वान्तपरीतेन दह्ये यदधुना स्मरन् ॥३७॥
न किञ्चिदत्र बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके विद्यते दुःखसंक्षये ॥३८॥
एतौ प्रयामि शरणं साधू सर्वसुखावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्तिः सञ्जायते ध्रुवम् ॥३९॥
इति पूर्वभवध्यानात्[3] परमं शोकमागतः । दर्शनाच्च महासाध्वोः प्रमोदं त्वरयान्वितः ॥४०॥
विधूय पक्षयुगलमश्रुसम्पूर्णलोचनः । पपात शाखिनो मूर्ध्नः प्रश्रयान्वितविभ्रमः ॥४१॥
नागाः सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विदुद्रुवुरयं दुष्टः कथं तु न खगाधमः ॥४२॥

की । उन मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२७॥ इस प्रकार समस्त भावोंसे मुनियोंका सन्मान करनेवाले राम इन दोनों मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें अदृष्टजनोंसे ताडित दुन्दुभि बाजे बजने लगे, घ्राण इन्द्रियको प्रसन्न करनेवाली वायु धीरे-धीरे बहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पाँच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशको व्याप्त करने-वाली, महाकान्तिकी धारक, सब रत्नोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८–३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सघन महावृक्षके अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा था ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्व पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भवमें करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकीको धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अब क्यों संताप कर रहा है ? इस समय तो इस कुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंमें निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र संज्ञाको धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी बैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखोंका क्षय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८–३९॥ इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण होनेसे जो परम शोकको प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शीघ्रतासे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पङ्ख फड़फड़ाकर वृक्षके शिखरसे नीचे आया ॥४०–४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक

१. नभस्तले म० । २. शब्देन धारिभिः म० । ३. भव ध्यानात् म० ।

हा मातः पश्यतामुष्य धाष्टर्यं गृध्रस्य पापिनः। चिन्तयन्त्येति वैदेह्या कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
वार्यमाणोऽपि यत्नेन कृतनिष्ठुरशब्दया। मुनिपादोदकं पक्षी सोत्साहः पातुमुद्यतः ॥४४॥
पादोदकप्रभावेण शरीरं तस्य तत्क्षणम्। रत्नराशिसमं जातं परीतं चित्रतेजसा ॥४५॥
जातौ हेमप्रभौ पक्षौ पादौ वैडूर्यसन्निभौ। नानारत्नच्छविर्देहश्चञ्चुर्विद्रुमविभ्रमा ॥४६॥
ततः स्वमन्यथाभूतमवलोक्य सुसम्मदः। विमुञ्चन्मधुरं नादं नर्तितुं स समुद्यतः ॥४७॥
देवदुन्दुभिनादोऽसावेव तस्यातिसुन्दरम्[1]। आतोद्यत्वं परिप्राप्तं स्वां[2] च वाणीं सुतेजसः ॥४८॥
मुञ्चन्नानन्दनेत्राम्भश्चक्रीकृत्य गुरुद्वयम्। शुशुभे कृतनृत्योऽसौ शिखी मेघागमे यथा ॥४९॥
विधिना[3] पारणां कृत्वा मुनी कृतयथोचितौ। वैडूर्यसदृशे राजन्नुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥
पद्मरागाभनेत्रश्च पक्षी सङ्कुचितच्छदः। प्रणम्य पादयोः साधोः सुखं तस्थौ कृताञ्जलिः ॥५१॥
क्षणादग्निमिवालोक्य ज्वलन्तं तेजसा खगम्। पद्मो विकचपद्माक्षो विस्मयं परमं गतः ॥५२॥
प्रणम्य पादयोः साधुं गुणशीलविभूषणम्। अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
भगवन्नयमत्यन्तं विरूपावयवः पुरा। कथं क्षणेन सञ्जातो हेमरत्नचयच्छविः ॥५४॥
अशुचिः सर्वमांसादो गृध्रोऽयं दुष्टमानसः। निषद्य पादयोः शान्तस्तत्र कस्मादवस्थितः ॥५५॥
सुगुप्तिश्रमणोऽवोचद् राजन् पूर्वमिहाभवन्। देशो जनपदाकीर्णो विषयः सुन्दरो महान् ॥५६॥

बड़े-बड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा। हा मातः! इस पापी गृध्रकी धृष्टता तो देखो; इस प्रकार विचार कर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी सीताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह बड़े उत्साहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४२-४३॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४४॥ उसके दोनों पङ्ख सुवर्णके समान हो गये, पैर नील मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नोंकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच मूँगाके समान दिखने लगी ॥४५॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥ उस समय जो देव-दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता-जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४७-४८॥ दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देकर हर्षाश्रुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणाकर वैडूर्यमणिके समान जो शिलातल था उस पर विराजमान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भी अपने पङ्ख संकुचित कर तथा मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम कर अञ्जली बाँध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम, क्षण भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुण और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन्! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण भरमें सुवर्ण तथा रत्न राशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया? ॥५३-५४॥ महा अपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन्। पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

१. सुन्दरीं म०। २. त्वां म०। ३. पारणं म०।

पत्तनग्रामसंवाहमटम्बपुटभेदनैः । घोषद्रोणमुखाद्यैश्च सन्निवेशैर्विराजितः ॥५७॥
कर्णकुण्डलनामात्र पुरमासीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयमभूद्राजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥
चण्डविक्रमसम्पन्नो भग्नशात्रवकण्टकः । दण्डो मानमयः ख्यातो दण्डको नाम साधनी ॥५९॥
घृतार्थिना जलं तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन घृतः पापागमो धिया ॥६०॥
देवी मस्करिणां तस्य [1]वरिवस्या पराभवत् । तेषामसावधीशेन सम्भोगं समुपागता[2] ॥६१॥
सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥
निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरीक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानसंरुद्धमानसः ॥६३॥
कृष्णसर्पो मृतस्तस्य [3]दिग्धाङ्गो विषलालया । कण्ठे निधापितस्तेन ग्रावदारुणचेतसा ॥६४॥
यावद्देयोऽपनीतो न मद्यातुर्मम केनचित् । तावन्न संहरेयोगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥
अतीते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्क्रामन् पार्थिवोऽपश्यत्तदवस्थं महामुनिम् ॥६६॥
ऋजुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अप्रच्छदपनेतारं किमेतदिति सोऽवदत् ॥६७॥
नरेन्द्र पश्य केनापि [4]नरकावासमार्गिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥
यस्य सर्पस्य सम्पर्काद् विग्रहस्य समुद्गतम् । प्रतिबिम्बं शितिक्लिन्नं दुर्दर्शमतिभीषणम् ॥६९॥
मुनिं निःप्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्याक्षमयद्यातास्ते च स्थानं यथोचितम् ॥७०॥
ततः प्रभृति सक्तोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरम्बरमुनीन्द्राणां वारितोपद्रवक्रियः ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटंब, पुटभेदन, घोष और द्रोण मुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था। यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कंटकोंको भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपोषक शास्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजकों की बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रुका हुआ था ॥६३॥ पाषाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विषमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला साँप डलवा दिया ॥६४॥ 'जब तक इस साँपको कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योगको संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थान पर खड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियाँ व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महामुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे साँप अलग कर रहा था। राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और साँप निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन्! देखो, नरककी खोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ मुनिराजके गलेमें साँप डाल रक्खा है ॥६७-६८॥ जिस साँपके संपर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, खेदखिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयङ्कर हो गई है ॥६९॥ कुछ भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देख राजाने प्रणाम कर उनसे क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समय से राजा दिगम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव-

१. वरिवश्या क०, ख०, ग० । २. समुपागतः म० । ३. लिप्तशरीरः । ४. नगरावास- म० ।

देवीविटपरिव्राजा[1] ज्ञात्वान्यविषयं नृपम् । इदं क्रोधपरीतेन विधातुमभिवाञ्छितम् ॥७२॥
जीवितस्नेहमुत्सृज्य परदुःखाहितात्मकः । निर्ग्रन्थरूपभृद्देव्याः सम्पर्कमभजत् पुनः ॥७३॥
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म राज्ञातिक्रोधधर्मायुषा । अमात्याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्ग्रन्थनिन्दनम् ॥७४॥
क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरितः श्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिर्ष्पीडने नरान् ॥७५॥
गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम्[2] । यन्त्रनिर्ष्पीडनैर्नीतः पञ्चतां पापकर्मणाम् ॥७६॥
बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरेकः समाव्रजन् । इत्यवार्यत लोकेन केनचित् करुणावता ॥७७॥
भो भो निर्ग्रन्थ मागास्त्वं पूर्वनैर्ग्रन्थ्यमाश्रयन् । यन्त्रेणापीड्यसे तत्र द्रुतं कुरु पलायनम् ॥७८॥
यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः । मागास्त्वमप्यवस्थां तां रक्ष धर्माश्रयं वपुः ॥७९॥
ततः क्षणमसौ सङ्घमृत्युदुःखेन शल्यितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तस्थावव्यक्तचेतनः ॥८०॥
अथास्य शतदुःखेन प्रेरितः शमगह्वरात् । निरम्बरमहीध्रस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥
रक्ताशोकप्रकाशेन निखिलं तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ॥८२॥
कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदबिन्दवो जाताः प्रतिबिम्बितविष्टपाः ॥८३॥
ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिलः पृथुः । हाकारेण मुखात्तस्य निरगात् पावकध्वजः[3] ॥८४॥
अनुलग्नश्च तस्याग्निरुज्जगाम निरन्तरम् । कृतं नभस्तलं येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

कष्ट दूर कर दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्ग्रन्थ मुनिका रूप धर रानीके साथ संपर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ। मन्त्री आदि अपने उपदेशमें निर्ग्रन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें भूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानीमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानीमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे। उन्हें किसी दयालु मनुष्यने यह कह कर रोका कि हे निर्ग्रन्थ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी! तुम अपने पहलेका निर्ग्रन्थवेष धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानीमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७–७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रन्थ मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त संघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षणभरके लिए वज्रके स्तम्भकी नाँई अकम्प—निश्चल हो गये। उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गई थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानो उसमें संध्या ही व्याप्त हो गई हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आईं और उनमें लोकका प्रतिबिम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्दका उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईन्धनके बिना

१. विटपरिव्राजी म० । २. वरवाससाम् म० । ३. अग्निः ।

उल्काभिर्नु जगद्व्याप्तं ज्योतिर्देवाः पतन्ति नु । महाप्रलयकालो नु वह्निर्देवा नु रोषिताः ॥८६॥
हा हा मातः किमेतन्नु तापोऽयमतिदुस्सहः । चक्षुरुत्पाट्यते दीर्घसंदंशैरिव वेगिभिः ॥८७॥
मूर्तिनिर्मुक्तमेवैतद्गगनं कुरुते ध्वनिम् । वंशारण्यमिवोद्दीप्तं जीवितार्कर्षणोचितम् ॥८८॥
यावदेव ध्वनिर्लोके वर्ततेऽत्यन्तमाकुलः । वह्निस्तावदयं देशमनयद् भस्मशेषताम् ॥८९॥
नान्तःपुरं न देशो न पुराणि न च पर्वताः । न नद्यो नाप्यरण्यानि तदा न प्राणधारिणः ॥९०॥
महासंवेगयुक्तेन मुनिना चिरमर्जितम् । क्रोधाग्निनाखिलं दग्धं तपोऽन्यत् किमु शिष्यताम् ॥९१॥
यतोऽयं दण्डको देशः आसीद्दण्डकपार्थिवः । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डकः परिकीर्त्यते ॥९२॥
काले महत्यतिक्रान्ते प्राप्तायां चारुतां भुवि । एतेऽत्र पादपा जाताः पर्वताश्च सनिम्नगाः ॥९३॥
मुनेस्तस्य प्रभावेण सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतदभूत् कैव वार्ता विद्याबलाश्रिताम्[1] ॥९४॥
पश्चादिदं समाकीर्णं सिंहेन शरभादिभिः । नानाशकुनिवृन्दैश्च सस्यभेदैश्च भूरिभिः ॥९५॥
अद्याप्यस्योरुदावस्य श्रुत्वा शब्दं परं भयम् । व्रजन्ति मानवाः कम्पं वृत्तान्ते नु निबोधिनः ॥९६॥
संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा दण्डको दुःखपूरितः । अयं गृध्रत्वमायातो वनेऽत्र रतिमागतः ॥९७॥
दृष्ट्वा सातिशयावेव नौ वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्तः पूर्वभवस्मृतिम् ॥९८॥
योऽसौ परमया शक्त्या युक्तोऽभूद्दण्डको नृपः । सोऽयं पश्यत सञ्जातः कीदृशः पापकर्मभिः ॥९९॥
इति विज्ञाय विरसं फलं कटुककर्मणः । कथं न सज्यते[2] धर्मे दुरिताच्च विरज्यते ॥१००॥

ही समस्त आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८५॥ क्या यह लोक उल्काओंसे व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे वेगशाली बड़ी-बड़ी संडाशियोंसे नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोंके खींचनेमें उद्यत बाँसोंका वन ही जल रहा है' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जब तक लोकमें गूँजता है तब तक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६–८९॥ उस समय न अन्तःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियाँ, न जङ्गल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥९०॥ महान् संवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप सञ्चित कर रक्खा था यह सबका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचतीं ही कैसे ? ॥९१॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९२॥ बहुत समय बीत जानेके बाद यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियाँ दिखाई देने लगी हैं ॥९३॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरोंकी तो बात ही क्या है ? ॥९४॥ आगे चल कर यह वन सिंह अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जङ्गली धान्योंसे युक्त हो गया ॥९५॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दावानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९६॥ राजा दण्डक बहुत समय तक संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रपर्यायको प्राप्त हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९७॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है ? ॥९९॥ इस प्रकार पाप कर्मका नीरस फल जान कर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाय और पापसे क्यों नहीं

१. श्रिता म० । २. सूज्यते म० ।

दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
पक्षिणं संयतोऽगादीन्मा भैषीरधुना द्विज । मा रोदीर्यद्यथा भाव्यं कः करोति तदन्यथा ॥१०२॥
आश्वासं गच्छ विश्रब्धः कम्पं मुञ्च सुखी भव । पश्य क्वेयमरण्यानी क्व रामः सीतयान्वितः ॥१०३॥
अवग्रहोऽस्मदीयः क्व क्व त्वमात्मार्थसङ्गतः । प्रबुद्धो दुःखसम्बोधः कर्मणामिदमीहितम् ॥१०४॥
इदं कर्म विचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यथैव प्रवदाम्यहम् ॥१०५॥
पक्षिणः प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाकूतं च सीरिणः[1] । सुगुप्तिरवदत् स्वस्य सुगुप्तेः शमकारणम् ॥१०६॥
अचलो नाम विख्यातो वाराणस्यां[2] महीपतिः । गिरिदेवीति जायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनाम्नान्यदा मुनिः । पारणार्थं गृहं तस्याः प्रविष्टः शुद्धचेष्टितः ॥१०८॥
स तया परमां श्रद्धां दधत्या विधिपूर्विकाम् । तर्पितः परमान्नेन स्वयं व्यापारमुक्तया ॥१०९॥
समाप्ताशनकृत्यश्च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
नाथ सातिशयोऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं क्रियतां निश्चयार्पणम्[3] ॥१११॥
वचोगुप्तिं ततो भित्वा राज्ञीभक्त्यनुरोधतः । तस्याश्चारुसमादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य समादेशेऽनयत् सुतौ । जातौ सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्यां तौ ततः कृतौ ॥११३॥
तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्रीसमन्वितौ । तिष्ठन्तौ विविधैर्भावै रममाणौ जनप्रियौ ॥११४॥
वृत्तान्तोऽयं च सञ्जातो गन्धवत्यां[4] महीपतेः । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

विरक्त हुआ जाय ? ॥१००॥ दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥

रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कँपकपी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहाँ ? और सीता सहित राम कहाँ ? ॥१०३॥ हमारा पडगाहन कहाँ ? और आत्म कल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी एक दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधि पूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरि देवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर किसी दूसरेके बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिये ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तिको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रक्खे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भावोंसे रमण करते तथा लोगोंको अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामका

१. रामस्य । २. वाणारस्यां म० । ३. निश्चयार्पणो म० । ४. गन्धावत्यां म० ।

सुकेतुरग्निकेतुश्च तयोः प्रीतिरनुत्तमा । सुकेतुरन्यदा चाभूत् कृतदारपरिग्रहः ॥११६॥
आवयोरधुना भ्रात्रोः पृथक् शयनमेतया । क्रियते जाययावश्यमिति दुःखमुपागतः ॥११७॥
सुकेतुः प्रतिबुद्धः सन् शुभकर्मानुभावतः । अनन्तवीर्यपादान्ते श्रमणत्वं समाश्रितः[1] ॥११८॥
अग्निकेतुर्वियोगेन भ्रातुरत्यन्तदुःखितः । वाराणस्यामभूदुग्रस्तापसो धर्मचिन्तया ॥११९॥
श्रुत्वा चैवंविधं तं च भ्रातरं स्नेहबन्धनः । प्रतिबोधयितुं वाञ्छन् सुकेतुर्गन्तुमुद्यतः ॥१२०॥
स व्रजन् गुरुणावाचि सुकेतो कथयिष्यसि । वृत्तान्तं सोदरायेमं येनासावुपशाम्यति ॥१२१॥
कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते गुरुरेवमुदाहरत् । करिष्यति त्वया साकं स जल्पं दुष्टभावनः ॥१२२॥
युवयोः कुर्वतोर्जल्पं जाह्नवीमागमिष्यति । चारुकन्या समं स्त्रीभिस्तिसृभिर्गौरविग्रहा ॥१२३॥
दिवसस्य गते यामे विचित्रांशुकधारिणी । एभिश्चिह्नैर्विदित्वा तां भाषितव्यमिदं त्वया ॥१२४॥
दृष्ट्वा तां वद्धर्मसादं त्वं ज्ञानं चेदस्ति ते मते । वदैतस्याः कुमार्याः किं भवितेति शुभाशुभम् ॥१२५॥
अज्ञानोऽसौ विलक्षः संस्तापसस्त्वां भणिष्यति । भवान् जानात्विति त्वं च वक्ष्यस्येवं सुनिश्चितः ॥१२६॥
अस्त्यत्र प्रवरो नाम[2] वणिजः सम्पदान्वितः । तस्येयं दुहिता नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१२७॥
तृतीयेऽहनि पञ्चत्वं वराकीयं प्रपत्स्यते । ततोऽजा कम्बरग्रामे विलासस्य भविष्यति ॥१२८॥
वृकेण मारिता मेषी महिषी च ततः पितुः । मातुलस्य विलासस्य भविष्यति शरीरजा ॥१२९॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रणम्य प्रमदी[3] गुरुम् । सुकेतुः क्रमतः प्राप्तस्तापसानां निकेतनम् ॥१३०॥

पुरोहित था उसकी स्त्रीके सुकेतु और अग्निकेतु नामके दो पुत्र थे। उन दोनों ही पुत्रोंमें अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होने पर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे। समय पाकर सुकेतुका विवाह हो गया। जब स्त्री घर आई तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस स्त्रीके द्वारा अब हम दोनों भाइयोंकी शय्या जुदी-जुदी की जा रही है ॥११५-११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिबोधको प्राप्त हो सुकेतु अनन्तवीर्य मुनिके पास दीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके वियोगसे अग्निकेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेकी भावनासे वाराणसीमें उग्र तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमें बँधे सुकेतुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरुने उससे कहा कि हे सुकेतो ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशान्त हो जायगा ॥१२१॥ 'हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तान्त है' ? इस प्रकार सुकेतुके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारण करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारण करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोंके साथ गङ्गा आवेगी। वह दिनके पिछले प्रहरमें आवेगी तथा विचित्र वस्त्रको धारण कर रही होगी। इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममें कुछ ज्ञान है तो बताओ इस कन्याका क्या शुभ अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३-१२५॥ तब वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो। यह सुन तुम निश्चयसे सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगरमें एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६-१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायगी और कम्बर नामक ग्राममें विलास नामक वैश्यके यहाँ बकरी होगी। भेड़िया उस बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसीके घर भैंस होगी और उसके बाद उसी विलासके पुत्री होगी। वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८-१२९॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणामकर हर्षसे भरा सुकेतु क्रम-

१. समाश्रितं म० । २. वणिक्पुत्रः । ३. हर्षयुक्तः ।

गुरुणा च यथादिष्टं तां दृष्ट्वा तमुदाहरत् । तथा वृत्तं च तत्सर्वं यातमग्नेः समक्षताम् ॥१३१॥
ततोऽसौ विधुरा नाम्ना विलासस्य शरीरजा । याचिता श्रेष्ठिना लब्धा प्रवरेण मनोहरा ॥१३२॥
विवाहसमये प्राप्ते प्रवराय न्यवेदयत् । अग्निकेतुर्यथेयं ते दुहितासीद् भवान्तरे ॥१३३॥
विलासायापि ते सर्वे भवास्तेन निवेदिताः । श्रुत्वा तत्कन्यका जाता जातिस्मरणकोविदा ॥१३४॥
ततः प्रव्रजितुं वाञ्छा सा संवेगपराकरोत् । प्रवरश्च विलासेन व्यवहारं दुराशयः ॥१३५॥
सभायां पितुरस्माकं प्रवरे भङ्गतां गते । आर्यिकात्वमिता कन्या श्रमणत्वं च तापसः ॥१३६॥
वृत्तान्तमीदृशं श्रुत्वा वयं वैराग्यपूरिताः । सकाशेऽनन्तवीर्यस्य जैनेन्द्रव्रतमाश्रिताः ॥१३७॥
एवं मोहपरीतानां प्राणिनामतिभूरिशः । जायन्ते कुत्सिताचारा भवसन्ततिदायिनः ॥१३८॥
मातापितृसुहृन्मित्रभार्यापत्यादिकं जनः । सुखदुःखादिकं चायं विवर्तं लभते भवे ॥१३९॥
तच्छ्रुत्वा सुतरां पक्षी भीतोऽभूद् भवदुःखतः । चकार च मुहुःशब्दं धर्मग्रहणवाञ्छया ॥१४०॥
उक्तं च गुरुणा भद्र मा भैषीरधुना व्रतम् । गृहाण येन नो भूयः प्राप्यते दुःखसन्ततिः ॥१४१॥
प्रशान्तो भव मा पीडां[1] कार्षीः सर्वासुधारिणाम् । अनृतं स्तेयतां भार्यां परकीयां विवर्जय ॥१४२॥
एकान्तब्रह्मचर्यं वा गृहीत्वा सत्क्षमान्वितः । रात्रिभुक्तिं परित्यज्य भव शोभनचेष्टितः ॥१४३॥
प्रयतोऽह्नि[2] क्षपायां च जिनेन्द्रान् वह चेतसा[3] । उपवासादिकं शक्त्या सुधीर्नियममाचर ॥१४४॥

क्रमसे तापसोंके आश्रममें पहुँचा ॥१३०॥ गुरुने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुकेतुने अपने भाई अग्निकेतुसे कहा और वह सबका सब वृत्तान्त उसी प्रकार अग्निकेतुके सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥१३१॥

तदनन्तर वह कन्या जब मरकर चौथे भवमें विलासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीकी याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गई ॥१३२॥ जब विवाहका समय आया तब अग्निकेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरमें तुम्हारी पुत्री थी ॥१३३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विलासके लिए भी उसके वे सब भव कह सुनाये। उन भवोंको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३४॥ जिससे संसारसे भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करनेका विचार कर लिया। इधर प्रवरने समझा कि विलास किसी छलके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूषित अभिप्रायको धारण करनेवाले प्रवरने हमारे पिताकी सभामें विलासके विरुद्ध अभियोग चलाया परन्तु अन्तमें प्रवरकी हार हुई, कन्या आर्यिका पदको प्राप्त हुई और अग्निकेतु तापस दिगम्बरमुनि बन गया ॥१३५-१३६॥ वृत्तान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अनन्तवीर्य नामक मुनिराजके समीप जिनेन्द्र दीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ इस प्रकार मोही जीवोंसे संसारकी सन्ततिको बढ़ानेवाले अनेक खोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥१३८॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख दुःखादिकको भव-भवमें प्राप्त होता है ॥१३९॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे बार-बार शब्द करने लगा ॥१४०॥ तब मुनिराजने कहा कि हे भद्र ! भय मत करो। इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राप्त न हो ॥१४१॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी प्राणीको पीड़ा मत पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परस्त्रीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चेष्टाओंसे युक्त होओ, बड़े प्रयत्नसे रात-दिन जिनेन्द्र भगवान्‌को हृदयमें धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमोंका आचरण करो, प्रमाद रहित होकर

१. पीडा म० । २. प्रयतोंघ्रि क्षिपायां च (?) म० । ३. बहुचेतसा म० ।

इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्नुत्सुकान्यात्मगोचरे । कुरु युक्तान्यवस्थानि साधूनां भक्तितत्परः ॥१४५॥
इत्युक्तः[1] साञ्जलिः पक्षी शिरो विनमयन्मुहुः । कुर्वाणो मधुरं शब्दं जग्राह मुनिभाषितम् ॥१४६॥
श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् । इत्युक्त्वा[2] सस्मिता सीता तं कराभ्यां समस्पृशत् ॥१४७॥
साधुभ्यामुक्तमित्येतं रक्षितुं वोऽधुनोचितम्[3] । तपस्वी शान्तचित्तोऽयं क्व वा गच्छतु पक्षभृत् ॥१४८॥
अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिषेविते । सम्यग्दृष्टेः खगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
ततो गुरुवचः प्राप्य सुतरां स्नेहपूर्णया । सीतयानुगृहीतोऽसौ परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां तं परामृशती सती । जनकस्याङ्गजा रेजे विनीता गरुडं यथा ॥१५१॥
निर्ग्रन्थपुङ्गवावेभिः स्तुतिपूर्वं नमस्कृतौ । बहूपकारिसञ्चारौ यातावात्मोचितं पदम् ॥१५२॥
नभः समुत्पतन्तौ तौ शुशुभाते महामुनी । दानधर्मसमुद्रस्य कल्लोलाविव पुष्कलौ ॥१५३॥
प्रभिन्नं वारणं तावद् वशीकृत्य वनोत्थितम् । आरुह्य लक्ष्मणः श्रुत्वा ध्वनिमागात् समाकुलः ॥१५४॥
रत्नकाञ्चनराशिं च दृष्ट्वा पर्वतसन्निधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥
विकसन्नयनाम्भोजमहाकौतुकपूरितः । कृतो विदितवृत्तान्तः पद्मेन मुदितात्मना ॥१५६॥
प्राप्तबोधिरसौ पक्षी नायासीत्तौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानसः ॥१५७॥
स्मर्यमाणोपदेशोऽसौ सीतयाणुव्रताश्रमे । पद्मलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽभ्रमन्महीम् ॥१५८॥

इन्द्रियोंको व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४२–१४५॥ मुनिराजके इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षीने अञ्जलि बाँध बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोंका विनोद करनेवाला हो गया' यह कह कर मन्दहास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोंको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तको धारण करनेवाला यह बेचारा पक्षी कहाँ जायगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सघन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिये ॥१४९॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथोंसे उसका स्पर्श करती हुई विनयवती सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुडका ही स्पर्श कर रही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थान पर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदोन्मत्त हाथीको वशकर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्णकी राशि देख कर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सब समाचार विदित कराया ॥१५५–१५६॥ जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोंका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके बिना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुव्रताश्रममें स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियोंके उपदेशका स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वी

१. इत्युक्त्वा म० । २. इत्युक्ता म० । ३. वाधुनोचितं म० ।

धर्मस्य पश्यतौदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५९॥
पुरा योऽनेकमांसादो दुर्गन्धोऽभूज्जुगुप्सितः । सोऽयं काञ्चनकुम्भाभः सुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥
क्वचिद् वह्निशिखाकारः क्वचिद् वैडूर्यसन्निभः । क्वचिच्चामीकरच्छायो हरिन्मणिरुचिः क्वचित् ॥१६१॥
रामलक्ष्मणयोरग्रे स्थितोऽसौ बहुचाटुकः । बुभुजे साधु सम्पन्नमन्नं सीतोपसाधितम् ॥१६२॥
चन्दनेन स दिग्धाङ्गो हेमकिङ्किण्यलङ्कृतः । बिभ्राणः शकुनी रेजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६३॥
यस्मादंशुजटास्तस्य विरेजू रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासावाहूतस्तैरतिप्रियः ॥१६४॥
जितहंसगतिं कान्तं चारुविभ्रमभूषितम् । तमन्यपक्षिणो दृष्ट्वा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६५॥
त्रिसन्ध्यं सीतया साकं वन्दनामकरोदसौ । भक्तिप्रह्वो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥
तत्र प्रीतिं महाप्राप्ता जानकी करुणापरा । अप्रमत्ता सदा रक्षां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६७॥

उपजातिवृत्तम्

आस्वादमानो निजयेच्छयासौ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
जलं प्रशस्तं च पिबन्नरण्ये बभूव नित्यं सुविधिः पतत्री ॥१६८॥
सतालशब्दं जनकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।
कृतानुगीत्यां पतिदेवराभ्यां ननर्त हृष्टो [1]रविरुग्जटायुः ॥१६९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायूपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

पर भ्रमण करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्र के समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५९॥ पहले जो अनेक प्रकारके मांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियोंसे अलंकृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे। वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त सिद्ध तथा निर्ग्रन्थ साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जङ्गलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोंका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरमें स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥

१. सूर्यसमप्रभाधारकः ।

द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतौ रामलक्ष्मणौ । इहैव रत्नहेमादि[1]सम्प्रयुक्तौ बभूवतुः ॥१॥
ततश्चामीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसङ्गतमुन्नतम् ॥२॥
स्थूलमुक्ताफलस्रग्भिर्विराजत्पवनायनम् । बुद्बुदादर्शलम्बूषखण्डचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥
शयनासनवादित्रवस्त्रगन्धादिपूरितम् । चतुर्भिर्वारणैर्युक्तं विमानप्रतिमं रथम् ॥४॥
आरूढा विचरन्त्येते प्रतिघातविवर्जिताः । जटायुसहिता रम्ये वने सत्ववतां नृणाम् ॥५॥
क्वचिद्दिनं क्वचित् पक्षं क्वचिन्मासं मनोहरे । यथेप्सितकृतक्रीडाः प्रदेशे तेऽत्रतस्थिरे ॥६॥
निवासमत्र कुर्मोऽत्र कुर्म इत्यभिलाषिणः । महोक्षनवशष्पेच्छा विचेरुस्ते वनं सुखम् ॥७॥
महानिर्झरगम्भीरान् कांश्चिदुच्चावचान् बहून् । उत्तुङ्गपादपान् देशान् जग्मुरुल्लङ्घ्य ते शनैः ॥८॥
स्वेच्छया पर्यटन्तस्ते सिंहा इव भयोज्झिता[2] । मध्यं दण्डककक्षस्य प्रविष्टा भीरुदुःखदम् ॥९॥
विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिगिरिसन्निभाः । रम्या निर्झरनद्यश्च मुक्ताहारोपमाः स्थिताः ॥१०॥
अश्वत्थैस्तिन्तिडीकाभिर्बदरीभिर्विभीतकैः । शिरीषैः कदलैर्लैरक्षोटैः[3] सरलैर्धवैः ॥११॥
कदम्बैस्तिलकैर्लोध्रैरशोकैर्नीललोहितैः । जम्बूभिः पाटलाभिश्च चूतैराम्रातकैः शुभैः ॥१२॥
चम्पकैः कर्णिकारैश्च सालैस्तालैः प्रियङ्गुभिः । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्नन्दिभिरर्जुनैः ॥१३॥
केसरैश्चन्दनैर्नीपैर्भूर्जैर्हिंगुलकैर्वटैः । सितासितैरगुरुभिः कुन्दैः रम्भाभिरिङ्गुदैः ॥१४॥
पद्मकैर्मुचिलिन्दैश्च कुटिलैः पारिजातिकैः । बन्धूकैः केतकीभिश्च मधूकैः खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्र दानके प्रभावसे सीता सहित राम लक्ष्मण इसी पर्यायमें रत्न तथा सुवर्णादि संपत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो स्वर्णमयी अनेक बेल-बूटोंके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम खम्भों वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके झरोखे बड़े-बड़े मोतियोंकी मालासे सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस, तथा खण्ड चन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो विमानके समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सब बिना किसी बाधाके जटायु पक्षीके साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले वनमें विचरण करते थे ॥२–५॥ वे उस मनोहर वनमें इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निवास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बैलकी नई घास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुख पूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो बड़े-बड़े निर्झरोंसे गम्भीर थे तथा जिनमें ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे नीचे प्रदेशोंको पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिंहोंके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोंके हारके समान सुन्दर निर्झर और नदियाँ स्थित थीं ॥९–१०॥ जहाँका वन, पीपल, इमली, बैरी, बहेड़े, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदम्ब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रङ्गको धारण करनेवाले जामुन, गुलाब, आम, अंबाडा, चम्पा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियङ्गु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, कौहा, बकौली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिंगुलक, बरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द,

१. हेमाभि ज०, ख० । हेमानि म० । २. भयोज्झितां म० । ३. रक्षोटैः म० ।

मदनैर्खदिरैर्निम्बैः खर्जूरैश्छत्रकैस्तथा । नारिङ्गैर्मातुलिङ्गाभिर्दाडिमीभिस्तथासनैः ॥१६॥
नालिकेरैः कपित्थैश्च रसैरामलकैर्वनैः । शर्मीहरीतकीभिश्च कोविदारैरगस्तिभिः ॥१७॥
करञ्जकुष्ठकालीयैरुत्कचैरजमोदकैः । कङ्कोलत्वग्लवङ्गाभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥
चविभिर्धातकीभिश्च कुर्षकैरतिमुक्तकैः । पूगैस्ताम्बूलवल्लीभिरेलाभी रक्तचन्दनैः ॥१९॥
वेत्रैः श्यामलताभिश्च मेषश्टङ्गैर्हरिद्रुभिः । पलाशैः स्पन्दनैर्बिल्वैश्चिरबिल्वैः समेथिकैः ॥२०॥
चन्दनैररडूकैश्च शाल्मलीबीजकैस्तथा । एभिरन्यैश्च भूरुहैस्तदरण्यं विराजितम् ॥२१॥
सस्यैर्बहुप्रकारैश्च स्वयम्भूतै रसोत्तमैः । पुण्ड्रेक्षुभिश्च विस्तीर्णाः प्रदेशास्तस्य सङ्कुलाः ॥२२॥
चित्रपादपसङ्घातैर्नानावल्लीसमाकुलैः । अशोभत वनं बाढं द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥
मन्दमारुतनिर्धूतैः पल्लवैरतिकोमलैः । [1]ननर्तेवाटवी तोषात् पद्माद्यागमजन्मनः ॥२४॥
वायुतो ह्रियमाणेन रजसाभ्युत्थितेव च । आलिलिङ्गे च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
अगायदिव भृङ्गाणां झङ्कारेण मनोहरम् । जहासेव सितं रम्यं शैलनिर्झरशीकरैः ॥२६॥
[2]जीवंजीवकभेरुण्डहंससारसकोकिलाः । मयूरश्येनकुररा: शुककौशिकसारिकाः ॥२७॥
कपोतभृङ्गराजश्च भारद्वाजादयस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्वनाः ॥२८॥
कोलाहलेन रम्येण तद्वनं तेन सम्भ्रमि । जगाद स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदक्षिणम् ॥२९॥
कुतः किं राजपुत्रीति कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इतिकोमलभारत्या सञ्जजल्पुरिव द्विजाः ॥३०॥
सितासितारुणाम्भोजसञ्छन्नैरतिनिर्मलैः । सरोभिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्तं सुकुतूहलात् ॥३१॥
फलभारनतैरग्रैर्ननामेव महादरम्[3] । मुमोचानन्दनिश्वासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

रम्भा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैनार, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कैंथा, रसोंद, आँवला, शमी, हरड, कचनार, करञ्ज, कुष्ट, कालीय, उत्कच, अजमोद, कंकोल, दालचीनी, लौंग, मिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कुर्षक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, बेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी, चन्दन, अरडूक, सेंम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११-२१॥ उस वनके लम्बे चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यों तथा रसीले पौंडों और ईखोंसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धको धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थो ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झंकारसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्झरोंके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसी विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुरर, तोता, उल्लूक, मैना, कबूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीड़ा करते थे ॥२७-२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे संभ्रमके साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ कलरव करते हुए पक्षी कोमलवाणीसे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आई हो ॥३०॥ सफ़ेद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतूहल वश देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भार से झुके हुए अग्र भागोंसे वह वन ऐसा

१. अटवी ननर्त इव । २. जीवंजीवश्चकोरकः । ३. महीधरं म० ।

ततः सौमनसाकारं वनं तद्वीक्ष्य राघवः । जगाद विकचाम्भोजलोचनां जनकात्मजाम् ॥३३॥
वल्लीभिर्गुल्मकैः स्तम्बैः समासन्नैरमी नगाः । सकुटुम्बा इवाभान्ति प्रिये यच्छात्र लोचने ॥३४॥
प्रियङ्गुलतिकां पश्य सक्तां वकुलोरसि । कान्तस्येव वरारोहा शंके निर्भरसौहृदम् ॥३५॥
चलता पल्लवेनेयं सम्प्रत्यग्रेण माधवी । परामृशति सौहार्दादिव चूतमनुत्तरात् ॥३६॥

छन्दः (?)

अयं मदालसे[1]क्षणः करी करेणुचोदितः । मधुकरविघटितदलनिचयः प्रविशति सीते कमलवनम् ॥३७॥

उपजातिः

वहन्नसौ दर्पमुदारमुच्चैर्वल्मीकशृङ्गं गवलीसुर्नीलः[2] ।
लीलान्वितो वज्रसमेन धीरं भिन्ते[3] विषाणेन लसत्खुराग्रः ॥३८॥

आर्याच्छन्दः

अमुमिन्द्रनीलवर्णं विवरान्निर्यातदूरतनुभागम् ।
पश्य मयूरं दृष्ट्वा प्रविशन्तमहिं भयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलविक्रीडितम्

पश्यामुष्य महानुभावचरितं सिंहस्य सिंहेक्षणे
रम्येऽस्मिन्नचले गुहामुखगतस्याराद्विकासिद्युते ।
यः[4] श्रुत्वा रथनादमुन्नतमना निद्रां विहाय क्षणं
वीक्ष्यापाङ्गदृशा विजृम्भ्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थितः ॥४०॥

जान पड़ता था मानो बड़े आदरसे राम आदिको नमस्कार ही कर रहा हो और सुगन्धि वायुसे ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके श्वासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३२॥

तदनन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख देखकर रामने विकसित कमलके समान खिले हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताओं तथा निकटवर्ती गुल्मों और झाड़ियोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुटुम्ब सहित ही हों ॥३३-३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस पियङ्गु लताको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो पतिके वक्षःस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माधवीलता हिलते हुए पल्लवसे मानो सौहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मदसे आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोंसे रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गर्वको धारण कर रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके खुरोंके अग्रभाग सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील भैंसा वज्रके समान सींगके द्वारा वामीके उच्च शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस साँपके शरीरका बहुत कुछ भाग बिलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनील मणिके समान नीलवर्णवाले मयूरको देखकर भयभीत हो फिरसे उसी बिलमें प्रवेश कर रहा है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये ! इस मनोहर पर्वतपर गुहाके अग्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाको देखो जो इतना दृढ चित्त है कि रथका शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोड़ता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर

१. मदालसे क्षीणः म० । २. महिषः । ३. भिन्ने म० । ४. यच्छ्रुत्वा म० ।

विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित् केचिन्नीला रक्ताः केचित् ।
दृश्यन्तेऽमी वृक्षैर्व्याप्ता प्रान्ते कान्तेऽत्यन्तं कान्ताः ॥५६॥

प्रमाणिकाछन्दः

अमी समीरणेरिते वरोष्ठि वृक्षमस्तके । विभान्ति गह्वरे लवा रवेः कराः क्वचित् क्वचित् ॥५७॥

रुचिरावृत्तम्

अयं क्वचित् फलभरनम्रपादपः क्वचित् स्थितैः कुसुमपटैरलंकृतः ।
क्वचित् खगैः कलरवकारिभिश्रितो विभात्यलं वरमुखि दण्डको गिरिः ॥५८॥

कोकिलकच्छन्दः

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगतः प्रियतरवालिभिः प्रियतमैरनुयातपथः ।
अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुचिः पुरुषं प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥५९॥

स्रग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्यात्तिमिरमुपचितं कन्दराणां मुखेषु
स्यादेतत् किं विहायःस्फटिकमणिशिला किन्नु वृक्षान्तरस्था ।
एष स्याद् गण्डशैलः किमुत गजपतिः सेवते गाढनिद्रां
कान्ते क्षोणीधरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागाः ॥६०॥

एषा क्रौञ्चरवा नाम नदी जगति विश्रुता । जलं यस्याः प्रिये [1]वीध्रं त्वदीयमिव चेष्टितम् ॥६१॥

अश्वललितच्छन्दः

मृदुमरुदीरयक्षुरमलं तटस्थतरुपुष्पसंहितधरम् । भवशयनीयरूपसुभगं सुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफ़ेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं ॥५६॥ हे वरोष्ठि ! सघनवनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खण्ड ही हों ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त है; कहीं पड़े हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त है ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफ़ेद कान्तिका धारक है, और जो अपने बच्चों पर चञ्चल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोंका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा वाल टूट जानेके भयसे कठोर एवं सघन झाड़ीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है, ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्यके कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये ! यह वह क्रौञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर

१. वीध्रं विमलम् वीडं म० ।

भद्रकच्छन्दः

हंसकुलाभफेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम् । भृङ्गनिनादपूरितवना क्वचिद् विकटसङ्कटोपलचयैः ॥६३॥

(?) छन्दः

ग्राहसहस्रचारविषमा क्वचिच्च पुरुवेदसङ्गतजला ।
घोरतपस्विचेष्टिसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरश्मिभिन्नं क्वचिदनुलग्नसितोपलांशुयुक्तम् ।
जलमिह सितदन्ति भाति वाढं हरिहरयोरिव सङ्गतं शरीरम् ॥६५॥

वंशपत्रपतितम्

रक्तशिलौघरश्मिनिचिता क्वचिदियममला भाति समुद्यदर्कसमये दिगिव सुरपतेः ।
भिन्नजला क्वचिच्च हरितैरुपलकरचयैः शैवलशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छंकृतातिकलस्वनं निभृतपवनासङ्गात् कंम्पेष्वभीक्ष्णकृतभ्रमम् ।
परमसुरभेर्गन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्गतान् मधुकपटलं कान्ते क्षीवं विभाति रजोरुणम् ॥६७॥

शिखरिणीच्छन्दः

विपिक्तं पाताले क्वचिदिह जलं मुक्तवहनं परं गम्भीरत्वं वहति दयिते ते मन इव ।
क्वचिन्नीलाम्भोजैरनतिचलितैः षट्पदचितैर्विभर्त्यच्छिच्छायां प्रवरवनितालोकनभवाम् ॥६८॥

लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षोंके पुष्प-समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुक्लरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो हंस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पाषाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके संचारसे विषम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी-साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे बहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दाँतोंको धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमें स्थित सफेद पाषाणखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल-लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयकालीन पूर्व दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पाषाण-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शेवालकी शङ्कासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके सङ्गसे हिलते हुए कमल-समूह पर जो इच्छानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुखसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

१. ६२ तमे श्लोके अश्वललितच्छन्दसः पादद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छन्दसः पादद्वयम् । उभयत्रार्धार्ध एव श्लोको विद्यते । अथवा उभयोर्मेलने उपजातिच्छन्दो भवति । किन्तु विभिन्नजातिगृपजाति-वृत्तप्रायो न दृश्यते । २. लोचनभुवम् म० ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति व्योमगवृन्दं बहुविधजलभववनकृतचरणम् ।
प्रेमनिबद्धं तारविरावं क्वचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६९॥
सैकतमस्या राजति चेदं सवनितखगकुलकृतपदपदवि ।
त्वज्जघनस्य प्राप्तसुसमत्वं गतघनसुरपथशशधरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्भुस्तोयार्धाशं वीचिवरभ्रूरतिकान्ता ।
तद्वच्चारुस्फीतगुणौघं शुभचेष्टं[1] विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥७१॥

रुचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलङ्कृतास्तटीरुहो विविधविहङ्गसङ्कुलाः ।
निरन्तराः सजलघनौघसन्निभाः इमामिता रतिमिव कर्तुमावयोः ॥७२॥

अपरवक्त्रच्छन्दः

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसङ्गतम् ।
प्रमदभरवशंगता सती जनकसुता निजगाद सादरम् ॥७३॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हंसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलापाः ।
एतस्यां प्रियतम ते मनोगतं चेत्तोयेऽस्याः किमिति रतिक्षणं न कुर्मः ॥७४॥

है तथा बहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गाम्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोंसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलोंसे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६८॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलवनोंमें विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उच्च शब्द कर रहा है और तीव्र मदसे विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६९॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिस पर स्त्रियों सहित क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण-चिह्न बना रक्खे हैं ऐसा इस नदीका यह बालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलकी सदृशता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों—हावभाव रूप चेष्टाओंसे सहित तरङ्गके समान उत्तम भौंहोंसे युक्त एवं उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुभद्रा सुन्दर एवं विस्तृत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा संसारमें सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों—पक्षियोंके संचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भौंहों के समान उत्तम तरङ्गोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुण समूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलंकृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर हैं तथा जलसे भरे मेघ-समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदी कूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीताने आदरपूर्वक कहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा

१. अत्र चतुर्थचरणे छन्दोभङ्गः, पाठस्तूपलब्धपुस्तकेष्वेवं विध एव ।

वियोगिनीच्छन्दः

अथ राजसुतासमीरितं तद्वाक्यं राघवगोत्रचन्द्रमाः ।
अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् भेजे रम्यभुवं रथालयात् ॥७५॥
पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवधृतगजपतिवनपथपरिचितश्रमप्रतिनोदनम् ।
तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिक्रियाम् ॥७६॥

(?)

पश्चात् स्रोतः संसक्ताग्रद्रुमनिवहपरिचलनकरणवरसहितमतुलं विचेष्टितमीप्सितम् ।
रामेणामा स्नातुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलया लसत्प्रकटवीचिमालाकुला विमर्दितसितासितारुणपयोजपत्राचिता ।
समुद्गतकलस्वनातिरहसङ्गमासेविता समं रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्य सुदूरयायिना बिसिनीखण्डतिरोहितात्मना ।
पुनराशुसमागमाश्रिता रघुपुत्रेण रता नृपात्मजा ॥७९॥
मुक्त्वा नानाकृत्यासङ्गं कुसुमवनचरणजरजोविराजिगरुद्भृतम् ।
गत्वा क्षिप्रं तीरोद्देशं त्वरितकृतविविधरसिताः पुरोगतयोषितः ॥८०॥
तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरविषयगमनरहितं विधाय मनो भृशम् ।
तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं क्षणभर क्रीड़ा करें ॥७४॥

तदनन्तर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ-साथ रामने सीताके वचनोंका समर्थन किया और सब रथरूपी घरसे उतर कर मनोहर भूमि पर आये ॥७५॥ सर्वप्रथम लक्ष्मणने नवीन पकड़े हुए हाथीको जङ्गली मार्गोंके बीच चलनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेवाला स्नान कराया। उसके बाद उसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्ते और फूलोंका समूह इकट्ठा किया तथा उसकी योग्य परिचर्या की ॥७६॥ तदनन्तर जिनका मन नाना प्रकारके गुणोंकी खान था ऐसे लक्ष्मणने रामके साथ-साथ नदीमें स्नान करना प्रारम्भ किया। वे कभी जलके प्रवाहमें आगे बढ़े हुए वृक्षोंके समूह पर चढ़कर जलमें कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना प्रकारकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी उत्तमोत्तम विधियोंका प्रयोग करते थे ॥७७॥ जो फेनके वलय अर्थात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियोंसे सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरङ्गरूपी मालाओंसे युक्त थी, जो मसले हुए सफेद नीले और लाल कमलपत्रोंसे व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न हो रहा था और जो एकान्त समागमसे सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी मानो रघुकुलके चन्द्र—रामचन्द्रके साथ उपभोग ही कर रही हो ॥७८॥ रामचन्द्रजी पानीमें गोता-मार बहुत दूर लम्बे जाकर कमल वनमें छिप गये तदनन्तर पता चलने पर शीघ्र ही सीता उनके पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥७९॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा कर रहे थे और कमलोंके वनमें विचरण करनेसे उत्पन्न परागसे जिनके पङ्ख सुशोभित हो रहे थे वे अब शीघ्र ही किनारों पर आकर नाना प्रकारके मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों को आसक्ति छोड़कर तथा मनको विषयान्तरसे रहित कर राम-लक्ष्मण-सीताकी श्रेष्ठ जलक्रीड़ा देखने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यञ्च भी कोमल चित्तके धारक मनुष्योंकी मनोहर चेष्टाको

पुष्पिताग्रावृत्तम्

अतिमधुररवं करामिघातैर्मुरजरवादपि सुन्दरं विचित्रम् ।
अनुगतदयितो रघुप्रधानः सलिलमवादयदन्वितं सुगीत्या ॥८२॥
परितोऽकरोद्भ्रमगमस्य जलरमणसक्तचेतसोदारचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य [1]हलहेतेर्लक्ष्मणः ।
अतिवेगवान् पुनरपेतजवनिपुणचारतत्परो भ्रातृगुणनिरतधीः परमं समुद्ररवचापलक्षितः ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललीलः स्वेच्छयाम्भोविहारं प्रमदमुपनयन्तं तीरभाजां मृगाणाम् ।
रघुपतिरनुभूय भ्रातृदारानुयातो गजपतिरिव तीरं सेवितुं सम्प्रवृत्तः ॥८४॥

वंशस्थवृत्तम्

शरीरयानं च विधाय वर्तनं महाप्रशस्तैर्वनजन्मवस्तुभिः ।
स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामी कृतचित्रसत्कथाः ॥८५॥
सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विश्रब्धमानसः । जटायुमूर्धकरया सीतयाऽलङ्कृतान्तिकः ॥८६॥
सन्त्यस्मिन् विविधा भ्रातद्रुमाः स्वादुफलान्विताः । सरितः स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतात्मकाः ॥८७॥
अनेकरत्नसम्पूर्णो दण्डकोऽयं महागिरिः । प्रदेशैर्विविधैर्युक्तः परक्रीडनकोचितैः ॥८८॥
उपकण्ठेऽस्य नगरं विदध्मः सुमनोहरम् । नैजिकीर्वनसम्भूता गृह्णीमो महिषीस्तथा ॥८९॥
अस्मिन्नगोचरेऽन्येषामरण्येऽत्यन्तसुन्दरे । विषयावासनं कुर्मः परमा धृतिरत्र मे ॥९०॥
[2]स्वस्मिन्निहितचेतस्के नूनं शोकवशीकृते । [3]स्वहितैः स्वजनैः सर्वैः परिवर्गसमन्वितैः ॥९१॥

समझते हैं—जानते हैं ॥८०-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियोंके आघातसे जलका बाजा बजाया। उस जलवाद्यका शब्द मृदङ्गके शब्दसे भी अधिक मधुर सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रीडामें आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाओंके करनेमें तत्पर थे। भाईके स्नेहसे भरे एवं समुद्रघोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूरकर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्ज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और स्त्रीके साथ, तटपर स्थित मृगोंको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीड़ा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारे पर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरवृत्ति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारकी कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थीं ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥८६॥ कि हे भाई! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीड़ाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है॥८८॥हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनायें और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसें रख लें॥८९॥ जहाँ दूसरोंका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश बसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा संतोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोंमें लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके

१. रामस्य । २. अस्मिन् म० । ३. सहितैः म० ।

व्रजानय जनन्यौ नौ त्वरितं न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैवं मे मानसं शुद्धिमश्नुते ॥९२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसङ्गमे । प्रतिजाग्रद्भवान् सीतामिह स्थास्यति यत्नवान् ॥९३॥
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमार्द्रीकृतचेतस्कः पुनः पद्मो जगाविति ॥९४॥
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते दीप्तभास्करदारुणे । प्राप्तोऽत्यन्तमयं भीमः कालः सम्प्रति जालदः[1] ॥९५॥
क्षुब्धाकूपारनिर्घोषाश्चलाञ्जननगोपमाः । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विद्युद्वन्तो बलाहकाः ॥९६॥
निरन्तरं तिरोधाय गगनं घनविग्रहाः । मुञ्चन्ति कं यथा देवा रत्नराशिं जिनोद्भवे ॥९७॥

उपजातिवृत्तम्

विधाय तुङ्गानचलान् महान्तो धाराभिरुच्चैर्ध्वनयः पयोदाः ।
नभोङ्गणेऽर्मी निभृतं चरन्तः क्षणप्रभासङ्गमिनो विभान्ति ॥९८॥

वंशस्थवृत्तम्

पयोमुचः केचिदमी विपाण्डुराः समीरिता वेगवता नभस्वता ।
भ्रमन्ति निष्णातमसंयतात्मनां मनोविशेषा इव यौवनश्रिताः ॥९९॥
अयं सस्यभुवं मुक्त्वा मेघो भूभृति वर्षति । अनिश्चितविशेषः सन् कुपात्रे द्रविणी यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिजवमिह काले सिन्धवः सम्प्रवृत्ता विषमतमविहारोदारपङ्का धरित्री ।
जलपरिमलशीतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्तं तेन मन्ये सुभात्र ॥१०१॥

साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमें मेरा मन शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥९१–९२॥ शरद् ऋतु आने पर मैं स्वयं जाऊँगा, तुम सीताके प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥९३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये। उसी समय जिनका चित्त प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ग्रीष्म काल तो व्यतीत हुआ अब यह अत्यन्त भयंकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥९४–९५॥ जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते-फिरते अञ्जनगिरिके समान जान पड़ते हैं ऐसे बिजलीसे युक्त ये मेघ दिशाओंको अन्धकारसे युक्त कर रहे हैं ॥९६॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवानके जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते हैं उसी प्रकार मेघोंका शरीर धारण करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं—पानी बरसा रहे हैं ॥९७॥ जो स्वयं महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशाङ्गणमें निरन्तर विचरण कर रहे हैं तथा जिनमें बिजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥९८॥ वेगशाली वायुके द्वारा प्रेरित ये कितने ही सफ़ेद मेघ असंयमी मनुष्योंके तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे हैं ॥९९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला धनाढ्य मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता है उसी प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस समय बड़े वेगसे नदियाँ बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवी पर विहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए

१. जलदानामयं जालदः मेघसम्बन्धी। २. विद्युत्।

इति निगदति पद्मे केकयीसूनुरूचे
प्रवदसि यदधीशस्त्वं तथाहं करोमि ।
विविधरसकथाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते
रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासाभिधानं नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥

हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥ इस प्रकार रामके कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ। इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व

ततः शरदनुर्जित्वा शशाङ्ककरपत्रिभिः । घनौघं विशदं्चक्रे[1] राज्यमाक्रान्तविष्टपः ॥१॥
विकसत्पुष्पसङ्घातान् पादपान् स्निग्धचेतसः। अलङ्कारोत्तमांस्तस्य जगृहुः ककुबङ्गनाः ॥२॥
जीमूतमलनिर्मुक्तं भिन्नाञ्जनसमद्युति । अम्बुनेव चिरं धौतं रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥
प्रावृट्कालगजो मेघकलशैर्धरिणीश्रियम् । अभिषिच्य गतः क्वापि विद्युत्कक्षाविराजितः ॥४॥
चिरात् कमलिनीगेहं प्राप्य [2]पक्षभृतां गणाः । उद्भूतमधुरालापाः काम्प्यापुः सुखासिकाम् ॥५॥
सिन्धवः स्वच्छकीलाला[3] उन्मज्जत्पुलिनाः पराम् । कान्तिर्मायुः समासाद्य शरत्समयकामुकम् ॥६॥
वर्षावातविमुक्तानि चिरात्प्राप्य सुखासिकाम् । काननानि व्यराजन्त सङ्गतानीव निद्रया ॥७॥
सरांसि पङ्कजाढ्यानि समं [4]रोधस्समुत्थितैः । पादपैः पक्षिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥
नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्कतिलकं भेजे सुकालेशमिवोपर्ता ॥९॥
केतकीसूतिरजसा पाण्डुरीकृतविग्रहः । ववौ समीरणो मन्दं मदयन् कामिनीजनम् ॥१०॥
इति प्रसन्नतां प्राप्ते काले सोत्साहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिराश्लिष्टविक्रमैकमहारसः ॥११॥
[5]लब्ध्वानुमननं ज्येष्ठाद्दाशानिहितवीक्षणः । कदाचिल्लक्ष्मणो भ्राम्यन्नेककस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥
अजिघ्रदामरं गन्धं विनीतपवनाहृतम् । अचिन्तयच्च कस्यैष भवेद्गन्धो मनोहरः ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरण रूपी बाणोंके द्वारा मेघसमूहको जीत कर समस्त विश्वमें व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशा रूपी स्त्रियोंने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्ष रूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाश रूपी आंगन, मर्दित अञ्जनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा काल रूपी हाथी, मेघरूपी कलशोंके द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्मीका अभिषेक कर बिजली रूपी कक्षाओंमें सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमरोंके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जा कर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मग्न हो रहे हैं ऐसी स्वच्छजलसे भरी नदियाँ शरत्कालरूपी वल्लभको पा कर परम कान्तिको प्राप्त हो रही थीं ॥६॥ वर्षा कालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुखसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे संगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोंसे युक्त सरोवर तटों पर उत्पन्न हुए वृक्षोंके साथ पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाश रूपी स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित थी ऐसी रात्रि रूपी स्त्री उत्तमकाल रूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमा रूपी तिलकको धारण कर रही थी ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा जिसका शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनीजनोंको उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे बह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमें समस्त संसार उत्साहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होने पर सिंहके समान निर्भय विचरने वाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आज्ञा प्राप्त कर दिशाओंकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने विनयी पवनके द्वारा लाई हुई दिव्य सुगन्धि सूँघी । उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे

१. विशदं चक्रे म० । २. भ्रमराणाम् । ३. निर्मलजलयुक्ताः । ४. रोधसमुत्थितैः । ५. लब्धानुगमनं म० ।

पादपानां किमेतेषां स्फुटकुसुमधारिणाम् । आहोस्विन्मम देहस्य कुसुमोत्करशायिनः ॥१४॥
वैदेह्या सङ्गतो रामः किमुतोपरि तिष्ठति । किंवा कश्चित्समायातो भवेदत्र त्रिविष्टपी[1] ॥१५॥
ततो मगधराजेन्द्रः पप्रच्छ श्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयनं हरेः[2] ॥१६॥
ततो गणधरोऽवोचज्ज्ञातलोकविचेष्टितः । सन्देहतिमिरादित्यः पापधूलीसमीरणः ॥१७॥
द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य मुनिवासमुपागमे । विद्याधराय विभ्याय[3] यताय शरणं विभुम् ॥१८॥
राक्षसानामधीशेन महाभीमेन धीमता । अम्भोदवाहनायासीत्[4]कृपयेत्युदितो वरः ॥१९॥
विपुले राक्षसद्वीपे त्रिकूटं नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रब्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
जम्बूद्वीपस्य जगतीमिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्केति नगरी तत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
रहस्यमिदमेकं च विद्याधर परं शृणु । जम्बूभरतवर्षस्य दक्षिणाशां समाश्रयत् ॥२२॥
आश्रयित्वोत्तरं तीरं लवणस्य महोदधेः । वसुन्धरोदरस्थानस्वभावार्पितमायतम् ॥२३॥
योजनस्याष्टमं भागं दण्डकाद्रौ गुहाश्रयम् । अधोगत्वा महाद्वारं प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
अलङ्कारोदयं नाम स्थितं पुरमनुत्तमम् । स्थानीयशतधर्मस्थं दिव्यदेशं निरीक्ष्यते ॥२५॥
नानाप्रकाररत्नांशुसन्तानपरिराजितम् । विस्मयोत्पादने शक्तमपि त्रिदिवसद्मनाम् ॥२६॥
अप्रतर्क्यं गगनगैर्दुर्गं[5] विद्याविवर्जितैः । सर्वकामगुणोपेतं विचित्रालयसङ्कुलम् ॥२७॥
परचक्रसमाक्रान्तो यद्यापत्सु कदाचन । भवेर्दुर्गं समासृत्य तिष्ठेस्त्वं निर्भयस्ततः ॥२८॥
इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालकः । लङ्कापुरीमभूत्तस्मात् सन्तानोऽनेकपुङ्गवः ॥२९॥

कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥ क्या यह गन्ध विकसित फूलोंको धारण करने वाले इन वृक्षों की है अथवा पुष्पसमूह पर शयन करने वाले मेरे शरीर की है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥

तदनन्तर मगधदेशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगोंकी चेष्टाओं को जानने वाले, संदेह रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एवं पाप रूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरण में मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत हो कर प्रभुकी शरणमें आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभीमने करुणा वश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८–१९॥ कि हे मेघवाहन । दक्षिण समुद्रमें एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमें त्रिकूट नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त हो कर उसी त्रिकूट पर्वत पर चला जा । वहाँ जम्बूद्वीपकी जगती (वेदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसोंने एक लङ्का नामकी नगरी बसाई है । वहाँ ही तूँ निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य–गुप्त वार्ता और सुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जाने पर मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करने पर अलंकारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०–२५॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमें समर्थ है । आकाशमें गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है । वह सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनोंसे व्याप्त है ॥२६–२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार

१. देवः । २. लक्ष्मणस्य । ३. भीताय । ४. मेघवाहनाय । ५. दुःखेन गन्तुं शक्यम् ।

यथावस्थितभावानां श्रद्धानं परमं सुखम् । मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥३०॥
विद्याभृतां सुराणां च ज्ञेयो भेदो विचक्षणैः । तिलपर्वतयोस्तुल्यः शक्तिकान्त्यादिभिर्गुणैः ॥३१॥
पङ्कचन्दनयोर्यद्वदथवोपलरत्नयोः । तद्वत् खेचरलोकस्य देवलोकस्य चान्तरम् ॥३२॥
गर्भवासपरिक्लेशमनुभूय विधेर्वशात् । ततः समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजीविनः ॥३३॥
क्षेत्रवंशसमुद्भूताः खे चरन्तीति खेचराः । अमराणां स्वभावस्तु मनोज्ञोऽयं विबुध्यताम् ॥३४॥
सुरूपशुचिसर्वाङ्गा गर्भवासविवर्जिता । मांसास्थिक्लेदरहिता देवा अनिमिषेक्षणाः ॥३५॥
जरारोगविहीनाश्च सततं यौवनान्विताः । उदारतेजसा युक्ताः सुखसौभाग्यसागराः ॥३६॥
स्वभावविद्यासम्पन्ना अवधिज्ञानलोचनाः । कामरूपधरा धीराः स्वच्छन्दगतिचारिणः ॥३७॥
अमी लङ्काश्रिता राजन् न देवा न च राक्षसाः । रक्षन्ति रक्षसां क्षेत्रमाहूतास्तेन राक्षसाः ॥३८॥
तद्वंशानुक्रमो ज्ञेयो युगानामन्तरैः सह । पारम्पर्याद् व्यतिक्रान्तः कालो नैकार्णवोपमः ॥३९॥
रक्षःप्रभृतिषु श्लाघ्येष्वतीतेषु बहुष्वपि । खण्डत्रयाधिपस्तस्य रावणोऽभवदन्वये ॥४०॥
भगिनी दुर्नखा तस्य रूपेणाप्रतिमा[1] भुवि । प्राप्तस्तया महावीर्यो रमणः खरदूषणः ॥४१॥
चतुर्दशसहस्राणि नृणां तस्य महात्मनाम् । प्रतीतो दूषणाख्यश्च सेनाधिपतिरूर्जितः ॥४२॥
दिक्कुमार इवोदारे धरणीजठरे स्थितम् । अलङ्कारपुरं तस्य स्थानमासीन्महौजसः ॥४३॥
शम्बूको नाम सुन्दश्च सुतौ तस्य बभूवतुः । बन्धुतश्च दशग्रीवाद् भुवि गौरवमाप सः ॥४४॥

महाभीम राक्षसेन्द्रके कहने पर जो विद्याधर बालक, लंकापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२९॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरों और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पाषाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर बादमें कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं। ये विद्याधरोंके क्षेत्र-विजयार्ध पर्वत पर तथा उनके योग्य कुलोंमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिए खेचर कहलाते हैं। परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव, सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक हैं, गर्भावाससे रहित हैं, मांस हड्डी तथा स्वेद आदिसे दूर हैं और टिमकार रहित नेत्रोंके धारक हैं ॥३५॥ वे वृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित हैं, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अवधिज्ञान-रूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लंकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोंके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परम्पराके अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुतसे प्रशंसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकने पर उसी वंशमें तीन खण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एक दुर्नखा नामकी बहिन है जो पृथ्वी पर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती। उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार-भवनवासी देवके समान उदार है। पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलंकारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास स्थान है ॥४३॥ उसके शम्बूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। साथ ही वह अपने सम्बन्धी रावणसे भी

१. रूपेण प्रतिमा म० ।

गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकितः । शम्बूकः सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषणं वनम् ॥४५॥
यथोक्तमाचरन् राजन्नाराधयितुमुद्यतः । एकान्नभुग्विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥
असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । वध्योऽसाविति भाषित्वा वंशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥
दण्डकारण्यभागान्तं तां च क्रौंचरवां नदीम् । सागरस्योत्तरं तीरं संसृत्यासाववस्थितः ॥४८॥
नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिरुद्गतः । ग्राह्यः सप्तदिनं स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥
कैकसेयी[1] सुतस्नेहाद्द्रष्टुमागात् क्षणे क्षणे । अपश्यच्चासिमुद्भूतं काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
प्रसन्नवदना भर्तुर्निजगाद यथाविधि । शम्बूकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥
आगमिष्यति मे पुत्रो मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोभिस्त्रिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
एवं मनोरथं सिद्धं दध्यौ चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुद्देशं सम्प्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥
सहस्रामरपूज्यस्य सद्गन्धस्य स्वभावतः । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गरत्नस्य तस्य सः ॥५४॥
दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्रग्भूषितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीधरमुपेयिवान् ॥५५॥
लक्ष्मणो विस्मयं प्राप्तः परित्यज्य क्रियान्तरम् । अयासीद् गन्धमार्गेण केसरीव भयोज्झितः ॥५६॥
अपश्यच्च तरुच्छन्नं प्रदेशमतिदुर्गमम् । लताजालावलीरुद्धं तुङ्गपाषाणवेष्टितम् ॥५७॥
मध्ये च गहनस्यास्य सुसमं धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाम्बुजैः ॥५८॥
मध्ये तस्यापि विपुलं वंशस्तम्बं[2] समुत्थितम् । सौधर्ममिव संद्रष्टुमविज्ञातकुतूहलम् ॥५९॥

पृथ्वी पर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बूकने गुरुजनोंके द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयङ्कर वनमें प्रवेश किया ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोंको जीतने वाला है, ॥४६॥ 'उपयोग' पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत पर वंशोंकी एक झाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक वनके अन्तमें क्रौञ्चरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन ठहर कर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता है ॥४९॥ दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थान पर आती रहती थी सो उसने उसी क्षण उत्पन्न हुए उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणसे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमें आ जावेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्यगन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे उस सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने वृक्षोंसे आच्छादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पाषाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक बाँसोंका

१. दुर्नखा, चन्द्रनखा । २. वंशस्तं वंशमुत्थितं म० (?) ।

अथान्ते तस्य निस्त्रिंशं विस्फुरत्करमण्डलम् । सर्वाचकवनं येन प्रदीप्तमिव लक्ष्यते ॥६०॥
नष्टशङ्कस्तमादाय लक्ष्मीमाआतविस्मयः । जिज्ञासंर्स्तीक्ष्णतामस्य तं वेणुस्तम्बमच्छिनत् ॥६१॥
गृहीतसायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्तत्र देवताः । अस्माकं स्वाम्यसीत्युक्त्वा सनमस्यमपूजयन् ॥६२॥
अथावोचत सीतेशः किञ्चिदस्राकुलेक्षणः । सौमित्रिश्चिरयत्यद्य क्व नु यातो भविष्यति ॥६३॥
भद्रोत्तिष्ठ जटायुः खं दूरमुत्पत्य सद्रुतम् । लक्ष्मीधरकुमारस्य निपुणान्वेषणं कुरु ॥६४॥
इत्युक्तः [1]करुणं यावत् करोत्युत्पतितुं खगः । [2]अङ्गुलीं तावदायस्य जनकस्याङ्गजावदत् ॥६५॥
अयं कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताङ्गो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमाल्याम्बरधरः समायाति स्वलङ्कृतः ॥६६॥
गृहीतश्चायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभः । राजतेऽत्यन्तमेतेन शैलः केसरिणा यथा ॥६७॥
दृष्ट्वा तमीदृशं रामो विस्मयव्याप्तमानसः । असहः प्रमदं रोद्धुमुत्थाय परिषस्वजे ॥६८॥
पृष्टश्च लक्ष्मणः कृत्स्नं स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभिः सङ्कथाभिर्यथासुखम् ॥६९॥
दृष्ट्वा प्रतिदिनं खड्गं सुतं च नियमस्थितम् । यायासीत् सा दिने तस्मिन् कैकसेय्यागतैकका ॥७०॥
अपश्यच्च [3]विसाराणां वनं [4]कृत्तमशेषतः । अचिन्तयच्च यातः क्व पुत्रः स्थित्वाटवीमिमाम् ॥७१॥
स्थितश्च यत्र संसिद्धमसिरत्नमिदं वनम् । छिन्दानेन परीक्षार्थं न युक्तं सुनुना कृतम् ॥७२॥
तावच्चास्तस्थितादित्यमण्डलप्रतिमं शिरः । सत्कुण्डलं कबन्धं च ददर्श स्थाणुमध्यगम् ॥७३॥

विस्तृत स्तम्भ (भिड़ा) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सौधर्मस्वर्गको देखनेके लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥५९॥

अथानन्तर उस बाँसोंके स्तम्बमें देदीप्यमान किरणोंके समूहसे सुशोभित एक खड्ग दिखाई दिया जिससे बाँसोंके साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥६०॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशङ्क हो वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसी वंश-स्तम्बको उन्होंने काट डाला ॥६१॥ खड्गधारी लक्ष्मणको देखकर वहाँ सब देवताओंने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनकी पूजा की ॥६२॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ आँसुओंसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ? ॥६३॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमें दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥६४॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहने पर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि इतनेमें सीता अङ्गुली ऊपर उठाकर कहती है ॥६५॥ कि जिनका शरीर केशरकी पङ्कसे लिप्त है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलंकृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥६६॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान खड्ग ले रक्खा है और इससे ये सिंहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं ॥६७॥ लक्ष्मणको वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिङ्गन किया ॥६८॥ पूछने पर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त बतलाया । इस तरह राम लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणी नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए सुखसे वहाँ ठहरे ॥६९॥

अथानन्तर जो चन्द्रनखा प्रति दिन खड्गको तथा नियममें स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई ॥७०॥ आते ही उसने बाँसोंके उस समस्त वनको सब ओरसे कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहाँ चला गया ? ॥७१॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह खड्ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥७२॥ इतनेमें ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमण्डलके समान

१. करणं म० । २. तावत् अङ्गुलीं आयस्य उत्थानखेदेन युक्तां कृत्वा । ३. वंशानाम् । ४. छिन्नम् ।

उपकारः कृतस्तस्याः परमो मूर्च्छया क्षणम् । पुत्रमृत्युसमुत्थेन यन्न दुःखेन पीडिता[1] ॥७४॥
ततः संज्ञां समासाद्य हाकारमुखरं मुखम् । उत्क्षिप्य कृच्छ्रतो दृष्टिं तत्र मूर्धन्यपातयत् ॥७५॥
विललाप च शोकार्ता गलदस्राकुलेक्षणा । कुररीवैकिकारण्ये हृदयाघातकारिणी ॥७६॥
स्थितो द्वादशवर्षाणि दिनानां च चतुष्टयम् । पुत्रो मे हा परं क्षान्तं न विधे[2] दिवसत्रयम् ॥७७॥
कृतान्तापकृतं किं ते मया परमनिष्ठुर । येन [3]दृष्टनिधिः पुत्रः सहसा विनिपातितः ॥७८॥
अपुण्यया मया नूनमन्यजन्मनि बालकः । कस्या अपहृतो मृत्युं तत्प्रत्यागतमद्य ते ॥७९॥
मयापि पुत्र जातोऽसि कथमेतां स्थितिं गतः । ईदृशोऽपि प्रयच्छैकां वाचमार्तिविनाशिनीम् ॥८०॥
एहि वत्स निजं रूपं प्रतिपद्य मनोहरम् । अमङ्गलमिदं मायाक्रीडनं न विराजते ॥८१॥
स्फुटं यातोऽसि हा वत्स परलोकं विधेर्वशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुद्भूतमन्यथा ॥८२॥
अनुष्ठितं त्वया मातुः प्रतिकूलं न जातुचित् । अधुना कारणोन्मुक्तं किमिदं विनयोज्झितम्[4] ॥८३॥
संसिद्धसूर्यहासश्चेद्जीविष्यस्त्वमत्र ते । अस्थास्यत् कः पुरो लोके चन्द्रहासवृतो यथा ॥८४॥
भजता चन्द्रहासेन पदं मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न क्षान्तं नूनमात्मविरोधिनः ॥८५॥
एककं भीषणेऽरण्ये निर्दोषं नियमस्थितम् । कुशत्रोः कस्य हन्तुं त्वां मूढस्य प्रसृतः करः ॥८६॥
अदीर्घोपेक्षिता तेन भवन्तं निघ्नतोदिता । क्व गमिष्यति पापोऽसौ साम्प्रतं हतचेतनः ॥८७॥
विलापमिति कुर्वाणा कृत्वाङ्के सुतमुत्तमम् । चुचुम्बे विद्रुमच्छायलोचना करसङ्गतम् ॥८८॥

निष्प्रभ, तथा कुण्डलोंसे युक्त शिर और एक ठूंठके बीच पड़ा हुआ पुत्रका धड़ देखा ॥७३॥ उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीड़ित नहीं हुई। सचेत होने पर हा हा कारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिर पर दृष्टि डाली ॥७४–७५॥ झरते हुए आँसुओंसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीड़ित चन्द्रनखा, वनमें अकेली कुररीके समान विलाप करने लगी ॥७६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा। हाय दैव! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥७७॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रको निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥७८॥ निश्चय ही मुझ पापिनीने अन्य जन्ममें किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥७९॥ हे पुत्र! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥८०॥ आओ वत्स! अपना मनोहर रूप धरकर आओ। यह तेरी अमङ्गल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥८१॥ हाय वत्स! भाग्य वश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है। यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥८२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अब यह अकारण विनयका त्याग क्यों कर रहा है? ॥८३॥ सूर्यहास खड्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसारमें चन्द्रहाससे आवृतकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा? ॥८४॥ चन्द्रहास खड्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड्गको सहन नहीं किया है ॥८५॥ तू इस भयंकर वनमें अकेला रहकर नियमका पालन करता था किसीका कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा? ॥८६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है। अब वह अविचारी पापी कहाँ जावेगा? ॥८७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनखाने

१. पुत्रमृत्युसमुत्थेन दुःखेन परिपीडिता म० । २. हे दैव! । ३. दृष्टिनिधिः म० । ४. विनियोज्झितम् म० ।

ततः क्षणात् परित्यज्य शोकं नष्टास्रसन्ततिः । गृहीत्वा परमं क्रोधमुत्थाय स्फुरिताननाः ॥८९॥
सञ्चरन्ती तमुद्देशं स्वैरं मार्गानुलक्षितम् । निरैक्षत युवानौ तौ चित्तबन्धनकारिणौ ॥९०॥
विनाशमगमत्तस्याः क्रोधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । [2]आदेश इव तस्याभूत् स्थाने रागरसः परः ॥९१॥
ततोऽचिन्तयदेताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । वृणोमि नरमित्युच्चैरूर्मिकं दधती मनः ॥९२॥
इति सञ्चिन्त्य संसाधुकन्याकत्वं समाश्रिता । हृदयेनातुरात्यन्तं भावगह्वरवर्तिना ॥९३॥
हंसीव पद्मिनीखण्डे महिषीव महाह्रदे । सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् साभिलाषिणी ॥९४॥
भञ्जनं करशाखानां कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य किलोद्विग्ना पुन्नागस्य तलेऽरुदत् ॥९५॥
अतिदीनकृतारावां धूसरां वनरेणुना । दृष्ट्वा तां [3]रामरमणी कृपावष्टब्धमानसा ॥९६॥
उत्थायान्तिकमागत्य करामर्शनतत्परा । मा भैषीरिति भाषित्वा गृहीत्वा पाणिपल्लवे ॥९७॥
किञ्चित् किल त्रपाभाजं मलिनांशुकधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यै रमणान्तिकमानयत् ॥९८॥
ततः पद्मो जगादैतां का त्वं श्वापदसेविते । एकाकिनी वने कन्ये चरसीहातिदुःखिता ॥९९॥
ततः सम्भाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेक्षणा । जगाद भ्रमरौघस्य वाचानुकृतिमेतया ॥१००॥
पुरुषोत्तम मे माता निःसंज्ञायां मृतिं गता । तद्भवेन च शोकेन तातोऽपि विनिपातितः ॥१०१॥
साहं पूर्वकृतात् पापाद् बन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्यं वैराग्यं दधती परम् ॥१०२॥
पश्य पापस्य माहात्म्यं यद्वाञ्छन्त्यपि पञ्चताम् । अरण्येऽस्मिन् महाभीमे व्यालैरपि विवर्जिता ॥१०३॥

हाथमें लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८८॥ तदनन्तर क्षण एकमें शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गई और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८९॥ वह मार्गके समीपमें ही स्थित उस स्थान पर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी। उसी समय उसने चित्तको बाँधनेवाले दोनों तरुण—रामलक्ष्मणको देखा ॥९०॥ उन्हें देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थान पर परम राग रूपी रस आ जमा ॥९१॥ इसके बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषोंमेंसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वरूँगी इस प्रकार उसके मनमें ऊँची तरङ्गें उठने लगीं ॥९२॥ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई। वह उस समय भाव रूपी गुफामें वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९३॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनीके झुण्डमें, महिषी (भैंस) महासरोवरमें और हरिणी धान्यमें अभिलाषासे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मणमें अभिलाषासे युक्त हो गई ॥९४॥ वह हाथकी अङ्गुलियाँ चटखाती हुई भयभीत मुद्रामें पुन्नाग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९५॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देख सीताका हृदय दयासे द्रवीभूत हो गया ॥९६॥ वह उठकर उसके पास गई तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी। तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़ कर पतिके पास ले आई। उस समय वह कुछ-कुछ लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी। सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९७-९८॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जङ्गली जानवरोंसे भरे इस वनमें अतिशय दुःखसे युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९९॥ तदनन्तर संभाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूहका अनुकरण करने वाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्च्छा आने पर मेरी माता मर गई और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपार्जित पापके कारण बन्धुजनोंसे रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमें प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१. मच्छायस्फुरिताननाः (?) म० । २. यथा व्याकरणे कस्यचित् स्थाने कश्चित् आदेशो भवति तद्वत् । ३. सीता ।

चिरान्मानुषनिर्मुक्ते भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः क्षयात् पापस्य कर्मणः ॥१०४॥
जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् । अनाहूतश्च सामीप्यं व्रजति त्रपयोज्झितः ॥१०५॥
अनादृतः प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः । उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासौ क्रमोज्झितः ॥१०६॥
एवंभूतापि नो [1]यावत्प्राणान् मुञ्चामि[2] सुन्दर । तावदद्यैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥
न्यायेन सङ्गतां साध्वीं सर्वोपप्लववर्जिताम् । को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितिम् ॥१०८॥
श्रुत्वा तद्वचनं तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूष्णीं नरोत्तमौ ॥१०९॥
सर्वशास्त्रार्थबोधाम्बुक्षालितं हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्तं प्रकाशते ॥११०॥
निर्मुक्तदुःखनिश्वासं गच्छामीति तयोदिते । पद्मनाभादिभिः सोक्ता यथेष्टं क्रियतामिति ॥१११॥
तस्यां प्रयातमात्रायां [3]तदशालीनताहृतौ । ससीतौ विस्मितौ वीरौ स्मेरवक्त्रौ बभूवतुः ॥११२॥
अन्तर्हत्य च संक्रुद्धा समुत्पत्य त्वरावती । याता चन्द्रनखा धाम निजं शोकसमाकुला ॥११३॥
शोभयापहृतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेक्षणः । पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
[4]उत्थायान्यापदेशेन रामदेवसकाशतः । अटवीं पादपद्माभ्यां बभ्रामान्वेषणातुरः ॥११५॥
अचिन्तयच्च खिन्नात्मा बाष्पव्याकुललोचनः । आत्मन्यनादृतप्रीतिरिति तत्प्रेमनिर्भरः ॥११६॥
रूपयौवनलावण्यगुणपूर्णा घनस्तनी । मदनाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
आयान्त्येव सती कस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपीडनाश्लेषं परिरब्धा हतात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनों के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, विना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा विना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५–१०६॥ ऐसी होने पर भी हे सुन्दर ! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो. मुझ दुःखिनी पर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याण रूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थ ज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्योंमें अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी आकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गई ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके बहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमें व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त खिन्न था, जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप यौवन सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस

१. भूतापितो (?) म० । २. मुञ्चति म० । ३. तस्यः अशालीनता अकुलीनता तया हृतौ । ४. उत्थायाशयदेशेन म० । अन्यव्याजेन ।

[1]अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः। साम्प्रतं शोकशिखिना दह्यते मे निरङ्कुशम् ॥११९॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत्। यूथभ्रष्टा मृगीवेयं कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥
सञ्चिन्त्येति कृतभ्रान्तिस्तामपश्यन् समाकुलः। मेने तद्वनमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥१२१॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तैः कार्यमारम्भणीयम्।
अविषयकृतचित्ता [2]तत्समासक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बालवद्बुद्धिहीनाः ॥१२२॥
किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ॥१२३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्बूकवधाभिधानं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४३॥

सतीका मैंने आते तथा दिखनेके साथ ही स्तनोंको पीडित करनेवाला आलिङ्गन क्यों नहीं किया ॥११६-११८॥ उसके वियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्बाध रूपसे जल रहा है ॥११९॥ वह किस देशमें उत्पन्न हुई है ? किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्रोंकी धारक झुण्डसे बिछुड़ी हरिणी के समान यहाँ कहाँसे आई थी ? ॥१२०॥ इसप्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देख कर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सब ओर से आकाश-पुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। क्योंकि जो बालकोंके समान निर्बुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो परम शोकको धारण करते हैं ॥१२२॥ 'यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिये ? वह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्योंका अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख-शान्ति प्राप्त कर पाते हैं, इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल होता हुआ लोकके मार्गमें सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें शम्बूकके बधका वर्णन करने वाला तैतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥

१. अथांगं मे हृतं (?) म० । २. सत्समाशक्तिमुक्ता ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छयाथ विध्वस्ते [1]खरवध्वा मनोभवे । दुःखपूरः पुनः प्राप्तो भग्नरोधो[2] यथा नदः ॥१॥
चकार व्याकुलीभूता विविधं परिदेवनम् । शोकपावकतप्ताङ्गा विवत्सा [3]बहुला यथा ॥२॥
वहन्तीं चापमानं तं क्रोधदैन्यस्थमानसा । विगलद्वारिनेत्राम्बुर्दूषणेन निरैक्ष्यत ॥३॥
तां विनष्टधृतिं दृष्ट्वा धरणीधूलिधूसराम् । प्रकीर्णकेशसम्भारां शिथिलीभूतमेखलाम् ॥४॥
नखविक्षतकक्षोरूकुचक्षोणीं सशोणिताम् । कर्णाभरणनिर्मुक्तां हारलावण्यवर्जिताम् ॥५॥
विच्छिन्नकञ्चुकां भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् । आलोडितां गजेनेव नलिनीं [4]मदवाहिना ॥६॥
पप्रच्छ परिसांत्व्यैव कान्ते शीघ्रं निवेदय । अवस्थामिमकां केन प्रापितासि दुरात्मनः ॥७॥
अद्येन्दुरष्टमः कस्य मृत्युना कोऽवलोकितः । गिरेः स्वपिति कः शृङ्गे मूढः क्रीडति कोऽहिना ॥८॥
कोऽन्धः कूपं समापन्नो दैवं कस्याशुभावहम् । मत्क्रोधाग्नावयं दीप्ते शलभः कः पतिष्यति ॥९॥
धिक् तं पशुसमं पापं विवेकत्यक्तमानसम् । अपवित्रसमाचारं लोकद्वितयदूषितम् ॥१०॥
अलं रुदित्वा नान्येव काचित्त्वं प्राकृताबला । स्पृष्टा येनासितं शंस वाडवाग्निशिखासमा ॥११॥
अद्यैव तं दुराचारं कृत्वा हस्ततलाहतम् । नेष्ये प्रेतगतिं सिंहो यथा नागं निरंकुशम् ॥१२॥
एवमुक्ता विसृज्यासौ रुदितं कृच्छ्रतः परात् । अस्रक्लिन्नालकाच्छन्नगण्डागादीत् सगद्गदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान दुःखका पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोक रूपी अग्निसे संतप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूषणने देखा ॥३॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह बिखरा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गई थी, जिसकी बगलों जाँघों तथा स्तनोंकी भूमि नखोंसे विक्षत थी, जो रुधिरसे युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चोली फट गई थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मदोन्मत्त हाथीके द्वारा मर्दित कमलिनीके समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूषणने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हो ? ॥७॥ आज किसका आठवाँ चन्द्रमा है मृत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥८॥ कौन अन्धा कुएमें आकर पड़ा है ? किसका दैव अशुभ है ? और मेरी प्रज्ज्वलित क्रोधाग्निमें कौन पतङ्ग बन कर गिरना चाहता है ? ॥९॥ जिसका मन विवेकसे रहित है जो अपवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनों लोकोंको दूषित किया है उस पशु तुल्य पापीको धिक्कार है ॥१०॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्रीके समान थोड़े ही हो वडवानलकी शिखाके समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥११॥ निरङ्कुश हाथीको सिंहके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥१२॥ इस प्रकार कहनेपर कड़े कष्टसे रोना छोड़कर वह गद्गद वाणीमें बोली। उस समय उसके कपोल

१. चन्द्रनखायाः । २. भग्नरोधा, भग्नं रोधो यस्यासौ । भग्नरोधो म० । ३. गौरिव । ४. मदवाहिनी म० ।

वनान्तरस्थितं पुत्रं द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपश्यन्तं च केनापि प्रत्यग्रच्छिन्नमूर्धकम् ॥१४॥
ततः शोणितधाराभिर्निःसृताभिर्निरन्तरम् । प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते कीचकस्थलम् ॥१५॥
प्रशान्ताऽवस्थितं[1] हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । खड्गरत्नं समुत्पन्नं प्राप्तं पूजासमन्वितम् ॥१६॥
साहं दुःखसहस्राणां भाजनं भाग्यवर्जिता । तन्मूर्धानं निधायाङ्के विप्रलापं प्रसेविता ॥१७॥
तावच्च तेन दुष्टेन शम्बूकवधकारिणा । उपगूढास्मि बाहुभ्यां कर्तुं किमपि वाञ्छिता ॥१८॥
उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति घनस्पर्शवशङ्गतः । न मुञ्चति हतात्मा मां कोऽपि नीचकुलोद्गतः ॥१९॥
नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाहं विजने वने । एतिकां प्रापितावस्थां क्वाबला क्व पुमान् बली ॥२०॥
तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरक्षिता । अविखण्डितचारित्रा कृच्छ्रादद्य निःसृता ततः ॥२१॥
सर्वविद्याधराधीशस्त्रिलोकक्षोभकारणः । भ्राता मे रावणः ख्यातः शक्रेणाप्यपराजितः ॥२२॥
खरदूषणनामा त्वं भर्ता कोऽपि विचक्षणसे । सम्प्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगतः ॥२३॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहतः[2] । स्वयं महाजवो गत्वा दृष्ट्वा व्यापादितं सुतम् ॥२४॥
सम्पूर्णेन्दुसमानोऽपि पूर्वसारङ्गलोचनः । बभूव भीषणाकारो मध्यग्रीष्मार्कसन्निभः ॥२५॥
आगतश्च द्रुतं भूयः प्रविश्य भवनं निजम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रे स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥
तत्र केचिद्द्रुतं प्रोचुः सचिवाः कर्कशाशयाः । राजकीयमभिप्रायं बुद्ध्वा सेवापरायणाः ॥२७॥
शम्बूकः साधितो येन खड्गरत्नं च हस्तितम् । असावुपेक्षितो राजन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

आँसुओंसे भीग रहे थे तथा बिखरे हुए बालोंसे आच्छन्न थे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी वनके मध्यमें स्थित पुत्रको देखनेके लिए गई थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निकली हुई रुधिरकी धाराओंसे वंशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रज्वलितके समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको किसीने मारकर पूजाके साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखोंका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर विलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्बूकका वध करनेवाले उस दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन किया तथा कुछ अनर्थ करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन वनमें नखों तथा दाँतोंसे छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिये कि अबला कहाँ और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सब होने पर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्रको अखण्डित रखती हुई बड़े कष्टसे आज उससे बचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके क्षोभका कारण है, और इन्द्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नाम धारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैव योगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनखाके वचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्न कालीन सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र ही वापिस आकर और अपने भवनमें प्रवेश कर मित्रोंके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रणा की ॥२६॥ उनमेंसे कठोर अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने

१. प्रशान्तोऽवस्थितं म० । २. समाहितः म० ।

ऊचुरन्ये विवेकस्था नाथ नेदं लघुक्रियम्[1] । सामन्तान् ढौकयाशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२९॥
यस्यासिरत्नमुत्पन्नं सुसाध्यः स कथं भवेत् । तस्मात् सङ्घातकार्येऽस्मिंस्त्वरा[2] कर्तुं न युज्यते ॥३०॥
गुरुवाक्यानुरोधेन राक्षसाधिपसंविदे । दूतः सम्प्रेषितस्तेन युवा लङ्कां महाजवः ॥३१॥
राजधैर्यात् कुतोऽप्येष चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतः कार्यसाधनतत्परः ॥३२॥
तीव्रक्रोधपरीतात्मा तावच्च खरदूषणः । अभाषत पुनः पुत्रगुणप्रेषितमानसः ॥३३॥
मायाविनिहतैः क्षुद्रैर्जन्तुभिर्भूमिगोचरैः । दिव्यसेनार्णवः क्षुब्धस्तरितुं नैव शक्यते ॥३४॥
धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽपि कथं बाहुरिष्यते मम बाहुना ॥३५॥
इत्युक्त्वा परमं बिभ्रदभिमानं त्वरान्वितः । उत्पपात सुहृन्मध्यादाकाशं स्फुरिताननः ॥३६॥
तमेकान्तपरं दृष्ट्वा सन्नद्धानि क्षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ॥३७॥
तस्य राक्षससैन्यस्य श्रुत्वा वादित्रनिस्वनम् । क्षुब्धसागरनिर्घोषं मैथिली त्रासमागता ॥३८॥
किं किमेतदहो नाथ प्राप्तमित्युद्गतस्वनः । आलिङ्गतिस्म जीवेशं वल्ली कल्पतरुं यथा ॥३९॥
न भेतव्यं न भेतव्यं इति तां परिसान्त्व्य सः । अचिन्तयदयं कस्य भवेच्छब्दः सुदुर्धरः ॥४०॥
रवः किमेष सिंहस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्विदम्बुनाथस्य पूरयत्यखिलं नभः ॥४१॥
उवाच च प्रिये नूनममी चतुरगामिनः । नादिनः प्रचलत्पक्षा राजहंसा नभोऽङ्गणे ॥४२॥

लगे कि जिसने शम्बूकको मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है। हे राजन् ! यदि उसकी उपेक्षाकी जायगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७–२८॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ ! यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोंको बुलाओ और रावणको भी खबर दी जाय ॥२९॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वशमें कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनन्तर उसने गुरुजनोंके वचनोंके अनुरोधसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लङ्काको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेना रूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३–३४॥ हमारी इस शूरवीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोंकी वाञ्छा करती है। मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्रोंके बीचसे उठकर आकाशमें जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसोंकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गई जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्धर शब्द किसका होना चाहिए ? ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशको व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है ये मनोहर गमन

१. लघुक्रियः म० । २. त्वया म० ।

किं वा दुष्टद्विजाः केचिदन्ये त्वद्भयकारिणः । समर्पय प्रिये चापं प्रलयं प्रापयाम्यमून् ॥४३॥
अथासन्नत्वमागच्छद् विविधायुधसङ्कुलम् । वातेरिताभ्रवृन्दाभं निरीक्ष्य सुमहद्बलम् ॥४४॥
जगाद राघवः किं नु नन्दीश्वरममी सुराः । जिनेन्द्रान् वन्दितुं भक्त्या प्रस्थिताः स्युर्महौजसः ॥४५॥
आहो वंशस्थलं छित्वा हत्वा कमपि मानवम् । असिरत्ने गृहीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिणः ॥४६॥
दुश्शीलया तया नूनं स्त्रिया मायाप्रवीणया । निजाः संक्षोभिता एते स्युरस्मद् दुष्कृतिं प्रति ॥४७॥
नात्र युक्तमवज्ञातुं सैन्यमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा कवचे दृष्टिं कार्मुके च न्यपातयत् ॥४८॥
ततस्तमञ्जलिं कृत्वा सुमित्रातनयोऽगदत् । मयि स्थिते न संरम्भस्तव देव विराजते ॥४९॥
संरक्ष राजपुत्रीं त्वं प्रत्यरातिं व्रजाम्यहम् । ज्ञेया च सिंहनादेन मम यद्यापदुद्भवेत् ॥५०॥
इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नः[1] समुपात्तमहायुधः । योद्धुमभ्युद्यतः श्रीमांल्लक्ष्मणः प्रत्यरि[2]स्थितः ॥५१॥
दृष्ट्वा तमुत्तमाकारं वीरं पुरुषपुङ्गवम् । पर्यस्तृणन् विहायःस्था जलदा इव पर्वतम् ॥५२॥
शक्तिमुद्गरचक्राणि कुन्तबाणांश्च खेचरैः । परिक्षिप्तान्यसौ सम्यक् शस्त्रैरेव न्यवारयत् ॥५३॥
निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि सः । वज्रदण्डान् शरान् मोक्तुं प्रवृत्तो व्योमगाहिनः ॥५४॥
एककेनैव सा तेन विद्याधरमहाचमूः । रुद्धा बाणैः [3]कदिच्छेव विज्ञानैः संयतात्मना ॥५५॥
माणिक्यशकलाङ्कानि राजमानानि कुण्डलैः । पेतुः शिरांसि खाद् भूमिः[4] खसरः[5] कमलानि वा ॥५६॥
शैलाभा द्विरदाः पेतुरश्वैः सह महाभटाः । कुर्वते निनदं भीमं संदष्टरदवाससः[6] ॥५७॥

करनेवाले तथा पङ्खोंको हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आँगनमें शब्द करते हुए जा रहे हैं ॥४२॥ अथवा तुझे भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं। हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४३॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, वायुसे प्रेरित मेघ समूहके समान दीखनेवाली बड़ी भारी सेनाको समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महा तेजके धारक देव भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वीपको जा रहे हैं ॥४४-४५॥ अथवा बाँसके भिड़ेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह खड्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्रीने हम लोगोंको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनोंको क्षोभित किया है ॥४७॥ अब निकटमें आई हुई सेनाकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कीजिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ। यदि मुझपर आपत्ति आवेगी तो मेरे सिंहनादसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुखकर खड़े हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, भाले और बाणोंका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोंको रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोड़नेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोंकी वह बड़ी भारी सेना अपने बाणोंसे उस प्रकार रोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खोटी इच्छाको रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिखण्डोंसे युक्त तथा कुण्डलोंसे सुशोभित शत्रुओंके शिर, आकाशरूपी सरोवरके कमलोंके समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवी पर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१. छन्नसमुपात्त- म० । २. प्रत्यरिं म० । ३. कुत्सिता इच्छा कदिच्छा 'कोः कत्तत्पुरुषेऽचि' इति कुस्थाने कदादेशः । ४. भूमिः । ५. गगनसरोवरकमलानि इव शिरांसि । ६. संदष्टौष्ठाः इत्यर्थः, संदष्टरववाससः म० ।

अयमस्य महान् लाभो निघ्नतस्तस्य तानभूत् । [1]यदूर्ध्वगैः शरैर्योधान्[2] विव्याध सहवाहनान् ॥५८॥
अत्रान्तरे परिप्राप्तः पुष्पकस्थो दशाननः । क्रुद्धः कृताशयो हन्तुं शम्बूकवधकारिणम् ॥५९॥
अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणीम् । रत्यरत्योः [3]समुद्धर्त्रीं साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम् ॥६०॥
चन्द्रमःकान्तवदनां बन्धूकाभवराधराम्[4] । तनूदरीं च लक्ष्मीं च जलजच्छददलोचनाम्[5] ॥६१॥
महेभकुम्भशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम् । यौवनोदयसम्पन्नां सर्वस्त्रीगुणसद्गताम् ॥६२॥
संहितामिव कामेन कान्तिज्यां दृष्टिसायकाम् । निजां चापलतां हन्तुं सुखेनैव यथेप्सितम् ॥६३॥
सर्वस्मृतिमहाचारीं रूपातिशयवर्तिनीम् । सीतां मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥६४॥
तस्यामीक्षितमात्रायां क्रोधोऽस्य प्रलयं गतः । अजायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गतिः ॥६५॥
अचिन्तयच्च किं नाम जीवितं मेऽनया विना । अयुक्तस्यानया का वा श्रीर्मदीयस्य वेश्मनः ॥६६॥
इमामप्रतिमाकारां ललितां नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्नो कश्चिज्जानात्युपागतम् ॥६७॥
आरब्धुं प्रसभं कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्त्विदमीदृशं वस्तु यत्कौपीनत्वमर्हति ॥६८॥
निवेदयन् गुणांस्तावल्लोकेऽलं याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् ख्यापयन्ना प्रियो भवेत् ॥६९॥
वितत्य सकलं लोकं शशाङ्ककरनिर्मला । कीर्तिर्म्यवस्थिता माभूत् सैवं सति मलीमसा ॥७०॥
तस्मादकीर्तिसम्भूतिमकुर्वन् स्वार्थतत्परः । रहःप्रयत्नमारेभे लोको हि परमो गुरुः ॥७१॥

बड़े-बड़े हाथी घोड़ोंके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको डसनेवाले बड़े-बड़े योद्धा भयंकर शब्द करने लगे ॥५७॥ उन सबको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले बाणोंसे योद्धाओंको उनके वाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमें वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें शम्बूकके वधकर्त्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमें बैठकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ आते ही उसने महामोहमें प्रवेश करानेवाली तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोंको धारण करनेवाली थी, कृशाङ्गी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके अग्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणोंसे सहित थी ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुषको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो । कान्ति ही उस धनुष रूपी लताको डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए बाण थे ॥६३॥ वह सबकी स्मृतिको चुरानेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मनकी गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जब तक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको बलपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि छिपानेके योग्य है ॥६८॥ लोकमें अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुताको प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करने पर मलिन न हो जाय ॥७०॥ इसलिए अकीर्तिकी

१. यदर्धगैः म० । २. योद्धान् म० । ३. समुद्धात्रीं म० । ४. धराधरां म० । ५. जलदच्छद- म० ।

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययोपायमञ्जसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
अयं स लक्ष्मणः ख्यातो बहुभिः कृतरोधनः । अयं स रामः सीतेयं सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स धन्विनः । गरुत्मानिव गृध्रस्य सीतां पेशीमिवाददे ॥७४॥
जायावैर[1]प्रदीप्तोऽयमजय्यः खरदूषणः । शक्त्यादिभिः क्षणादेतौ भ्रातरौ मारयिष्यति ॥७५॥
महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योदा[2]ररंहसः । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
इति सञ्चिन्त्य कामार्तः शिशुवत्स्वल्पमानसः । विषवन्मरणोपायं हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरथ महाहवे । कृत्वा सिंहरवं रामरामेति च मुहुर्जगौ ॥७८॥
तं च सिंहरवं श्रुत्वा स्फुटं लक्ष्मणभाषितम् । प्रीत्यारतिमया[3]त् पद्मो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
निर्माल्यैर्जानकीं सम्यक् प्रच्छाद्यारयन्तभूरिभिः । क्षणमेकं प्रिये तिष्ठ मा भैर्षारिति सक्रदन् ॥८०॥
वयस्यवनितां तावज्जटायू रक्ष यत्नतः । किञ्चिदस्मत्कृतं भद्र स्मरस्युपकृतं यदि ॥८१॥
इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शकुनैः क्रन्दनाकुलैः । सतीं मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
अत्रान्तरे समागत्य विद्यालोकेन कोविदः । सीतामुत्क्षिप्य बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥
कामदाहगृहीतात्मा विस्मृताशेषधर्मधीः । आरोपयितुमारेभे पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

उत्पत्तिको बचाता हुआ वह स्वार्थसिद्ध करनेमें तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी बड़े चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया। राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम कुल आदि सबका उसे ठीक ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस धनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके बैरसे अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षणभरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंको गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा बालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विषपान-का निश्चय करता है ॥ ७७॥

अथानन्तर जब लक्ष्मण और खरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनादकर बार-बार राम ! राम !! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरतिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षणभर यहाँ ठहरो भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण रखते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनों भुजाओं-से सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा। उस समय

१. जायावीरः ख० । २. नदस्योद्दार-म० । ३. प्रीत्या + अरतिम् + अयात् ।

ह्रियमाणामथ प्रेक्ष्य स्वामिनो वनितां प्रियाम् । संरम्भवह्निर्दीप्तात्मा समुत्पत्य महाजवः ॥८५॥
तीक्ष्णकोटिभिरत्यन्तं जटायुर्नखलाङ्गलैः[1] । दाशाननमुरःक्षेत्रं[2] चकर्षासृक्समाद्रितम् ॥८६॥
परुषैश्छेदनान्तैश्च वातसम्पाटितांशुकैः । जघान जवनैर्भूयः सर्वकायमलं बलः ॥८७॥
इष्टवस्तुविघातेन रावणः कोपवानथ । हत्वा हस्ततलेनैव महीतलमजीगमत् ॥८८॥
ततोऽसौ परुषाघाताद् विकलीभूतमानसः । कुर्वन् केकायितं दुःखी खगो मूर्च्छामुपागतः ॥८९॥
ततो निर्विघ्नमारोप्य पुष्पकं जनकात्मजाम् । जानानः सङ्गतं कामं रावणः स्वेच्छया ययौ ॥९०॥
ज्ञात्वापहृतमात्मानं रामरागातिशायनात् । सीता शोकवशीभूता विललापार्तनिस्वनात्[3] ॥९१॥
ततः स्वपुरुषासक्तहृदयां कृतरोदनाम् । दृष्ट्वा सीतामभूत् किञ्चिद् विरागीव दशाननः ॥९२॥
अचिन्तयच्च मे कास्था कृतेऽन्यस्यैव कस्यचित् । यदियं रौति सक्तासुः करुणं विरहाकुला ॥९३॥
कीर्तयन्ती गुणान् भूयः साधूनामभिसम्मतान् । पुरुषान्तरसम्बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥
तत्किमेतेन खड्गेन मूढा[4] व्यापादयाम्यमूम् । अथवा न स्त्रियं हन्तुं मम चेतः प्रवर्तते ॥९५॥
न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः । अभीष्टं[5] लब्धुमथवा द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥९६॥
विद्या वाभिमता लब्धुं परलोकक्रियापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥९७॥
साधूनामग्रतः पूर्वं व्रतमेतन्मयार्जितम् । अप्रसन्ना न भोक्तव्या परस्य स्त्रीमयेति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्म बुद्धिको भुला दिया था ॥८३–८४॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रिय वनिताको हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जटायु वेगसे आकाशमें उड़कर खूनसे गीले रावणके वक्षःस्थल रूपी खेतको अत्यन्त तीक्ष्ण अग्रभागको धारण करनेवाले नख रूपी हलोंके द्वारा जोतने लगा ॥८५–८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोंको फाड़नेवाले कठोर तथा वेगशाली पङ्खोंके आघातसे रावणके समस्त शरीरको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पक्षी कें-कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधाके सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ाकर कामको ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका राममें अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही करुणरुदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उसीके विरहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार-बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस खड्गसे इस मूर्खाको मार डालूँ अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए मेरा चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता। इसीप्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मनको आनन्द देनेवाली भार्या अथवा और भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करनेके लिए समय लगता ही है ॥९६–९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह

---

१. नखरूपहलैः । २. दशाननस्येदं दाशाननम् । दशानन-म०, ख० । ३. निस्वनान् म० । ४. मूढा म० । ५. अभीष्टाप्तम । अभीष्टलब्ध ज० ।

रक्षन्निदं व्रतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । भविष्यत्यनुकूलेयं कालेन मम सम्पदा ॥९९॥
इति सञ्चिन्त्य तामङ्कात्तले स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥१००॥
अथेषुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य सुमित्रातनयोऽगदत् ॥१०१॥
हा कष्टं देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपागतः । एकाकीं मैथिलीं मुक्त्वा विपिने विघ्नसङ्कुले ॥१०२॥
तेनोक्तस्त्वद्रवं श्रुत्वा प्राप्तोऽस्मि त्वरयान्वितः । सोऽत्रोचद् गम्यतां शीघ्रं न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
सर्वथा परमोत्साहो जय त्वं बलिनं रिपुम् । इत्युक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चलः ॥१०४॥
क्षणान्निवर्तते यावत् तावत्तत्र न दृश्यते । सीतेति हतवक्षेतो रामश्च्युतममन्यत ॥१०५॥
हा सीत इति भाषित्वा मूर्च्छितो धरणीमगात् । [1]भर्त्रा तेन परिष्वक्ता सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
संज्ञां प्राप्य ततो दृष्टिं निक्षिपन् वृक्षसङ्कुले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादात्यन्तमाकुलः ॥१०७॥
अयि देवि क्व यातासि प्रयच्छ वचनं द्रुतम् । चिरं किं प्रतिहासेन दृष्टासि तरुमध्यगा ॥१०८॥
एह्यागच्छ-(प्र)-यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानास्येव चिरं [2]कोपात्तव देवि न मे सुखम् ॥१०९॥
एवं कृतध्वनिर्भ्राम्यन् प्रदेशं तं सुगह्वरम् । गृध्रं मुमूर्षुमैक्षिष्ट कृतकेकास्वनं शनैः ॥११०॥
ततोऽत्यन्तविषण्णात्मा म्रियमाणस्य पक्षिणः । कर्णजापं ददौ प्राप्तस्स तेनामरकायताम् ॥१११॥
तस्मिन् [3]कालगते पद्मः शोकार्तः केवले वने । वियोगदहनव्याप्तः पुनर्मूर्च्छामशिश्रियत् ॥११२॥

नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥९८॥ इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ संभव है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥९९॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटा कर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर बाणरूपी जलकी धाराओंसे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! बड़े दुःखकी बात है आप विघ्नोंसे व्याप्त वनमें सीताको अकेली छोड़ इस भूमिमें किस लिये आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइये आपने अच्छा नहीं किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुको सब प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह कर शङ्कासे युक्त तथा चञ्चलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापिस चले गये ॥१०४॥ जब राम क्षणभरमें वहाँ वापिस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलिङ्गित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥ तदनन्तर जब संज्ञाको प्राप्त हुए तब वृक्षोंसे व्याप्त वनमें इधर-उधर दृष्टि डाल हुएते प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अत्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गई हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें वृक्षोंके मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमें भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे केंकें करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ वियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी

१. भर्ता म० । २. कोपस्तव म० । ३. काले गते म० ।

समाश्वस्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टिं समाकुलः । दीनं ललाप नैराश्याद् [1] भूतेनेवार्तमानसः ॥११३॥
रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकीं कष्टं हतो दुष्करकारिणा ॥११४॥
दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां हरन् [2] शोकमशेषतः । को नाम बान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेष्यति ॥११५॥
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना । सुकुमाराहिका [3] भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥११६॥
चित्तोत्सवकरी पद्मरजोगन्धिमुखानिला । अपूर्वा योषितां सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदङ्गना ॥११७॥
कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः । पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥११८॥
समाश्वास्य च संक्रुद्धो वज्रावर्तं महाधनुः । आरोप्यास्फालयन्मुक्त [4] टङ्कारपुरुनिस्वनम् ॥११९॥
सिंहानां भीतिजननं नृसिंहः सिंहनिस्वनम् । मुमोच मुहुरत्युग्रमुत्कर्णैर्द्विरदैः श्रुतम् ॥१२०॥
भूयो विषादमागत्य त्यक्तचापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमादं स्वं शुशोच फलितं क्षणात् ॥१२१॥
दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण भजता त्वरितां गतिम् । धर्मधीरिव मूढेन हारिता हा मया प्रिया ॥१२२॥
मानुषत्वं परिभ्रष्टं गहने भवसङ्कटे । प्राप्तुमत्यद्भुतं भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा ॥१२३॥
त्रैलोक्यगुणवद्रत्नं पतितं निम्नगापतौ । लभेत कः पुनर्धन्यः कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥
वनितामृतमेतन्मे कराङ्कस्थं महागुणम् । प्रनष्टं सङ्गतिं भूयः केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥
वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्ते कस्य दोषः प्रदीयते । नूनं मत्त्यागकोपेन क्वापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरने पर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमें पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयङ्कर वनमें छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब बिछुड़ी हुई उस सीताको दिखा कर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमें मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६–११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कह कर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टङ्कारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीक्ष्ण सिंहनाद किया । उनका वह सिंहनाद सिंहोंको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९–१२०॥ पुनः विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छदको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवणकर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुनः पाना कठिन है । अथवा समुद्रमें गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३–१२४॥ यह महागुणोंसे युक्त वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होने पर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमें किसे दोष दिया जाय ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह बेचारी कहीं चली

१. नैष स्याद् म० । २. हरं म० । ३. सुकुमाराङ्गिका म० । ४. मुक्तं टङ्कारनिस्वनं म० ।

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्कमुपेत्य प्रसाद्य च । पृच्छामि दुष्कृताचारो यो मे वार्तां निवेदयेत् ॥१२७॥
इयं ते प्राणतुल्येति चेतःश्रवणयोः परम् । कुर्यात्प्रह्लादनं को मे वचसामृतदायिना ॥१२८॥
दयावानीदृशः कोऽस्मिन् लोके पुरुषपुङ्गवः । यो मे स्मिताननां[1] कान्तां दर्शयेदघवर्जिताम् ॥१२९॥
हृदयागारमुद्दीप्तं कान्ताविरहवह्निना । [2]उदन्तजलदानेन को मे निर्वापयिष्यति ॥१३०॥
इत्युक्त्वा परमोद्विग्नो महीनिहितलोचनः । असकृत् किमपि ध्यायंस्तस्थौ निश्चलविग्रहः ॥१३१॥
अथ नात्यन्तदूरस्थचक्रवाकीस्वनं कलम् । समाकर्ण्य दृशं तस्यां श्रवणं च न्यधापयत् ॥१३२॥
अचिन्तयदमुष्याद्रेस्तत्सङ्गे गन्धसूचितम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेद्याता कुतूहलात् ॥१३३॥
दृष्टपूर्वं मनोहारि नानाकुसुमसङ्कुलम् । स्थानं हरितचेतोऽस्याः कदाचित्क्षणमात्रकम् ॥१३४॥
जगाम च तमुद्देशं यात्रचक्राह्वसुन्दरी । मया विना क्व यातीति पुनरुद्वेगमागमत् ॥१३५॥
भो भो महीधराधीश ! धातुभिर्विविधैश्रित ! सूनुर्दशरथस्य त्वां पद्माख्यः परिपृच्छते ॥१३६॥
विपुलस्तननम्राङ्गा बिम्बोष्ठी हंसगामिनी । [3]सज्जितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥१३७॥
दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा । केवलं निगदस्येवं प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ॥१३८॥
इत्युक्त्वा पुनरध्यासीत् किमदृष्टेन चोदिता । कृतान्तशत्रुणा बाला समासन्ना सती मता ॥१३९॥
चण्डोर्मिमालयाऽत्यन्तं वेगवत्याविवेकया । कान्ता हृता भवेन्नद्या विद्येव दुरितेच्छया ॥१४०॥

गई है ॥१२६॥ मैं पापाचारी इस निर्जन वनमें किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ "यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है" इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले वचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी मुसकुराती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिखला सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलते हुए मेरे हृदय-रूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कह कर जो परम उद्वेगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥

अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चकवीका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहल वश उस कमल वनमें गई होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उसका पहलेसे देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षणभरके लिए उसके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चकवी थी। फिर 'मेरे बिना वह कहाँ जाती है' यह विचारकर वे पुनः उद्वेगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्यकर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोंसे नम्रीभूत है, जिसके ओंठ बिम्बके समान हैं। जो हंसके समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनको आनन्द देनेवाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हाँ देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती बाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गई

१. स्मिताननः म०, ब० । २. समाचाररूपसलिलदानेन । ३. सज्जितम्बं म० ।

किंवाऽत्यन्तक्षुधार्तेन नितान्तक्रूरचेतसा । [1]इभारिणा भवेद्भुक्ता साधुवर्गस्य वत्सला ॥१४१॥
यशोर्भीमैककार्यस्य सिंहस्योत्केसरस्य सा । म्रियते दृष्टिमात्रेण नखादि[2]स्पर्शनाद्विना ॥१४२॥
भ्राता मम मृधे भीमे लक्ष्मणः संशयं श्रितः । सीतया विरहश्चायं तेन जानामि नो रतिम् ॥१४३॥
जीवलोकमिमं वेद्मि सकलं प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१४४॥
दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं व्रजाम्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१४५॥
खञ्जपादस्य खण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्खलितस्यावटे पातः प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः ॥१४६॥
ततः पर्यट्य विपिने पश्यन्मृगगरुत्मतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१४७॥
अत्यन्तदीनवदनः कृत्वा निज्यां धनुर्लताम् । सितश्लक्ष्णपटच्छिन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१४८॥
भूयो भूयो बहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रहः । निराशतां परिप्राप्तः सूत्कारमुखराननः ॥१४९॥

अतिरुचिराच्छन्दः

महानरानिति पुरुदुःखलंघितान् पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।
अहो जना भृशमवलोक्य दीयतां मतिः सदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिस प्रकारकी इच्छा विद्याको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी बड़ी तीक्ष्ण तरङ्गें उठ रही हैं । जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रियाको नहीं हर लिया हो ॥१३९-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूखसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥ जिसका कार्य अत्यन्त भयंकर है तथा जिसकी गर्दनके बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नखादिके स्पर्शके बिना ही वह मर गई होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥ मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जब तक मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है । अहो ! यह दुःख रूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥ प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लंगड़ा होता है उसीमें चोट लगती है, जो वृक्ष तुषारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिसलता है वही गर्तमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थान स्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए । वह वन उस समय सीताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रक्खा था ऐसे राम धनुषको डोरी रहितकर पृथिवी पर पड़ रहे ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षणमें उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे तथा सूत्कार शब्दसे उनका मुख शब्दायमान हो रहा था ॥१४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो ! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके उदयसे बड़े-बड़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी

१. सिंहेन । २. नखादि म० । ३. निज्यां म० ।

न ये भवप्रभवविकारसङ्गतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृतरविः सुदुस्सहः ॥१५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताहरणरामविलापाभिधानं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४४॥

देख, जिनेन्द्र कथित धर्ममें सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥ जो मनुष्य संसार सम्बन्धी विकारोंकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंकी उपासना नहीं करते हैं उन शरणरहित तथा इन्द्रियोंके वशीभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोपार्जित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा संतप्त करता रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताहरण और राम-विलापका वर्णन करनेवाला चवालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिनन्तरे[1] प्रातः पूर्वशिष्टो विराधितः । समेतः सचिवैश्शूरैः[2] सन्नद्धः शस्त्रसंकुलः ॥१॥
एकाकिनमसौ ज्ञाता युद्धमानं महानरम् । [3]स्वार्थसंसिद्धिसंभूतिं दीप्यमानं महौजसा ॥२॥
जानुं क्षितितले न्यस्य मूर्द्धन्यस्तकरद्वयः । अब्रवीदिति नम्राङ्गः परमं विनयं वहन् ॥३॥
नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चिद्विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । त्वद्विधानां हि संसर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
[4]कृतार्धभाषणस्यास्य करं विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ माभैर्षीरित्यवोचत लक्ष्मणः ॥५॥
ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसङ्गतः । जगाद क्षणसञ्जातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥
महाशक्तिमिमं शत्रुं त्वमेकं विनिवारय । रणाजिरे भटान् शेषान् निधनं प्रापयाम्यहम् ॥७॥
इत्युक्त्वा [5]दौषणं सैन्यं तेन शीघ्रं विराधितम्[6] । अधावद् बलसम्पन्नः[7] प्रह्वलद्धेतिसंहतिः ॥८॥
उवाच च चिरात् सोऽहं[9] चन्द्रोदरनृपात्मजः । प्राप्तो विराधितः ख्यातो रणातिथ्यसमुत्सुकः ॥९॥
क्वेदानीं गम्यते साधु स्थीयतां युद्धशौण्डिकैः । अद्य तद्वः प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥
इत्युक्ते वैरसम्पन्नो भटानामतिसङ्कुलः । बभूव शस्त्रसम्पातः सुमहान् जनसंक्षयः ॥११॥
पत्तयः पत्तिभिर्लग्नाः सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिये क्योंकि आप जैसे महापुरुषोंकी संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी-बात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महा आश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणामकर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आँगनमें जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने सामने जाकर कहा कि मैं राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित युद्धमें आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥९॥ अब कहाँ जाइयेगा ? जो युद्धमें शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह खड़े हो जावें । आज मैं आप लोगोंको वह फल दूंगा जो कि अत्यन्त दारुण-कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमें वैर भरा तथा मनुष्योंका संहार करनेवाला बहुत भारी शस्त्रोंका संपात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके

१. नगरे म० । २. श्वरैः म० । ३. सार्थसम्पद् विसम्भूतिं म०,ब० । ४. कृतार्धभापणस्य-म० । ५. दूषणस्येदं दौषणम् । ६. विराधितः क०, ख०, ज० । ७. सम्पन्न म० । ८. प्रज्वलद्धेतिसंततिः । ९. वचः सोत्साहं म० ।

परस्परकृताह्वानैरति[1] संहर्षिभिर्भटैः। संकुलैर्जनिते युद्धे [2]कृतान्योन्यमहायुधैः ॥१३॥
रणाजिरे परं तेजो भजमानो नवं नवम्। दिव्यकार्मुकमुद्यम्य शरच्छन्नदिगम्बरः ॥१४॥
खरेण सह संग्रामं चक्रे परमभैरवम्। लक्ष्मीधरः शुनासीरः स्वामिनेव सुरद्विषाम् ॥१५॥
ततः क्रोधपरीतेन खरेण खरनिस्वनम्। अवाचि लक्ष्मणः [3]संख्ये स्फुरल्लोहितचक्षुषा ॥१६॥
ममात्मजमुदासीनं हत्वा परमचापल। कान्ताकुचौ च संमृश्य पापाद्यापि क्व गम्यते ॥१७॥
अद्य ते निशितैर्बाणैर्जीवितं नाशयाम्यहम्। कृत्वा तथाविधं कर्म फलं तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
अत्यन्तक्षुद्र निर्लज्ज परस्त्रीसङ्गलोलुप। ममाभिमुखतां गत्वा परलोकं व्रजाधुना ॥१९॥
ततस्तैः परुषैर्वाक्यैः समुद्दीपितमानसः। उवाच लक्ष्मणो वाचं पूरयन् सकलं नभः ॥२०॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र दुः[4]खेचर शुना समः। अहं नयामि तत्र त्वां यत्र ते तनयो गतः ॥२१॥
इत्युक्त्वावस्थितं व्योम्नि विरथं खरदूषणम्। चकार लक्ष्मणः छिन्नचापकेतुं च निःप्रभम् ॥२२॥
ततोऽसौ पतितः क्षोण्यां नभस्तः क्रोधलोहितः। प्रक्षीणेष्विव पुण्येषु ग्रहस्तरलविग्रहः ॥२३॥
खड्गांशुर्लीढदेहश्च[5] सौमित्रिं प्रत्यधावत। असिरत्नं समाकृष्य सोऽप्यस्याभिमुखं ययौ ॥२४॥
इत्यासन्नं तयोरासीच्चित्रं युद्धं[6] भयानकम्। मुमुचुः स्वस्थिता देवाः सपुष्पान् साधुनिस्वनान् ॥२५॥
तावच्छिरसि संक्रुद्धो दूषणस्य न्यपातयत्। सूर्यहासं यथार्थाख्यं लक्ष्मणोऽक्षतविग्रहः ॥२६॥

साथ भिड़ गये ॥१२॥ तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेको बुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे जो अत्यन्त संकुल—व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शास्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन-नवीन परम तेजको धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर बाणोंसे दिशाओं और आकाशको व्याप्त करता हुआ खरके साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र दैत्येन्द्रके साथ करता था ॥१३–१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त एवं चञ्चल और लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाले खरदूषणने कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पापी! मेरे निर्वैर पुत्रको मार कर तथा मेरी स्त्रीके स्तनोंका स्पर्शकर अब तू कहाँ जाता है? ॥१६–१७॥ आज तीक्ष्ण बाणोंसे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्षुद्र! निर्लज्ज! परस्त्री संगका लोलुप! अब मेरे सन्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाशको गुंजाते हुए निम्नांकित वचन कहे। उन्होंने कहा कि रे क्षुद्र विद्याधर! तू कुत्तेके समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुझे पहुँचाता हूँ ॥ २०–२१ ॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित खरदूषणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके क्षीण होने पर चञ्चल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल लाल दीखनेवाला खरदूषण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ खड्गकी किरणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मणकी ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड्ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्गमें स्थित देवोंने साधु साधु—धन्य धन्य शब्दोंके साथ साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अखण्डित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो खरदूषणके सिरपर

१. रिति म० । २. कृतान्योन्य म० । ३. युद्धे । ४. दुष्टः खेचरः दुःखेचरस्तत्सम्बुद्धौ हे दुःखेचर । ५. लीनदेहश्च म० । ६. चित्रयुद्धं म० ।

निर्जीवः पतितः क्षोण्यां बभूव खरदूषणः । आलेख्यरविसङ्काशो यद्वत्स्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥
अथवा दयितो रत्या निश्चेष्टीभूतविग्रहः । रत्नपर्वतखण्डो वा दिग्गजेन निपातितः ॥२८॥
अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषणः [1]खारदूषणः । विरथं कर्तुमारेभे चन्द्रोदरनृपात्मजम् ॥२९॥
लक्ष्मणेनेषुणा तावद्गाढं मर्मणि[2] ताडितः । घूर्णमानो गतो भूमिं समाश्वासनमाध्नुत ॥३०॥
दत्वा विराधितायाथ तद्बलं खारदूषणम् । प्रययौ लक्ष्मणः प्रीतः प्रदेशं पद्मसंश्रितम् ॥३१॥
यावत्पश्यति तं सुप्तं भूमौ सीताविवर्जितम् । जगौ चोत्तिष्ठ किं नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥
उत्थाय सहसा दृष्ट्वा लक्ष्मणं निर्व्रणाङ्ककम् । किञ्चित्प्रमोदमायातः परिष्वजनतत्परः ॥३३॥
जगाद भद्र नो वेद्मि देवी केनापि किं हृता । उत सिंहेन निर्भुक्ता न दृष्टात्र गवेषिता ॥३४॥
पातालं किं भवेन्नीता नभःशिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
ततः क्रोधपरीताङ्गो विषादी लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्वेगानुबन्धेन न किञ्चिदपि कारणम् ॥३६॥
नूनं दैत्येन केनापि हृता केनापि जानकी । म्रियमाणामिमां लप्स्ये कर्तव्योऽत्र न संशयः ॥३७॥
परिसान्त्व्योत्तमैर्वाक्यैर्विविधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भसा तस्य मुखं प्राक्षालयन् सुधीः ॥३८॥
श्रुत्वा तावदलं तारं शब्दमुत्तानिताननः । अपृच्छत् [3]श्रीधरं रामः सम्भ्रमं किञ्चिदापयन् ॥३९॥
किमेषा नर्दति क्षोणी गगनात्किमयं ध्वनिः । किं कृतं भवता पूर्वं शत्रुशेषं भयोज्झितम् ॥४०॥

यथार्थ नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्र लिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर खरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथ रहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमें बाणसे इतनी गहरी चोट पहुँचाई कि बेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता रहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा। देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गई हैं? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिङ्गन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहने खा लिया है। मैंने इस वनमें बहुत खोजा पर दीखी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमें ले गया है या आकाशके शिखरमें पहुँचा दी गई है अथवा वह सुकुमाराङ्गी भयके कारण विलीन हो गई है ॥३५॥

तदनन्तर जिनका शरीर क्रोधसे व्याप्त था ऐसे लक्ष्मणने विषाद युक्त होकर कहा कि हे देव! उद्वेगकी परम्परा बढ़ाने से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गई है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ संभ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुखकर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशसे यह शब्द आ रहा है? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रुको शेष रहने दिया है? ॥३९-४०॥

१. खर-दूषणः म०, क० । २. कर्मणि म० । ३. लक्ष्मणम् ।

सुमित्राजस्ततोऽवोचन्नाथात्र हि महाहवे । उपकारो महान् काले खेचरेण कृतो मम ॥४१॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधित इति श्रुतः । प्रस्तावे दैवतेनैव हितेन परिढौकितः ॥४२॥
चतुर्विधेन महता बलेनास्य सुचेतसः । आगच्छतो महानेष शब्दः श्रुतिमुपागतः ॥४३॥
विश्रब्धचेतयोर्यावत् कथेयं वर्तते तयोः । तावन्महाबलोपेतः परिप्राप विराधितः ॥४४॥
ततो जयजयस्वानं कृत्वा विरचिताञ्जलिः । जगाद खेचरस्वामी प्रणतैः सचिवैः समम् ॥४५॥
स्वामी त्वं परमोऽस्माभिश्चिरात् प्राप्तो नरोत्तमः । अतः प्रदीयतामाज्ञा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभार्णात् साधो शृणु सुवर्तनम् । गुरोः केनापि मे पत्नी हृता दुर्नयवर्तिना ॥४७॥
तया विरहितः सोऽयं पद्मः शोकवशीकृतः । यदि नाम त्यजेत् प्राणांस्तावद्वह्निं विशाम्यहम् ॥४८॥
एतत्प्राणदृढासक्तात् भद्र प्राणानवैहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किञ्चित्कर्तव्यं कारणं परम् ॥४९॥
ततो नताननः किञ्चित्खगप्रभुरचिन्तयत् । कृत्वापि श्रममेतं मे कष्टमाशा न पूरिता ॥५०॥
सुखं संवसता स्वेष्टं नानावनविहारिणा । पश्यात्मा योजितः कष्टे कथं संशयगह्वरे ॥५१॥
दुःखार्णवतटं प्राप्तो यां यां गृह्णाम्यहं लताम् । दैवेनोन्मूल्यते सा सा कृत्स्नं विधिवशं जगत् ॥५२॥
तथाप्युत्साहमाश्रित्य कर्तव्यं समुपागतम् । करोमि कुर्वतो भद्रमभद्रं वास्वकर्मजम् ॥५३॥
इति ध्यात्वावहीरूपं भजन्नुत्साहसंस्तुतम् । जगाद सचिवान् धीरो वचसा स्फुटतेजसा ॥५४॥
पत्नी महानरस्यास्य नीता यदि महीतलम् । अथाकाशं गिरिं वारि स्थलं वा विपिनं पुरम् ॥५५॥
गवेषयत यत्नेन सर्वाशासुसमं ततः । यदिच्छत कृतार्थानां तद्दास्यामि महाभटाः ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समय पर मेरा बड़ा उपकार किया है । वह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारी दैवके द्वारा ही मानो अवसर पर मेरे समीप भेजा गया था ॥४१-४२॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला वह विद्याधर चार प्रकारकी बड़ी भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसीका सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विश्वस्त चित्तके धारक राम-लक्ष्मणके बीच जब तक यह कथा चलती है तब तक बड़ी भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरोंके राजा विराधितने नम्रीभूत मन्त्रियोंके साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्दका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्योंमें उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल बाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिये ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो किसी दुराचारीने मेरे अग्रज-रामकी पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय ही अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींके प्राणोंके साथ मजबूत बँधे हुए हैं इसलिए इस विषयमें कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरोंका राजा विराधित नीचा मुखकर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करने पर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले सुखसे इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोंमें भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनकी शरणमें सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशयके गर्तमें पड़ रहे हैं ॥५१॥ दुःखरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लताको पकड़ता हूँ सो दैवके द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तवमें समस्त संसार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भी मैं उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्यको अवश्य करूँगा ॥५३॥ इस प्रकार अन्तरङ्गमें विचार कर उत्साहको धारण करते हुए धीर-वीर विराधितने तेज पूर्ण वचनोंमें मन्त्रियोंसे कहा

१. अवसरे, प्रस्तवे म० । २. परिप्राप्तो म० । ३. अग्रजस्य । ४. -मात्रत्य म० । ५. भजमुत्साहमसंस्तुतम् ब० । ६. गवेषयतो म० ।

इत्युक्ताः सम्मदोपेताः सन्नद्धाः परमौजसः । नानाकल्पाः खगा जग्मुर्दिशो दश यशोर्थिनः ॥५७॥
अथार्कजटिनः सूनुर्नाम्ना रत्नजटी खगः । खड्गी द्रागिति शुश्राव दूरतो रुदितध्वनिम् ॥५८॥
आशां च भजमानस्तामाकर्णदिति निस्वनम्[1] । हा राम हा कुमारेति जलधेरूर्ध्वमम्बरे ॥५९॥
[2]परिदेवननिस्वानं श्रुत्वा तं सपरिस्फुटम् । समुत्पपात तं देशं विमानं यावदीक्षते ॥६०॥
अस्योपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तीमितिविह्वलाम्[3] । वैदेहीं स समालोक्य बभाण क्रोधपूरितः ॥६१॥
तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधराधम । कृत्वापराधमीदृक्षं क्व त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥
दयितां रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । मुञ्च शीघ्रमभीष्टं ते जीवितं यदि दुर्मते ॥६३॥
ततो दशाननोऽप्येनमाक्रोश्य परुषस्वनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे [4]प्रवृत्ते सति विह्वला । मयानिरूपिता सीता कदाचित्पञ्चतां भजेत् ॥६५॥
आकुलां [5]रक्षता चैतां परमव्याकुलात्मना । न व्यापादयितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येष नभश्चरः ॥६६॥
इति सञ्चिन्त्य सम्भ्रान्तश्लथमौल्युत्तराम्बरः । [6]खस्थस्य रत्नजटिनो बली[7] विद्यामपाहरत् ॥६७॥
अथ रत्नजटी त्रस्तः किञ्चिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैरुल्कास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
समुद्रजलमध्यस्थं कम्बुद्वीपं समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्थ्याद्भग्नपोतो यथा वणिक् ॥६९॥
निश्चलश्च क्षणं स्थित्वा समुच्छ्वस्यायतं भृशम् । कम्बुपर्वतमारुह्य दिशाचक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

कि इन महामानवकी पत्नी, महीतल, आकाश, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जाई गई हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो। हे महायोद्धाओ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४–५६॥ इस प्रकार कहने पर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेष-भूषासे सुशोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक खड्गधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम! हा कुमार लक्ष्मण!' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर! ऐसा अपराध कर अब तू कहा जाता है? ॥६१–६२॥ हे दुर्बुद्धे! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डलकी बहिनको शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होने पर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि यह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाय और यदि इस घबड़ाई हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५–६६॥ इस प्रकार विचार कर हड़बड़ाहट के कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके तिलगोंके समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक्के समान वह आयुका अस्तित्व शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षणभर

१. -यति निस्वनम म० । २. यदि देवेन म० । ३. मतिविह्वलाम् म० । ४. प्रवर्तें म० । ५. रक्षितां म० ।
६. स्वस्थस्य म० । ७. बलवान् रावणः ।

ततः समुद्रवातेन शिशिरत्वमुपेयुषा । [1]अपनीतश्रमस्वेदः समाशश्वासदुःखितः ॥७१॥
[2]येऽप्यन्येऽन्वेषणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तितः । राघवस्यान्तिकं प्राप्ताः प्रणष्टवदनौजसः ॥७२॥
तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महीविन्यस्तचक्षुषाम् । पद्मो जगाद दीर्घोष्णं निश्वस्य म्लानलोचनः ॥७३॥
निजां शक्तिममुञ्चद्भिर्भवद्भिः साधुखेचराः । अस्मत्कार्ये कृतो यत्नो दैवं तु प्रतिकूलकम् ॥७४॥
तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् । [3]वाडवास्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीक्ष्यते ॥७५॥
नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रापणीयं फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥
विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं [4]विकृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशत्रुणा ॥७७॥
मन्ये यथानुबन्धेन लग्नोऽयं विधिरुद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं मामान्यत्करिष्यति ॥७८॥
परिदेवनमारब्धे कर्तुमेवं नराधिपे । धीरं विराधितोऽवोचत् परिसान्त्वनपण्डितः ॥७९॥
विषादमतुलं देव किमेवमनुसेवसे । स्वल्पैरेव दिनैः पश्य प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
शोको हि नाम कोऽप्येष विषभेदो महत्तमः । नाशयत्याश्रितं देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥८१॥
तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषसेवितम् । भवद्विधा विवेकानां भवनं क्षेत्रमुत्तमम् ॥८२॥
जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि । [5]ग्रहीं ह्रस्वमतिर्भद्रं कृच्छ्रादपि न पश्यति ॥८३॥
कालो नैष विषादस्य दीयतां कारणे मनः । [6]औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥८४॥

निश्चल बैठा फिर बार-बार लम्बी साँस लेकर वह कम्बु पर्वत पर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतलवायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुछ संतुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी खोज करनेके लिए गये थे वे शक्तिभर खोज कर रामके समीप वापिस पहुँचे उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जान कर म्लाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३–७४॥ अब आपलोग अपनी इच्छानुसार बैठिये अथवा अपने-अपने घर जाइये । जो रत्न हाथसे छूटकर बडवानलमें जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो कुछ कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुदव मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९–८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विषका भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिए महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए आप जैसे उत्तम-पुरुष विवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धिका धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिये क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अपनीतश्रमस्वेदसमासश्वासदुःखितः म० । २. यथा स्वन्वेषणं म० । ३. वाडवास्यां गतं म०, ब० । ४. विदूरं । ५. ग्रही ख० । ६. उदासीन म० ।

विद्याधरमहाराजे निहते खरदूषणे । अर्थान्तरमनुप्राप्तं दुरन्तमवधार्यताम् ॥८५॥
किष्किन्धेन्द्रेन्द्रजिद्वीरौ भानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिराः क्षोभणो भीमः क्रूरकर्मा महोदरः ॥८६॥
एवमाद्या महायोधा नानाविद्यामहौजसः । यास्यन्ति साम्प्रतं क्षोभं मित्रस्वजनदुःखतः ॥८७॥
नानायुद्धसहस्रेषु सर्वे[1]ऽमी लब्धकीर्त्तयः । विजयार्धनगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिताः ॥८८॥
पवनस्यात्मजः ख्यातो यस्य वानरलक्षितम् । केतुं दूरात् समालोक्य विद्रवन्ति[2] द्विषां गणाः[3] ॥८९॥
तस्याभिमुखतां प्राप्य दैवयोगात् सुरा अपि । [4]त्यजन्ति विजये बुद्धिं स हि कोऽपि महाशयः ॥९०॥
तस्मादुत्तिष्ठ तत् स्थानमलङ्काराख्यमाश्रिताः । भामण्डलस्वसुर्वार्तां स्वस्थीभूता लभामहे ॥९१॥
तद्धि नः पुरमायातमन्वयेन रसातले । तत्र दुर्गे स्थिताः कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
इत्युक्ते चतुरैरश्वैश्चतुर्भिर्युक्तमुत्तमम् । भास्वरं रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
शुशुभाते तदात्यन्तं न तौ पुरुषसत्तमौ । सीतया रहितौ [5]सम्यग्दृष्ट्या बोधशमाविव ॥९४॥
चतुर्विधमहासैन्यसागरेण समावृतः । त्वरावानग्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपात्मजः ॥९५॥
तावच्चन्द्रनखासूनुं नगरद्वारनिःसृतम् । कृतयुद्धं पराजित्य प्रविष्टः परमं पुरम् ॥९६॥
तत्र देवनिवासाभे पुरे रत्नसमुज्ज्वले[6] । यथोचितं स्थितं चक्रुः खरदूषणवेश्मनि ॥९७॥
तस्मिन्नमरसद्माभे भवने रघुनन्दनः । सीताया गमनाल्लेभे धृतिं तु न मनागपि ॥९८॥
अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे । कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरों के राजा खरदूषणके मारे जाने पर दूसरी बात हो गई है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरी का राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याओंके धारक तथा महा तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र-खरदूषणके कुटुम्बी जनोंके दुःखसे क्षोभको प्राप्त होंगे ॥८६–८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारों युद्धोंमें सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्ध पर्वत पर रहनेवाला विद्याधरोंका राजा भी इन्हें वश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनञ्जयका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंके झुण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ दैव योगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमें वह कोई अद्भुत महा यशस्वी पुरुष है ॥९०॥ इसलिए उठिये अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय लें वहीं निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी बहिनका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ वह अलंकारपुर पृथिवीके नीचे है और हम लोगोंकी वंश परम्परासे चला आया है उसी दुर्गम स्थानमें स्थित रहकर हम लोग यथा योग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम देदीप्यमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेना रूपी सागरसे घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥९५॥ जब तक वह पहुँचा तब तक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकल कर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुन्दर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवोंके निवास स्थानके समान रत्नोंसे देदीप्यमान था। वहाँ जाकर विराधित तथा राम लक्ष्मण खरदूषणके भवनमें यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भवन देवभवनके समान था तो भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रञ्च मात्र भी धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे— वहाँ उन्हें सीताके बिना बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ स्त्रीके समागममें वन भी

१. सर्वे मम्प्राप्तकीर्तयः म० । २. विद्रवति म० । ३. गणः म० । ४. त्यजति विषये म० । ५. सम्यग्दृष्टिर्बोध-म० । ६. समाकुले म० ।

अथैकान्ते गृहस्यास्य तरुषण्डविराजिते । प्रासादमतुलं[1] वीक्ष्य ससार[2] रघुनन्दनः ॥१००॥
तत्रार्हत् प्रतिमां दृष्ट्वा रत्नपुष्पकृतार्चनाम् । क्षणविस्मृतसन्तापः परमो धृतिमुपागतः ॥१०१॥
इतस्ततश्च तत्रार्चां वीक्षमाणः कृतानतिः । किञ्चित् प्रशान्तदुःखोर्मिरवतस्थे रघूत्तमः ॥१०२॥
आर्मीयबलगुप्तश्च सुन्दो मात्रा समन्वितः । पितृभ्रातृविनाशेन शोकी लङ्कामुपाविशत् ॥१०३॥

शालिनीच्छन्दः

एवं सङ्गान् सावसानान् विदित्वा नानादुःखैः प्रापणीयानुपायैः ।
विघ्नैर्युक्तान् भूरिभिर्दुर्निवारैरिच्छां तेषु प्राणिनो मा कुरुध्वम् ॥१०४॥
यद्यप्याशापूर्वकर्मानुभावात् सङ्गं कर्तुं जायते प्राणभाजाम् ।
प्राप्य ज्ञानं साधुवर्गोपदेशाद् गन्त्री नाशं सा रवेः शर्वरीव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतावियोगदाहाभिधानं नाम
पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥

रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ विन्ध्य वनके समान जान पड़ता है ॥९९॥

अथानन्तर वृक्षोंके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमें अनुपम मन्दिर देखकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमें रत्न तथा पुष्पोंसे जिसकी पूजा की गई थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शनकर वे क्षणभर सब संताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमें इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थी उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे। जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरें कुछ शान्त हो गई थीं ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ माता चन्द्रनखाके साथ लङ्कामें चला गया ॥१०३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोंसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं ऐसे इन परिग्रहोंको नश्वर जानकर हे भव्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्व कर्मोदयसे प्राणियोंके परिग्रह संचित करनेकी आशा होती है तो भी मुनि-समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्तकर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताके वियोगजन्य
दाहका वर्णन करनेवाला पैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४५॥

१. प्रासादमञ्जुलं म० । २. ससीररघु- ज०, ससार = जगाम ।

षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासावुत्तमे तुङ्गे विमानशिखरे स्थितः । स्वैरं स्वैरं व्रजन् रेजे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
सीतायाः शोकतप्ताया म्लानं वीक्ष्यास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढात्मा दध्यौ किमपि रावणः ॥२॥
[1]अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः सीतायाः कृपणं परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥३॥
मारस्यात्यन्तमृदुभिर्हतोऽहं कुसुमेषुभिः । म्रिये यदि ततः साध्वि नरहत्या भवेत्तव ॥४॥
वक्त्रारविन्दमेतत्ते सकोपमपि सुन्दरि । राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥५॥
प्रसीद देवि भृत्यास्ये सकृच्चक्षुर्विधीयताम् । त्वच्चक्षुकान्तितोयेन स्नातस्यापैतु मे श्रमः ॥६॥
यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरानने । एतेन पादपद्मेन सकृत् ताडय मस्तके ॥७॥
भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्म्यशोककः । सुलभा यस्य ते श्लाघ्या पादपद्मतलाहतिः ॥८॥
कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयातोऽस्मि वियदूर्ध्वं रवेरपि ॥९॥
कुलपर्वतसंयुक्तां[2] समेरुं सहसागराम्[3] । पश्य क्षोणीमिमां देवि शिल्पिनेव विनिर्मिताम्[4] ॥१०॥
एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता । अन्तरे तृण[5]माधाय जगादारुचिताक्षरम् ॥११॥
[6]अवसर्प ममाङ्गानि मा स्पृशः पुरुषाधम । निन्द्याक्षरामिमां वाणीमीदृशीं भाषसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखर पर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमें सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्बन्धी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ हो रही थी ऐसा रावण शोक-संतप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे-पीछे तथा बगलमें खड़ा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ों प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोंसे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुझे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द क्रोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुन्दर हैं उनमें सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुख पर एक बार चक्षु डालो । तुम्हारे चक्षुकी कान्ति रूपी जलसे नहाने पर मेरा सब श्रम दूर हो जायगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तक पर आघात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर उद्यानमें अशोक वृक्ष क्यों नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशंसनीय तल प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छत पर बैठकर झरोखेसे जरा दिशाओंको तो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमें चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलो, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किसी कारीगरके द्वारा ही बनाई गई हो ॥१०॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देकर बैठी हुई सीता बीचमें तृण रखकर निम्नाङ्कित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अङ्ग मत छू । तू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

१. अस्तु दुर्दिनवक्त्रायाः म० । २. संयुक्तं म० । ३. सहसागरम् म० । ४. विनिर्मितम् म० । ५. व्रण- म० । ६. अपसार्य म० ।

पापात्मकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम् । असद्भिर्हितमेतत्ते विरुद्धं भयकारि च ॥१३॥
परदारान् समाकांक्षन् महादुःखमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताङ्गो भस्मच्छन्नानलोपमम् ॥१४॥
महता मोहपंकेन तवोपचितचेतसः । मुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविलासवत् ॥१५॥
इच्छामात्रादपि क्षुद्र बद्ध्वा पापमनुत्तमम् । नरके वासमासाद्य कष्टं वर्त्तनमाप्स्यसि ॥१६॥
रूक्षाक्षराभिधानाभिः परं वाणीभिरित्यपि । मदनाहतचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्त्तते (न्यवर्त्तत) ॥१७॥
तत्र दूषणसंग्रामे निवृत्ते परमप्रियाः । [1]शुकहस्तप्रहस्ताद्याः सोद्वेगाः स्वाम्यदर्शनात् ॥१८॥
चलत्केतुमहाखण्डं कुमारार्कसमप्रभम् । विमानं वीक्ष्य दाशास्यं मुदितास्तं ढुढौकिरे ॥१९॥
प्रदानैर्दिव्यवस्तूनां सम्मानैश्चाटुभिः[2] परैः । ताभिश्च भृत्यसम्पद्भिरप्राह्या जनकात्मजा ॥२०॥
[3]शक्नोति सुखधीः पातुं कः शिखामाशुशुक्षणेः । को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥२१॥
कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि दशांगुलिसमाहितम् । ननाम रावणः सीतां निन्दितोऽपि तृणाग्रवत् ॥२२॥
महेन्द्रसदृशैस्तावद्विभवैः सचिवैर्भृशम् । नानादिग्भ्यः समायातैरावृतो रक्षसां पतिः ॥२३॥
जय वर्धस्व नन्देति शब्दैः श्रवणहारिभिः । उपगीतः परिप्राप्तो लङ्कामाखण्डलोपमः ॥२४॥
अचिन्तयच्च रामस्त्री सोऽयं विद्याधराधिपः । यत्राचरत्यमर्यादां तत्र किं शरणं भवेत् ॥२५॥
यावत्प्राप्नोमि नो वार्तां भर्तुः कुशलवर्तिनः । तावदाहारकार्यस्य प्रत्याख्यानमिदं मम ॥२६॥

क्यों बोल रहा है ? ॥१२॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पाप रूप है, आयुको कम करनेवाली है, नरकका कारण है अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पश्चात्ताप-से तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापङ्कसे व्याप्त है अतः तुझे धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धेके सामने नृत्यके हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बाँधकर नरकमें जायगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोंसे भरी वाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

वहाँ खरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहके भरे शुक हस्त प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताकासे सुशोभित प्रातःकालीन सूर्यके समान रावणका विमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥१८-१९॥ उन्होंने दिव्य वस्तुओंकी भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अतिशय प्रिय वचन कहकर रावणकी अगवानी की तो भी भृत्योंकी उन सम्पदाओंसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ संसारमें ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनके शिरपर स्थित रत्नमयी शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने तृणके अग्रभाग-के समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दशों अङ्गुलियोंसे सहित अञ्जलि शिरपर धारण-कर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओंसे आये हुए तथा इन्द्रके समान-पूर्ण वैभवको धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, बढ़ते रहो, समृद्धि-मान् होओ' इत्यादि कर्ण प्रिय वचनोंसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लंकामें प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधरोंका राजा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भी मेरा यह

१. शुकहस्ताद्याः सोद्वेगाः बभ्राम० म०, ब० । २. स्वादुभिः म० । ३. शक्नोतिमुखधीः म० ।

उदीचीनं प्रतीचीनं तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गीर्वाणरमणं ख्यातमुद्यानं स्वर्गसन्निभम् ॥२७॥
तत्र [1] कल्पतरुच्छायमहापादपसंकुले । स्थापयित्वा रहः सीतां विवेश स्वनिकेतनम् ॥२८॥
तावद्दूषणपञ्चत्वादग्रतोऽस्य महाशुचम् । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्वरम् ॥२९॥
भ्रातुश्चन्द्रनखा पादौ संसृत्योन्मुक्तकण्ठकम् । अभाग्या हा हतास्मीति विललापास्तदुर्दिनम् ॥३०॥
रमणात्मजपञ्चत्ववह्निनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तीमिमां भूरि जगादैवं सहोदरः ॥३१॥
अलं वत्से रुदित्वा ते प्रसिद्धं किं न विद्यते । जगत्प्राग्विहितं [2] सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥३२॥
अन्यथा क्व महीचारा जनाः क्षुद्रकशक्तयः । क्वायमेवंविधो भर्ता भवत्या व्योमगोचरः ॥३३॥
मयेदमर्जितं पूर्वं व्यक्तं न्यायागतं फलम् । इति ज्ञात्वा शुचं कर्तुं कस्य मर्त्यस्य युज्यते ॥३४॥
नाकाले म्रियते कश्चिद्वज्रेणापि समाहतः । मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विषतां प्रतिपद्यते ॥३५॥
येन व्यापादितो वत्से समरे खरदूषणः । अन्येषां वाहितेच्छानां मृत्युरेष भवाम्यहम् ॥३६॥
स्वसारमेवमाश्वास्य दत्तादेशो जिनार्चने । दह्यमानमना वासभवनं रावणोऽविशत् ॥३७॥
तत्रादरनिराकांक्षं तल्पविक्षिप्तविग्रहम् । सोन्मादकेशरिच्छायं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३८॥
भर्तारं दुःखयुक्तेव भूषणादरवर्जिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य मयात्मजा [3] ॥३९॥
किं नाथाकुलतां धत्से खरदूषणमृत्युना । न विषादोऽस्ति शूराणामापत्सु महतीष्वपि ॥४०॥

नियम है कि जब तक भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तब तक मेरे आहार कार्यका त्याग है ॥२६॥

तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिवाले बड़े-बड़े वृक्षोंसे व्याप्त उस उद्यानमें एक जगह सीताको ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगीं ॥२९॥ चन्द्रनखा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़-फाड़कर 'हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गई' इस तरह अश्रुवर्षासे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रकी मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनखासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि संसारके प्राणी पूर्वभवमें जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो क्षुद्रशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ 'मैंने यह सब पूर्वमें सञ्चित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है' ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जब तक मृत्यु का समय नहीं आता है तब तक वज्रसे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीवके लिए विष हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मैं मृत्युस्वरूप हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार बहिनको आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्तसिंहके समान अथवा साँस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देख, दुःखयुक्त की तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरसे उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युसे आकुलताको धारण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूरवीरोंको बड़ी-बड़ी आप-

१. तरुतलच्छाये महापादप- म० । २ सर्वं म० । ३. मन्दोदरी ।

पुरानेकत्र संग्रामे सुहृदस्ते क्षयं गताः । न च शोचिता जातु दूषणं किन्तु शोचसि ॥४१॥
आसन्महेन्द्रसंग्रामे श्रीमालिप्रमुखाः नृपाः । बान्धवास्ते क्षयं याताः शोचितास्ते न जातुचित् ॥४२॥
अभूतसर्वशोकस्त्वमार्मादपि महापदि । शोकं किं वहसीदानीं जिज्ञासामि विभो वद ॥४३॥
ततो[1] महोदरः स्वैरं निश्वस्योवाच रावणः । तल्पं किञ्चित्परित्यज्य धारितो[2]दीरिताक्षरम् ॥४४॥
शृणु सुन्दरि सद्भावमेकं ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यसि ममासूनां सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥४५॥
यदि वाञ्छसि जीवन्तं मां ततो देवि नार्हसि । कोपं कर्तुं ननु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥४६॥
ततस्तथैवमित्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् । विलक्ष इव किञ्चित्स रावणः समभाषत ॥४७॥
यदि सा वेधसः सृष्टिरपूर्वा[3] दुःखवर्णना । सीता पतिं न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवितम् ॥४८॥
लावण्यं यौवनं रूपं माधुर्यं चारुचेष्टितम् । प्राप्य तां सुन्दरीमेकां[4] कृतार्थत्वमुपागतम् ॥४९॥
ततो मन्दोदरी कष्टां ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् । विहसन्ती जगादैवं विस्फुरद्दन्तचन्द्रिका ॥५०॥
इदं नाथ महाश्चर्यं वरो यत् कुरुतेऽर्थनम् । अपुण्या साबला नूनं या त्वां नार्थयते स्वयम् ॥५१॥
अथवा निखिले लोके सैवैका परमोदया । या त्वया मानकूटेन याच्यते परमापदा[5] ॥५२॥
केयूररत्नजटिलैरिमैः करिकरोपमैः । आलिङ्ग्य बाहुभिः कस्माद् बलात् कामयसे न ताम् ॥५३॥
सोऽवोचद्देवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र शृणु कारणम् । प्रसभं येन गृह्णामि न तां सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥५४॥

स्त्रियोंमें भी विषाद नहीं होता ॥४०॥ पहले अनेक संग्रामोंमें तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज खरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके संग्राममें श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे बन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले बड़ी-बड़ी आपत्तिमें रहने पर भी तुम्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन् इसका कारण बतलाइये ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा। उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखके भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! सुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ तुम मेरे प्राणोंकी स्वामिनी हो और सदा मैंने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्योंकि प्राण ही तो सब वस्तुओंके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहने पर उसे अनेक प्रकारकी शपथोंसे नियममें लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दाँतोंकी कान्तिरूपी चाँदनीको फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है। जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्य हीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा समस्त संसारमें वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है। जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष बड़ी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा बाजूबन्दके रत्नोंसे जटिल तथा हाथीकी सूँडकी उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे बलपूर्वक आलिङ्गन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि !

१. ततः सहोदरः म० । २. धारिता दारितोत्तरम् (?) । ३. रमवी-म० । ४. -मेतां ग० । ५. परमा यदा ग० ।

आसीदनन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आत्तमेकं व्रतं साक्षाद्देवि निर्ग्रन्थसंसदि ॥५५॥
तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमीदृशम् । तथा निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥५६॥
जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् ॥५७॥
येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते[1] । नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥५८॥
मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किञ्चिदन्तरम् । येषां न विद्यते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ॥५९॥
शक्त्या मुञ्चत पापानि गृह्णीत सुकृतं धनम् । जात्यन्धा इव संसारे न भ्राम्यथ यतश्चिरम् ॥६०॥
एवं भगवतो वक्त्रकमलान्निर्गतं वचः । मधु पीत्वा नराः केचिद्गगनाम्बरतां[3] गताः ॥६१॥
सागारधर्ममपरे श्रिता विकलशक्तयः । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः ॥६२॥
एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृहाणैकां निवृत्तिमिति शक्तितः ॥६३॥
धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं प्राप्तः शून्यमनस्करः । कथं व्रजसि विज्ञानी गुणसंग्रहकोविदः ॥६४॥
इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ॥६५॥
यावन्नेच्छति मां नारी परकीया मनस्विनी । प्रसभं सा मया तावन्नाभिगम्यापि दुःखिना ॥६६॥
एतच्चाप्यभिमानेन गृहीतं दयिते व्रतम् । का मां किल समालोक्य साध्वी मानं करिष्यति ॥६७॥
अतो न तां स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सकृज्जल्पन्ति राजानः प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ॥६८॥
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाद्यताम् । भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ॥६९॥

मैं जिस कारण उस सर्वाङ्ग सुन्दरीको जबर्दस्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवानके समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भव-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्के मुख कमलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोग गृहस्थधर्मको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणामकर सुर असुर तथा मुनियोंके समक्ष इस तरह कहा कि जब तक मानवती परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दुखी होनेपर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिए हे देवि ! मैं उस मनोहराङ्गीको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी बाधा आ पड़ती है ॥६८॥ अतः जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक सीताको प्रसन्न करो

१. कुतश्चिरूप जायते म० । २. गृहीतं म० । ३. दिगम्बरताम् ।

ततस्तं तादृशं ज्ञात्वा सञ्जातकरुणोदया । बभाण रमणी नाथ स्वल्पमेतत् समीहितम् ॥७०॥
ततः किञ्चिन्मधुरस्वादविलासवशवर्तिनी । सा देवरमणोद्यानं जगाम कमलेक्षणा ॥७१॥
तदाज्ञां प्राप्य सम्पद्भिरष्टादशमहौजसाम् । दशाननवरस्त्रीणां सहस्राण्यनुवव्रजुः ॥७२॥
मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य सीतामेवमभाषत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥
अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विषीदसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशाननः ॥७४॥
सर्वविद्याधराधीशं पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पतिं नेच्छसि रावणम् ॥७५॥
निःस्वःक्ष्मागोचरः कोऽपि[1] तस्यार्थे दुःखितासि किम् ।
सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्यं विधीयताम् ॥७६॥
आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् । दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥
मयेति गदितं वाक्यं यदि न प्रतिपद्यते । ततो यद्भविता तत्ते शत्रुभिः प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
बलीयान् रावणः स्वामी प्रतिपक्षविवर्जितः । कामेन पीडितः कोपं गच्छेत्प्रार्थनभञ्जनात् ॥७९॥
यौ रामलक्ष्मणौ नाम तव कावपि सम्मतौ । तयोरपि हि सन्देहः क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥
प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं विद्याधरमहेश्वरम् । ऐश्वर्यं परमं प्राप्ता सौरीं[2] लीलां समाश्रय ॥८१॥
इत्युक्ता वाष्पसम्भारगद्गदोद्गीर्णवर्णिका । जगाद जानकी जातजललोचनधारिणी ॥८२॥
वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्धं वचनं परम् । सतीनामीदृशं वक्त्रात्कथं निगन्तुमर्हति ॥८३॥
इदमेव शरीरं मे छिन्द भिन्दाथवा हत । भर्तुः पुरुषमन्यं तु न करोमि मनस्यपि ॥८४॥

क्योंकि घरके भस्म हो जाने पर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६९॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ ! यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्पश्चात् कुछ मधुर विलासोंकी वशवर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गई ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणकी अठारह हजार मानवती स्त्रियाँ भी वैभवके साथ उसके पीछे चलीं ॥७२॥ समस्त नय-नीतियोंके विज्ञानसे जिसका मन अलंकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीताके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विषाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीनों लोकोंमें धन्य है जिसका कि रावण पति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी क्यों हो ? सर्व लोकसे श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुखके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सब प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भङ्ग करने पर वह काम पीड़ित हो क्रोधको प्राप्त हो जायगा ॥७९॥ जो राम लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुझे इष्ट हैं सो रावणके कुपित होने पर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोंके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो देवों सम्बन्धि लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहने पर जिसके मुखसे वाष्पभारके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सब वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं। पतिव्रता स्त्रियोंके मुखसे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस

१. कोऽयं । २. सुराणामियं सौरी तां देवसम्बन्धिनीम् ।

सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वाखण्डलोपमः । नरस्तथापि तं भर्तुरन्यं नेच्छामि सर्वथा ॥८५॥
युष्मान्ब्रवीमि संक्षेपादाहारान् सर्वानिहागतान् । यथा भूत तथा नैतत्करोमि कुरुतेप्सितम् ॥८६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स्वयमेव दशाननः । सीतां मदनतापार्तो गङ्गावेणीमिव[1] द्विपः ॥८७॥
समीपीभूय चोवाच परं करुणया गिरा । किञ्चिद्विहसितं कुर्वन्मुखचन्द्रं महादरः ॥८८॥
मा[2] यासीर्देवि संत्रासं भक्तोऽहं तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेकं मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥
वस्तुना केन हीनोऽहं जगत्त्रितयवर्तिना । न मां वृणोषि यद्योग्यमात्मनः पतिमुत्तमम् ॥९०॥
इत्युक्त्वा स्प्रष्टुकामं[3] तं सीतावोचत्ससम्भ्रमा । अपसर्प[4] ममाङ्गानि मा स्पृशः पापमानस ॥९१॥
उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगानां शचीव स्वामिनी भव ॥९२॥
सीतोवाच कुशीलस्य विभवाः केवलं मलम् । जनस्य साधुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥
चारुवंशप्रसूतानां जनानां शीलहारतः[5] । लोकद्वयविरोधेन शरणं मरणं वरम् ॥९४॥
परयोषित्कृताशस्य तवेदं जीवितं मुधा । शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
एवं तिरस्कृतो मायां कर्तुं प्रववृते द्रुतम् । नेशुर्देव्यः परित्रस्ताः सञ्जातं सर्वमाकुलम् ॥९६॥
एतस्मिन्नन्तरे जाते भानुर्मायाभयादिव । समं किरणचक्रेण प्रविवेशास्तगह्वरम् ॥९७॥
प्रचण्डैर्विगलद्गण्डैः करिभिर्घनबृंहितैः । भीपिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९८॥

शरीरको तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषको मनमें भी नहीं ला सकती हूँ ॥८४॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८५॥ मैं यहाँ आई हुई तुम सब स्त्रियोंसे संक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमें जिस प्रकार हाथी गङ्गाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके संतापसे दुःखी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमें स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमाको कुछ कुछ हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमें बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ा कर कहा कि पापी हृदय ! हट मेरे अङ्गोंका स्पर्श मतकर ॥९१॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको शीलकी हानिकर दोनों लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणकी शरणमें जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन वृथा है। जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमें वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ। सब देवियाँ भयभीत होकर भाग गईं और वहाँका सब कुछ आकुलतासे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीचमें सूर्य, किरण समूहके साथ साथ अस्ताचलकी गुहामें प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाके भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियोंसे डराये जानेपर भी सीता

१. गङ्गाप्रवाहम् । २. मायासीद्देवि म० । ३. पृष्टुकाम् म० । ४. अपसार्य म० । ५. शीलहारितः म० ।

दंष्ट्राकरालदशनैर्व्याघ्रैर्दुःसहनिःस्वनैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९९॥
चलत्केसरसङ्घातैः सिंहैरुग्रनखाङ्कुशैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१००॥
ज्वलत्स्फुलिङ्गभीमाक्षैर्ललज्जिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०१॥
व्यात्ताननैः कृतोत्पातपतनैः क्रूरवानरैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०२॥
तमःपिण्डासितैस्तुङ्गैर्वेतालैः कृतहुङ्कृतैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०३॥
एवं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोद्भवैः । भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०४॥
तावच्च समतीतायां विभावर्यां भयादिव । जिनेन्द्रवेश्मसूत्तस्थौ शङ्खभेर्यादिनिःस्वनः ॥१०५॥
उद्घाटितकपाटानि द्वाराणि वरवेश्मनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनानीव रेजिरे ॥१०६॥
सन्ध्यया रञ्जिता प्राची दिगत्यन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन भानोरागच्छतः कृता ॥१०७॥
नैशं ध्वान्तं समुत्सार्य कृत्वेन्दुं विगतप्रभम् । उदयाय सहस्रांशुः पङ्कजानि न्यबोधयत् ॥१०८॥
ततो विमलतां प्राप्ते प्रभाते चलपक्षिणि[1] । विभीषणाद्यः प्रापुर्दशास्यं प्रियबान्धवाः ॥१०९॥
खरदूषणशोकेन ते निर्वाक्यनताननाः । सबाष्पलोचना भूमौ समासीना यथोचितम् ॥११०॥
तावत्पटान्तरस्थाया रुदत्याः शोकनिर्भरम् । शुश्राव योषितः शब्दं मनोभेदं विभीषणः ॥१११॥
जगाद व्याकुलः किञ्चिदपूर्वेयमिहाङ्गना । का नाम करुणं रौति स्वामिनेव वियोजिता ॥११२॥

रावणकी शरणमें नहीं गई ॥९८॥ जिनके दाँत दाढ़ोंसे अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे और जो दुःसह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥९९॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अंकुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१००॥ जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगों के समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े साँपोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१०१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपरकी ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१०२॥ जो अन्धकारके पिण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमें नहीं गई ॥१०३॥ इस प्रकार क्षण-क्षण में किये जानेवाले नानाप्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१०४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत हो गई और जिन मन्दिरोंमें शङ्ख भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥१०५॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी किवाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हों ॥१०६॥ सन्ध्यासे रँगी हुई पूर्व दिशा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानीके लिए कुङ्कुमके पङ्कसे ही लिप्त की गई हो ॥१०७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्टकर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा ॥१०८॥ तदनन्तर जिसमें पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय बान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥१०९॥ खरदूषणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥११०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई स्त्रीका हृदय-विदारक शब्द सुना ॥१११॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ वियोगको प्राप्त हुई

१. चलाः पक्षिणो यस्मिन्, तस्मिन् ।

शब्दोऽयं शोकसम्भूतमस्याः कम्पं समुत्कटम् । निवेदयति देहस्य दुःखसम्भारवाहिनः ॥११३॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता तारतरस्वनम् । रुरोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥११४॥
जगौ च वाष्पपूर्णास्याप्रस्खलन्निर्गताक्षरम्[1] । इह को मे देव बन्धुस्त्वं यत्पृच्छसि वत्सलः ॥११५
सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहकं पत्नी सीता दशरथस्नुषा ॥११६॥
वार्तान्वेषी गतो यावद्भर्ता मे भ्रातुराहवे । रन्ध्रेऽहं तावदेतेन हृता कुत्सितचेतसा ॥११७॥
यावन्न मुञ्चति प्राणान् रामो विरहितो मया । भ्रातरस्मै द्रुतं तावन्नीत्वा मामर्पयोदितः ॥११८॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषणः । जगाद विनयं बिभ्रद् भ्रातरं गुरुवत्सलः ॥११९॥
आशीविषाग्निभूतेयं मोहाद् भ्रातः कुतस्त्वया । परनारी समानीता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
बालबुद्धिरपि स्वामिन् विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
भवत्कीर्तिलताजालैर्जटिलं वलयं दिशाम् । मा धाक्षीदयशोदावः[2] प्रसीद स्थितिकोविद ॥१२२॥
परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः । लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः[3] ॥१२३॥
धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः[4] । सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥१२४॥
जानन् सकलमर्यादां विद्याधरमहेश्वरः । ज्वलन्तमुल्मुकं कस्मात्करोषि हृदये निजे ॥१२५॥
यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते । नरकं स विशत्येव लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न-उत्कट कम्पन को सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अश्रुपूर्ण मुखसे टूटे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेनेके लिए जबतक भाईके युद्धमें गया था तब तक छिद्र देख इस दुष्टहृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिछुड़े राम जब तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दे ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषणका चित्त कुपित हो उठा । तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविषसर्पकी विषरूपी अग्निके समान सब प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवश कहाँसे ले आया है ? ॥११९–१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिये वचनके विषयमें आपने मुझपर प्रसन्नता की है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न हूजिए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयङ्कर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकोंको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनोंसे यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्योंके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्योंके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो समस्त मर्यादाको जाननेवाले, विद्याधरोंके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए उल्मुकको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पाप-बुद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

१. पूर्णास्यात्सबलं निर्गताक्षरम् म० । २. अपकीर्तिदवाग्निः 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इहेष्यते, इत्यमरः । ३ विनाशकः म० । ४. समं ततः म० ।

तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत् किं तद्द्रव्यं महीतले । भ्रातर्यस्यास्मि न स्वामी परकीयं कुतो मम ॥१२७॥
इत्युक्त्वा विकथाः कर्तुं प्रारेभे भिन्नमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरवोचत ॥१२८॥
जानन्नपि कथं सर्वं लोकवृत्तं दशानन । अकरोर्दीदृशं कर्म मोहस्येदं विचेष्टितम् ॥१२९॥
सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ॥१३०॥
निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् वक्तुमेवं महामतौ । सभायाः क्षोभनं कुर्वन्नुत्तस्थौ रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
त्रिजगन्मण्डनाभिख्यमारुरोह च वारणम्[1] । महर्द्धिभिश्च सामन्तैर्वाहारूढैः समावृतः ॥१३२॥
पुष्पकाग्रं समारोप्य सीतां शोकसमाकुलाम् । पुरः कृत्वा महाभूत्या प्रययौ नगरीदिशा ॥१३३॥
कुन्तासितोमरच्छत्रध्वजाद्यर्पितपाणयः[2] । अग्रतः पुरुषाः सस्रुः कृतसम्भ्रमनिस्वनाः ॥१३४॥
चलिताश्चञ्चलग्रीवाः स्थूरीपृष्ठाः सहस्रशः । चञ्चत्खुराननक्षुण्णक्षितयश्चारुसादिनः ॥१३५॥
प्रचण्डनिस्वनद्धण्टाः कृतजीमूतगर्जिताः । प्रचेलुर्वेत्तृभिर्नुन्ना गण्डशैलसमा गजाः ॥१३६॥
अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतनानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मानवाः पुरः ॥१३७॥
सहस्रसंख्यतूर्याणां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविशन् मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥१३८॥
सम्पद्भिरेवमाद्याभिर्वृतोऽप्यत्यन्तचारुभिः । सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥
अकल्मषं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्यं लोभमाने तुं[3] लेपमम्बु यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथिवीतल पर वह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न होऊँ ? अत: मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदयने विकथाएँ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब वृत्तान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमें यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल उठकर विवेक पूर्वक अपने हिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमें ही सभाके क्षोभको करता हुआ रावण उठकर खड़ा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों और अश्वारूढ सामन्तोंसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ा कर तथा आगे कर बड़े वैभवसे नगरी की ओर चला ॥१३३॥ भाले, खड्ग, तोमर, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमें थे और जो संभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी ग्रीवाएँ चञ्चल थीं, जो सुशोभित खुरोंके अग्रभागसे पृथिवीको खोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और जो गण्डशैल-काली चट्टानोंवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मार कर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों तुरहियोंके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमें प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे तृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमलको लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

१. रावणः म० । २. ध्वजादर्पित म०, ब० । ३. लोभमाने तु लेपमम्भु यथाम्बुजम् म० ।

समन्तकुसुमं तावन्नानातरुलताकुलम् । प्रमदाख्यं वनं सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
स्थितं फुल्लनगस्योदूर्ध्वं दृष्ट्वा यद् दृष्टिबन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥
गिरिः सप्तभिरुद्यानैर्वेष्टितः स्वायतैः स च । रराज भद्रशालाद्यैः सूर्यावर्त्त इवोज्ज्वलः ॥१४३॥
एकदेशानहं तस्य विविधाद्भुतसङ्कुलान् । नामतः सम्प्रवक्ष्यामि तव राजन् निबोध्यताम् ॥१४४॥
प्रकीर्णकं जनानन्दं सुखसेव्यं समुच्चयम् । चारणप्रियसंज्ञं च निबोधं प्रमदं तथा ॥१४५॥
प्रकीर्णकं महीपृष्ठे जनानन्दं ततः परम् । यत्रानिषिद्धसञ्चारो जनः क्रीडति नागरः[1] ॥१४६॥
तृतीयेऽलं वने रम्ये मृदुपादपसङ्कुले । घनवृन्दप्रतीकाशे सरिद्वापीमनोहरे ॥१४७॥
दशाध्यामायता वृक्षा रविमार्गोपरोधिनः । केतकीयूथिकोपेतास्ताम्बूलीकृतसङ्गमाः ॥१४८॥
निरुपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्यः क्वचिद्देशे च सन्नराः ॥१४९॥
चारणप्रियमुद्यानं मनोज्ञं पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा व्योमचारिणः ॥१५०॥
तस्योपरि समारुह्य [2]ययुपृष्ठमनिन्दितम् । सुखारोहणसोपानं दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
स्नानक्रीडोचिता रम्या वाप्योऽस्मिन् पद्मशोभिता । प्रपाः सभाश्च विद्यन्ते रचितानेकभूमयः ॥१५२॥
नारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः[3] फलैर्यत्र निरन्तराः । खर्जूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥१५३॥
तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः । कुसुमस्तवकैश्छन्ना गीयन्ते मत्तषट्पदैः ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सब ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जाई गई ॥१४१॥ फूलोंके पर्वतके ऊपर स्थित तथा दृष्टिको बाँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवोंके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे-लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! अनेक आश्चर्योंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन हैं हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वत पर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक २ जनानन्द ३ सुखसेव्य ४ समुच्चय ५ चारण-प्रिय ६ निबोध और प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जना-नन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही मनुष्य क्रीड़ा करते हैं जिनका कि आना जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुखसेव्य नामका वन है जो कोमल वृक्षोंसे व्याप्त है, मेघ समूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है। उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमां प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७–१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियाँ सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पांचवाँ पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणऋद्धिधारी मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवाँ निबोध नामका वन है जो ज्ञानका निवास है] और उसके आगे चढ़कर प्रमद नामका सातवाँ वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम तथा सुखसे चढ़नेके योग्य सीढ़ियोंसे युक्त दिखाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीड़ाके योग्य, कमलोंसे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान स्थान पर पानीयशालाएँ और अनेक खण्डोंसे युक्त सभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे एवं फलोंसे लदे नारिङ्ग और बीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद

१. नागरः म० । २. ययुः पृष्ठ-म० । ३. मातुलिङ्गाद्यैः म० ।

कुर्वन्तीव[1] लतालीलां कोमलैः पल्लवैः करैः । घूर्णिता मन्दवातेन फलपुष्पमनोहरा ॥१५५॥
सारङ्गदयिताभिश्च प्रलम्बाम्बुदशोभिनः । समस्तर्तुकृतच्छायाः सेव्यन्ते[2] घनपादपाः ॥१५६॥
विभूतिं तस्य तां वाप्यः सहस्रच्छदनाननाः । आलोकन्त इवातृप्ता असितोत्पललोचनैः ॥१५७॥
गहनान् कोकिलालापान् नृत्यन्त्यो मन्दवायुना । दीर्घिका विहसन्तीव राजहंसकदम्बकैः ॥१५८॥
प्रमदाभिख्यमुद्यानं सर्वभोगोत्सवावहम् । अत्र किं बहुनोक्तेन स्याद्वरं नन्दनादपि ॥१५९॥
अशोकमालिनी नाम पत्रपद्मविराजिता । वापी कनकसोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः । सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निर्झरैश्च सशीकरैः ॥१६१॥
तत्राशोकतरुच्छन्ने स्थापिता शोकधारिणी । देशे शक्रालयाद् भ्रष्टा स्वयं श्रीरिव जानकी ॥१६२॥
तस्मिन् दशाननोक्ताभिः स्त्रीभिरन्तरवर्जितम् । सीता प्रसाद्यते वस्त्रगन्धालङ्कारपाणिभिः ॥१६३॥
दिव्यैः सनर्तनैर्गीतैर्वाक्यैश्चामृतहारिभिः । अनुनेतुं न सा शक्या सम्पदा चामराभया ॥१६४॥
उपर्युपरि संरक्तो दूतीं विद्याधराधिपः । प्राहिणोद्धि स्मरोदारदावज्वालाकुलीकृतः ॥१६५॥
दूति[3] सीतां व्रज ब्रूहि दशास्यमनुरक्तकम् । न साम्प्रतमवज्ञातुं प्रसीदेत्यादिभाषते ॥१६६॥
गताऽऽगता च सा तस्मै वदतीति वितेजसे । देव साहारमुत्सृज्य स्थिता त्वां वृणुते कथम् ॥१६७॥

नामक उद्यानमें वृक्षोंकी सब जातियाँ विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मदोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुञ्जार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फूलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लटकते हुए मेघोंके समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओंमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥ १५६॥ कमलरूपी मुखोंसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमल रूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूतिको मानो अतृप्त होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द-मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहंस पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं मानो कोकिलाओंके आलापसे युक्त सघन वनोंकी हँसी ही कर रहीं हों ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकार वाले गोपुरसे अलंकृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन झरोखे आदिसे अलंकृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्झरोंसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें बैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी हो ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वस्त्र, गन्ध तथा अलंकारोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियाँ निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करतीं थीं ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित दिव्य संगीतों, अमृतके समान मनोहर वचनों और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥१६४॥ इतने पर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापिस आकर तेजरहित रावणसे कहती कि हे देव !

१. कुर्वन्ती ज०, ख० । २. सेवन्ते म० । ३. दूति म० ।

न जल्पति निषण्णाङ्गी नालं कायेन चेष्टते । न ददाति महाशोका दृष्टिमस्मासु जानकी ॥१६८॥
अमृतादपि सुस्वादैः पयःप्रभृतिभिः श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नान्नं विचित्रं बहुवर्णकम् ॥१६९॥
ततो मदनदीप्ताग्निज्वालालीढः समन्ततः । आर्त्तो व्यचिन्तयत्[1] भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे ॥१७०॥
शोचन्युन्मुक्तदीर्घोष्णनिश्वासानिलसन्ततिः । शुष्यन्मुखः पुनः किञ्चिद्गायत्यविदिताक्षरम् ॥१७१॥
स्मरप्रालेयनिर्दग्धं धुनाति मुखपङ्कजम् । मुहुः किमपि सञ्चिन्त्य स्मयते क्षणनिश्चलः ॥१७२॥
अनुबन्धमहादाहा समस्ता[2]वयवानलम् । क्षिपत्यविरतं भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तकः ॥१७३॥
उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् । निःक्रामति पुनर्दृष्ट्वा जनं प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥
नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिङ्मुखगामिना । आस्फालयति निःशङ्कः कुट्टिमं कम्पमानयन् ॥१७५॥
स्मरन् सीतां मनोयातामात्मानं पौरुषं विधिम् । निरपेक्षमुपालब्धुं[3] साश्रुनेत्रः प्रवर्त्तते ॥१७६॥
किञ्चिदाह्वयते दत्तहुङ्कारश्चातिकैर्जनैः । तूर्ष्णीमास्ते पुनः किं किमति शून्यं प्रभाषते ॥१७७॥
सीता सीतेति कृत्वास्यमुत्तानं भाषते मुहुः । तिष्ठत्यवाङ्मुखं भूयो नखेन विलिखन् महीम् ॥१७८॥
करेण हृदयं मार्ष्टि बाहुमूर्द्धानमीक्षते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कारं तल्पं मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
दधाति हृदये पद्मं पुनर्दूरं निरस्यति । मुहुः पठति[4] शृङ्गारं गगनाङ्गणमीक्षते[5] ॥१८०॥

वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध, आदिसे युक्त, सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिन्तामें पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोच्छ्वासकी वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥ वह कामरूपी तुषारसे जले हुए मुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नखचित फर्सपर लोटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवोंको बार-बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमें जानेवाली सूँडसे किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशङ्क हो सब दिशाओंमें घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्सको आस्फालन करता था अर्थात् फर्सपर घुमा-घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्सको कंपित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आई हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुँकार देते थे तब चुप रह जाता था तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके बकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता सीता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्षःस्थलको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देखता, कभी हुंकार छोड़ता कभी बिस्तर पर जा लेटता था ॥१७९॥ कभी हृदय पर कमल

१. विचिन्तयद् म० । २. स्मरतावयवानलम् म० । ३. -मुपालब्धं म० । ४. यतति म० । ५. -मीक्ष्यते म० ।

हस्तं हस्तेन संस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम् । निश्वासदहनश्याममाकृष्याधरमीक्षते ॥१८१॥
धत्ते कहकहं स्वानं केशान् वर्त्तयति क्षणम् । कोपेन दुस्सहां दृष्टिं कचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को वाष्पाच्छादितलोचनः । बाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुरदङ्गुलिः ॥१८३॥
अंशकान्तेन हृदयं वीजयत्याहितेक्षणम् । कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥१८४॥
चित्रयत्यादरी सीतां द्रवयत्यश्रुभिः पुनः । दीनः क्षिपति हाकारान् न न मामेति जल्पति ॥१८५॥
एवमाद्याः क्रियाः क्लिष्टा मदनग्रहपीडितः । करोति करुणालापं चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥१८६॥
तस्य स्मराग्निना दीप्तं हृदयेन समं वपुः । अनुबन्धमहाधूपं ज्वलत्याशाकृतेन्धनम् ॥१८७॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं कामवस्थामहं गतः । येनेदमपि शक्नोमि न वोढुं स्वशरीरकम् ॥१८८॥
दुर्गसागरमध्यस्था बृहद्विद्याधरा मया । जिताः सहस्रशो युद्धे किमिदं वर्ततेऽधुना ॥१८९॥
सर्वत्र जगति ख्यातलोकपालपरिच्छदः । बन्दीगृहमुपानीतो महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
अनेकयुद्धनिर्भग्ननराधिपकदम्बकः[3] । सोऽहं सम्प्रति मोहेन भस्मीकर्तुं प्रवर्तितः ॥१९१॥
चिन्तयन्निदमन्यच्च कामाचार्यवशंगतः । आस्तां तावदसौ राजन्निदमन्यद्विबुध्यताम् ॥१९२॥
आकुलो मन्त्रिभिः साकं महामन्त्रविशारदः[4] । विभीषणः समारेभे निरूपयितुमीदृशम् ॥१९३॥
स हि रावणराष्ट्रस्य धुरं धत्ते गतश्रमः । समस्तशास्त्रबोधाम्बुधौतनिर्मलमानसः ॥१९४॥

रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृङ्गारका पाठ करता—शृङ्गार भरे शब्दोंका उच्चारण करता और कभी आकाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्शका पैरसे पृथिवीको ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वास रूपी अग्निसे काले पड़े हुए अधरोष्ठको खींच कर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह कह' शब्द करता था, कभी केशोंको खोल कर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्षःस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको आँसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण ऊपर उठा अंगुलियाँ चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वस्त्रके अञ्चलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आँसुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हा हाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी ग्रहसे पीडित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईंधन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाय मैं किस अवस्था को प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े-बड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले बन्दीगृहमें डाल रक्खा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०–१९१॥ गौतम-कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्यवस्तुओंका चिन्तवन करता हुआ रावण कामरूपी आचार्यके वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेमें निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तत्पर हुआ ॥१९३॥ यथार्थमें समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

१. माकृष्याधर- म० । २. केशाद्वर्तयति म० । ३. कदम्बकम् म० । ४. महामन्त्रिविशारदः ख० ।

रावणस्य हि तत्तुल्यो न हितो विद्यते परः । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥१९५॥
उवाचासावहो वृद्धा राजनीत्थं व्यवस्थिते । उपक्षिपत कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥१९६॥
विभीषणोदितं श्रुत्वा सम्भिन्नमतिरभ्यधात् । अतः परं वदामः किं गतं कार्यमकार्यताम् ॥१९७॥
स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगतः । दक्षिणोपलितो बाहुः खरदूषणसंज्ञकः ॥१९८॥
विराधितोऽपरः कोऽपि कारणं यो न कस्यचित् । सोऽयं गोमायुतां [1]मुक्त्वा केसरित्वं समाश्रितः ॥१९९॥
भव्यतां पश्यतामुष्य साधुकर्मोदयादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे यातो बन्धुतां यत्सुचेष्टितः ॥२००॥
एतेऽपि बलिनः सर्वे मानिनः कपिकेतवः । भवन्त्याक्रान्तितो वश्या निर्भृत्यास्तु न जातुचित् ॥ २०१॥
अमीषामन्य आकारो मानसं त्वन्यथा स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुणं विषम् ॥२०२॥
नेता वानरमौलीनामनङ्गकुसुमापतिः । न्यक्षेण भजते पक्षं सुग्रीवस्य मरुत्सुतः ॥२०३॥
ततः पञ्चमुखोऽवोचद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुणः ॥२०४॥
वृत्तान्तेनामुना कस्य संत्रासोऽकीर्तिरेव च । भवत्येव हि शूराणामीदृशी समरे गतिः ॥२०५॥
[2]वातेनापहृते सिन्धोः कणे का न्यूनता भवेत् । रावणस्य बलं स्फीतं किं दूषणसमीहया ॥२०६॥
व्रीडां व्रजति मे चेतः कुर्वतः सम्प्रधारणम् । क्वायं दशाननः स्वामी क्वान्ये केऽपि वनौकसः ॥२०७॥
सूर्यहासधरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधितः क नामैव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥१९४॥ विभीषण-के समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था। वह उसके करने योग्य समस्त कार्योंमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था ॥१९५॥ विभीषणने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोंका क्या कर्तव्य है सो कहो ॥१९६॥ विभीषणका कथन सुनकर संभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥१९७॥ स्वामी दशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥१९८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज श्रृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥१९९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमें हो सकते हैं विना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार साँपोंके बाह्यमें तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अनंग-कुसुमाका पति हनुमान् इस समय वानर वंशियोंका नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीव-का ही पक्ष लेता है। इस प्रकार संभिन्नमतिके कह चुकने पर पंचमुख मन्त्री अनादर पूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गिननेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्तान्तसे किसेभय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूर वीरोंकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ वायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हरलेने पर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गई ? अर्थात् कुछ भी नहीं। रावणका बल बहुत है, उसके दोष देखनेसे क्या। ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लज्जा आती है। कहाँ यह जगत्का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास खड्गको धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है—उसका

१. भुक्त्वा म० । २. 'वातेनापहृते सिन्धोः कणिकान्यूनता भवेत्' म० ।

मृगेन्द्राधिष्ठिताश्मानमपि काननसङ्कतम् । दन्दह्यते न किं दावो गिरिं परमदुःसहम् ॥२०९॥
सहस्रमतिनामाथ संचिवोऽनन्तरं जगौ । सूचयन् विरसं वाक्यं पूर्वं मस्तककम्पनात् ॥२१०॥
मानोद्धतैरिमैर्वाक्यैरर्थहीनैः किमीरितैः । मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥२११॥
स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या कार्यावज्ञा न वैरिणि । कालं प्राप्य कणो वह्नेर्दहेत् सकलविष्टपम् ॥२१२॥
अश्वग्रीवो महासैन्यः ख्यातः सर्वत्र विष्टपे । स्वल्पेनापि त्रिपृष्ठेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥
तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्तमियं परमदुर्गमा । नगरी क्रियतां लङ्का मतिसन्दोहशालिभिः ॥२१४॥
सुघोराणि प्रसार्यन्तां यन्त्राण्येतानि सर्वतः । तुङ्गप्राकारकूटेषु दृश्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥
सन्मानैर्बहुभिः शश्वत् सेव्यो जनपदोऽखिलः । स्वजनाव्यतिरेकेण दृश्यतां प्रियवादिभिः ॥२१६॥
सर्वोपायविधानेन[1] रक्ष्यतां प्रियकारिभिः । राजा दशाननो येन [2]सुखतां प्रतिपद्यते ॥२१७॥
प्रसाद्यतां सुविज्ञानैर्मैथिली परमैः प्रियैः । मधुरैर्वचनैर्दानैः [3]क्षीरैरहिवधूरिव ॥२१८॥
सुग्रीवं कैष्कुनगरमन्यांश्च भटपुङ्गवान् । वहिः स्थापयतोद्युक्तान्नगर्या रक्षकारिणः ॥२१९॥
एवंकृते न ते भेदं जानन्ति बहिराहिताः । कार्ये नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिनं प्रियम् ॥२२०॥
एवं दुर्गतरे जाते कार्ये सर्वत्र सर्वतः । को जानाति हृतां सीतां स्थितामत्रापरत्र वा ॥२२१॥
रहितश्चानया रामो ध्रुवं प्राणान् विमोक्ष्यति । यस्येयमीदृशी कान्ता वर्तते विरहे प्रिया ॥२२२॥
रामे च पञ्चतां प्राप्ते शोकविक्लवमानसः । एकाकी क्षुद्रयुक्तो वा सौमित्रिः किं करिष्यति ॥२२३॥

मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि सिंहसे सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता ? ॥२०९॥

तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस बताता हुआ सहस्रमति मन्त्री बोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले व्यक्तिको ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत बातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०–२११॥ 'वह छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कण समस्त संसारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ी भारी सेनाका स्वामी अश्वग्रीव समस्त संसारमें प्रसिद्ध था तो भी रणको अग्रभागमें छोटेसे त्रिपृष्ठके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इसलिए बिना किसीके विलम्बके इस लंका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सब दिशाओंमें फैला दिये जावें। अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरों पर चढ़कर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देख रेखकी जाय ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सन्मानोंसे समस्त देशको निरन्तर सेवा की जाय और मधुर वचन बोलनेवाले राज्याधिकारी सब लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखें ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सब प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करें जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणीको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दानके द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाय ॥२१८॥ किष्कु नगरके स्वामी सुग्रीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमें उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके बाहर रखा जावे ॥२१९॥ ऐसा करने पर बाहर रखे हुए सुग्रीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौंपा जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रसन्न हैं ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा। क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरहमें रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब शोकसे दुःखी अकेला अथवा क्षुद्र सहायकोंसे युक्त

---

१. विदानेन ख० । २. मुख्यतां ख० । ३. क्षारैरहि-ख० ।

अथवा रामशोकेन मरणं तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्यद्वदनयोः सङ्गतं परम् ॥२२४॥
अपराधाब्धिमग्नः सन् यास्यति क विराधितः । सुग्रीवस्यापि वाश्वन्तं[1] श्रूयते लोकतः परम् ॥२२५॥
मायां सुग्रीवसन्देहकारिणीं यश्च नाशयेत् । दशवक्त्रेश्वरादस्य कोऽसौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
तस्मात्तद्दुर्गसंसिद्धौ स नाथं भजतेतराम् । योगश्चायं विभोर्गाढं परिणामे शुभावहः ॥२२७॥
प्रकारेणामुना शत्रूनेतानन्यांश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नः क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
एवं विमृश्य विद्वांसः प्रमोदान्वितमानसाः । यथास्वं निलयं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
विभीषणेन यंत्राद्यैः शालो दुर्गतरीकृतः । विद्याभिश्च विचित्राभिर्लङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्यं किञ्चिद्विशदमनसामाप्तवाक्यानपेक्षं नासौरुक्तं फलति पुरुषस्योज्झितं पौरुषेण ।
दैवापेतं[2] पुरुषकरणं कारणं नेष्टसंगे तस्माद्भव्याः कुरुत यतनं[3] सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
राजन्कर्मण्युदयसमयं सेवमाने[4] जनानां नानाकारं[5] कुशलवचनं नो विशत्येव चेतः ।
युक्तां तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म्म कुर्यात्प्रशस्तं भूयो येन प्रतपति रविः शोकरूपो न कष्टः ॥२३२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधानं नाम षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥

लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपराधरूपी समुद्रमें मग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगोंसे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसारमें स्वामी दशाननसे बढ़कर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी-दशाननकी ही सेवा करेगा। और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगोंको भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लङ्काको गह्वरों एवं पाशोंसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप्त वचनोंसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आप्तके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है। आप्त भगवान्ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ दैवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसके प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तब तक नानाप्रकारके कुशल वचन उनके चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थितिके अनुसार प्रशस्त-पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें रावणको मायाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला छियालिसवां पर्व पूर्ण हुआ ॥४६॥

१. श्रयते ब० क० । २. दैवोपेतं । ३. यत्नं म० । ४. सेव्यमाने म० । ५. नानाकारे म० ।

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेशस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदुःखितः[1] । तं प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्तं यत्र संयुगम् ॥१॥
तत्राद्राक्षीद्रथान् भग्नान् गजांश्च गतजीवितान् । सामन्तानश्वसंयुक्तांश्छिन्नभिन्नविग्रहान् ॥२॥
दह्यमानान् नृपान् कांश्चित् कांश्चिन्निश्वसितांस्तथा । क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिपरान् भटान् ॥३॥
विच्छिन्नार्धभुजान् कांश्चित् कांश्चिदर्धोरुवर्जितान् । निःसृतान्त्रचयान् कांश्चित्कांश्चिद्दलितमस्तकान् ॥४॥
गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगैः कांश्चिन्निषेवितान् । रुदिता[2] परिवर्गेण कांश्चिच्छादितविग्रहान् ॥५॥
किमेतदितिपृष्टश्च तस्मै कश्चिदवेदयन् । सीताया हरणं ध्वस्तौ जटायुखरदूषणौ ॥६॥
ततोऽभवद् भृशं दुःखी खरदूषणमृत्युनः । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेतामगमदाकुलः ॥७॥
कष्टं चिन्तितमेतन्मे किलास्मै बलशालिने । निवेद्य दयिताशोकं मोचयामीति महाशया ॥८॥
विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहाद्रुमः । भग्नो मम विपुण्यस्य कथं शान्तिर्भविष्यति ॥९॥
किमञ्जनासुतं गत्वा सादरं संश्रयाम्यहम् । मद्रूपधारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥
उद्योगेन विमुक्तानां जनानां सुखिता कुतः । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयाम्युद्योगमुत्तमम् ॥११॥
अथवानेकशो दृष्टोऽनादरं[3] स करिष्यति । नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥
तस्मान् महाबलं दीप्तं महाविद्याविशारदम् । रावणं शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुग्रीव स्त्रीके विरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं टूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गए हैं, ऐसे घोड़ोंके साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई साँसें भर रहे हैं, कहीं जिनके पीछे स्त्रियाँ मर रहीं थीं ऐसे मरे हुए अनेक सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा कट गई है, किन्हींकी आधी जाँघ टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोंका समूह निकल आया है, किन्हींके मस्तक फट गये हैं, किन्हींको शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पक्षी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ? इस प्रकार पूछने पर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूषण मारे गए हैं ॥६॥

तदनन्तर खरदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुग्रीव बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं इस बलशालीके लिए निवेदन कर स्त्री सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृक्षको कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापीको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-९॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमानका आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान रूपका धारण करनेवाले मायामयी सुग्रीवका मरण कर सके ॥१०॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥११॥ अथवा हनुमानको अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं है ॥१२॥ इसलिए महाबलवान, देदीप्यमान् और महाविद्याओंमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वही

१. दुःखतः म०, क्रियमाणानुमरणाक्रान्ताभिरपरान् म० । २. रुदिता म० । ३. ऽनादरं म० ।

अजानानो विशेषं वा क्रोधचोदितमानसः[1] । दशाननः कदाचिन्नौ[2] हन्तुं वाञ्छेदुभावपि ॥१४॥
मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् । दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
तस्माद्येनैव संग्रामे निहितः खरदूषणः । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
तुल्यव्यसनताहेतोः कालोऽयमुपसर्पति[3] । सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था[4] जना भुवि ॥१७॥
एवं विमृश्य सञ्जातचारुबुद्धिः समन्ततः । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं विराधितम् ॥१८॥
सुग्रीवागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधितः । सविस्मयः सतोषश्च चकार च मनस्यदः ॥१९॥
चित्रं सुग्रीवराजो मां संसेव्यः सन्निषेवते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥२०॥
ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ण्य घनोपमम् । पातालनगरं जातं भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छद्नुराधाङ्गसम्भवम् । वद तूर्यनिनादोऽयं श्रूयते कस्य संहतः ॥२२॥
सोऽवोचच्छ्रूयतां देव महाबलसमन्वितः । नाथोऽयं कपिकेतूनां प्राप्तस्त्वां प्रेमतत्परः ॥२३॥
भ्रातरौ वालिसुग्रीवौ किष्किन्धानगराधिपौ । तिग्मांशुरजसः पुत्रौ प्रख्यानाववनाविमौ[5] ॥२४॥
वालीति योऽत्र विख्यातः शीलशौर्यादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैलो नानंसीद् दशवक्त्रकम् ॥२५॥
परं प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुग्रीवसाच्छ्रियम् । तपोवनमुपाविक्षत्सर्वग्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥
सुग्रीवोऽप्यभिसक्तात्मा सुतारायां श्रियान्वितः । राज्ये निःकण्टके रेमे शचीयुक्तो यथा हरिः[6] ॥२७॥

मुझे शान्ति प्रदान करेगा ॥१३॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिये, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नहीं बतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिये जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुःखी हूँ इसलिये एक समान दुःख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवी पर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सब ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिये उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और संतोषसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रयकी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९–२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पाताल नगर, (अलंकार पुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहो कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किन्धा नगरीके स्वामी हैं, राजा सहस्ररश्मि रजके पुत्र हैं तथा पृथिवी पर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विख्यात था तथा अभिमानके लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावणको नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीवके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो

१. बोधित-म० । २. आवाम् । ३. मुपसर्पण ख०, ज० । ४. तुल्यावाञ्छा म० । ५. प्रख्यातौ + अवनौ = पृथिव्याम्, इमौ । ६. इन्द्रः ।

सुतो यस्याङ्गदाभिख्यः गुणरत्नविभूषितः । किष्किन्धाविषये यस्य सत्कथान्यविवर्जिता ॥२८॥
तयोरियं कथा यावद्वर्ततेऽनन्यचेतसोः । तावत्सम्प्राप[1] सुग्रीवः श्रीमत्पार्थिवकेतनम् ॥२९॥
ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेशेक्षितमङ्गलम्[2] । राजाधिकृतलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥
लक्ष्मीधरकुमाराद्यास्तं राजन् प्राप्तविस्मयाः । परिषस्वजिरे कान्त्या विकसद् वनाम्बुजाः ॥३१॥
उपविष्टाश्च विधिना जाम्बूनदमहीतले । योग्यं सम्भाषणं चक्रुरमृतोपमया गिरा ॥३२॥
निवेदितं ततो वृद्धैरिति पद्ममहीक्षिते[3] । देव किष्किन्धनगरे सुग्रीवाख्योऽमनीश्वरः ॥३३॥
प्रभुर्महाबलो भोगी गुणवानतिसत्प्रियः । केनापि दुष्टमायेन खगेनानर्थमाहृतः[4] ॥३४॥
एतस्याकृतिमाश्रित्य राज्यभोगं पुरं बलम् । सुतारां च गृहीतुं तां कोऽपि वाञ्छति दुर्मतिः ॥३५॥
एतस्य वचनस्यान्ते रामस्तत्सम्मुखोऽभवत् । अचिन्तयच्च मत्तोऽपि[5] दुःखितो नाम विद्यते ॥३६॥
मयायं सदृशो मन्ये यदि वाधरतां[6] भजेत् । येनास्य दृश्यमानैकप्रतिपक्षेण बाधनम् ॥३७॥
अर्थोऽयं दुस्तरोऽत्यन्तं कथमेतद्भविष्यति । हानिरेवंविधस्यैषा मद्विधः किं करिष्यति ॥३८॥
सुमित्रातनयोऽपृच्छत्[7] कृत्स्नं दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदश्रुतिम् ॥३९॥
ततोऽसौ मन्त्रिणां मुख्यो जगाद विनयान्वितः । असत्सुग्रीवरूपस्य सत्सुग्रीवस्य चान्तरम् ॥४०॥

राज्य लक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमें इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवका गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित अङ्गद नामका ऐसा पुत्र है कि किष्किन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किष्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जब तक यह वार्ता चल रही थी कि तब तक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया। तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मङ्गलाचारका अवलोकन करते हुए राज भवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुख कमल कान्तिसे खिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिङ्गन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तल पर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव ! यह किष्किन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महा ऐश्वर्यशाली, महाबलवान, भोगी गुणवान् तथा सज्जनों को अतिशय प्यारी है। परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्य भोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोंके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके सन्मुख उसकी ओर देखने लगे। रामने मनमें विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही बाधा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा। इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके समान जो जाम्बूनद नामक धीर-वीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें मुख्य जाम्बूनदने बड़ी विनयसे मायामय सुग्रीव और वास्तविक

१. सम्प्राप्तः म० । २. विवेशे कृतमङ्गलः म० । ३. महीक्षितौ ख. । ४. माहतः म०, ब० । ५. मदपेक्षयापि । ६. अधरतां = हीनतां । ७. लक्ष्मण- म० ।

राजन् दारुणानङ्गलतापाशवशीकृतः । रूपं रूपवशः कोऽपि समं कृत्वास्य मायया ॥४१॥
अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्यास्य जनस्य च । सुग्रीवान्तःपुरं तुष्टः प्राविशत्पापचेतनः ॥४२॥
प्रविशन्तं च तं दृष्ट्वा सुताराख्या परा सती । महादेवी जगादास्यसमुद्विग्ना निजं जनम् ॥४३॥
दुष्टविद्याधरः कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेपकः । आयाति पापपूर्णात्मा चारुलक्षणवर्जितः ॥४४॥
अभ्युत्थानादिकामस्य क्रियां माकार्ष्ट पूर्ववत् । केनापि तरणीयो[1]ऽयमभ्युपायेन दुर्णयः ॥४५॥
अथाशङ्काविमुक्तात्मा गम्भीरो लीलयान्वितः । गत्वा सुग्रीववत्तेजे सौग्रीवं स वरासनम् ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजा[2]नुजः क्रमात् । अद्राक्षीच्च जनं दीनमप्राक्षीच्च समाकुलः ॥४७॥
कस्मादयं जनोऽस्माकं म्लानवक्त्रेक्षणो भृशम् । विषादं वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥
किमङ्गदो गतो मेरुं वन्दनार्थी चिरायति । किं वा [3]प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रुषम् ॥४९॥
जन्ममृत्युजरात्युग्रनानासंसारदुःखतः । [4]बिभ्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनमुपागतः ॥५०॥
चिन्तयन्निन्त्यतिक्रम्य द्वाराणि मणितेजसा । भासमानानि सर्वाणि संयुक्तानि सुतोरणैः ॥५१॥
गीतजल्पितमुक्तानि सुप्तानीव समंततः । शङ्कितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
प्रासादप्रवरोत्सङ्गे विक्षिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थमात्माभं दुष्टखेचरम् ॥५३॥
दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा तं शोभां दधतं पुरः । चित्रावतंसकं कान्त्या विकसद्वदनाम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर बताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रीवर्ग तथा समस्त परिजनोंके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥४१–४२॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका वेप रखकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो। यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३–४५॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शङ्कासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४६॥ इसी बीचमें बालिराजाका अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रमसे वहाँ आया। आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उसने पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विषाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान स्थान पर इकट्ठे हो रहे हैं ? ॥४७–४८॥ वन्दनाकी अभिलाषासे अङ्गद सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोषको प्राप्त हुई है ? ॥४९॥ अथवा जन्म मृत्यु और जरासे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लङ्घनकर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय वार्तालापसे रहित थे, सब ओर से संतप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शङ्कासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५१–५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोंके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा कान्तिसे जिसका मुख कमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको

१. वरणीयोऽय- म० । २. सुग्रीव । ३. प्रमादते म० । ४. बिभ्यद्विपण्णः म० ।

क्रुद्धो जगर्ज सुग्रीवः प्रावृषेण्यघनोपमम् । दिङ्मुखेषु क्षिपन् भासमक्ष्णोः संध्याघनारुणम् ॥५५॥
ततः सुग्रीवतुल्योऽपि कुर्वन् परुषगर्जितम् । उत्तस्थौ कोपरक्तास्यः करीव मदविह्वलः ॥५६॥
संदष्टोष्ठौ[1] महासत्त्वौ दृष्ट्वा तौ योद्धुमुद्यतौ । साम्ना[2] निरुरुधुः क्षिप्रं श्रीचन्द्राद्याः सुमन्त्रिणः ॥५७॥
सुतारेति ततोऽवोचत् दुष्टोऽयं कोऽपि खेचरः । तुल्यः सर्वेण देहेन बलेन वचसा रुचा ॥५८॥
पत्युर्मम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकागपि । प्रासादशङ्खकुम्भाद्यैश्चिरसंस्थितलक्षितैः ॥५९॥
भर्तुर्मे भूषिताङ्गस्य महापुरुषलक्षणैः । कस्यापि वार्धमस्यास्य वाजिवालेयतुल्यता ॥६०॥
श्रुत्वापीदं सुतारोक्तं सादृश्यहृतचित्तकैः । मन्त्रिभिस्तदवज्ञातं निःस्वोक्तं धनिभिर्यथा ॥६१॥
एकीभूय च तैः सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभिः । गदितं सम्प्रधार्येदं सन्देहहृतमानसैः ॥६२॥
मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः[6] शिशोः । प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ॥६३॥
अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तया विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
सम्प्राप्य निर्मलं गोत्रं भव्यं शीलादिभूषितैः । तस्मादन्तःपुरं यत्नादिदं रक्ष्यं सुनिर्मलम् ॥६५॥
अकीर्तिरिति निन्द्येयमस्य नोत्पद्यते यथा । कुरुध्वमतियत्नेन विभज्याखिलमेतयोः ॥६६॥
अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं पितृभ्रान्त्या समाश्रितः । अङ्गदः सत्यसुग्रीवं मातृवाक्यानुरोधतः ॥६७॥

सामने देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४–५५॥ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करने-वाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके समान मदसे विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओठोंको डसते हुए उन दोनों बलवानोंको युद्धके लिए उद्यत देख श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्ति पूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ तत्पश्चात् सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है। यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन, और कान्तिसे तुल्य दिखता है परन्तु प्रसाद, शङ्ख, कलश, आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किञ्चित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८–५९॥ महापुरुषोंके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सदृशताके कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंको सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोंकी अवज्ञा कर देते हैं ॥६१॥ संदेहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धि-शाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, वेश्या, व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोंको कभी नहीं मानना चाहिए॥६२–६३॥ लोकमें गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके विना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पा कर ही शीलादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्तःपुरकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥६५॥ जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सब विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अङ्गनामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम–बनावटी सुग्रीवके पास गया और अङ्गद नामका पुत्र माताके

---

१. संदष्टौ म० । २. सास्ना म० । ३. मनागपि ईषदपि- 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः' इत्यकच् । ४. वाद्यमस्यास्य म० । ५. वित्तकैः म० । ६. व्यसनस्य शिशोः म० । ७. विभिद्या- म० ।

सन्दिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाम्यतः । सुतारावचनादेनं पुरस्कृत्य व्यवस्थिताः ॥६८॥
अक्षौहिण्यस्ततः सप्त प्रभुमेकमुपाश्रिताः । इतरं चापि तावन्त्यः संशयस्य वशं गताः ॥६९॥
पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीवः कृत्रिमः कृतः । उत्तरे तस्य सुग्रीवः स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञामिति[1] संशये । बालिपुत्रो ततः कुर्वन् सर्वतः प्रतिपालनम् ॥७१॥
सुताराभवनद्वारं यो व्रजेत्कश्चिदस्य सः । प्रौढेन्दीवरशोभस्य वध्यः खड्गस्य मे ध्रुवम् ॥७२॥
ततः कपिध्वजावेवं स्थापितौ तावुभावपि । अपश्यन्तौ सुतारास्यं निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
ततोऽयं सत्यसुग्रीवो दयिताविरहाकुलः । बहुशः शोकहानार्थमगच्छत् खरदूषणम् ॥७४॥
पुनश्च मारुतेः पार्श्वमब्रवीच्च पुनः पुनः । परित्रायस्व दुःखार्तं प्रसादं कुरु बान्धव ॥७५॥
मदीयं रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधीः । कुरुते मे परां बाधां स गत्वा मार्यतां द्रुतम् ॥७६॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तदवस्थस्य शोकिनः । अञ्जनातनयः क्रोधाद्वाडवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥
विमानं परमच्छायमप्रतीघातसंज्ञितम् । नानालङ्कारभूयिष्ठं त्रिदशावाससंनिभम् ॥७८॥
उत्साहं परमं बिभ्रदारुह्य सचिवैर्वृतः । किष्किन्धनगरं प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥
श्रुत्वा प्राप्तं हनूमन्तमसकौ विगतज्वरः । आरुह्य द्विरदं प्रीतः सुग्रीव इव निर्ययौ ॥८०॥
तं कपिध्वजमालोक्य परं सादृश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतितः संशयार्णवे ॥८१॥
अचिन्तयच्च सुव्यक्तं सुग्रीवो द्वाविमौ कथम् । एतयोः कतरं हन्मि यद्विशेषो न लभ्यते ॥८२॥

वचनोंके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमें संदेहशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ संशयके वशमें पड़ी सात अक्षौहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गई और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रक्खा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥ सब ओरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने संशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वार पर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी खड्गके द्वारा अवश्य ही वध्य होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रक्खे हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर स्त्रीके विरहसे आकुल सत्यसुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खर-दूषणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्‌के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बान्धव ! मैं दुःखसे पीडित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापबुद्धि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पड़े शोक युक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बडवानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उत्साहको धारण करता हुआ मन्त्रियोंके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलङ्कारोंसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किष्किन्ध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्‌को आया सुन वह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रीवकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागरमें पड़ गया ॥८१॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जब तक कि

१. प्रतिज्ञातमसंशये ख० ।

अविदित्वानयोर्भेदमुभयोर्वानरेन्द्रयोः । कदाचिद् वधिषं माऽहं[1] सुग्रीवं सुहृदां वरम् ॥८३॥
मुहूर्तं मन्त्रिभिः सार्धं विमृश्य च यथाविधि । उदासीनतया देव मारुतिः स्वपुरं गतः ॥८४॥
निवृत्ते मरुतः पुत्रे सुग्रीवोऽभवदाकुलः । असौ च सदृशोऽमुष्य तथैवातिष्ठदाशया ॥८५॥
मायासहस्रसम्पन्नो महावीर्यो महोदयः । उल्कायुधोऽपि सन्देहं प्राप कष्टमिदं परम् ॥८६॥
निमग्नं संशयाम्भोधौ व्यसनग्राहसङ्कटे । न जानाम्यधुना देव क इमं तारयिष्यति ॥८७॥
कान्तावियोगदावेन प्रदीप्तं कपिकेतनम् । कृतज्ञं भज सुग्रीवं प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
अयं शरणमायातो भवन्तं श्रितवत्सलम्[2] । भवद्विधशरीरं हि परदुःखस्य नाशनम् ॥८९॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयव्याप्तमानसाः । जाताः पद्मादयः सर्वे धिगहोहीतिभाषिणः ॥९०॥
अचिन्तयच्च पद्मोऽतः[3] सखायं मम दुःखतः । जातोऽपरः समानेषु प्रायः प्रेमोपजायते ॥९१॥
एष प्रत्युपकारं मे यदि कर्तुं न शक्ष्यति । निर्ग्रन्थश्रमणो भूत्वा साधयिष्यामि निर्वृतिम् ॥९२॥
एवं ध्यात्वानुराधाद्यैः[4] समं संमन्त्र्य च क्षणम् । कपिमौलीन्द्रमाहूय पद्मनाभोऽभ्यभाषत ॥९३॥
सत्सुग्रीवो भवान्यो वा सर्वथा त्वं ममेप्सितः । विजित्य भवतस्तुल्यं पदं यच्छामि ते निजम् ॥९४॥
तथाविधं पुरा राज्यं प्राप्य योगं सुतारया । सेवस्व मुदितोऽत्यन्तभग्ननिःशेषकण्टकम् ॥९५॥

विशेषता नहीं जान पड़ती है तब तक इन दो में से एकको कैसे मारूँ ? ॥८२॥ इन दोनों वानर राजाओंका अन्तर जाने बिना मैं कदाचित् मित्रोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार बैठूँ ॥८३॥ इस प्रकार मुहूर्त भर मन्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापिस चला गया ॥८४॥ हनुमान्के वापिस लौट जाने पर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ। और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥८५॥ यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकारकी मायासे स्वयं सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अस्त्रोंका धारक है तो भी संदेहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥८६॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छोंसे भरे हुए संशय रूपी सागरमें निमग्न इस सुग्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥८७॥ हे राघव ! स्त्री वियोग रूपी दावानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥८८॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप जैसे महापुरुषका शरीर पर-दुःखका नाश करनेवाला है ॥८९॥

तदनन्तर उसके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि कभी लोग 'धिक्' 'अहो' 'ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥९०॥ रामने विचार किया कि अब यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्रायः कर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥९१॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्ग्रन्थ साधु हो कर मोक्षका साधन करूँगा ॥९२॥ इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदिके साथ क्षण भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९३॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव होओ और चाहे कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मार कर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥९४॥ तुम पहलेकी भाँति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओंको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुताराके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥९५॥

---

१. -द्विद्विपमहं म० । २. शृणु वत्सकम् म० । ३. पद्माभः ख०, ज०, क०, । ४. -नुराधाद्यैः म० ।

यदि मे निश्चयोपेतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । सीतां तां गुणसम्पूर्णां भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥९६॥
कपिकेतुरुवाचेदं यदि तां तव न प्रियाम् । सप्ताहाऽभ्यन्तरे वेद्मि विशामि ज्वलनं तदा ॥९७॥
अर्माभिरक्षरैः पद्मः परं प्रह्लादमाश्रितः । शशाङ्करश्मिसदृशैर्दधानः कुमुदोपमाम् ॥९८॥
प्रवाहेणामृतस्येव प्लावितो विकचाननः । रोमाञ्चनिर्भरं देहं बभार च समन्ततः ॥९९॥
अन्योन्यस्य वयं द्रोहरहिताविति चादरात् । [1]समयं चक्रतुर्जैनं तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥
ततो रथवरारूढौ महासामन्तसेवितौ । किष्किन्धनगरं तेन प्रयातौ रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥
समीपीभूय दूतश्च प्रहितः कपिमौलिना । निर्भर्त्सितश्च कूटेन सुग्रीवेणागतः पुनः ॥१०२॥
ततश्चालीकसुग्रीवः संनह्य स्यन्दनस्थितः । युद्धाय निर्ययौ क्रुद्धः पृथुसैन्यसमावृतः ॥१०३॥
अथ कूटभटाटोपः सङ्कटश्चण्डनिस्वनः । सम्प्रहारो महानासीद्प्रसंलग्नसेनयोः ॥१०४॥
सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोद्ग्रीवमुग्ररुट् । विद्यायाः करणासक्तो दृढं योद्धुं समुद्यतः ॥१०५॥
सम्प्रहारो महान् जातस्तयोश्चक्रेपुसायकैः । अन्धकारीकृताकाशश्चिरमप्राप्तयोः श्रमम् ॥१०६॥
अथ सुग्रीवमाहत्य गदयालीकवानरो । विज्ञाय मृत इत्येवं तुष्टः परमुपाविशत् ॥१०७॥
निश्चेष्टविग्रहश्चायं सत्यशाखामृगध्वजः । निजं शिविरमानीतः परिवार्य सुहृज्जनैः ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम बात है ॥९६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपकी प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥९७॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥९८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुए के समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओरसे रोमाञ्चोंसे व्याप्त हो गया ॥९९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोंसे सेवित रामलक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथ पर आरूढ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँच कर मुकुटमें वानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापिस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥ अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महा युद्ध प्रारम्भ हुआ। उनका वह महा युद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकट पूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ग्रीवाको ऊपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिर काल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ। उनके उस युद्धमें चक्र-बाण तथा खड्ग आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचा कर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझ कर संतुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट

१. शपथं ।

अब्रवील्लब्धसंज्ञश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०९॥
नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्यान्तेन राघव । [1]भवन्तमपि सम्प्राप्य किन्नु[2] कष्टमतः परम् ॥११०॥
ततः पद्मप्रभोऽवोचद्भवतोर्युध्यमानयोः । विशेषो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥
अज्ञानदोषतो नाशं मानैषीरत्वैव जातुचित् । सुहृदं जैनवाक्येन जनितं प्रियसङ्गमम् ॥११२॥
अथाहूतः पुनः प्राप्तः सुग्रीवप्रतिमो बली । संरम्भवह्निना दीप्तः पद्मेनाभिमुखीकृतः ॥११३॥
अद्रिणेव स रामेण क्षोभितः सागरोपमः । निस्त्रिंशग्राहसङ्घातसञ्चारात्यन्तसङ्कुलः ॥११४॥
लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः परिष्वज्य दृढं धृतः । स्त्रीवैरतः समीपं मा शत्रोः कोपेन गादिति ॥११५॥
ततः ससार पद्माभः सुग्रीवाभं समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसम्प्राप्तिजनितेनोरुतेजसा ॥११६॥
अथ पद्मं समालोक्य शमापृच्छ्य च साधकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं वानराङ्कविवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥
स्वभावमागतं दृष्ट्वा निःक्रान्तमिव कञ्चुकात् । शाखामृगध्वजाः सर्वे संक्षुभ्यैकत्वमाश्रिताः ॥११९॥
नानायुद्धाश्च संक्रुद्धा बलिनस्तमयूयुधन् । सोऽयं सोऽयमतिस्वानं कुर्वाणा पश्यतेति च ॥१२०॥
तेन तेजस्विना सैन्यं तद्द्विषामुरुशक्तिना । पुरस्कृतं दिशो भेजे यथा [3]तूलं नभस्वता ॥१२१॥

पड़ा था ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेर कर अपने शिविरमें ले आये ॥१०८॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ! हाथमें आया चोर जीवित हो पुनः मेरे नगरमें कैसे चला गया ॥१०९॥ जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी। इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुग्रीवको नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारणकर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुझे ही नष्ट नहीं कर दूं इस भयसे मैं चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छोंके संचारसे अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर लक्ष्मणने वास्तविक सुग्रीवका दृढ़ आलिङ्गन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके वैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पास न पहुँच जावे ॥११५॥ तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देख सिद्ध करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गई कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाको धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥ ११७॥ तत्पश्चात् जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित था ऐसे साहस गतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना-शस्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह वही है यह वही है देखो देखो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस

१. भदन्त- ख० । २. किन्नु म० । ३. तूलं म० ।

तावत्ससायकं कृत्वा धनुरुद्धतविक्रमः । अधावत्पद्ममुद्दिश्य घनाघनचयोपमः ॥१२२॥
शरधारां क्षिपत्यस्मिन् भृशत्वाद्रहितान्तरम् । विधाय मण्डपं बाणैरस्थात् काकुत्स्थनन्दनः ॥१२३॥
समं साहसयानेन पद्मस्याभूत्परं मृधम् । आनन्दो हि स पद्मस्य चिरं यः कुरुते रणम् ॥१२४॥
ततः कृत्वा रणक्रीडां चिरमूर्जितविक्रमः । क्षुरप्रैरस्य कवचं चिच्छेद रघुनन्दनः ॥१२५॥
तितवाकारदेहोऽथ कृतस्तीक्ष्णैः शिलीमुखैः । गतः सुसाहसो भूमिमालिलिङ्ग गतप्रभः ॥१२६॥
समासाद्य च तैः सर्वैः कुतूहलिभिरीक्षितः । दुष्टः साहसयानोऽसाविति ज्ञातश्च निश्चितम् ॥१२७॥
ततः सभ्रातृकं पद्मं सुग्रीवः पर्यपूजयत् । स्तुतिभिश्चाभिरम्याभिस्तुष्टावोदात्तसम्मदः ॥१२८॥
पुरे कारयितुं शोभां परमां हतकण्टके । यातः कान्तासमायोगं समुत्कण्ठां वहन् पराम् ॥१२९॥
भोगसागरमग्नोऽसौ नैवाज्ञासीदहर्निशम् । [1]चिरंदृष्टः सुतारायां न्यस्तनिःशेषचेतनः ॥१३०॥
रात्रिमेकां बहिर्नीत्वा पद्माभप्रमुखा नृपाः । ऋद्धया प्रविश्य किष्किन्धं महाबलसमन्विताः ॥१३१॥
आनन्दोद्यानमाश्रित्य नन्दनश्रीविडम्बकम् । स्वेच्छयावस्थितिं चक्रुर्लोकपालसुरश्रियः ॥१३२॥
तस्या[2] वर्णनमेवातिवर्णनारम्यतापि नु[3] । उद्यानस्यान्यथा कोऽसौ शक्तस्तद्गुणवर्णने ॥१३३॥
रम्यं चैत्यगृहं तत्र न्यस्तचन्द्रप्रभार्चनम् । तद्विघ्नघ्नं प्रणम्यैतावासीनौ रामलक्ष्मणौ ॥१३४॥

सेनाको जब आगेकर खदेड़ा तब वह दिशाओंको उस प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकारकी पवनसे प्रेरित रूई प्राप्त होती है ॥१२१॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघ समूहकी उपमा धारण करनेवाला साहसगति, धनुषपर बाण चढ़ाकर रामकी ओर दौड़ा ॥१२२॥ उधर जब वह लगातार बाण समूहकी वर्षा कर रहा था तब इधर राम भी बाणोंके द्वारा मण्डप बनाकर स्थित थे—राम भी घनघोर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहसगतिके साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको आनन्ददायी होता था ॥१२४॥ तदनन्तर अत्यधिक पराक्रमके धारक रामचन्द्रने चिरकाल तक रणक्रीड़ाकर बाणोंसे उसका कवच छेद दिया ॥१२५॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणोंसे जिसका शरीर चलनीके समान सछिद्र हो गया था ऐसे साहसगतिने प्रभा रहित हो पृथिवीका आलिङ्गन किया अर्थात् प्राण रहित हो पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१२६॥ कुतूहलसे भरे सब विद्याधरोंने आकर उसे देखा तथा निश्चयसे जाना कि यह साहसगति ही है ॥१२७॥

तदनन्तर उत्कट हर्षके धारक सुग्रीवने भाई—लक्ष्मण सहित रामकी पूजा की तथा मनोहर स्तुतियोंसे स्तुति की ॥१२८॥ शत्रुरहित नगरमें परमशोभा करानेके लिए परम उत्कण्ठाको धारण करता हुआ वह स्त्रीके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१२९॥ वह भोगरूपी सागरमें ऐसा मग्न हुआ कि रात-दिनका भी उसे ज्ञात नहीं रहा । वह चिरकाल बाद दिखा था अतः सुताराके लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥१३०॥ महाबलसे सहित राम आदि प्रमुख राजाओंने एक रात्रि नगरसे बाहर बिता कर वैभवके साथ किष्किन्ध नगरमें प्रवेश किया ॥१३१॥ वहाँ लोकपाल देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले राम आदि प्रमुख राजा, नन्दनवनकी शोभाको विडम्बित करनेवाले आनन्द नामक उद्यानमें स्वेच्छासे ठहरे ॥१३२॥ उस उद्यानकी सुन्दरताका वर्णन नहीं करना ही उसकी सबसे बड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? ॥१३३॥ उस उद्यानमें चन्द्रप्रभ भगवानकी प्रतिमासे सुशोभित मनोहर चैत्यालय था सो समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रभ भगवानको नमस्कार कर राम

१. चिरं दृष्टः म० । २. स्य वर्णन-म० । ३. पितुः म० ।

बहिश्चैत्यालयस्यास्य चन्द्रोदरसुतादयः । स्वसैन्यावासनं कृत्वा बभूवुर्विगतश्रमाः ॥१३५॥
गुणश्रुत्यनुरागेण स्वयंवरणबुद्धयः । त्रयोदश सुताः पद्मं सुग्रीवस्य ययुर्मुदा ॥१३६॥
चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मेति चेतसः संकटोपमा[1] ॥१३७॥
तुरीयानुन्धरी नाम्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥
अन्या सुरवती नाम सुराङ्गनासमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिख्याता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥
चारुश्रीरिति विख्याता चारुश्रीः परमार्थतः । मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ॥१४०॥
अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावती ख्याता बुद्धपद्मसमानना[2] ॥१४१॥
तथा जिनमतिर्नित्यं जिनपूजनतत्परा । एताः कन्याः समादाय ययौ तासां परिच्छदः ॥१४२॥
प्रणम्य च जगौ रामं नाथैतासां स्वयंवृतम् । शरणं भव लोकेश कन्यानां बन्धुरुत्तमः ॥१४३॥
दुर्विदग्धैः खगैर्माभूत् विवाहोऽस्माकमित्यलम् । जातमासां मनः श्रुत्वा गोत्रस्यत्वानुपालकम् ॥१४४॥
ततो ह्रीभारनम्रास्या वशिताः शोभया विभुम् । पद्माभमुपसंप्राप्ताः पद्माभा नवयौवनाः ॥१४५॥
विद्युद्वह्निसुवर्णाब्जगर्भभासां महीयसाम् । देहभासां विकासेन तासां रेजे नभस्तलम् ॥१४६॥
उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहाः । समीपे पद्मनाभस्य तस्थुः पूजितचेष्टिताः ॥१४७॥

लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥ चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहरा कर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियाँ स्वयंवरणकी इच्छासे हर्ष पूर्वक वहाँ आईं ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियाँ इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए सङ्कटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवीं द्वितीय लक्ष्मीके समान श्रीकान्ता, छठवीं सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवाङ्गनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवस्वरूप मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणोंकी मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती। इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥ १३७–१४२ ॥ रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ ! आप इन सब कन्याओंके स्वयंवृत शरण होओ। हे लोकेश ! इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही हैं ॥ १४३ ॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोंके साथ न हो ॥ १४४ ॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नव यौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आईं ॥१४५॥ बिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भीतरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥ विनीत, लावण्य युक्त शरीरकी धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गईं ॥१४७॥

१. कण्टकोपमा म० । २. बुद्धपद्मा समानसा- म० ।

आर्य्याच्छन्दः

रमते कचिदपि चित्तं पुरुषरवेः पूर्वजन्मसम्बन्धात् ।
एषा भवपरिवर्त्ते सर्वेषां श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीववधाख्यानं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४७॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! पुरुषोंमें सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हींमें रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवों की है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें बिट सुग्रीवके वधका कथन करनेवाला सैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपलालनं[1] तस्य वाञ्छन्त्यो वरकन्यकाः । बहुभेदाः क्रियाश्चक्रुर्देवलोकादिवागताः ॥१॥
वीणादिवादनैस्तासां गीतैश्चातिमनोहरैः । ललिताभिश्च लीलाभिर्हृतं तस्य न मानसम् ॥२॥
सर्वाकारसमानीतो विभवस्तस्य पुष्कलः । न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेहीं प्रति संहृतम् ॥३॥
अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तनिःशेषचेष्टितः । सीतां मुनिरिव ध्यायन्[2] सिद्धिमास्थान्महादरः ॥४॥
न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूपं पश्यति नापरम् । जानकीमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥५॥
न करोति कथामन्यां कुरुते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीत्यभिभाषते ॥६॥
वायसं पृच्छति प्रीत्या गिरैवं[3] कलनादया । भ्राम्यता विपुलं देशं दृष्टा स्यात् मैथिली क्वचित् ॥७॥
सरस्युन्निद्रपद्मादिकिञ्जल्कालङ्कृताम्भसि । चक्राह्वमिथुनं दृष्ट्वा किञ्चित् सञ्चिन्त्य कुप्यति ॥८॥
सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत् । निर्मील्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति[4] मारुतम् ॥९॥
एतस्यां सा निषण्णेति वसुधां बहु मन्यते । जुगुप्सितस्तया[5] नूनमिति चन्द्रमुदीक्षते ॥१०॥
अचिन्तयच्च किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिना । तामवस्थां भवेत् प्राप्ता स्यादस्या यापदैषिणाम् ॥११॥
किमियं जानकी नैषा लता मन्दानिलेरिता । किमंशुकमिदं नैतच्चलत्पत्रकदम्बकम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएँ नाना प्रकारकी क्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकसे ही आई हों ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्र बजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करतीं थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सब प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोंमें नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओंको छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे । उन्हें सब संसार सीतामय ही जान पड़ता था ॥५॥ वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पासमें खड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमें कौएसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देशमें भ्रमण करता है अतः तूने कहीं सीताको तो नहीं देखी ॥७॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पोंकी परागसे जिसका जल अलंकृत था ऐसे सरोवरमें क्रीड़ा करते चकवा-चकवीके युगलको देखकर वे कुछ सोच-विचारमें पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्दकर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिङ्गन करते कि संभव है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस पृथिवी पर सीता बैठी थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गई होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है ? मन्द मन्द वायुसे हिलती

१. लालसं ख० । २. सिद्धिं मास्थान् म० । ३. गिरेव म० । ४. समालिङ्गन म० । ५ तथा म० ।

एते किं लोचने तस्या नैते पुष्पे सषट्पदे[1]। करोऽयं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपल्लवः ॥१३॥
केशभारं मयूरीषु तस्याः पश्यामि सुन्दरम्। अपर्याप्तशशाङ्के च[2] ललामामलिकसम्भवाम् ॥१४॥
त्रिवर्णाम्भोजखण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम्। शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पेस्मितत्विषम् ॥१५॥
स्तबकेषु सुजातेषु कान्तिमत्सुस्तनश्रियम्[3]। जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥
तासामेवोर्ध्वभागेषु नितम्बभरताकृतिम्। ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासु ताम् ॥१७॥
पद्मेषु चरणाभिख्यां[4] स्थलसम्प्राप्तजन्मसु[5]। शोभां तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥१८॥
चिरायति कथं सोऽपि सुग्रीवः कारणं नु किम्। दृष्टा[6] नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिना ॥१९॥
मद्वियोगेन तप्तां[7] वा विलीनां तां सुशीलकाम्। ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसौ नैति दर्शनम् ॥२०॥
किं वा कृतार्थतां प्राप्तः प्राप्य[8] राज्यं पुनर्निजम्। स्वस्थीभूतो भवेद् दुःखं मम विस्मृत्य खेचरः ॥२१॥
एवं चिन्तयतस्तस्य बाष्पविप्लुतचक्षुषः। स्रस्तालसशरीरस्य विवेदावरजो[9] मनः ॥२२॥
ततः ससम्भ्रम[10] स्वान्तःकोपारुणितलोचनः। ययौ सुग्रीवमुद्दिश्य नग्नासिविलसत्करः ॥२३॥
गच्छतस्तस्य वातेन जङ्घास्तम्भाप्तजन्मना। दोलायितामभूत् सर्वं महोत्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥
वेगनिक्षिप्तनिःशेषराजाधिकृतमानवैः[11]। प्रविश्य तद्गृहं दृष्ट्वा सुग्रीवमिदमभ्यधात् ॥२५॥
आः पाप दयितादुःखनिमग्ने परमेश्वरे। भार्यया सहितः सौख्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

हुई लता नहीं है? क्या यह उसका वस्त्र है, चञ्चल पत्रोंका समूह नहीं है? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, भ्रमर सहित पुष्प नहीं हैं? और क्या यह उसका चञ्चल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमें, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमें, नेत्रोंकी शोभा तीन रङ्गके कमलोंमें, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमें, स्तनोंकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमें, मध्यभागकी शोभा जिनाभिषेककी वेदिकाओंके मध्यभागमें, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमें, ऊरुओंकी अनुपम शोभा केलेके सुन्दर स्तम्भोंमें, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४-१८॥ वह सुग्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है? शुभ पदार्थोंको देखनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा? ॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गई है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमें असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निमग्न हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुग्रीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जङ्घाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न वायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आकुल होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंको अपने वेगसे गिराकर वे सुग्रीवके घरमें प्रविष्ट हो सुग्रीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी! जब कि परमेश्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निमग्न हैं तब रे दुर्बुद्धे! तू स्त्रीके

१. पुष्पेषु पट्पदाः म०। २. शशाङ्केव म०। ३ नतश्रियम् (?) म०। ४. 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः। ५. सम्प्रापनजन्मसु (?) म०। ६. दृष्ट्वा म०। ७. प्राप्ता म०। ८. प्राप्ये म०। ९. अनुजो लक्ष्मणः। १० ससंभ्रमः स्वान्तः म०। ११. -मानवः म०।

अहं त्वां खेचरध्वांक्ष भोगे दुर्ललितं खल । नयामि तत्र नाथेन यत्र नीतस्त्वदाकृतिः ॥२७॥
एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं वर्णान् कोपकणानिव[1] । लक्ष्मीधरं प्रणामेन सुग्रीवः शममानयत् ॥२८॥
उवाच चेदमेकं मे क्षम्यतां देव विस्मृतम् । क्षुद्राणां हि भवत्येव मादृशां दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
तस्यार्घपाणयो दाराः सम्भ्रान्ताः कम्पमूर्तयः । सत्प्रणामेन निःशेषं जहुर्लक्ष्मणसम्भ्रमम् ॥३०॥
सज्जनाम्भोदवाक्तोयधारानिकरसङ्गतः । प्रयाति विलयं क्वापि जनारणिभवोऽनलः ॥३१॥
प्रणाममात्रसाध्यो हि महतां चेतसः शमः । महद्भिरपि नो दानैरुपशाम्यन्ति दुर्जनाः ॥३२॥
प्रतिज्ञां स्मारयंस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधरः परम् । उपकारं यथा योगी यक्षदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
पप्रच्छ मगधाधीशो गणेश्वरमिहान्तरे । यक्षदत्तस्य वृत्तान्तं नाथेच्छामि विवेदितुम् ॥३४॥
ततो गणधरोऽवोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यक्षदत्तस्य यथा मातुः स्मृतिं मुनिः ॥३५॥
अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम नगरं तत्र पार्थिवः । यक्षसंज्ञः प्रिया तस्य राजिलेति प्रकीर्तिता ॥३६॥
तत्पुत्रो यक्षदत्ताख्यः स बाह्यां विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमां नारीं स्थितां दुर्विधपाटके ॥३७॥
स्मरेषुहतचित्तोऽसौ तामुद्दिश्य व्रजन्निशि । मुनिनावधियुक्तेन मैवमित्यभ्यभाषत ॥३८॥
ततस्तं विद्युदुद्योतद्योतितं वृक्षमूलगम् । ऐक्षतायननामानं मुनिं सायकपाणिकः ॥३९॥
तमुपेत्य नतिं कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः । भगवन् किं त्वया मेति निषिद्धं कौतुकं मम ॥४०॥

साथ सुखका उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुझ भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कृत्रिम सुग्रीवको पहुँचाया है ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधाग्निके कणोंके समान उग्रवचन छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुग्रीवने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्योंकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुग्रीवकी घबड़ाई हुई स्त्रियाँ हाथमें अर्घ ले-लेकर बाहर निकल आईं और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्बन्धी वचनरूपी जलधाराओंके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुरुषोंके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बड़े-बड़े दानोंसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुग्रीवका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यक्षदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचमें राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यक्षदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यक्षदत्तको माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक क्रौञ्चपुर नामका नगर है उसमें यक्ष नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उनकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोंके यक्षदत्त नामका पुत्र था । एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दरिद्रोंकी वस्तीमें स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणोंसे उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थात् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय बिजली चमकी सो उसके प्रकाशमें हाथमें तलवार धारण करनेवाले यक्षदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका

१. कणानि च म० ।

सोऽवोचद् यां समुद्दिश्य प्रस्थितः कामुको भवान् ।
सा ते माता ततस्तां मा यासीः कामेति वारितः ॥४१॥
सोऽवोचत् कथमित्याख्यं ततोऽस्मिन् प्रस्तुतं मुनिः ।
मानसानि मुनीनां हि मृदिग्धान्यनुकम्पया ॥४२॥
शृण्वस्ति मृत्तिकावत्यां कनको नाम वाणिजः ।
धूर्नाम्नि तस्य भार्यायां बन्धुदत्तः सुतोऽभवत् ॥४३॥

भार्या मित्रवती तस्य लतादत्तसमुद्भवा । कृत्वास्या गर्भमज्ञातं पोतेन प्रस्थितः पतिः ॥४४॥
श्वसुराभ्यां ततो ज्ञात्वा गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् क्षिप्रं दास्योत्पलिकया सह ॥४५॥
प्रस्थिता च पितुर्गेहं सार्थेन महता समम् । सर्पेणोत्पलिकाद् दृष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥
ततः सख्या विमुक्तासौ शीलमात्रसहायिका । इमं क्रौञ्चपुरं प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
स्फीतदेवार्चकारामे[1] प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् क्षालयितुं याता शिशुस्तावद्धृतः शुना ॥४८॥
सुतं स्वैरं समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यक्षमहीपाय नीत्वा स ह्यस्य वल्लभः ॥४९॥
ततोऽनेन विपुत्राया राजिलायाः समर्पितः । सार्थां च यक्षदत्ताख्यां प्रापितस्त्वं स वर्तसे ॥५०॥
प्रत्यावृत्य च सम्भ्रान्तमपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलापं चिरं चक्रे दुःखान् मित्रवती परम् ॥५१॥
देवार्चकेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । त्वं मे स्वसेति भाषित्वा स्वकेऽवस्थापितोटजे ॥५२॥
सहायरहितत्वेन त्रपयाकीर्तिभीतितः । न सा गता पितुर्गेहं तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

उच्चारण कर निषेध किसलिए किया। इसका मुझे बड़ा कौतुक है? ॥४०॥ इसके उत्तरमें मुनिराने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यक्षदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है? इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि सुनो, मृत्तिकावती नामक नगरीमें एक कनक नामका वणिक् रहता था, उसकी धुर् नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी। एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको गर्भधारण करा कर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास-श्वसुरने गर्भका ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझ कर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासीको साथ ले एक बड़े बनजारोंके संघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली। परन्तु जङ्गलके बीच उत्पलिकाको साँपने डँस लिया जिससे वह मर गई ॥४५-४६॥ तब वह सखीसे रहित, एक शीलव्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस क्रौञ्चपुर नगरीमें आई ॥४७॥ यहाँ स्फीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया। तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवरमें वस्त्र धोनेके लिए गई तब तक एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उसने रत्नकम्बलमें लिपटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्षके लिए दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्थक नाम रक्खा क्योंकि यक्ष कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा दिया गया था। वही यक्षदत्त तू है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आई और उसने अपना पुत्र नहीं देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनके स्वामी देवार्चकने उसे देख कर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहिन है' अपनी कुटीमें रक्खी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर

१. रण्ये म० ।

सेयमत्यन्तशीलाढ्या जिनधर्मपरायणा । कुटीरे दुर्विधस्यास्ते भ्रमता या त्वयेक्षिता ॥५४॥
व्रजता बन्धुदत्तेन यद्दत्तं रत्नकम्बलम् । अस्यास्तद्यक्षभवने तिष्ठत्यद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
इत्युक्तेन संयतं नत्वा स्तुत्वा च हितकारिणम् । इयाय खड्गवानेव सम्भ्रमी यक्षसन्निधिम् ॥५६॥
ऊचे च तेऽसिनानेन छिनद्मि नियतं शिरः । [1]सत्यतो यदि मे जन्म न शास्सि स्फुटकारणम् ॥५७॥
यथावद् वेदितं तेन रत्नकम्बललक्षितम् । अयं जरायुलेपेन तिष्ठत्यद्यापि दिग्धकः ॥५८॥
प्रथमाभ्यां ततस्तस्य पितृभ्यां सह सङ्गमः । जातो महोत्सवोपेतः महाविभवविस्मितः ॥५९॥
कथितं ते महाराज वृत्तान्तादिदमागतम् । अधुना [2]प्रकृतं वक्ष्ये भवावहितमानसः ॥६०॥
लक्ष्मीधरं पुरस्कृत्य सुग्रीवस्त्वरितं ययौ । समीपं रामदेवस्य स तस्थौ विहितानतिः ॥६१॥
ततो विक्रमगर्वेण सदा प्रकटचेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्भवान् ॥६२॥
कांश्चिदश्रुतवृत्तान्तान् [3]महाभोग हतात्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिर्मितमद्भुतम् ॥६३॥
कांश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रत्युपकाराय वाचा सन्मानयश्चिदम् ॥६४॥
भो भो सुविभ्रमाः सर्वे श्रृणुत [4]श्रीसमुत्सृताः । सीतामुपलभध्वं द्राक् क्व वर्तत इति स्फुटम् ॥६५॥
महीतले समस्तेऽस्मिन् पाताले खे जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोनाथे द्वीपे वा धातकीमति ॥६६॥
कुलपर्वतकुञ्जेषु काननान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु व्योमचारिणाम् ॥६७॥
गहनेषु समस्तेषु नानाविद्यापराक्रमाः । जानीत दिक्षु सर्वासु सतीं भूविवरेषु च ॥६८॥

पिताके घर नहीं गई और वहीं रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मके धारण करनेमें तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चककी कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तने परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यक्षके घरमें सुरक्षित रक्खा है ॥५५॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की। तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यक्षके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूँगा ॥५७॥ इतना कहने पर राजा यक्षने सब कारण ज्यों-का-त्यों बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताके साथ समागम हो गया और महा वैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा अब फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६०॥

तदनन्तर सुग्रीव, लक्ष्मणको आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रमके गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एवं उच्च कुलोंमें उत्पन्न समस्त किंकरोंको बुलाकर जिन महाभोगी किङ्करोंने यह वृत्तान्त नहीं सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतला कर आश्चर्यसे चकित किया ॥६२-६३॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किङ्करोंका वचन द्वारा सन्मान करते हुए उनसे रामका प्रत्युपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विभ्रमोंको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है? ॥६५॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओं और पराक्रमसे युक्त हो अतः इस समस्त भूतलमें, पातालमें, आकाशमें, जलमें, थलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, धातकीखण्ड द्वीपमें, कुलाचलोंके

१. 'सत्यतो यदि मे जन्म नास्ति त्वं स्फुटकारणम्' म० । २. प्राकृते म० । ३. महामोहहतात्मिकान् म० ।
४. श्रीमन्द्रुत्सवाः (?) म० ।

शेषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽऽज्ञां प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु द्रुतं जग्मुरहंयवः[1] ॥६९॥
युवविद्याभृता लेखं नाययित्वा यथाविधि । ज्ञातनिःशेषवृत्तान्तो वैदेहोऽप्युपपादितः ॥७०॥
ततोऽसौ स्वसृदुःखेन नितान्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निभृतोऽभवत् ॥७१॥
स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् भानुवर्त्मना । तारानिकरचक्रेण सम्प्रवृत्तो गवेषणे ॥७२॥
दुष्टविद्याधरानेकपुरान्वेषणतत्परः । ध्वजं दूरात् समालोक्य समीरणविकम्पितम् ॥७३॥
जम्बूद्वीपमहीध्रस्य[2] शिखरेणोपलक्षितम् । नभस्तलं परं प्राप चलदंशुकपल्लवः[3] ॥७४॥
वियतोऽवतरद् वीक्ष्य विमानं भानुभासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
आसीदनुसमालोक्य तदसावतिविह्वलः । वैनतेयात् परित्रस्तः सञ्जुकोच यथोरगः ॥७६॥
आसन्नं च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलक्षणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृत्युभयाकुलः ॥७७॥
लङ्काधिपतिना नूनं क्रुद्धेन जनितागसा । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽयमुपागतः ॥७८॥
किं न प्रतिभये शीघ्रं मृतो रत्नाकराम्भसि । हा धिगत्रान्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम्[4] ॥७९॥
मनोरथं पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितस्पृहयाविष्टः[5] प्रापयिष्यामि किन्वहम् ॥८०॥
इति चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीपं द्वितीय इव भास्करः ॥८१॥
तकं धूसरसर्वाङ्गमालोक्य वनपांशुभिः । वानराङ्कध्वजोऽपृच्छदनुकम्पा[6]समुद्वहन् ॥८२॥

निकुञ्जोंमें, वनके अन्त भागोंमें, सुमेरु पर्वतोंमें, विद्याधरोंके चित्र-विचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विवरों अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६-६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शेषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६९॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥७०॥ तदनन्तर बहिनके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुःखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७१॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरोंके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था। तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा। उस समय उसके वस्त्रका अञ्चल हवासे हिल रहा था ॥७३-७४॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशङ्कासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमानको देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुडसे भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संकुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव बिलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लङ्काधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिर कर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया। मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्याबलसे रहित होकर भी इच्छाओंको आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ सो देखूँ अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था

१. अहंकारयुक्ता- । २. जम्बूद्वीपमहीन्द्रस्य म० । जम्बूद्वीपमहेन्द्रस्य क० । ३ पल्लवम् म० । ४. समुपागतः म० । ५. जीवितः स्पृहया म० । ६. -दनुकम्प- म० ।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुन्नतः । अवस्थामीदृशीं कस्मादधुना भद्र सङ्गतः ॥८३॥
इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुखाकरम् । सर्वाङ्गं कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी भृशम् ॥८४॥
मा भैर्षीर्भद्र मा भैर्षीरित्युक्तश्च पुनः पुनः । जगौ कृतानतिर्धीरमतिः प्रकटिताक्षरम् ॥८५॥
प्रतिपक्षी भवन् साधो रावणेन दुरात्मना । सीताहरणसक्तेन छिन्नविद्योऽहमीदृशः ॥८६॥
जीविताशां समालम्ब्य कथञ्चिद्दैवयोगतः । ध्वजमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽस्मि कपिपुङ्गव ॥८७॥
उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्वेगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं ययौ ॥८८॥
समक्षं लक्ष्मणस्याथ महतां च खगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्मं विनयी विहिताञ्जलिः ॥८९॥
देव देवी नृशंसेन सती सीता दुरात्मना । हृता लङ्कापुरीन्द्रेण विद्या च मम कोपिनः ॥९०॥
कुर्वन्ती सा महाक्रन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगीव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयसा ॥९१॥
येनासीत् समरे भीमे निर्जित्य सुमहाबलः । इन्द्रो विद्याभृतामीशो बन्दिग्रहमुपाहृतः ॥९२॥
स्वामी भरतखण्डानां त्रयाणां निरङ्कुशः । कैलासोद्धरणे येन विशालं सङ्गतं यशः ॥९३॥
सागरान्ता मही यस्य दासीवाज्ञां प्रतीच्छति । सुरासुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥
श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मेदं निर्मितं क्रूरं मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥
तच्छ्रुत्वा विविधं बिभ्रद्रसं काकुत्स्थनन्दनः । अङ्गस्पर्शं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
देवोपगीतसंज्ञे च पुरे गोत्रक्रमागतम् । अन्वजानादधीशत्वं विच्छिन्नमरिभिश्चिरम् ॥९७॥

ऐसे उस रत्नकेशीको देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८२॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याओंसे समुन्नत था। हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुखसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्यधारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरोंमें कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५–८६॥ हे कपि श्रेष्ठ ! दैवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े-बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लङ्कापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुझ रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९–९०॥ जो चित्तको हरण करनेवाली ध्वनिसे महारुदन करती हुई मृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हर कर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयङ्कर संग्राममें अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें डाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म—अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३–९५॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहको धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिङ्गन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर बीचमें शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—

पुनः पुनरपृच्छच्च वार्त्तामालिंग्य तं नृपः । पुनः पुनर्जगादासौ प्रमोदव्याकुलाक्षरः ॥९८॥
ततः समुत्सुकः पद्मः पर्यपृच्छद्दतिद्रुतम् । लङ्कापुरी क्रियद्दूरे विवेदयत खेचराः ॥९९॥
इत्युक्तास्ते गता मोहं निश्चलीभूतविग्रहाः । अवाङ्मुखा गतच्छाया बभूवुर्वाग्विवर्जिताः ॥१००॥
अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा विशीर्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्दया दृष्ट्या राघवेन विलोकिताः ॥१०१॥
अथ भीतिपरित्रस्ताः ज्ञाताः स्म इति लज्जिताः । ऊचुर्धीरं मनःकृत्वा करकुड्मलमस्तकाः ॥१०२॥
यदीयं देव नामापि कथञ्चित्समुदीरितम् । ज्वरमानयति त्रासाद्वद्वामस्त्वत्पुरः कथम् ॥१०३॥
क्व वयं क्षुद्रसामर्थ्याः क्व च लङ्कामहेश्वरः । त्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते सम्प्रति वस्तुनि ॥१०४॥
अथावश्यमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयतां प्रभो । कोऽत्र दोषः समक्षं ते किञ्चिद्वक्तुं हि शक्यते ॥१०५॥
अस्त्यत्र लवणाम्भोधौ क्रूरग्राहसमाकुले । प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतसङ्कुलः ॥१०६॥
शतानि सप्त विस्तीर्णो योजनानां समन्ततः । परिक्षेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशतिः ॥१०७॥
मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वतः । योजनानि [1]नवोत्तुङ्गपञ्चाशद्विपुलत्वतः ॥१०८॥
हेमनानामणिस्फीतः शिलाजालावलीचितः । आसीत्तोयदवाहस्य[2] दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥
तस्य कूलयद्रुमैश्चित्रैः[3] शिखरे कृतभूषणे । लङ्केति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभिः ॥११०॥
विमानसदृशैः रम्यैः प्रासादैः स्वर्गसन्निभैः । मनोहरैः प्रदेशैश्च क्रीडनादिक्रियोचितैः ॥१११॥
त्रिंशद् योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्ततः । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेव[4] वसुन्धरा ॥११२॥

वहाँका राजा बनाया ॥९७॥ राम, बार-बार आलिङ्गन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्खलित होते हुए अक्षरोंमें बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥९८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥९९॥ इस प्रकार रामके कहने पर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुख, कान्तिहीन और वचनोंसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवज्ञापूर्ण दृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीराम की दृष्टिमें भयभीत जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे ज्वर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ क्षुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लंकाका स्वामी रावण कहाँ ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तुकी हठ छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ दुष्ट मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लवणसमुद्रमें अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सब ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियोंसे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है । राक्षसोंके इन्द्र भीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र-विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखर पर लङ्का नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंके समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सब ओरसे

१. नवोत्तुङ्गपञ्च- म० । २. मेघवाहनस्य । ३. कल्पद्रुमैः ख० । ४. द्वितीयेन म० ।

लङ्कायाः परिपार्श्वेषु सन्त्यन्येऽपि मनोहराः । स्वभावावस्थिता रत्नमणिकाञ्चनमूर्तयः ॥११३॥
प्रदेशा नगरोपेता रक्षसां क्रीडभूमयः । अधिष्ठिता महाभोगैस्ते च सर्वे नभश्चरैः ॥११४॥
सन्ध्याकारः सुवेलश्च काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हंसनामा च हरिसागरनिस्वनः ॥११५॥
अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये द्वीपाः सर्वर्द्धिभोगदाः । प्रदेशा इव नाकस्य काननादिविभूषिताः ॥११६॥
सुहृद्भिर्भ्रातृभिः पुत्रैः कलत्रैर्बान्धवैः सह । रमते येषु लङ्केशो भृत्यवर्गसमावृतः ॥११७॥
तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा महाविद्याधराधिपम् । [1]देवाधिपोऽपि मन्येऽहं समाशङ्कां प्रपद्यते ॥११८॥
भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमुत्कटः । परैरपि परै[2]राजावजय्यो राजपुङ्गवः ॥११९॥
त्रिदशस्तत्समो बुद्ध्या नास्ति नास्त्येव मानुषः । तेनैकेनैव पर्याप्तं रावणस्य जगत्प्रभोः ॥१२०॥
अपरोऽप्यनुजस्तस्य विद्यते गुणभूषणः । भानुकर्ण इति ख्यातस्त्रिशूलपरमायुधः ॥१२१॥
भ्रकुटिं कुटिलां यस्य भीष्मां कालकुटीमिव । न शक्नुवन्ति संग्रामे सुरा अप्यवलोकितुम् ॥१२३॥
महेन्द्रजितसंज्ञश्च क्षितौ ख्यातिमुपागतः । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२२॥
एवमाद्याः सुबहवः प्रणतास्तस्य किङ्कराः । नानाविद्याद्भुतोपेताः प्रतापप्रणतारयः ॥१२४॥
यस्यातपत्रमालोक्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्यजन्ति रिपवो दर्पं समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥
अमुष्य पुस्तकर्मापि[3] चित्रं वा सहसेक्षितम् । नाम चोच्चारितं शक्रमरीणां त्रासकर्मणि ॥१२६॥
एवंविधममुं युद्धे कः शक्तो जेतुमुद्धतः । कथा चैषा न कर्तव्या चिन्त्यतामपरा गतिः ॥१२७॥

तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परिखासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पड़ती है ॥११२॥ लङ्काके समीपमें और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्नमणि तथा स्वर्णसे निर्मित हैं ॥११३॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोंसे युक्त हैं, राक्षसोंकी क्रीड़ा-भूमि हैं तथा महाभोगोंसे युक्त विद्याधरोंसे सहित हैं ॥११४॥ संध्याकार, सुवेल, काञ्चन, ह्लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगोंको देनेवाले हैं, वन-उपवन आदिसे विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पड़ते हैं ॥११५-११६॥ लङ्काधिपति रावण भृत्यवर्गसे आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनोंके साथ उन प्रदेशोंमें क्रीड़ा किया करता है ॥११७॥ क्रीड़ा करते हुए उस विद्याधरोंके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशङ्काको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमें अत्यधिक बलवान् है, युद्धमें बड़े-बड़े लोगोंके द्वारा भी अजेय है और राजाओंमें श्रेष्ठ है ॥११९॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेवाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है। जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका संसर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोंसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी कुटीके समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रकुटीको देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? ॥१२२॥ युद्धमें ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित, उसीका पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथमें सारा संसार जान पड़ता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किङ्कर हैं जो नाना प्रकारकी विद्याओंके आश्चर्यसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नम्रीभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमें अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते हैं ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमें आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमें समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकारके इस रावणको युद्धमें जीतनेके लिए कौन बलवान्

१. मरुत्पत्यमरोपेतं ख० । २. आजौ = संग्रामे, अजय्य इतिच्छेदः । ३. कर्माणि म० ।

ततोऽनादरतस्तेषामेकैकं वीक्ष्य लक्ष्मणः । अभाणीदूर्जितं वाक्यं घनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
सत्यं यदीदृशः ख्यातः शक्तिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्राव्यनाम[1] स्त्वमसौ स्त्रीतस्करो भवेत् ॥१२९॥
दाम्भिकस्यातिभीतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वल्पापि शूरता ॥१३०॥
अब्रवीत्पद्मनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो दिष्ट्या लब्धो मया स च ॥१३१॥
चिन्त्यमस्त्यपरं नातः क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फलं कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
अथैनमूचिरे वृद्धाः क्षणं स्थित्वेव सादराः । शोकं जहीहि पद्माभ भवास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥
विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । भव भर्ता भ्रमन् लोके वियुक्ताशेषदुःखधीः ॥१३४॥
पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलां यदि शच्या अपि स्त्रियः ॥१३५॥
प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नभश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥
जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्प्रभो मूढग्रहस्त्वया । त्यज्यतां क्षुद्रवन्मा भूर्मयूर इव दुःखितः ॥१३७॥
अस्ति वेणातटे मेही नाम्ना सर्वरुचिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णासमुद्भवः ॥१३८॥
विशालभूतिसंज्ञश्च वयस्योऽस्यातिवल्लभः । तद्भार्यायां समासक्तो गृहलक्ष्म्यां दुरात्मकः ॥१३९॥
तस्या एव च वाक्येन विद्भुतिश्छद्मना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स बबन्धोपरि शाखिनः ॥१४०॥
बध्वा च तं ततो गेहं क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तरं किञ्चिद्वतस्थे कृतार्थवत् ॥१४१॥

समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िये कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥१२७॥
तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८–१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूर वीरता कहाँ है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसको क्षोभित किया जाय । कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण भर ठहर कर वृद्ध लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि पद्माभ ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणोंसे अप्सराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोंके भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३–१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझ पर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें क्षुद्रनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वरुचि नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्णा नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमें आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके छलसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बाँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशाल भूति

१. तत्किमश्राव्यं नाम-म० ।

अत्रान्तरे तमुद्देशं दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् खिन्नः क्षुद्रोऽपश्यच्च तं तरुम् ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम सः । क्वणितं चाशृणोन्मन्दमुन्मुखश्च व्यलोकयत् ॥१४३॥
यावत्पश्यति तं बद्धं निबिडं दृढरज्जुभिः । अत्यन्ततुङ्गशाखाग्रे निचेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासक्तचेतसा । गतो विनयदत्तस्तु स्वं तेनैव समाश्रयम् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्सवे [1]जातो महानन्दसमुत्कटः । विशालभूतिरालोक्य तं च दूरात्पलायितः ॥१४६॥
क्षुद्रस्याथ शिखी जातु शिखिपत्रमयोऽन्यथा । रमणो वात्यया नीतः सम्प्राप्तो राजसूनुना ॥१४७॥
तन्निमित्तं महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभाषत । मां चेदिच्छसि जीवन्तं [2]यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो वृक्षे मया त्वं परिमोचितः । अस्योपकारमुख्यस्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्तं ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽवोचद्दीयतां मह्यं स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्ता कृत्रिमासौ मयूरिका । कथं लभ्या वधो यस्माल्लभ्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णाभोजनेत्राणां कन्यानां कनकत्विषाम् । पीवरस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥
वक्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां चारुभिर्गुणैः । पतिर्भव महाभोग प्रसीद रघुनन्दन ॥१५४॥

घर आकर कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछने पर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृक्षको देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया। वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन ऊपरको मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभाग पर मजबूत रस्सियोंसे बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त दयामें आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे बन्धन मुक्त किया। तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रको साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमें महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशाल-भूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रका बना हुआ एक मयूरका खिलौना था सो वह खिलौना एक दिन हवामें उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुझे उस तरह वृक्ष पर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वही मयूर देओ। सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी। राजपुत्रसे तो केवल माँगनेवालोंको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा छोड़ो और जिनके नेत्र सफ़ेद काले तथा लाल रङ्गके हैं, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी कान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥

---

१. -स्योत्सवे जाती म० । २. जीवितं म० ।

अनुबन्धमिदं हास्यं त्यज दुःखविवर्धनम् । मयूरशष्पशोकार्तो माभूः क्षुद्रकवद् बुध ॥१५५॥
सर्वदा सुलभाः पुंसः शिखिशष्पोपमाः[1] स्त्रियः[2] । ब्रवीमि राघव त्वाहं प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमो वाक्यवर्त्मनि । जाम्बूनदेदृशं नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥
आसीद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाख्यः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
धनबन्धुगृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । पालान्तास्तस्य सेवन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥
अन्वर्थसंज्ञकास्ते च कुटुम्बार्थं सदोद्यताः । कुर्वन्ति कर्मविश्रान्ति[3] क्षणमप्यनुपागताः ॥१६०॥
आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलाधरः[4] । पुण्योदयादसौ भोगान् भुंक्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
[5]भ्रातृभिः स पितृभ्यां च चिरं कटुभिरक्षरैः[6] । निर्भर्त्सितोऽन्यदा यातो मानी बाह्यांपरिभ्रमन् ॥१६२॥
सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेदं परमं गतः । कर्म कर्तुमशक्तात्मा मरणं स्वस्य वाञ्छति ॥१६३॥
पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः कश्चिकश्च तम् । समागत्याभणीदेवं श्रूयतामयि मानव ॥१६४॥
पृथुस्थाधिपस्याहं सुभानुरिति नन्दनः । गोत्रिकाक्रान्तदेशः सन् [7]कुर्वन्नैमित्तभाषितम् ॥१६५॥
पर्यटन् वसुधामेतां दैवात् कूर्म्मपुरं गतः । आचार्येणाभियोग्येन सङ्गं प्राप्तोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
अयोमयामिदं तेन दत्तं मे वलयं शुभम् । मार्गदुःखाभिभूताय कारुण्याकारचेतसा ॥१६७॥
एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिवशीकरणमुत्तमम् ॥१६८॥

इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूर रूपी तृणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी तृणके समान स्त्रियाँ पुरुषको सदा सुलभ हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ। बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं करते ॥१५६॥

तदनन्तर वचनोंके मार्गमें अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा कि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ रहता था उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल, क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा क्षणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं लेते थे ॥१६०॥ इन सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था। सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके समान भोग भोगता था ॥१६१॥ कुछ करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता पिता निरन्तर कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे। एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुछ कर सकनेके लिए समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥ उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला के हे मनुष्य ! सुन ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभानु हूँ निमित्तज्ञानीके आदेशका पालन करता हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमें भ्रमण करता हूँ ॥१६५॥ इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं दैवयोगसे कूर्म्मपुर नामा नगरमें पहुँचा वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको

१. शिशिशिष्योपमाः म० । २. श्रियः म० । ३. विश्रान्ति लक्षमप्यनु म० । ४. खिला धरा म० । ५. मातृभिः । ६. कटुकैरक्षरैः म० । ७. निमित्त ब० ।

नैमित्तादिष्टकालस्य सम्प्राप्तश्च ममावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निजं पुरम् ॥१६९॥
राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते गणनोज्झिताः । एतच्छिद्रमासाद्य नियतं नाशकारणम् ॥१७०॥
[1]गृहाणैतत्ततस्तुभ्यं यच्छामि वलयं पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाञ्छसि जीवितम् ॥१७१॥
लब्धस्य च पुनर्दानं शंसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च तं जनाः ॥१७२॥
ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वाङ्गदमायसम्[2] । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निजं निजम् ॥१७३॥
यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दष्टा [3]श्वसनभोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चितोद्देशं[4] स पश्यति ॥१७४॥
कटकस्य प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा परं प्रापदसौ पूजां नरेन्द्रतः ॥१७५॥
महान्तस्तस्य सञ्जाता भोगाः परमसौख्यदाः । सर्वबन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मानुभावतः ॥१७६॥
उत्तरीयांशुकस्योर्ध्वं निधाय वलयं सरः । प्रविष्टो यावदादाय गोधेरोऽनश्यदुद्धतः[5] ॥१७७॥
महातरोरधस्तावत् प्रविवेश बिलं महत् । शिलानिकरसञ्छन्नं निर्हारं घोरनिस्वनम् ॥१७८॥
तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिना । बभूव स्थानमप्येतत्प्रलयाशंकिमानसम् ॥१७९॥
आत्मश्रेयस्ततो वृक्षमुन्मूल्य स शिलाघनम् । गोधेरं नाशयित्वा तं निधानं प्राप्य सांगदम् ॥१८०॥
आत्मश्रेयःसमः पद्मः सीता वलयमूर्तिवत् । प्रमादवच्च कौसीद्यं शब्दस्तच्छब्दवद्द्विषोः ॥१८१॥
महानिधानवल्लंका गोधेरो दशवक्त्रकः । जनास्त इव निर्भीता यूयं भवत साम्प्रतम् ॥१८२॥

बढ़ानेवाला है और ग्रह उरग पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गई है इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६९॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कड़ा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़ेको ले ले मैं तुझे देता हूं ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१७२॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको साँपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गई थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लाई गई थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त बन्धुओंके साथ साथ परम सुख देनेवाले बड़े बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़ेको उत्तरीय वस्त्रके ऊपर रखकर जब तक सरोवरमें प्रवेश किया तब तक एक उद्दण्ड गुहेरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गुहेरा एक महावृक्षके नीचे बने हुए अपने बड़े बिलमें घुस गया । उसका वह शिलाओंके समूह से आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गुहेरा उस बिलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस बिलको देख मनमें प्रलयकी आशंका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृक्षके मूलको उखाड़कर तथा गुहेरको मारकर कड़ेके साथ साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान है, लाभकी इच्छा प्रमादके समान हैं, शत्रुका शब्द गुहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रावण गुहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

१. गृहाण तत्त्वतस्तुभ्यं ज० । २. गृहीताङ्गद म० । ३. श्वसनभोगिना म० । नागेनेत्यर्थः । ४. श्मसाने । ५. दूरवंतः म० ।

तच्छ्रुत्वा समुपाख्यानं जितजाम्बूनदोदितम् । बहवो विस्मयापन्ना बभूवुः स्मितकारिणः ॥१८३॥
जाम्बूनदादयः सर्वे ततः कृत्वा प्रधारणम् । इदमूचुः पुनः पद्मं शृणु राजन् समाहितः ॥१८४॥
अनन्तवीर्ययोगीन्द्रं सम्प्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्युं परिपृष्टः समादिशत् ॥१८५॥
यो निर्वाणशिलां पुण्यामतुलामर्चितां सुरैः । समुद्यतां स ते मृत्योः कारणत्वं गमिष्यति ॥१८६॥
सर्वज्ञोक्तं निशम्यैतदचिन्तयदसाविदम् । भविता पुरुषः कोऽसौ तां यश्चालयितुं क्षमः ॥१८७॥
नास्त्येव मरणे हेतुर्ममेत्युक्तं भवत्यदः । वचोयुक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थदेशने ॥१८८॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्गच्छामो न चिरं हितम् । ईक्षामहे शिलां सैद्धीं भव्यानां रोमहर्षणीम् ॥१८९॥
रहस्यमेतत्सन्मन्त्र्य सुनिश्चित्य समन्ततः । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ताः प्रमादपरिवर्जिताः ॥१९०॥
जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च नलनीलौ विचक्षणौ ॥१९१॥
सपुरस्कारमारोप्य विमाने रामलक्ष्मणौ । सम्प्रयाता द्रुतं व्योम्नि रात्रौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥
अवतेरुः समीपे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भीरा सुरासुरनमस्कृता ॥१९३॥
उपसस्रुश्च ते सर्वे मस्तकन्यस्तपाणयः । आशारक्षानवस्थाप्य[1] प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥
सुगन्धिभिर्महांभोजैः पूर्णेन्दुपरिमण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैरर्चिता तैरसौ शिला ॥१९५॥
सितचन्दनदिग्धांगा कुंकुमांशुकधारिणी । धृतालङ्करणा भाति सा शचीव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्दहास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर परस्परमें विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन्! एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५–१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१८७॥ भगवानके कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानोंकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हमलोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, भव्यजीवोंको आनन्द देने वाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेंगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सबलोग परस्परमें मन्त्रणा कर तथा सब ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सन्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमान पर बैठा कर रात्रिके सघन अन्धकारमें शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१–१९२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भीर एवं सुर असुरोंके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त हो कर आगे गये हुए दिशारक्षकों को नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाके समीप गये ॥१९४॥ वहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बके समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकारके अन्य पुष्पोंसे उस शिलाकी पूजा की ॥१९५॥ जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारोंसे अलंकृत थी ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राणीके

१. दिक्पालान् ।

तस्यां सिद्धान्नमस्कृत्य शिरस्थकरकुड्मलाः[1] । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण विधिपण्डिताः ॥१९७॥
ततः परिकरं बद्ध्वा सौमित्रिर्विनयं वहन् । नमस्कारपरो भक्तः स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ॥१९८॥
जयशब्दं समुद्घोष्य प्रहृष्टा वानरध्वजाः । स्तोत्रं परिपठन्तीदमुत्तमं सिद्धमङ्गलम् ॥१९९॥
स्थितांस्त्रैलोक्यशिखरे स्वयं परमभास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥
भवार्णवसमुत्तीर्णान्निःश्रेयस[2] समुद्भवान् । आधारान्मुक्तिसौख्यस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥
अनन्तवीर्यसम्पन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुसमीचीनतायुक्तान्निःशेषक्षीणकर्मणः ॥२०२॥
अवगाहनधर्मोक्तानमूर्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुरुत्वलघुतामुक्तानसंख्यातप्रदेशिनः ॥२०३॥
अप्रमेयगुणाधारान् क्रमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्ठामुपागतान् ॥२०४॥
सर्वथा शुद्धभावांश्च ज्ञातज्ञेयान्निरञ्जनात् । दग्धकर्ममहाकक्षान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥२०५॥
तेजःपटपरीतेन भक्तितो वज्रपाणिना । संस्तुतान् भवभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥
संसारधर्मनिर्मुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् वन्दामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिसमावहान् ॥२०७॥
अस्यां च ये गताः सिद्धिं शिलायां शीलधारिणः । उपगीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥२०८॥
जिनेन्द्रसमतां याताः कृतकृत्या महौजसः । मङ्गलस्मरणेनैतान् भक्त्या वन्दामहे मुहुः ॥२०९॥

समान मनोहर जान पड़ती थी ॥१९६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी विधि विधानमें निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्ति पूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा दी ॥१९७॥

तदनन्तर विनयको धारण करने वाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१९८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्के निम्नाङ्कित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१९९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देदीप्यमान तीन लोकके शिखर पर स्वयं विराजमान हैं, आत्माको स्वरूपभूत स्थितिसे युक्त हैं तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो संसार सागरसे पार हो चुके हैं, परमकल्याणसे युक्त हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असंख्यातप्रदेशी हैं ॥२०३॥ जो अपरिमित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरञ्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यान रूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसार से भयभीत तथा तेज रूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसार रूप धर्मसे रहित हैं, सिद्ध रूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करने वाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेष्ठियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं पुराणोंमें जिनका कथन है, जो सर्व कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महा प्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्ति पूर्वक मङ्गल स्मरण करते हुए बार-बार वन्दना करते हैं

१. शिरसि करकुड्मलाः म० । २. निःश्रेयसः समुद्भवान् ।

एवं च सुचिरं स्तुत्वा[1] पुनरेवं बभाषिरे । लक्ष्मीधरं समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसाः ॥२१०॥
शिलायामिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकिल्बिषाः । ते विघ्नसूदनाः सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
अर्हन्तो मङ्गलं सन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गलं साधवः सर्वे मङ्गलं जिनशासनम् ॥२१२॥
इति मङ्गलनिस्वानैर्विहायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥२१३॥
सा लक्ष्मणकुमारेण नानालङ्कारभूषणा । केयूरकान्तबाहुभ्यां धृता कुलवधूरिव ॥२१४॥
अथान्तरिक्षे देवानां महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मयं परमं ययुः ॥२१५॥
ततः सिद्धान् प्रमोदाढ्याः प्रणम्य भयवर्जितान् । सम्मेदशिखरस्थं च जिनेन्द्रं मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥
निषद्या[2] ऋषभाद्यानामभ्यर्च्य च यथाविधि । सकलं भरतक्षेत्रं बभ्रमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
सायाह्ने सौम्यवपुषो दिव्यैर्यानैर्मनोजवैः । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्भृशम् ॥२१८॥
परिवार्य महावीर्यं रामं लक्ष्मणसङ्गतम् । किष्किन्धनगरं प्रापुर्विविशुश्च महर्द्धयः ॥२१९॥
शयिताश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुनः प्रीता इत्यन्योन्यं बभाषिरे ॥२२०॥
वीक्षध्वं वासरैः स्वल्पैः पृथिव्यां राज्यमेतयोः । निःशेषैः कण्टकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतोः पराम् ॥२२१॥
सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्धृता । उत्सादयत्ययं क्षिप्रं रावणं नात्र संशयः ॥२२२॥
तथापरे वचः प्राहुः कैलासो येन भूधरः । तदा समुद्धृतः सायं शिलोद्धारस्य किं समः ॥२२३॥
आहुरन्ये समुद्धारः कैलासस्य कृतो यदि । विद्याबलयतस्तत्र विस्मयः कस्य जायते ॥२२४॥

॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिर काल तक स्तुति कर एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोंने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मंगलरूप हों। सर्वसाधु परमेष्ठी मंगल स्वरूप हों और जिन शासन मङ्गलरूप हो ॥२१२॥ इसप्रकार विद्याधरोंकी मङ्गलध्वनिके साथ, महातेजको धारण करने वाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलंकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दोंसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्मेद शिखर पर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थकरोंके निर्वाणस्थान कैलाश आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें घूमें ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महा वैभवसे सम्पन्न सब लोगोंने सायंकालके समय मनके समान वेगशाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम लक्ष्मणको घेर कर किष्किन्धनगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सब ने यथा स्थान शयन किया। तदनन्तर आश्चर्य चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करने वाले इन दोनोंका कुछ ही दिनोंमें पृथिवी पर समस्त कण्टकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाण शिलाको चला कर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहते लगे कि उस समय जिसने कैलाश उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वालेके समान है ? ॥२२३॥ कुछ अन्यलोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलाश पर्वत उठाया था

१. श्रुत्वा म० । २. स्थानानि ।

एके च वचनं प्रोचुः किं विवादैरिमैर्मुधा । जगद्धिताय सन्ध्यर्थं किं नोपायो निरूप्यते ॥२२५॥
तस्मादानीयतां सीतां समभ्यर्च्य दशाननम् । राघवायार्पयिष्यामि विग्रहे किं प्रयोजनम् ॥२२६॥
सङ्ग्रामे तारको नष्टो मेरुकश्च महाबलः । कृतवीर्यसुताद्याश्च महासैन्यसमन्विताः ॥२२७॥
एते खण्डत्रयाधीशा महाभागा महौजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे सामन्ततः परम् ॥२२८॥
अन्योन्यमभिमन्त्र्यैवं विद्याविधिविशारदाः । राघवं विनयोपेताः सम्भूय ययुरादरात् ॥२२९॥
सुग्रीवाद्याः समासीना नयनानन्दकारिणम् । विरेजुः परितो राममरेन्द्रमिवामराः ॥२३०॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचत् किमद्याप्यवलम्ब्यते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःखं तिष्ठति मैथिली ॥२३१॥
दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य[1] क्षिप्रमद्यैव सर्वथा । त्रिकूटगमने सद्भिः क्रियते न किमुद्यमः ॥२३२॥
तमूचुर्मन्त्रिणो वृद्धा नयविस्तरकोविदाः । संशयेनात्र किं देव कथ्यतामेकनिश्चयः ॥२३३॥
किं त्वमिच्छसि वैदेहीं विरोधमथ राक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःखं नायं सदृशविग्रहः ॥२३४॥
भरतस्य त्रिखण्डस्य प्रतिपक्षोज्झितः प्रभुः । सागरद्वीपविख्यात एक एव दशाननः ॥२३५॥
शङ्कितो धातकीद्वीपो ज्योतिषामपि भीतिदः । जाम्बूद्वीपे परं प्राप्तो महिमानं खगाधिपः ॥२३६॥
शल्यभूतोऽस्य[2] विश्वस्य कृतानेकाद्भुतक्रियः । ईदृशो राक्षसो राम कथं संसाध्यते त्वया ॥२३७॥
तस्माद्बुद्धिं रणे त्यक्त्वा यद् वयं संवदामहे । प्रसीद क्रियतां देव तदेवोद्यच्छ शान्तये ॥२३८॥
मा भूत्तस्मिन् कृतक्रोधे जगदेतन्महाभयम् । विध्वस्तप्राणिसङ्घातं नष्टनिःशेषसत्क्रियम्[3] ॥२३९॥

तो इससे क्या हुआ क्योंकि विद्याबलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥२२४॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए सन्धिका उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी तीन खण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे । इनके सिवाय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥

इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाहकर विनय सहित आदर पूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२९॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करने वाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२३०॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥२३१॥ शीघ्र ही दीर्घसूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचल पर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ? ॥२३२॥ तब नीतिके विस्तारमें निपुण वृद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस विषयमें संशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताको चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध—बराबरी वालोंका युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन खण्ड भरतका शत्रुरहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शङ्कित रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करने वाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधरोंका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥ इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न हूजिये और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह

१. दीर्घस्तत्र त्व म० । २. शिल्पभूतोऽस्य । ३. सक्रियम् म० ।

योऽसौ विभीषणः ख्यातः स्वयं ब्रह्मा स कीर्तितः। क्रूरकर्मनिवृत्तात्मा भावितोऽणुव्रतैर्दृढम् ॥२४०॥
अलंध्यवचनं तस्य कुरुते खेचराधिपः। तयोर्हि परमा प्रीतिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥
बोधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशः पालनतोऽपि वा। लज्जया वा विदेहस्य तनयां प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
विज्ञापनवचोयुक्तिकुशलो नयपेशलः। अन्विष्यतामरं कश्चित्प्रसादी रावणस्य यः ॥२४३॥
ततो महोदधिर्नाम्ना[1] ख्यातो विद्याधराधिपः। अब्रवीदेष वृत्तान्तो भवतां नागतः[2] श्रुतिम् ॥२४४॥
यन्त्रैर्बहुजनध्वंसैर्लङ्काऽगम्या निरन्तरम्। कृतातिशयदुःप्रेक्षा सुभीमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
एषां मध्ये न पश्यामि महाविद्यं नभश्चरम्। लङ्कां गत्वा द्रुतं भूयो यः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
पवनञ्जयराजस्य श्रीशैलः प्रथितः सुतः। विद्यासत्त्वप्रतापाढ्यो[3] बलोत्तुङ्गः स याच्यताम् ॥२४७॥
समं दशाननेनास्य विद्यतेऽजर्यमुत्तमम्[4]। युक्तः करोत्यसौ साम्यं निर्विघ्नं पुरुषोत्तमः ॥२४८॥
प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्त्विति सादरैः। मारुतेरन्तिकं दूतः श्रीभूतिः प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
शक्तिं दधतापि परां प्राप्यापि परं प्रबोधमारम्भैः[5]। भवितव्यं नयरतिना[6] रविरिव काले स यात्युदयम् ॥२५०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे कोटिशिलाक्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४८॥

संसार महाभयसे युक्त न हो, प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३९॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। वह दुष्टता पूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुव्रतोंका दृढ़तासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलंध्य हैं वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमें उन दोनोंमें निर्बाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षाके अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी खोज की जाय जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीतिनिपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लंका अनेक जनोंका विघात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गई है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयङ्कर गम्भीर गर्तोंसे युक्त हो गई है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें मैं महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनञ्जय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाय ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाय तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिके धारक राजाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्तकर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उठानेका वर्णन करनेवाला अड़तालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥

१. महोदधिनाम्ना म०। २. भवतां श्रुतिं न आगतः। ३. बालोत्तुङ्गः म। बलात्तुङ्ग ख०। ४. अजर्यं सङ्गतं। विद्यते नय मुत्तमं ख०, म०। ५. बोध म० मारम्भैः म०। ६. नरपतिना ख०।

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नभः समुत्पत्य जगामासौ मरुज्जवः । अत्युत्तुङ्गैर्गृहैः पूर्णं श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥१॥
तत्र हेमद्रवन्यस्तलेप्यतेजःसमुज्ज्वलम् । कुन्दाभवलभीशोभि रत्ननिर्मितशेखरम् ॥२॥
मुक्तादामसमाकीर्णं वातायनविराजितम् । उद्यानाकीर्णपर्यन्तं प्राविशन्मारुतेर्गृहम् ॥३॥
अपूर्वलोकसङ्घातं पश्यतस्तस्य साद्भुतम् । मनोगतागतं भूयो गतं कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥
प्रविष्टे मारुतेर्गेहं तस्मिन् दूते ससम्भ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पातं जगामेन्दुनखात्मजा ॥५॥
सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्य व्यचिन्तयत् । प्राप्तव्यं विधियोगेन कर्म कर्तुं न शक्यते ॥६॥
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुषास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
वेदितागमनस्तावद् दूतो नर्मदया सभाम् । प्रस्वेदकणसम्पूर्णः प्रतीहार्या प्रवेशितः ॥८॥
जगादाथ यथावृत्तं निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाताः पद्मनाभादयः पुरा ॥९॥
शम्बूकस्य वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पञ्चतागमनं तस्य मानवैरुत्तमैः सह ॥१०॥
ततो निशम्य तां वार्तां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मूर्छामुपेता मुकुलेक्षणा ॥११॥
चान्दनेन द्रवेणैतां सिच्यमानां क्रियोज्झिताम् । विलोक्यान्तःपुराम्भोधिः परमं क्षोभमागतः ॥१२॥
वीणातन्त्रीसहस्राणां प्राप्तानां कोणताडनम् । क्रन्दन्तीनां समं रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समुद्गतः ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति[1] दूत, आकाशमें उड़कर अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घर स्वरूप श्रीपुर नगरमें पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलके उस भवनमें प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्ज्वल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोंसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, झरोखोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-बगीचोंसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोंकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमें पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमान्के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि दैव योगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहें देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनंगकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारीने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमें आये, शम्बूकका वध हुआ, खरदूषणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनंगकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गई तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥११॥ उसका हलन-चलन बन्द हो गया तथा चन्दनके द्रवसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुर रूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके

---

१. श्रीभूतिः ।

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रालम्भिता प्राणसङ्गमम् । अश्रुसिक्तस्तनी तारं विललापातिदुःखिता ॥१४॥
हा तात क्व प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचनं मम । हा भ्रातः किमिदं जातं दीयतां दर्शनं सकृत् ॥१५॥
वनेऽतिभीषणे कष्टं रणाभिमुखतां गतः । भूगोचरैः कथं तात मरणत्वमुपाहृतः ॥१६॥
शोकाकुलजनाकीर्णे जाते श्रीशैलवेश्मनि । नीतो नर्मदया दूतः प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
पितुर्भ्रातुश्च दुःखेन तप्ता चन्द्रनखात्मजा । कृच्छ्रेण शमनं नीता सद्भिः प्रशमकोविदैः ॥१८॥
जिनमार्गप्रवीणासौ बुद्ध्वा संसारसंस्थितिम् । लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
अन्येद्युर्दूतमाहूय पवनञ्जयनन्दनः । अपृच्छच्छोकसंस्पृष्टः मौललोकसमावृतः ॥२०॥
निःशेषं वद दूत यद्वृत्तं तन्निवेदय साम्प्रतम् । इत्युक्त्वा कारणं मृत्योः खरदूषणमस्मरत् ॥२१॥
ततोऽस्य क्रोधसंरुद्धसर्वाङ्गस्य महाद्युतेः । भ्रूस्तरङ्गवती रेजे तडिद्रेखेव चञ्चला ॥२२॥
ततस्त्रासपरीताङ्गो मुहुर्दूतः प्रतापवान् । जगाद मधुरं प्राज्ञः कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥
ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपतेः परम् । दयितादुःखमुत्पन्नं तत्समाकारहेतुकम् ॥२४॥
आर्तस्तेन स दुःखेन पद्मं शरणमागमत् । प्रतीक्ष्य सोऽर्तिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गतः ॥२५॥
सुग्रीवाकृतिचौरेण समं तत्र महानभूत् । चिरं श्रान्तमहायोधः संग्रामः श्वसुरस्य ते ॥२६॥
उत्थाय पद्मनाभेन ततो भूयो महौजसा । तस्याहूतस्य नष्टासौ वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
ततः साहसगत्याख्यः स्वस्वभावं समाश्रितः । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्मृत्युं नीतः शिलीमुखैः ॥२८॥

रुदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाओंके हजारों तार कोणके ताड़नको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥१३॥ तदनन्तर अनंगकुसुमा बड़े कष्टसे प्राणोंके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई। सचेत होने पर अश्रुओंसे स्तनोंको सिक्त करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात! तुम कहाँ गये मुझे वचन देओ—मुझसे वार्तालाप करो। हाय भाई! यह क्या हुआ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात! अत्यन्त भयंकर वनमें रणके सन्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनंगकुसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थान पर ले गई ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे संतप्त चन्द्रनखाकी पुत्री अनंगकुसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त कराई गई ॥१८॥ जिन मार्गमें प्रवीण अनंगकुसुमाने संसारकी स्थिति जानकर लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मौलवर्गसे परिवृत श्रीशैल—हनुमानने दूतको बुलाकर पूछा कि 'हे दूत! खरदूषणकी मृत्युका जो कुछ कारण हुआ है वह सब कहो, यह कह कर हनुमान् खरदूषणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमान्की फड़कती हुई भौंह चञ्चल बिजली की रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान्ने हनुमान्का क्रोध दूर करनेवाले निम्नाङ्कित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति सुग्रीवको उसीके समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण स्त्रीसम्बन्धी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुखी हुआ सुग्रीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुग्रीवका, उसकी आकृतिके चौर—कृत्रिम सुग्रीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महा-युद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललकारा। उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेतालीविद्या थी वह नष्ट हो गई ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जातः पवननन्दनः । पुनरुक्तं जगौ तुष्टः विकसन्मुखपङ्कजः ॥२९॥
कृतं कृतमहो साधु प्रियं पद्मेन नः परम् । यत्सुग्रीवकुलं मज्जदकीर्तौ क्षिप्रमुद्धृतम् ॥३०॥
हेमकुम्भोपमं गोत्रं अयशःकूपगह्वरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिनोद्धृतम् ॥३१॥
एवमादिपरं भूरि प्रशंसन् रामलक्ष्मणौ । कस्मिन्नपि ममज्जासौ सारसौख्यमहार्णवे ॥३२॥
श्रुत्वा पङ्कजरागायाः पितुः शोकपरिक्षयम् । उत्सवः सुमहान् जातो दानपूजादिसंस्तुतः ॥३३॥
उद्वेगानन्दसम्पन्नं हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रीशैलभवनं जातं रसद्वयसमुत्कटम् ॥३४॥
एवं विषमतां प्राप्ते स्वजने पावनञ्जयिः । किञ्चित्समत्वमाधाय किष्किन्धाभिमुखं ययौ ॥३५॥
ऋध्याभिगच्छतस्तस्य बलेनात्यर्थभूरिणा । जगदन्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्जितम् ॥३६॥
विमानं सुमहत्तस्य[1] मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रभां दिवसरत्नस्य[2] जहार स्वमरीचिभिः ॥३७॥
गच्छन्तं तं महाभाग्यं शतशो बन्धुपार्थिवाः । अनुजग्मुः सुनासीरं यथा त्रिदशपुङ्गवाः ॥३८॥
अग्रतः पृष्ठतश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वनैः । गच्छतां खेचरेन्द्राणामासीच्छब्दमयं नभः ॥३९॥
चित्रमासीद्यदश्वानां विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजानां च विलासः स्वतनूचितः ॥४०॥
महातुरङ्गसंयुक्तैः रथैरुच्छ्रितकेतुभिः । विहायसस्तलं जातं मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥४१॥
सितानामातपत्राणां मण्डलेन महीयसा । जातं[3] कुमुदखण्डानामिव पूर्णं वियत्तलम् ॥४२॥

प्राप्त हो गया, सबकी पहिचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया। प्रसन्नतासे उसका मुखकमल खिल उठा और संतुष्ट हो कर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्तिमें डूबते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया। ॥२९-३०॥ स्वर्ण कलशके समान सुग्रीवका कुल अपयश रूपी कूपके गर्तमें पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिके धारक रामने गुण रूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करता हुआ हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमानकी दूसरी स्त्री सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका क्षय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ उसने दान पूजा आदिके द्वारा महा उत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्के भवनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था। वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था। इस प्रकार दो स्त्रियोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विषमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान कुछ-कुछ मध्यस्थताको धारण कर किष्किन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमान्की बहुत बड़ी सेनासे उस समय संसार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ों मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम देव चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे पीछे और दोनों ओर चलने वाले विद्याधर राजाओंकी जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलने वाले उसके घोड़ोंसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥४०॥ जिनमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिन पर पताकाएं फहरा रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षोंसे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोंके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदोंके

१. सुमहत् तस्य । २. सूर्यस्य । ३. च कुन्द म० ।

गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनिः । चक्रवालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिघनः स्थितः ॥४३॥
सङ्कुलं चलता तेन सैन्येन गगनाङ्गणम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु व्यलोक्यते ॥४४॥
भासां भूषणजातानां बहुवर्णयुजां चयैः[1] । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नभो वस्त्रमिवाभवत् ॥४५॥
ध्वनिं मारुतितूर्यस्य श्रुत्वा सन्नद्ध गह्वरम् । तोषं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽब्दध्वनिं यथा ॥४६॥
कृतापणमहाशोभं ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किष्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥
बहुभिः पूज्यमानोऽसौ विभवैस्त्रिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्म सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च यथार्हं रचितादरः । कथितं चाखिलं तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥
अनेनैव ततो युक्ताः सुग्रीवाद्या नरेश्वराः । धारयन्तः परं हर्षं पद्मनाभमुपाययुः ॥५०॥
अपश्यच्च नरश्रेष्ठं तं लक्ष्मीधरपूर्वजम् । नीलकुञ्चितसूक्ष्मातिस्निग्धकेशं मरुत्सुतः ॥५१॥
लक्ष्मीलताविषक्ताङ्गं कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्तं कान्तिपङ्केन[2] पुष्करम्[3] ॥५२॥
नयनानां समानन्दं मनोहरणकोविदम् । अपूर्वकर्मणां सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
ज्वलद्विशुद्धरुक्माम्बुरुहगर्भसमप्रभम् । [4]मनोज्ञा गतनासाग्रं सङ्गतश्रवणद्वयम्[5] ॥५४॥
मूर्तिमन्तमिवानङ्गं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतभ्रुवं पूर्णशारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
बिम्बप्रवालरक्तोष्ठं कुन्दश्वेतद्विजावलिम् । कम्बुकण्ठं मृगेन्द्राभवक्षोभाजं महाभुजम् ॥५६॥

समूहसे ही व्याप्त हो ॥४२॥ दूसरोंकी ध्वनिको नष्ट करने वाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप्त आकाशाङ्गण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूषणोंके समूहकी कान्तिसे रँगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रँगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार संतोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघका शब्द सुनकर मयूर संतोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किष्किन्ध नगरके बाजारोंमें महाशोभा की गई; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोंने बड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल महलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदरकर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुग्रीव आदि राजा परमहर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अग्रज थे, जिनके केश काले, घुँघराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥ जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालसूर्यके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्ति-रूपी पङ्कके द्वारा आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुएके समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्ण-कमलके भीतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथव सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौंह चढ़े हुए धनुषके समान नम्रीभूत थी, जिनका मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका ओंठ बिम्ब अथवा मूँगा या किसलयके समान

१. वर्यैः म० । २. कान्तिपद्मेन । ३. पुष्कलम् ख० । ४. मनोज्ञां गतनासाग्रं । ५. सङ्गतं श्रवणद्वयम् म० ।

श्रीवत्सकान्तिसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवल्क्षाममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
प्रशान्तगुणसम्पूर्णं नानालक्षणभूषितम् । सुकुमारकरं वृत्तपीवरोरुद्वयस्तुतम् ॥५८॥
कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमारकमद्वयम् । चन्द्रांकुरारुणच्छायानखपंक्तिसमुज्ज्वलम् ॥५९॥
अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं वज्रसङ्घातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव कृत्वा विनिर्मितम् ॥६०॥
महाप्रभावसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनावियोगेन बालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥
शच्येव रहितं शक्रं रोहिण्येव विना विधुम्। रूपसौभाग्यसम्पन्नं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥
शौर्यमाहात्म्यसंयुक्तं मेधादिगुणसंयुतम् । एवंविधं समालोक्य मारुतिः क्षोभमागतः ॥६३॥
अचिन्तयच्च सम्भ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालसमालिङ्गितविग्रहः ॥६४॥
श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठः स्थितो वशे ॥६५॥
यस्यालोक्य तदा संख्ये[1] छत्रं शीतांशुसन्निभम् । सा साहसगतेर्माया वैताली परिनिःसृता ॥६६॥
दृष्ट्वा वज्रधरं [2]पूर्वं हृदयं यन्न कम्पितम् । तदद्य मम दृष्ट्वैनं संक्षोभं परमं गतम् ॥६७॥
इति विस्मयमापन्नः समनुसृत्य तान् गुणान् । ससार [3]पावनिः पद्मं श्रीमदम्भोजलोचनम् ॥६८॥
दूरादुत्थाय दृष्ट्वैवं पद्मलक्ष्मीधरादिभिः । असौ प्रहृष्टचेतोभिः परिष्वक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥
परस्परं समालोक्य सम्भाष्य विनयोचितम् । उपधानविचित्रेषु [4]स्वासनेष्ववतस्थिरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शङ्खके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वक्षःस्थलके धारक थे, महाभुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनों जाँघें गोल तथा स्थूल थीं ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कछुवेके पृष्ठभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अङ्कुरोंसे लाल-लाल दीखनेवाली नखावलीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रितकर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्षके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके विरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेधा-सद्‌बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे। ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् क्षोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिङ्गित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य छत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गई ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ वह आज इन्हें देखकर परम क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठाकर यथाक्रमसे इसका आलिङ्गन किया ॥६९॥ परस्पर इक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालापकर सब

१. युद्धे । २. सर्वं म० । ३. पवनस्यापत्यं पुमान् पावनिः हनुमान् । ४. स्वासनेष्ववतस्थिरे ।

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरभूषितभुजो ज्वलंल्लक्ष्म्या समन्ततः ॥७१॥
[1]स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । रराज वरहारेण सोडुचन्द्र इवोद्गतः ॥७२॥
दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डली । सुमित्रातनयो रेजे सतडिज्जलदो यथा ॥७३॥
वानराभोगमुकुटः[2] सुरवारणविक्रमः । अभात्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोर्जितः ॥७४॥
विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलक्ष्यत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवौजसा[3] ॥७५॥
हनूमानप्यलं रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । समीपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
[4]सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यैरलङ्कारैश्च भूषितौ । अङ्गाङ्गदाव[5] भासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
नलनीलप्रभृतयः शतशोऽन्ये च पार्थिवाः । आसीना रेजुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
पञ्चसद्गन्धताम्बूलगन्धसङ्गतमारुता । विभूषणकृतोद्योता सा सभेन्द्रसभोपमा ॥७९॥
विस्मित्य सुचिरं रामं प्रीतः पावनिरब्रवीत् । समक्षं न गुणा ग्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरीदृशी । किमपि प्रियवक्तॄणां प्रत्यक्षगुणकीर्तनम्[6] ॥८१॥
आसीद्यस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्माभिरूर्जितम् । दृष्टः सत्त्वहितः स त्वं सत्त्ववान् चक्षुषा स्वयम् ॥८२॥
सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

नाना प्रकार तालियोंसे सुशोभित अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान् थे जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१–७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करने वाले तथा हार केयूर और कुण्डलोंसे अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—ऐरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रक्खा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥ अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान् बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अङ्ग और अङ्गद यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इन्द्रकी सभा के समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमानने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता हैं उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥८०–८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रक्खा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८२॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

१. स्वस्थ म० । २. मुकुटमुखारण म० । ३. -मित्रौजसः म० । ४. सुगन्ध्य म० । ५. ववासन्तौ म० ख०, क० । ६. कीर्तिराम ख० ।

धनुर्लम्भोदये लब्धः सहस्रामररक्षिते । सीतास्वयंवरेऽस्माभिः श्रुतस्तव पराक्रमः ॥८४॥
पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डलः सुहृत् । भ्राता यस्य च सौमित्रिः स त्वं राम जगत्पतिः ॥८५॥
अहो शक्तिरहोरूपमेष नारायणः स्वयम् । समुद्रावर्तचापेशो यस्याज्ञाकरणे रतः ॥८६॥
अहो धैर्यमहो त्यागो यत्पितुः पालयन् वचः । महाप्रतिभयाकारं प्रविष्टो दण्डकं वनम् ॥८७॥
एतन्न कुरुते बन्धुस्तुष्टश्च त्रिदशाधिपः । अहो त्वया नाथ कृतं यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
सुग्रीवरूपसम्पन्नं हत्वा संयति साहसम् । यत्कपिध्वजवंशस्य कलङ्को दूरमुज्झितः ॥८९॥
विद्याबलविधिज्ञैर्यस्य मायामयं वपुः । अस्माभिरपि नो सह्यं दुर्जयं च विशेषतः ॥९०॥
तेन सुग्रीवरूपेण गृहीतुं प्लावगं बलम् । दर्शनादेव युष्माकं तद्रूपं तस्य निःसृतम् ॥९१॥
कर्तुं प्रत्युपकारं यो न शक्तोऽत्युपकारिणः । सुलभां भावशुद्धिं स तस्मै न कुरुते कुतः ॥९२॥
का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु भवेदेकमपि क्षणम् । यः कृतस्योपकारस्य विशेषं नावबुध्यते ॥९३॥
स्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृणः । असम्भाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः ॥९४॥
स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्यं वयमनन्यगाः । सर्वे समुद्यताः कर्तुमुपकारं तव प्रभो ॥९५॥
गत्वा प्रबोधयिष्यामि त्रिकूटाधिपतिं बुधम् । तव पत्नीं महाबाहो त्वरावानानयाम्यहम् ॥९६॥
सीताया वदनाम्भोजं प्रसन्नेन्दुमिवोदितम् । सन्देहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं पश्यसि राघव ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोंकी आकर अर्थात् खान अथवा समुद्र हैं। आपके शुक्ल यशसे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ ! वज्रावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत्के स्वामी राजा राम हैं ॥८५॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुपका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८६॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८७॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहसगतिको युद्धमें मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्याबलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिने वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०–९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जब कि यह भावशुद्धि बिलकुल ही सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नहीं जानता है उसकी एक क्षणके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९३॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोंसे निरन्तर वार्तालाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमें न जाकर आपकी ही शरणमें आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उद्यत हैं ॥९५॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावणको समझाऊँगा। वह बुद्धिमान् है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापिस ले आता हूँ ॥९६॥ हे राघव !

१. धनुर्लाभाद्द्रये लब्धे म० ।

मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्ततो वाक्यं परं हितम् । वत्स वत्स मरुत्पुत्र त्वमेकोऽस्माकमाश्रयः ॥९८॥
अप्रमत्तेन गन्तव्यं लङ्कां रावणपालिताम् । न विरोधः क्वचित् कार्यः कदाचित् केनचित्सह ॥९९॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य तं सम्प्रस्थितमुन्नतम् । विलोक्य परमां प्रीतिं पद्मनाभः समागमत् ॥१००॥
पुनः पुनः समाहूय मारुतिं[1] चारुलक्षणम् । सर्वादरं जगादेदं स्फीता[2] राजीवलोचनः ॥१०१॥
मद्वाक्यादुच्यतां सीता त्वद्वियोगात् स राघवः । अधुना विन्दते साध्वि न मनोनिर्वृतिं क्वचित् ॥१०२॥
अत्यन्तं तदहं मन्ये हतं पौरुषमात्मनः । प्रतिरोधं प्रपन्नासि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥१०३॥
वेद्मि निर्मलशीलाढ्या यथा त्वं मदनुव्रता । जीवितं[3] वाञ्छसि त्यक्तुं मद्वियोगेन दुःखिता ॥१०४॥
अलं तथापि सद्वक्त्रे दुःसमाधानमृत्युना । धार्यन्तां मैथिलि[4] प्राणा न जीवं त्यक्तुमर्हसि ॥१०५॥
दुर्लभः सङ्गमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गतः ॥१०६॥
दुर्लभादप्यलं तस्मान्मरणं सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेदं तुषनिःसारमीक्षितम् ॥१०७॥
इदं च प्रत्ययोत्पादि प्रियायै मम जीवतः । सततं संस्तुतं देवमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥१०८॥
वायुपुत्र द्रुतं गत्वा सीतायास्तं महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकरं चूडामणिमिहानय ॥१०९॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुटो नत्वा सौमित्रिं च समाञ्जलिः[5] ॥११०॥
बहिर्विनिर्ययौ हृष्टः पूर्यमाणो विभूतिभिः । क्षोभयन् तेजसा सर्वं सुग्रीवभवनाजिरम् ॥१११॥

इसमें संदेह नहीं कि तुम उदित हुए चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥९७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमन् ! हम लोगोंका आधार एक तू ही है ॥९८॥ अतः तुझे सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥९९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनूमान् लंकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥१००॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्षणोंके धारक हनूमान्को बार-बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साध्वि ! इस समय राम तुम्हारे वियोगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥१०१–१०२॥ मेरे रहते हुए भी जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥१०३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोगसे दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी खोटे परिणामोंसे मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि ! प्राण धारण करो । जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥१०४–१०५॥ सर्व वस्तुओंका पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के मुखारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥१०६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरणके बिना यह जीवन तुषके समान साररहित देखा गया है ॥१०७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदाकी परिचित उत्तम अंगूठी उसे दे देना ॥१०८॥ तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महा कान्तिमान् चूड़ामणि यहाँ ले आना ॥१०९॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कह कर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया। उस समय वह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियोंसे युक्त था और अपने तेजसे सुग्रीवके भवन-

१. चारुतामरसेक्षणम् ज० । २. कमलनेत्रः स्फीत्या राजीवलोचनः म० । ३. जीवितुं म० । ४. मैथिली म० । ५. कृताञ्जलिः म० ।

सन्दिदेश च सुग्रीवं यावदागमनं मम । स्थातव्यं तावदत्रैव प्रमादपरिवर्जितैः ॥११२॥
विमानं चारुशिखरमारूढो मारुतिस्ततः । विभाति मस्तके मेरोश्चैत्यालय इवोज्ज्वलः ॥११३॥
प्रययौ परया द्युत्या सितच्छत्रोपशोभितः । विलसद्धंससङ्काशैश्चामरैरुपजीवितः ॥११४॥
वायुशावसमैरश्वैर्जङ्गमाद्रिसमैर्गजैः । सैन्यैस्त्रिदशसङ्काशैर्जगाम परितो वृतः ॥११५॥
एवं युक्तो महाभूत्या रामादिभिरुदीक्षितः । समाक्रम्य रवेर्मार्गमयासीत्सुनिरन्तरम् ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तुवर्गैर्नानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।
कश्चित्तु तेषां परमार्थकृत्ये नियुज्यते यत्परमं यशस्तत् ॥११७॥
कृतं परेणाप्युपकारयोगं स्मरन्ति नित्यं कृतिनो मनुष्याः ।
तेषां न तुल्यो भुवने शशाङ्को नवा कुबेरो न रविर्न शक्रः ॥११८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थानं नाम एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व ॥४९॥

सम्बन्धी समस्त आंगनको क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०–१११॥ उसने सुग्रीवसे कहा कि जब तक मैं न आ जाऊँ तब तक आप सबको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमान पर आरूढ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्पश्चात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया। उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हंसोंकी समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह वायुके समान वेगशाली घोड़ों, चलते-फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवोंके समान सैनिकोंसे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरको दृष्टिकर देख रहे थे, ऐसा वह हनूमान् सूर्यके मार्गका उल्लङ्घन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारके उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है उनमेंसे कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यमें लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें हनूमान्‌के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४९॥

१. -द्धंश- म० । २. वायुवेग म० । ३. जगामाद्रि- म० ।

पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाञ्जनो गच्छन्नम्बरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमानिनीषुरराजत[1] ॥१॥
सुहृदाज्ञाप्रवृत्तस्य विनीतस्य महात्मनः । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्सवः कोऽपि चेतसः ॥२॥
पश्यतः प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशां मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
लङ्कां[2] जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगरं दृष्टेरभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
वेदिकापुण्डरीकाभैः प्रासादैः शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थितं मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥
वज्रपाणेरिवामुष्य[3] तस्मिन् वालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
इदं शिखरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुरं स्थितम् । महेन्द्रको नृपो यत्र दुर्मतिः सोऽत्रतिष्ठते ॥७॥
दुःखतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुक्षिवासं दुरात्मना ॥८॥
एषाऽसौ विजनेऽरण्ये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पर्यङ्कयोगयुक्तात्मा नाम्नामितगतिः स्थितः[4] ॥९॥
अस्यां भगवता तेन साधुवाक्यैः कृपाकृता । माता मां जनिताश्वासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
श्रुतं केसरिजं कृच्छ्रं श्रुत्वा[5] मातुरुपप्लवम् । साधोश्च सङ्गमं सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥
मातरं शरणं प्राप्तां मम निर्वास्य यः कृती । व्यसनप्रतिदानेन महेन्द्रं किन्तु[6] तं भजेत् ॥१२॥
अहंयुरयमत्यन्तं मां किल द्वेष्टि सन्ततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्वमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनूमान् आकाशमें जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहिन सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र—श्रीरामकी आज्ञामें प्रवृत्त, विनयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमानके हृदयमें उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमें स्थित हनूमान् जब प्रौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लङ्काकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनूमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखर पर स्थित था तथा वेदिका पर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमें इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमें हनूमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखर पर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दुःखसे भरी मेरी माता इसके नगर आई पर इस दुष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामें-जिसमें कि पर्यंक योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे-रहीं। इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम वचनोंके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोंसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामें माताको सिंहसे उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल कर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मैं कष्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ ॥१३॥

१. -नभीपुः रराज सः म०, ब० । २. लङ्का म० । ३. मुख्यस् म० । ४. स्थिताः म० । ५. तुरुपप्लम् म० । ६. किन्तु न थजेत् म०, क० ।

प्रलम्बाम्बुदवृन्दोरुनादा दुन्दुभयस्ततः । महालम्पाकभेर्यश्च पटहाश्च समाहताः ॥१४॥
ध्माताः शङ्खा [1]जगत्कम्पा भटैरुत्कटचेष्टितैः । युद्धशौण्डैः समुत्क्रुष्टं समुल्लासितहेतिभिः ॥१५॥
श्रुत्वा परबलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वसेनया । प्रत्यैच्छत विनिःक्रम्य मेघवृन्दमिवाचलः ॥१६॥
[2]सम्प्रहारैस्ततो लग्नैर्दष्ट्वासीदक्षितं बलम् । चापमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्राप्तश्छत्री रथस्थितः ॥१७॥
हनूमानिषुभिस्तस्य धनुस्तिसृभिरायतम् । चिच्छेद गुप्तिभिर्योगी यथामानं समुत्थितम् ॥१८॥
चापं यावद्द्वितीयं स गृह्णात्याकुलमानसः । शरैस्तावद्रथान्मुक्ताः प्रचण्डास्तस्य वाजिनः ॥१९॥
रथात्ते विगताः शीघ्राश्चपला बभ्रमुर्भृशम् । हृषीकाणीव मनसो [3]मुक्तानि विषयैषिणः ॥२०॥
माहेन्द्रिरथ सम्भ्रान्तो विमानं वरमाश्रितः । तदप्यस्य शरैर्लुप्तं मतं दुष्टमतेरिव ॥२१॥
माहेन्द्रिर्मुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतत्रिचक्रकनकैर्युयुधेऽलातभासुरैः ॥२२॥
विद्ययाऽनिलपुत्रोऽपि तं शस्त्रौघमवारयत् । यथात्मचिन्तया योगी परीषहकदम्बकम् ॥२३॥
निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽसावास्तृणानो महाग्निवत् । गृहीतो वायुपुत्रेण गरुडेनेव पन्नगः ॥२४॥
प्राप्तरोधं सुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्रोधलोहितः । रथी मारुतिमभ्यार रामं सुग्रीवरूपवत् ॥२५॥
[4]अर्काभस्यन्दनः सोऽपि हारिहारो धनुर्धरः । शूराणामग्रणी दीप्तो मातुः पितरमभ्यगात् ॥२६॥

तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने घूमते हुए मेघ-समूहके समान उच्च शब्द करनेवाली दुन्दुभियाँ, महा विकट शब्द करनेवाली भेरियाँ और नगाड़े बजवाये ॥१४॥ उत्कट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगत्को कँपा देनेवाले शङ्ख फूँके तथा शस्त्रोंको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ पर बलको आया सुन, राजा महेन्द्र सब सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनूमान्के दलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथ पर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनूमान् तीन बाण छोड़ कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनूमान्ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चञ्चल घोड़े रथसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रथसे छूटे हुए वे चञ्चल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यकी मनसे छूटी हुई इन्द्रियाँ इधर-उधर घूमने लगती हैं ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र घबड़ा कर उत्तम विमान पर आरूढ हुआ सो हनूमान्के बाणोंसे वह विमान भी उस तरह खण्डित हो गया जिस तरह कि किसी दुर्बुद्धिका मत खण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनूमान्ने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्र समूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मध्यानके द्वारा परीषहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्र पुत्रको हनूमान्ने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथ पर सवार हो हनूमान्के सन्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सन्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी था, शूरोंमें श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनूमान् भी माताके पिता राजा

१. जगत्पका म० । २. सम्प्रहारे ततो लग्ने ज० । ३. मुक्ता निर्विषयैषिणः म० । ४. अर्काभः स्पन्दनः म० ।

तयोरभून्महत्संख्यं क्रकचासिशिलीमुखैः । परस्परकृताघातं वायुवश्याब्दयोरिव[1] ॥२७॥
सिंहाविव महारोषौ [2]तावुद्धतबलान्वितौ । ज्वलत्स्फुलिङ्गरक्ताक्षौ श्वसन्तौ भुजगाविव ॥२८॥
परस्परकृताक्षेपौ गर्वहासस्फुटस्वनौ । धिक् ते शौर्यमहोयुद्धमित्यादिवचनोद्यतौ ॥२९॥
चक्रतुः परमं युद्धं मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुर्निजैः ॥३०॥
महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसङ्गतः । क्रोधस्फुरितदेहश्रीर्मुमोचायुधसंहतिम् ॥३१॥
भुशुण्डीः परशून् बाणान् शतघ्नीर्मुद्गरान् गदाः । शिखराणि[3] च शैलानां शालन्यग्रोधपादपान् ॥३२॥
एतैरन्यैश्च विविधैरायुधौघैर्मरुत्सुतः । न विव्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकैः ॥३३॥
तद्दिव्यमायया सृष्टं शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेन वायुसूनुरचूर्णयत् ॥३४॥
उत्पत्य च रथे तस्य निपत्य सुमहाजवः । ककुप्करिकराकारकराभ्यां कृतरोधनम् ॥३५॥
मातामहं समादाय बलं बिभ्रदनुत्तमम् । दत्तसाधु[4]स्वनः शूरैः समारोहन्निजं रथम् ॥३६॥
उल्कालाङ्गूलपाणिं तं दौहित्रं परमोदयम् । प्रशंसितुं समारब्धो महेन्द्रः सौम्यया गिरा ॥३७॥
अहो ते वत्स माहात्म्यं परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वमासीदिदानीं तु नियतं प्रत्यक्षगोचरम् ॥३८॥
आसीद्देवेन्द्रयुद्धेऽपि निर्जितो यो न केनचित् । विजयार्धनगस्योर्द्धंमहाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

महेन्द्रके सम्मुख गया ॥२६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोंमें जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनोंमें करोंत, खड्ग तथा बाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहोंके समान महाक्रोधी तथा उत्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोंके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान साँसें भर रहे थे—फुँकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहङ्कारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर-वीरताको धिक्कार है, अहो ! युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगोंसे कभी हा-हाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनूमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥२८-३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसे संगत था और क्रोधसे जिसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनूमानके ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुशुण्डी, परशु, बाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सागौन तथा वटके वृक्ष उसने हनूमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनूमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंकी उस वर्षाको पवन-पुत्र हनूमानने अपनी उल्का-विद्याके प्रभावसे चूर-चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान विशाल हाथोंसे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनूमानने मातामह महेन्द्रके रथपर उछलकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया। शूर वीरोंने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ हो गया ॥३५-३६॥ वहाँ जिसकी विक्रियाकृत लाङ्गल और हाथोंसे उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनूमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रक्खा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥३८॥ विजयार्ध पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आकुल इन्द्र

१. वायुवशंगतमेघयोरिव । २. -मुद्धृतबलान्वितौ म० । ३. शिखरिणि च म० । ४. साधुः स्वनः म० ।

असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यसङ्गतः । त्वया पराजितः प्राप्तो रोधुं चित्रमिदं परम् ॥४०॥
अहो पराक्रमो भद्र तव धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनौपम्यमहो संग्रामशौण्डता ॥४१॥
प्रजातेन त्वया वत्स महानिश्चययोगिना । कुलमुद्योतितं सर्वमस्मदीयं सुकर्मणा ॥४२॥
विनयाद्यैर्गुणैर्युक्तो राशिः परमतेजसः । कल्याणमूर्तिरत्यर्थं कल्पवृक्षस्त्वमुद्गतः ॥४३॥
जगतो गुरुभूतस्त्वं बान्धवानां समाश्रयः । दुःखादित्यप्रतप्तानां समस्तानां घनाघनः ॥४४॥
इति प्रशस्य तं स्नेहादुद्गताश्रुश्चलत्करः । अजिघ्रन्मस्तके नप्त्रं पुलकी परिषस्वजे ॥४५॥
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमार्यं विहिताञ्जलिः । क्षतितिक्षद्विनीतात्मा क्षणाद्यातोऽन्यतामिव[1] ॥४६॥
मया शिशुतया किञ्चिदार्य यत्ते[2] विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्तं मे प्रतीक्ष्य[3] क्षन्तुमर्हसि ॥४७॥
समस्तं च समाख्यातं तेनागमनकारणम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनमादृतम् ॥४८॥
अहमार्य गमिष्यामि त्रिकूटमतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गच्छ कार्यं दाशरथेः कुरु ॥४९॥
इत्युक्त्वा वायुसम्भूतः खमुत्पत्य ययौ सुखम् । त्रिकूटाभिमुखः क्षिप्रं सुरलोकमिवामरः ॥५०॥
गत्वा महेन्द्रकेतुश्च तनयां नयकोविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वत्सलः समपूजयत् ॥५१॥
मातापितृसमायोगं सोदरस्य च दर्शनम् । अञ्जनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमां धृतिम् ॥५२॥
महेन्द्रं निभृतं श्रुत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽगमत् । विराधितप्रभृतयस्तोषमाययुरुत्तमम् ॥५३॥

विद्याधरके युद्धमें भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है॥३९-४०॥ अहो भद्र! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोंसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, बान्धवजनोंका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँघा और रोमाञ्चित हो उसका आलिङ्गन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनूमान्ने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमें ऐसा हो गया मानो अन्य रूपताको ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥ उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावश्यक कारणसे त्रिकूटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनूमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचलकी ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीति निपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्र केतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अंजनाका सम्मान किया ॥५१॥ अंजना सुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्तकर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुग्रीव उसे लेनेके लिए सन्मुख गया तथा विराधित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥५३॥

१. क्षणाद्यातोऽन्यतामिव म० । २. दत्ते म० । ३. हे पूज्य ।

वंशस्थवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचारुतेजसाम् ।
महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५४॥
ततः समन्तादनुपाल्य मानसं जना यतध्वं सततं सुकर्मणि ।
फलं यदीयं समवाप्य पुष्कलं रवेः समानामुपयाथ दीप्तताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोंका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बलशाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनकी रक्षाकर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रकी पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीशैलस्य वियत्युच्चैर्विमानस्थस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुखं नाम प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुरं परममायामि[1] चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥
नवमेघप्रतीकाशैरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनक्षत्राम्बरोपमाः ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिताः । पद्मोत्पलादिभिश्छन्ना यत्र भान्ति क्वचित् क्वचित् ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे[2] तु देशे नगरगोचरात् । बृहत्तृणलतावल्लीद्रुमकण्टकसङ्कटे ॥५॥
शुष्कागकृतसंरोधे रौद्रश्वापदनादिते । [3]घोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृक्षौघे महाभयसमावहे । विशुद्धक्षारसरसि कङ्कगृध्रादिसेविते ॥७॥
[4]दुर्वने विजने राजन्[5] साधुयुग्मं नभश्चरम् । अष्टाहं लम्बितभुजं योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य क्रोशचतुर्भागमात्रदेशे व्यवस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥
तप्यन्ते विधिवद्घोरं तपस्तिस्रः सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्येव नवभूषणतां गताः[6] ॥१०॥
अथासौ साधुयुगलं ग्रस्यमानं महाग्निना । अञ्जनातनयोऽपश्यन् पादपद्वयनिश्चलम् ॥११॥
असमाप्तव्रताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उद्गमद्धूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्तिना[7] ॥१२॥
अथातस्थौ सनिर्ग्रन्थौ युक्तयोगौ शिवस्पृहौ । त्यक्तारागादिसङ्कल्पौ निरस्तांशुकभूषणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनूमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोंसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो दहीके समान सफ़ेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोंसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो बड़े-बड़े तृणों, लताओं, वेलों, वृक्षों और काँटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षोंसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोंसे सहित था, कङ्क, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था। गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस वनमें दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे। उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं ॥६-८॥ उन मुनियोंसे पावकोश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रहीं थी, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं। और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल खड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायाति म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. घोरे पतिरुपाकारे म० । ४. दुर्जने म० । ५. राजन् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमद्रूम- म० ।

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तार्पितसद्दृष्टी[1] प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥१४॥
मृत्युर्जीवननिःकांक्षावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासक्तौ समपाषाणकाञ्चनौ ॥१५॥
दावेन[2] महता राजन् तेनात्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्यं कर्तुमुद्यतः ॥१६॥
आकृष्य सागरजलं मेघहस्तः ससम्भ्रमः । अवर्षदुन्नतो व्योम्नि परमं भक्तिसङ्गतः ॥१७॥
सुभृशं तेन वह्निः स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः क्षान्तिभावेन साधुना ॥१८॥
यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥
तावत्ताः सिद्धसंसाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥
प्रणेमुश्च समं तेन साधू[3] ध्यानपरायणौ । विनयान्वितया बुद्ध्या प्रशशंसुश्च मारुतिम् ॥२१॥
अहो जिनेश्वरे भक्तिर्व्रजता क्वापि यद्द्रुतम् । त्वया तात परित्राता वयं साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनाप्तो न योगिभ्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥
अथाञ्जनात्मजोऽपृच्छदेवं संशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये[4] का वनेऽत्यन्तभीषणे ॥२४॥
अवोचज्ज्यायसी तासां पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिस्रोऽमरासुताः ॥२५॥
प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य वल्लभाः ॥२६॥

हनुमान्‌के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई। तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रक्खी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और काञ्चनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन्! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३–१६॥ भक्तिसे भरे हनूमान्‌ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस बरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनूमान् जबतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९–२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंको हनूमान्‌के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्‌की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१–२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रञ्चमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया। अहो! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्‌ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन हैं? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है। हम सभी

१. युगान्तावित-म० । २. दानेन म० । ३. साधु म० । ४. कानने ख०, म० । कुवने क० ।

यावन्तो भुवने केचिद्विजयार्द्धादिसम्भवाः । विद्याधरकुमारेन्द्राः कुलपुष्करभास्कराः ॥२७॥
तेऽस्मदर्थे शिवं क्वापि न विन्दन्तेऽर्थिनो भृशम् । दुष्टस्त्वङ्गारको नाम तापं धत्ते विशेषतः ॥२८॥
अन्यदापरिपृष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केषु [1]भव्या दुहितरो मम ॥२९॥
सोऽवोचत् साहसगतिं यो हनिष्यति संयुगे । आसां कतिपयाहोभी रमणोऽसौ भविष्यति ॥३०॥
निशम्यामोघवाक्यस्य मुनेस्तद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय स्मेरमाननम् ॥३१॥
कस्त्वसौ भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्धोत्तरश्रेणीश्रेष्ठं यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
अथवा न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
चिरं प्रार्थ्यमानोऽपि यदासौ लब्धवान्न [2]नः । तदास्मद्दुःखचिन्तास्थः सञ्जातोऽङ्गारकेतुकः ॥३४॥
ततः प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथः । द्रक्ष्यामस्तं कदा वीरमिति साहससूदनम् ॥३५॥
एतच्च वनमायाता दारुणद्रुमसङ्कटम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्यां साधयितुं [3]पराम् ॥३६॥
दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
अङ्गारकेतुना तेन वीक्षिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेता दश दिशः क्षणात् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरीकृताः ॥३९॥
षड्भिः संवत्सरैः साग्रैर्यद्दुःसाध्यं प्रसाध्यते । दृत्वाङ्गमुपसर्गस्य तदद्यैव हि साधितम् ॥४०॥
इहापदि महाभाग नाभविष्यद् भवान् यदि । अधक्ष्याम हि योगिभ्यां सहारण्ये ततो ध्रुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्ध आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं। उन कुमारोंमें अङ्गारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन्! मेरी पुत्रियाँ किन स्थानोंमें जावेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिको मारेगा वह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसारमें इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिको मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर माता-पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगी ॥३५॥ हम तीनों कन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृक्षोंसे युक्त इस वनमें आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली अग्निसे पिञ्जर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छः वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥ हे महाभाग! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

१. भर्ता म० । २. अस्मान् न सः म० । लब्धवान्न ताः ख० । ३. परम् म० ।

साधु साध्विति संस्मित्य ततो मारुतिरब्रवीत् । [1]भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥४२॥
अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो भव्यत्वमुत्तुङ्गं येन विद्या प्रसाधिता ॥४३॥
आख्यातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनकारणम् ॥४४॥
ततश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजास्तमुद्देशं सहानुगः ॥४५॥
नभश्चरसमायोगे देवागमनसन्निभे । क्षणेन तद्वनं जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥४६॥
किष्किन्धं च पुरं गत्वा भूत्या दुहितृभिः समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥४७॥
ताश्च निस्सीमसौभाग्या विभूत्या परयान्विताः । उपनिन्ये पराः कन्या रामायाक्लिष्टकर्मणे ॥४८॥
एताभिरपराभिश्च सेव्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकीं पद्मो मेने शून्या दिशो दश ॥४९॥

अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरैः ।
विना [2]जनं मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५०॥
पुराकृतादतिनिचितात् समुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।
ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालाभाभिधानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनूमान्‌ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनूमान्‌ने रामके आगमनको आदि लेकर अपने यहाँ आने तक का समस्त वृत्तान्त ज्योंका त्यों विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुन कर महा तेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोंके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार क्षण भरमें वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले बड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रह कर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिये समर्पित की ॥४८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशों दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोंसे सहित, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलंकृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके विना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपार्जित तथा तीव्र रूपसे वन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रतिको प्राप्त होता है और उस रतिके कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्म रूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामको गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

---

१. 'भवतीनां श्रमः' इत्यारभ्य 'अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः ख० पुस्तके नास्ति । २. जनैः म० ।

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

असौ पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबलः। त्रिकूटाभिमुखोऽयासीत् सोमवन्मन्दरं प्रति ॥१॥
अथास्य व्रजतो व्योम्नि सुमहाकार्मुकाकृतिम्। [1]वक्रमेध्याप्रतीकाशं जातं सैन्यं निरोधवत्[2] ॥२॥
उवाच [3]च गतिः केन मम सैन्यस्य विघ्निता[4]। अहो विज्ञायतां क्षिप्रं कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥
किं स्यादसुरनाथोऽयं चमरो गर्वपर्वतः। आखण्डलः शिखण्डी वा नैषामेकोऽपि युज्यते ॥४॥
प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री शिखरेऽस्य महीभृतः। भवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्चरमविग्रहः[5] ॥५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वितर्ककृतवर्त्तनम्। मन्त्री पृथुमतिर्नाम वाक्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
निवर्त्तस्व [6]महाबुद्धे श्रीशैल ननु किं तव। क्रूरयन्त्रयुतो नायं[7] मायाशालो मतिं गतः ॥७॥
चक्षुस्ततो नियुज्यासावपश्यत्पद्मलोचनः। दुःप्रवेशं महाशालं विरक्तस्त्रीमनःसमम् ॥८॥
अनेकाकारवक्त्राढ्यं भीममाशालिकात्मकम्। त्रिदशैरपि दुर्ढौक्यं सर्वभक्ष्यं प्रभासुरम् ॥९॥
सङ्कटोत्कटतीक्ष्णाग्रक्रकचावलिवेष्टितम्। रुधिरोद्गारजिह्वाग्रसहस्रविलसत्तटम् ॥१०॥
स्फुरद्भुजङ्गविस्फारिफणाशूत्कारशब्दितम्। विषधूमान्धकारान्तज्वलदङ्गारदुःसहम् ॥११॥
यस्तं सर्पति मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धतः। निःक्रामति न भूयोऽसौ मण्डूकोऽहिमुखादिव ॥१२॥
लङ्काशालपरिक्षेपं सूर्यमार्गसमुन्नतम्। दुर्लङ्घ्यं दुर्निरीक्ष्यं च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
युगान्तकालमेघौघनिर्घोषसमभीषणम्। हिंसाग्रन्थमिवात्यन्तपापकर्मविनिर्मितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनूमान् त्रिकूटाचलके सन्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सन्मुख सोम चलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर आकाशमें चलते हुए हनूमान् की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गई और ऐसी जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघोंका समूह ही हो ॥ २ ॥ यह देख, हनूमान्‌ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥ ३ ॥ क्या यहाँ असुरोंका इन्द्र चमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेंसे यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पड़ता ॥ ४ ॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतकी शिखर पर जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हों ॥ ५ ॥ तदनन्तर हनूमानके वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमन् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥ ६–७ ॥ तत्पश्चात् कमललोचन हनूमान्‌ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोटको देखा। वह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥ ८ ॥ अनेक आकारके मुखोंसे सहित था, भयङ्कर पुतलियोंसे युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवोंके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥ ९ ॥ जिनके अग्रभाग संकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी करोंतोंकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरको उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंके अग्रभागसे सुशोभित थे ॥ १० ॥ चञ्चल सर्पोंके तने हुए फणाओंकी शूत्कारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विषैला धूम रूपी अन्धकार उठ रहा था ऐसे जलते हुए अंगारोंसे दुःसह था ॥ ११ ॥ शूर वीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि साँपके मुखसे मेंडक ॥ १२ ॥ यह लंकाके

---

१. चक्रे, मेध्या प्रतिकाशं म० । २. तिरोभवत् म० । ३. खगतिः म० । ४. विघ्नता म० । ५. मुमीश्वरमविग्रहः (?) म० । ६. महान् युद्धे ख० । ७. युनेनायं म०, ज० । ८. जिह्वाग्रं म० ।

तं दृष्ट्वा मारुतिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्झितं पूर्वं मायाप्राकारकारिणा[2] ॥१५॥
उन्मूलयामिदं यन्त्रं विद्याबलसमूर्जितम्[1] । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमलं[3] यथा ॥१६॥
युद्धे च मानसं कृत्वा तत्सैन्यं [4]रवं महास्वनम् । गगने सागराकारं समयेऽतिष्ठिपत् सुधीः ॥१७॥
विद्याकवचयुक्तं च [5]कृत्वात्मानं गदाकरः । विवेश सालिकावक्त्रं राहुवक्त्रं रविर्यथा ॥१८॥
ततः कुक्षिगुहां तस्याः परीतकीकसावृताम् । विद्यानखैरलं तीक्ष्णैः केसरीव व्यपाटयत् ॥१९॥
निर्दयैश्च गदाघातैर्घोरघोषैरचूर्णयत् । घातिकर्मस्थितिं यद्वद्ध्यानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥
अथाशालिकविद्याया यात्या भेदं भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्चटचटाध्वनिः ॥२१॥
तेन सम्भाव्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणेव जिनेन्द्राणां कलुषः कर्मसञ्चयः ॥२२॥
ततस्तन्निनदं श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दृष्ट्वा विशीर्यमाणं च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥
[6]राजन् वज्रमुखः क्रुद्धः शालरक्षाधिकारवान् । त्वरितं रथमारुह्य सिंहो दावमिवाभ्यगात् ॥२४॥
ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मारुतनन्दनम् । नानायानयुधा योधाः प्रचण्डा योद्धुमुद्यताः ॥२५॥
बलं [7]वाज्रमुखं दृष्ट्वा प्रबलं योद्धुमुद्यतम् । परमं क्षोभमायातं हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्तं तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्वं [8]सन्माननविमानने ॥२७॥

कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लंघ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलय कालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयङ्कर है, तथा हिंसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोंके द्वारा निर्मित है ॥ १४॥ उसे देखकर हनूमान्‌ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥ १५ ॥ मैं विद्याबलसे बलिष्ठ इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥ १६ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनूमान्‌ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारणकर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥१७–१८॥ तत्पश्चात् चारों ओरसे हड्डियोंसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भाँति विद्यामयी तीक्ष्ण नखोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥ १९ ॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भङ्गको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥२२॥

तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटको नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो हनूमान्‌के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सन्मुख जाता है ॥ २३–२४ ॥ तदनन्तर हनूमानको उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके वाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २५ ॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनूमानकी सेना भी युद्धके लिए उठी ॥ २६ ॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥ २७ ॥

१. -मूर्जितं म० । २. -कारिणां म० । ३. मोहबलं म०, ख० । ४. सुमहास्वन म० । ५. कृत्वा मानं म० । ६. राजा म० । ७. वज्रमुखं म० । ८. सत्मावन म०, ब० ।

स्वामिनो दृष्टिमार्गस्थाः सुभटाः कृतगर्जिताः । जीवितेष्वपि विस्नेहा बभूवुः किमिहोच्यताम् ॥२८॥
ततः कपिध्वजैर्योधाश्चिरंकृतमहाहवाः । वज्रायुधस्य निर्भग्नाः क्षणात्रेसुरितस्ततः ॥२९॥
चक्रेणानिलसूनुश्च तेजोऽहरत् विद्विषाम् । ऋक्षबिम्बमिवाकाशादपातयदरेः शिरः ॥३०॥
संख्ये पितुर्वधं दृष्ट्वा तं लङ्कासुन्दरी तदा । नियम्य कृच्छ्रतः शोकममर्षविषदूषिता ॥३१॥
जवनाश्वरथारूढा कुण्डलोद्योतितानना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥
उल्केव सङ्गतादित्यतेजोमण्डलधारिणी । धूमोद्गारसमायुक्ता घनप्राग्भारवर्तिनी ॥३३॥
संरम्भवशसम्फुल्ललोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसंदष्टबिम्बोष्ठी क्रुद्धेव श्रीः शचीपतेः ॥३४॥
अधावदिषुमुद्धृत्य [1]कत्थमाना मनोहरा[2] । मया श्रीशैल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्ति चेत् ॥३५॥
अद्य ते रावणः क्रुद्धो नभश्चरमहेश्वरः । करिष्यति यदेतत्ते करोमि हतचेष्टित[3] ॥३६॥
[4]इयं यमालयं पापं भवन्तं प्रेषयाम्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्थानगोचरः ॥३७॥
तस्यास्त्वरितमायान्त्या यावच्छत्रमपातयत् । बाणेन तावदेतस्य तथा चापं द्विधा कृतम् ॥३८॥
सा यावद्गृह्णाति शक्तिं तावन्मारुतिना शरैः । नभश्छन्नं समायान्ती भिन्ना शक्तिश्च सान्तरे ॥३९॥
सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुशलान्[5] शिलाः ॥४०॥
ववर्ष वायुपुत्रस्य रथे हिमवदुन्नते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसन्ध्या यथोन्नता ॥४१॥

जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्धके योद्धा बानरोंके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥ २९ ॥ और हनूमानने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र बिम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥ ३० ॥ युद्धमें पिताका वध देख वज्रायुधकी पुत्री लंकासुन्दरी कठिनाईसे शोकको रोककर क्रोधरूपी विषसे दूषित हो हनूमान्की ओर दौड़ी। उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथ पर बैठी थी, कुण्डलोंके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका वक्षःस्थल आयत था, उसकी दोनों भृकुटियाँ टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ कुछ धुआँ-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलोंके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना ओंठ चाब रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥३१-३४॥ वह देखनेमें सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर वाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुझे देख लिया है, यदि तुझमें कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥३५॥ आज कुपित हुआ विद्याधरोंका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥३६॥ यह मैं तुझ पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥३७॥ वेगसे आती हुई लंकासुन्दरीका छत्र जब तक हनूमानने नीचे गिराया तब तक उसने एक बाण छोड़ कर हनूमान्के धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३८॥ लंकासुन्दरी जब तक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तब तक हनूमान्ने बाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥३९॥ विद्याबलसे गम्भीर लंकासुन्दरीने हनूमानके हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान बाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार बरसाई जिस प्रकार कि उत्पातके समय उन्न

१. कत्थमाना म० । २. मनोहरं ख०, ज०, क० । ३. हतचेष्टितः म० । ४. इमं म० । ५. शिलान् म० ।

तया नानायुधाटोपैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छाद्यत महातेजाः शुचिसूर्य[1] इवाम्बुदैः ॥४२॥
विक्रान्तः स च शस्त्रौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निजैः शस्त्रैः मायाविधिविशारदः ॥४३॥
शराः शरैरलुप्यन्त तोमराद्याः स्वजातिभिः । शक्तयः शक्तिभिर्नुन्ना समोल्का दूरमुद्ययुः ॥४४॥
चक्रक्रकचसंवर्तकनकाटोपपिञ्जरम् । बभूव भीषणं व्योम विद्युद्भिरिव सङ्कुलम् ॥४५॥
तं लङ्कासुन्दरी भूयो रूपेणालब्धसन्निभा । धीरा स्वभावतो राजन्[2] लक्ष्मीः कमललोचना ॥४६॥
ज्ञानध्यानहरैः कान्तैर्दुर्द्धरैर्गुणसङ्गतैः । लावण्याहृतसौन्दर्यैर्मनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥
नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विव्यधे स्मरसायकैः । तथेतरधनुर्मुक्तैः शरैराकर्णसंहतैः ॥४८॥
विस्मये जगतः शक्ता सौभाग्यगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैवं प्रविष्टा हृदयोदरम् ॥४९॥
शरशक्तिशतघ्नीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनबाणौघैर्मर्मदारणकारिभिः ॥५०॥
इयं मनोहराकारा ललितैर्विशिखैरपि । सबाह्याभ्यन्तरं हन्ति मामित्येवमचिन्तयत् ॥५१॥
वरमस्मिन् मृधे मृत्युः पूर्यमाणस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य जीवितं न सुरालये ॥५२॥
चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या करुणासक्तमानसा ॥५३॥
विकस्वरमनोदेहं तं पद्मच्छदलोचनम् । अबालेन्दुमुखं बालं किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
मूर्तियुक्तमिवानङ्गं सुन्दरं वायुनन्दनम् । हन्तुं समुद्यतां शक्तिं सञ्जहार त्वरावती[3] ॥५५॥

मेघावली नाना प्रकारके जल बरसाती है ॥४०–४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र समूहसे महातेजस्वी हनूमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आषाढ़का सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होने पर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनूमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्र समूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियाँ शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर उल्काओंके समान दूर जा गिरीं ॥४४॥ चक्र, क्रकच, संवर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो बिजलियोंसे ही व्याप्त होगया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनूमान्को उधर जुदा भेद रही थी और इधर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणोंसे जुदा भेद रही थी। लङ्कासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान-ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६–४८॥ इस तरह जगत्को आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनूमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट होगई ॥४९॥ वह हनूमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रोंसे उस प्रकार पीड़ित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि सूर्यको विदारण करनेवाले कामके बाणोंसे पीड़ित हुआ था ॥५०॥ हनूमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार की धारक, अपनी ललित चेष्टा रूपी बाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनूमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामें आसक्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंका सुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देदीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर हनूमान्को मारनेके लिए उठाई हुई शक्ति

१. आषाढमाससूर्य इव । २. राजलक्ष्मीः म० । ३. त्वरावता म० ।

दध्यौ च मारयाम्येतं कथं दोषमपि श्रितम् । रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ॥५६॥
यद्यनेन समं सक्ता कामभोगोदयद्युतिम्[1] । न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥५७॥
अतः सत्पथमुद्दिश्य स्वनामाङ्कं हनूमते । प्रजिघाय शरं मुग्धा विह्वलेनान्तरात्मना ॥५८॥
पराजिता त्वया नाथ साहं मन्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं सङ्घातवर्तिभिः ॥५९॥
[2]प्रवाच्य मारुतिर्बाणमङ्कं स्वैरमुपागतम् । धृतिं परां परिप्राप्तो रथादवततार ॥६०॥
उपसृत्य च तां कन्यां मृगेन्द्रसमविक्रमः । कृत्वाङ्के गाढमालिङ्गत् कामो रतिमिवापराम् ॥६१॥
अथ [3]प्रशान्तवैरासावस्रदुर्दिनलोचना । तातप्रयाणशोकार्ता जगदे वायुसूनुना ॥६२॥
मा रोदीः सौम्यवक्त्रे[4] त्वमलं शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेषैव क्षात्रधर्मे सनातने ॥६३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा राज्यविधौ स्थिताः । पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥६४॥
वृथा रोदिषि किन्त्वेतद्ध्यानमार्तं विवर्जय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते प्रिये ॥६५॥
निहितोऽयमनेनेति द्विडत्र व्याजमात्रकम् । आयुःकर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥६६॥
वचोभिरेभिरन्यैश्च मुक्तशोका व्यराजत । सहिता वातिना[5] यद्वदिन्दुना निर्घना निशा ॥६७॥
प्रेमनिर्झरपूर्णेन तयोरालिङ्गनेन सः । सङ्ग्रामजः श्रमो दूरमथायातः सुचेतसोः ॥६८॥

शीघ्र ही संहृत करली—पीछे हटा ली ॥ ५३-५५ ॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥ ५६ ॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमें मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लंकासुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनूमान्‌के पास भेजा ॥ ५८ ॥ उस बाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवोंके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणोंसे पराजित हो गई ॥ ५९ ॥ गोदमें आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बाँच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनूमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥ ६० ॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनूमानने उसे गोदमें बिठा उसका ऐसा गाढ आलिङ्गन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिङ्गन किया हो ॥ ६१ ॥

तदनन्तर जिसका बैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिनकी भाँति अविरल अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरण-सम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुन्दरीसे हनूमान्‌ने कहा ॥ ६२ ॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥ ६३ ॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥ ६४ ॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तध्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसारमें अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥ ६५ ॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है यथार्थमें तो आयुकर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकासुन्दरी हनुमान्‌के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुशोभित होती है ॥६७॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका संग्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्झरसे परिपूर्ण आलिङ्गनके द्वारा दूर भाग गया ॥६८॥

१. द्युतिः म० । कामभोगादय द्युतिम् ज० । २. प्रोवाच म० । ३. प्रशान्तवैरा + असौ + अस्रदुर्दिन । ४. सौम्यवक्त्रे म० । ५. वातस्यापत्यं पुमान् वातिः, तेन हनूमता ।

ततो यत्र नभोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खगाः । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६९॥
सन्ध्यारक्ताभ्रसङ्काशं गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्य तदत्यन्तं शिविरं पर्यराजत ॥७०॥
गजवाजिविमानस्था रथस्थाश्च महानृपाः । तत्पुरं ध्वजमालाढ्यं विविशुः पृष्टवातयः ॥७१॥
स्थितास्तत्र यथान्यायं लब्धोत्साहसमुत्सवाः । कथाभिरतिचित्राभिः सूरसङ्ग्रामजन्मभिः ॥७२॥
अथ तं त्वरितात्मानं वार्तिं गन्तुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राक्षीदिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
विविधागोभिरापूर्णः श्रुतदुःसहविक्रमः । कान्त लङ्कां किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यतः ॥७४॥
तस्यै जगाद वृत्तान्तमशेषं वायुनन्दनः । कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
सीतया सह रामस्य भद्रे भद्रसमागमः[1] । हृतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यः सर्वथा मया ॥७६॥
साऽब्रवीत् समतिक्रान्तं सौहार्दं तत्पुरातनम् । श्रद्धास्नेहक्षये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
आसीद् रथ्योपशोभाढ्यां[2] ध्वजमालाकुलीकृताम् । प्राविक्षदादृतो लङ्कां भवान् दिवमिवामरः ॥७८॥
अधुना त्वयि दोषाढ्ये रावणश्चण्डशासनः । प्रकाशं व्रजति क्रोधं गृहीष्यति न संशयः ॥७९॥
यदोपलभ्यते चार्वी विशुद्धिः कालदेशयोः । विशुद्ध्यन्मानमव्यग्रं तदा तं द्रष्टुमर्हसि ॥८०॥
एवमेवेति सोऽवोचद्यदब्रवीषि विचक्षणे । आकूतं तस्य विज्ञातुं गत्वा वाञ्छामि सुन्दरि ॥८१॥
कीदृशी वा सती सीता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालितं मेरुवद्धीरं रावणस्य मनो यया ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याधर रोक दिये गये थे प्रदेशमें आवास बनाकर वह सेना ठहराई गई ॥६९॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनूमानका वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनूमान्से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर-वीरोंके संग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्तकर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनूमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लङ्कासुन्दरीने एकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य कराना है ॥७६॥ यह सुन लंकासुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्रके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आपमार्गोंकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाओंकी पंक्तिसे अलंकृत लङ्कामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि-अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है । किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह

१. भद्रे म० । २. रम्योपशोभाढ्यां म० ।

एवमुक्त्वा मरुत्पुत्रस्तद्विन्यस्तमहाबलः । तया मुक्तो विवेकिन्या त्रिकूटाभिमुखं ययौ ॥८३॥

दोधकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृशं रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरुपैति रसान्तरसङ्गम् ॥८४॥
कर्मविचेष्टितमेतदमुस्मिन् किन्त्वथवाद्भुतमस्ति निसर्गे ।
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतश्च रवीहा[1] ॥८५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमल्लङ्कासुन्दरीकन्यालाभाभिधानं नाम द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥

सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८२॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विवेकवतीसे छूटकर त्रिकूटाचलकी ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस संसारमें यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है। जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर। उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्‌को लंका-सुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला बावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥

---

१. चरती हो म०, ब०।

त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वातिः प्रभावोदयसङ्गतः । लङ्कां विवेश निःशङ्कः स्वल्पानुगसमन्वितः ॥१॥
द्वारे च रचिताभ्यर्चे विभीषणनिकेतनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मानं च समाहृतः ॥२॥
ततः स्थित्वा क्षणं किञ्चित् संस्पृष्टाभिः परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्यं व्याजहार मरुत्सुतः ॥३॥
उचितं किमिदं कर्तुं [1]यद्वास्यार्द्धपतिः स्वयम् । कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरणं परयोषितः ॥४॥
मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा नगः । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीयं समस्तानां दुःखमेष्यति नो ध्रुवम् ॥६॥
तत् क्षेमङ्करमस्माकं हिताय जगतां तथा । उच्यतां रावणः शीघ्रं वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
यथा किल द्वये लोके निन्दनीयं विचेष्टितम् । मा कार्षीः जगतो नाथ कीर्तिविध्वंसकारणम् ॥८॥
विमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥९॥
[2]कैकसीनन्दनोऽवोचद् बहुशोऽभिहितो मया । ततः प्रभृति नैवासौ मया सम्भाषते समम् ॥१०॥
तथापि भवतो वाक्यात् श्वः समेत्य नरेश्वरम् । वक्तास्मि किन्तु दुःखेन [3]त्यक्ष्यत्येतदसौ ग्रहम् ॥११॥
अहोऽद्यैकादशं जातं सीताया [4]वल्यनोज्झने । तथापि विरतिः काचिल्लङ्केन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा वचनं सद्यः महाकारुण्यसङ्गतः । प्रमदाह्वयमुद्यानं मारुतिर्गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
अपश्यच्च लताजालैस्तत्र [5]वैराकुलीकृतम् । अरुणैः पल्लवैः व्याप्तं वरस्त्रीकरचारुभिः ॥१४॥

अथानन्तर-गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोंसे युक्त हनूमान्ने निःशङ्क होकर लङ्कामें प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषणके महलमें प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सन्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर-उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनूमान्ने इस प्रकारके सद्वचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३-४॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओंका मूल है । यदि राजा स्वयं अनाचारमें स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमें प्रवृत्ति करने लगती है ॥५॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है । इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥६॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए तथा जगत्के हितके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिये जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥७॥ उन्हें बतलाइये कि हे जगत्के नाथ ! दोनों लोकोंमें निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिये ॥८॥ निर्मल-निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमें चाह है अपितु स्वर्गलोकमें देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥९॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है॥१०॥फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥११॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लङ्काधिपतिको कुछ भी विरति है—इस कार्यसे रञ्चमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥१२॥ विभीषणके यह वचन सुन महा दयाभावसे युक्त हनूमान् प्रमदोद्यानमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१३॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि नई-नई लताओंके

१. त्रिखण्डभरताधिपः । २. विभीषणः । ३. त्यज्यते न ह्यसौ म० । ४. वल्लभोज्झने म० । ५. स्तत्र वैराकुलीकृतम् म० ।

भ्रमरप्रावृतैर्गुच्छैः सुजातैर्बद्धशेखरम् । फलैरानतशाखाग्रं किञ्चित् पवनकम्पितम् ॥१५॥
पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः समलङ्कृतम् । भासुरं कल्पवल्लीभिः सक्ताभिर्महातरुम् ॥१६॥
गीर्वाणकुरुदेशाभं प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दधत्साम्यमनेकाद्भुतसङ्कुलम् ॥१७॥
ततो लीलां वहन् रम्यां वायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यानं सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
प्रजिघाय च सर्वासु दिक्षु चक्षुरतित्वरम् । विविधद्रुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥
दृष्ट्वा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयदसौ सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
स्निग्धज्वलनसङ्काशा वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुर्मुक्तकेशी कृशोदरी ॥२१॥
अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां ख्यातिमायातं सत्यवस्तुनिबन्धनम् ॥२२॥
[1]रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णवं गताप्येषा सदृशी नान्ययोषिता ॥२३॥
निपत्य शिखरादद्रेरस्य मृत्युमुपैम्यहम् । विरहे पद्मनाभस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥
कृतप्रचिन्तनामेवं वैदेहीं पवनात्मजः । निःशब्दपादसम्पातः प्राप्तो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
ततोऽङ्गुलीयकं तस्या विससर्जाङ्कवाससि । सहसा सा तमालोक्य स्मेराऽभूत्पुलकाचिता ॥२६॥
तस्यामे[2]वमवस्थायां गत्वा नार्यस्त्वरान्विताः । तोषादवर्धयन् दिष्ट्या रावणं तत्परायणम् ॥२७॥

समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त था, भ्रमरोंसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिस पर सेहरा बँध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अग्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्वच्छ सरोवरोंसे जो अलंकृत था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे देदीप्यमान था, जो देवकुरु प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्चर्योंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमल लोचन हनूमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवों आदिसे सघन नाना वृक्षोंके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर मुखरूपी चन्द्रमाको रखे हुई है, केश इसके खुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनूमान् विचार करने लगा कि अहो ! लोकमें इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करने वाला है, परम ख्यातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती। अहो ! यह दुःखरूपी सागरमें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनूमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनूमान्‌ने सीताकी गोदके वस्त्रपर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमाञ्चोंसे युक्त हो गई ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियाँ थीं उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार

१. हरिता ख० । २. तस्यामेवावस्थायां म० ।

सन्तुष्टोऽङ्गगतं ताभ्यो वस्त्ररत्नादिकं ददौ । श्रुत्वा स्मेराननां सीतां सिद्धं कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
विधातुं महिमानं च किञ्चिदादिशदुत्सुकः । सुधापूरमिव प्राप्तः समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
स्वनाथवचनात् साध्वी सर्वान्तःपुरसंयुता । गता मन्दोदरी शीघ्रं यत्रासौ जनकात्मजा ॥३०॥
विकचास्यद्युतिं सीतां दृष्ट्वा मन्दोदरी चिरात् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रहः कृतः ॥३१॥
अधुना भज लोकेशं रावणं शोकवर्जिता । सुराणां श्रीरिवाधीशं लब्धनिःशेषसम्पदम् ॥३२॥
इत्युक्ता कुपितावोचदर्दं भवतीरितम् । पद्मः खेचरि जानाति म्रियते ते पतिर्ध्रुवम् ॥३३॥
वार्ता समागता भर्तुरिति तोषमुपागता । अकार्षं वदनं स्मेरं भजन्ती परमां धृतिम् ॥३४॥
इति ता वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य योषितः । ऊचुः क्षुद्भववातेन लपत्येषेति सस्मिताः ॥३५॥
ततः श्रेणिक वैदेही नितान्तं तुङ्गया गिरा । परमं विस्मयं प्राप्ता जगादैवं समुत्सुका ॥३६॥
गताया व्यसनं घोरमब्धिद्वीपे महाभये । कोऽयं सन्निहितः साधुर्बन्धुभूतोऽतिवत्सलः ॥३७॥
ततो नभस्वतः सूनुरेवमर्थितदर्शनः । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानसः ॥३८॥
परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्वं विनिगूहति । सोऽतिभीरुतयात्यन्तं जायते निकृतो नरः ॥३९॥
परमापदि सीदन्तं जनं [1]सन्धारयन्ति ये । अनुकम्पनशीलानां तेषां जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥
हानिः पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते । प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीर्यशस्विनी ॥४१॥

सुना हर्षसे वृद्धिंगत किया ॥२७॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोंके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो। उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्तःपुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गई जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाओंसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधरि! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखको मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर रावणकी स्त्रियाँ कहने लगीं कि क्षुधाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसती हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थनाकी गई थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनूमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगेकर अर्थात् पहलेसे स्वीकृतकर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकटकर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकटकर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी संसारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनूमान् भामण्डलकी नाँई हजारों उत्तम स्त्रियोंके बीच

१. साधारयन्ति म०, ख० ।

उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मध्यगतामिमाम् । प्रभामण्डलकल्गोऽसौ पद्मपत्नीमुपागमत् ॥४२॥
निःशङ्कद्विपविक्रान्तः सम्पूर्णेन्दुसमाननः । सहस्रांशुसमो दीप्त्या माल्याम्बरविभूषितः ॥४३॥
रूपेणाप्रतिमो युक्तः कान्त्या निर्मृगचन्द्रमाः । किरीटे वानरं बिभ्रदामोदाहृतषट्पदः ॥४४॥
चन्दनार्चितसर्वाङ्गः पीतचर्चाविराजितः । ताम्बूलारक्तबिम्बोष्ठः प्रलम्बांशुकशोभितः ॥४५॥
चलत्कुण्डलविद्योतविहसद्गण्डमण्डलः । परं संहननं बिभ्रद्वीर्येणान्तविवर्जितः ॥४६॥
सर्पन् सीतां समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसंयुक्तः शोभामुपययौ पराम् ॥४७॥
कान्तिभासिमुखं दृष्ट्वा तं युतं परया श्रिया । पद्मायतेक्षणा नार्यस्ता बभूवुः समाकुलाः ॥४८॥
दधती हृदये कम्पं मन्दोदर्यासविस्मया । समोलोकत सीतायाः समीपे वायुनन्दनम् ॥४९॥
उपगम्य ततः सीतां विनीतः पवनात्मजः । करकुड्मलमाधाय मस्तके नम्रतायुषि ॥५०॥
कुलं गोत्रं च संश्राव्य पितरं जननीं तथा । अवेदयच्च विश्रब्धं पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥
त्रिविष्टपसमे साध्वि विमाने विभवान्विते । रतिं न लभते रामो मग्नस्त्वद्विरहार्णवे ॥५२॥
त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो मौनं प्रायेण धारयन् । स त्वां मुनिरिव ध्यायन्नेकतानोऽवतिष्ठते ॥५३॥
वेणुतन्त्रीसमायुक्तं गीतं प्रवरयोषिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्याति पावने ॥५४॥
सदा करोति सर्वस्मै कथां स्वामिनि ते मुदा । त्वदीक्षणाशया प्राणान् बद्ध्वा धत्ते स केवलम् ॥५५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोदं परमं प्राप्ता सीता विकसितेक्षणा ॥५६॥
विषादं सङ्गता भूयो जलपूरितलोचना । ऊचे शान्ता हनूमन्तं विनीतं स्थितमग्रतः ॥५७॥

बैठी हुई सीताके समीप गया ॥४२॥ जो शङ्का रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और वस्त्रोंसे सुशोभित था। रूपसे अनुपम था। कान्तिसे मृग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें वानरका चिह्न धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोंको आकर्षित कर रहा था, चन्दनसे जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका बिम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए वस्त्रसे सुशोभित था, चञ्चल कुण्डलोंके प्रकाशसे जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनूमान् सीताको लक्ष्यकर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४७॥ जिसका मुख कान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हनूमान्को देखकर वे कमललोचना स्त्रियाँ व्याकुल हो उठीं ॥४८॥ जिसके हृदयमें कँपकँपी छूट रही थी ऐसी मन्दोदरीने सीताके समीप हनूमान्को बड़े आश्चर्यके साथ देखा ॥४९॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनूमान्ने झुके हुए मस्तकपर अञ्जलि बाँध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता-पिताका नाम सुनाया। उसके बाद निश्चिन्त हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और मुनिकी भाँति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्र कारिणि! बाँसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि! वे सदा सबके सामने बड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे ही प्राणोंको बाँधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनूमान्के वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई। उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विषादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रोंमें जल भरकर सामने बैठे हुए विनयी

साहमस्यामवस्थायां निमग्ना कपिलक्षण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हतेन विधिनान्विता ॥५८॥
ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
ततो मुक्ताफलस्थूलबाष्पबिन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलक्षणम् ॥६०॥
मकरग्राहनक्रादिशोभितं भीममर्णवम् । भद्र दुस्तरमुल्लंघ्य विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
अवस्थां वा गतामेतां कार्यसंसिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागत्य नयस्याश्वासमुत्तमम् ॥६२॥
लावण्यद्युतिरूपाढ्यः कान्तिसागरसंवृतः । श्रिया कीर्त्या च संयुक्तः प्रियो मे भद्र बान्धवः ॥६३॥
प्रदेशे स त्वया कस्मिन् प्राणनाथो[1] ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्वोऽत्र कच्चिल्लक्ष्मणसङ्गतः ॥६४॥
किं नु दुःखेचरैः संख्ये भीमैः व्यापादितोऽनुजः[2] । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्माभलोचनः ॥६५॥
किं वा मद्विरहादुग्रदुःखं नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किञ्चिद्वने लोकान्तरं गतः ॥६६॥
जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषग्रन्थवर्जितः । [3]तपस्यन् किमसावास्ते भवनिर्वेदपण्डितः ॥६७॥
शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतश्च्युतं प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
त्वया सह परिज्ञातिर्नासीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाप्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
एतत्सर्वं मम भ्रातः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः[4] ॥७१॥
इति पृष्टः समाधानी शाखामृगकिरीटभृत् । शिरस्थकरराजीवो जगाद विकचेक्षणः ॥७२॥

हनूमान्‌से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुझे क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनूमान्‌ने कहा कि हे शुभे—हे मङ्गलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुछ सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओंकी बूँदोंसे जिसका ओंठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनूमान्‌से पूछा कि हे भद्र ! मकर—ग्राह तथा नाक आदिसे शोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लाँघकर तू किस प्रकार आया है ? ॥ इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किसलिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोंके द्वारा युद्धमें छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हों ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगूठी कहीं गिर गई होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर विना कारण तू उनकी मित्रताको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगूठी लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित

१. प्राणनाथे म० । २. व्यापादितानुजः क०, ख० । ३. ते पश्यन् (?) म० । ४. मनोजुषा ब० बारण-म० ।

सायके रविहासाख्ये लक्ष्मणेन निजीकृते । गत्वा चन्द्रनखानिष्टा रमणं समरोपयत् ॥७३॥
यावदाहूयते स्वामी रक्षसां सुमहाबलः । दूषणस्तावदायातो योद्धुं दाशरथिं द्रुतम् ॥७४॥
लक्ष्मणो दूषणेनामा युध्यते यावदुत्कटम् । तावद्दशमुखः प्रासरत्तमुद्देशं बलान्वितः ॥७५॥
धर्माधर्मविवेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । भवतीं वीक्ष्य स क्षुद्रो बभूव मनसो वशः ॥७६॥
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च निस्सारीभूतचेतनः । मायासिंहरवं चक्रे भवतीस्तेनकारणम् ॥७७॥
श्रुत्वा सिंहरवं पद्मो ययौ यावद्रणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहृता ॥७८॥
प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गत्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैक्षत सत्तमे ॥७९॥
ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा त्वद्गवेषणकारणम् । ईक्षाञ्चक्रे श्लथप्राणं मृत्य्वासन्नं जटायुषम् ॥८०॥
तस्मै दत्वा स जैनेन्द्रीं म्रियमाणाय देशनाम् । अवतस्थे वने दुःखी भवतीगतमानसः ॥८१॥
गतश्च लक्ष्मणः पद्मं निहत्य खरदूषणम् । आनीता रत्नजटिना त्वत्प्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥
सुग्रीवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहसः । बलं हन्तुं समुद्युक्तो विद्यया वर्जितो हतः ॥८३॥
कृतस्यास्योपकारस्य कुलपावनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुरुबान्धवैः ॥८४॥
प्रीत्या विमोचयामि त्वां विग्रहो निःप्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥८५॥
सोऽयं लङ्कापुरीनाथो घृणावान् विनयान्वितः । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन मृदुः परम् ॥८६॥
सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः सत्यव्रतकृतस्थितिः । करिष्यति वचो नूनं मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

हनूमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहनेलगा ॥७२॥ कि जब लक्ष्मणने सूर्यहास खड्ग अपने आधीनकर लिया और चन्द्रनखाको जब राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषणको रोषयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जब तक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जब तक खरदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थान पर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपको देख मनके वशीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गई थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जब तक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तब तक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापिस किया सो वहाँसे आकर जब वे पुनः उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरणासन्न जटायुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो वनमें बैठ गये। उस समय उनका मन एक आपमें ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, खरदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा वृत्तान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमें सुग्रीवके रूपसे युक्त साहस गति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हमारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ। युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंको सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमें इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे

कीर्तिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैष बिभेति नितरां कृती ॥८८॥
ततः परं परिप्राप्ता प्रमोदं जनकात्मजा । हनूमन्तमिदं वाक्यं जगाद विपुलेक्षणा ॥८९॥
पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्याः कियन्तो मत्प्रियाश्रिताः ॥९०॥
मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः सत्त्वयशोऽन्विताः । गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥९१॥
वैदेहि तव न ज्ञातः किमयं येन पृच्छसि । कपिध्वजः समानोऽस्य वास्येऽस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
विमानवाहनघण्टासंघट्टपरिमण्डले । रणे दशमुखस्यायं प्राप्तः साहाय्यकं परम् ॥९३॥
दशाननसहायत्वं कृतं येन महारणे । स हनूमानिति ख्यातश्चाञ्जनातनयः परः ॥९४॥
महापदि निमग्नस्य दशवक्त्रस्य विद्विषः । खेटा मनोव्यथाभिख्या एकेनानेन निर्जिताः ॥९५॥
अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखात्मजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा वाञ्छति दर्शनम् ॥९६॥
अस्य पौरसमुद्रस्य यः कान्तः शिशिरांशुवत् । सहोदरसमं वेत्ति यं लङ्कापरमेश्वरः ॥९७॥
हनूमानिति विख्यातः सोऽयं सकलविष्टपे । गुणैः समुन्नतो नीतो दूतत्वं क्षितिगोचरैः ॥९८॥
अहो परमिदं चित्रं निन्दनीयं विशेषतः । नीतः प्राकृतवत्कश्चिद्गौर्यद्भृत्यतामयम् ॥९९॥
इत्युक्ते वचनं वातिर्जगाद स्थिरमानसः । अहो परममूढत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः । अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ॥१०१॥
आहारं भोक्तुकामस्य विज्ञातं विषमिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिषिध्यते ॥१०२॥

लिए सौंप देगा ॥८७॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करना है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाल लोचना सीता हनूमान्‌से यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९–९०॥ तब मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर हैं, सत्त्व और यशसे सहित हैं, गुणोंसे उत्कट हैं तथा धीर-वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे ऐसा पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र भरमें इसके समान दूसरा वानर ध्वज नहीं है ॥९२॥ विमानों तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राममें यह रावणकी परम सहायता करता है॥९३॥ जिसने महायुद्धमें रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनूमान् इस नामसे प्रसिद्ध अञ्जनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा विपत्तिमें फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुननेमात्रसे मनको पीड़ा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनंग कुसुमा प्राप्त की है। जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जन रूपी समुद्रको वृद्धिङ्गत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लङ्काका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समझता है ॥९७॥ ऐसा यह हनूमान् समस्त संसारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणोंका धारक है फिर भी भूमि गोचरियोंने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमि गोचरियोंने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढ़ चित्तके धारक हनूमान्‌ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥ जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्‌बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छानुसार काम करनेवाला मित्र यदि विषमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं

भवितव्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥
मन्दोदरि परं गर्वं निःसारं वहसे मुधा । यदग्रमहिषी भूत्वा दूतीत्वमसि संश्रिता ॥१०४॥
क्व यातमधुना तत्ते सौभाग्यं रूपमुन्नतम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीत्वं संश्रितासि यत् ॥१०५॥
प्राकृता परमा सा त्वं वर्तसे रतिवस्तुनि । महिषीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥
मन्दोदरी ततोऽवोचत् कोपालिङ्गितमानसा । अहो तव सदोषस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०७॥
दूतत्वेनागतं सीतां यदि त्वां वेत्ति रावणः । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यन्नैव कस्यचित् ॥१०८॥
येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारितः । पुरस्कृत्य तमेवास्य कथं सुग्रीवकादयः ॥१०९॥
भृत्यत्वं दशवक्त्रस्य विस्मृत्य स्वल्पचेतसः । स्थिताः किमथवा कुर्युर्वराकाः कालचोदिताः ॥११०॥
अतिमूढहतात्मानो निर्लज्जाः क्षुद्रवृत्तयः । अकृतज्ञा वृथोत्सिक्ताः स्थितास्ते मृत्युसन्निधौ ॥१११॥
इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेवं या कत्थसे वृथा ॥११२॥
शूरकोविदगोष्ठीषु कीर्त्यमानो न किं त्वया । प्रियो मे पद्मनाभोऽसौ श्रुतोऽप्यद्भुतविक्रमः ॥११३॥
वज्रावर्तधनुर्घोषं[1] श्रुत्वा यस्य रणागमे । भयज्वरितकम्पाङ्गाः सीदन्ति रणशालिनः ॥११४॥
लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रहः । शत्रुपक्षक्षयं कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥
किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तीर्य महार्णवम् । पतिरेष समायाति लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११६॥

किया जाता है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए। जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्व धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नतरूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषकी दूती बनने बैठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गई हो। अब मैं तुममें महिषीत्व (पट्टरानी पना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गई हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है—बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनखाके पति-खरदूषणको मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुग्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढ़तासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर सीताने कुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥ शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे काँपते हुए दुःखी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखनेमात्रसे शत्रुपक्षका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर

१. वज्रावर्तं धनुर्घोषं म० ।

पश्यात्मीयं पतिं युद्धे स्वल्पकैरेव वासरैः । निहतं मम नाथेन जगदुत्कटतेजसा ॥११७॥
एषा [1]गन्तासि वैधव्यं क्रन्दस्येषा चिरोज्झिता । या त्वं पापरतेर्भर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
मयदैत्यात्मजा तामेवमुक्त्वातिकोपगा । परमं क्षोभमायाता कम्पमानाऽधराधरा ॥११९॥
एका नानासपत्नीनां सहस्रैः सम्भ्रमस्पृशाम् [2] । अष्टादशभिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
समं करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभिः । निर्भर्त्सनमतिक्रूरैराक्रोशैः कुर्वती भृशम् ॥१२१॥
श्रीमांस्तावन्मरुत्पुत्रः समुत्थाय जवान्वितः । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधरः ॥१२२॥
ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यताः । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिताः ॥१२३॥
पादताडितभूभागा विभूषादरवर्जिताः । ययुः क्रूराशयाः सर्वा वनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥
आञ्जनेन ततः सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साधुना ॥१२५॥
समर्थितप्रतिज्ञासौ सुनिर्मलमनोरथा । अभ्युपागच्छदाहारं कालदेशज्ञमानसा ॥१२६॥
ससागरा मही देवि रामदेवस्य शासने । वर्तते तेन नैवेदमन्नं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥१२७॥
एवं हि बोधिता तेन वैदेही करुणावनिः । ऐच्छदन्नं यतः साध्वी सर्वाचारविचक्षणा ॥१२८॥
इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथान्नं प्रवरं श्लाघ्यं द्रुतमानीयतामिति ॥१२९॥
मुक्ता कन्या स्वशिबिरं श्रीशैलेन क्षपाक्षये । भानावभ्युदिते जातो विभीषणसमागमः ॥१३०॥

अभी आता है ॥११६॥ तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिको युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकालतक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो काँपते हुए ओंठको धारण कर रही थी। ऐसी मन्दोदरी परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह संभ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोंसे मारनेके लिए उद्यत हुई। वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०–१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनूमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनूमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोंसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियाँ रावणके पास गईं ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनूमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी। जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनूमान्ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समझाये जाने पर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ॥१२८ तदनन्तर हनूमानने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥१२९॥ इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिबिर अर्थात् डेरेमें गई और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनूमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

१. गतासि म० । २. स्पृशम् म० ।

आहारो वायुपुत्रेण तत्र भुक्तो मनोहरः। एवं कर्तव्ययोगेन मुहूर्तास्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
मुहूर्तेऽथ चतुर्थे तु समानीतमिराख्यया। आहारं मैथिलीभुक्तमिति जानन्ति कोविदाः ॥१३२॥
चन्दनादिभिरालिप्ते भूतले दर्पणप्रभे। पुष्पोपकारसम्पन्ने नलिनीपत्रशोभिनि ॥१३३॥
सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं पथ्यं पेयादिपूर्वकम्। स्थाल्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्णादिभिराहृतम् ॥१३४॥
[1]घृतसूपादिभिः काश्चित्पात्र्यो राजन्ति पूरिताः। कुन्दपुष्पसमच्छायैः [2]शालीनां काश्चिदोदनैः ॥१३५॥
षड्रसैरुपदंशैश्च काश्चिद्रोचनकारिभिः। व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चित्पिण्डीबन्धोचितैस्तथा ॥१३६॥
पयसा संस्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः। लेह्यैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः[3] पश्चाद्विशेषितैः ॥१३७॥
एवं परममाहारमिरा परिजनान्विता। हनूमन्तं पुरस्कृत्य भ्रातृभावेन वत्सला ॥१३८॥
महाश्रद्धान्वितस्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वरान्। समाप्य नियमं धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥
निधाय हृदये राममभिरामं पतिव्रता। पवित्राङ्गा दिने भुङ्क्ते साधुलोकप्रपूजितम् ॥१४०॥
रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम्। पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥१४१॥
निवृत्तभोजनविधिः किञ्चिद्विश्रब्धतां गता। विज्ञापितेति भूयोऽपि सीता पवनसूनुना ॥१४२॥
आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे। समुल्लंघ्य नदीनाथं नेष्यामि भवतीं क्षणात् ॥१४३॥
[4]पश्य तं विभवैर्युक्तं राघवं त्वत्परायणम्। भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियः ॥१४४॥

हनूमान्‌ने विभीषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया। इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ मुहूर्तमें इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आई ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे लीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गई, फूलोंके उपलरसे सजाई गई जिससे वह कमलिनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ थीं, दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रहीं थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थीं ॥१३५॥ कितनी ही थालियाँ रुचि बढ़ानेवाले षट्रसके भोजनोंसे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतलीं तथा कितनी ही पिण्ड बँधनेके योग्य व्यञ्जनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही दहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रबड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादिष्ट भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आई, सो हनूमान्‌को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया, 'जब तक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नहीं लूँगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया। अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया। तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमें धारणकर उस पतिव्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढ़ानेवाला है, आरोग्य-दायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥ १३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनूमान्‌ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि! हे पवित्रे! हे गुणभूषणे! मेरे कन्धे पर चढ़ो मैं समुद्रको लाँघकर अभी क्षण भरमें आपको ले चलूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे

१. घृतपूपादि म०। २. शालीनैः म०। ३. रन्यैः म०। ४. पश्यन्तं म०।

ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा रुदती जनकात्मजा । जगादादरसंयुक्ता विचिन्तितयथास्थितिः ॥१४५॥
[1]अन्तरेण प्रभोराज्ञां गमनं मे न युज्यते । इत्यवस्थां गता दास्ये तस्मै किमहमुत्तरम् ॥१४६॥
प्रत्येति नाधुना लोकः शुद्धिं मे मृत्युना विना । नाथ एव ततः कृत्यं मम ज्ञास्यति साम्प्रतम् ॥१४७॥
यावन्नोपद्रवः कश्चिज्जायते दशवक्त्रकात् । तावद्व्रज द्रुतं भ्रातर्नालम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥
त्वया मद्वचनाद् वाच्यः सम्यक् प्राणमहेश्वरः । अभिधानैरिमैर्मूर्ध्नि निधाय करकुड्मलम् ॥१४९॥
तस्मिन् देव मया सार्द्धं मुनयो व्योमचारिणः । वन्दिताः परमं भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
विमलाम्भसि पद्मिन्या नितरामुपशोभिते । सरसि क्रीडतां स्वेच्छमस्माकमतिसुन्दरम् ॥१५१॥
आरण्यकस्तदा हस्ती समायातो भयङ्करः । ततो मया समाहूतस्त्वमुन्मग्नो[2] जलान्तरात् ॥१५२॥
[3]उद्दामाऽसौ महानागश्चारुक्रीडनकारिणा । समस्तं त्याजितो दर्पं भवता निश्चलीकृतः ॥१५३॥
आसीच्च नन्दनच्छाये वने पुष्पभरानते । शाखां पल्लवलोभेन नमयन्ती प्रयासिनी ॥१५४॥
भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्भृङ्गैरभिभूता ससम्भ्रमा । भुजाभ्यां भवताश्लिष्य जनिताकुलतोज्झिता ॥१५५॥
उद्यन्तमन्यदा भानुं माहेन्द्रीदिग्विभूषणम् । अहमम्भोजषण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥
अशंसिषं ततः किञ्चिदीर्ष्यारसमुपेयुषा । बालेनोत्पलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
अन्यदा रतिशैलस्य[4] प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्टस्त्वमिति विभ्रत्या कौतुकं परशोभया १५८॥
एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा विपुला स्निग्धताजुषः । किन्नामानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदाः ॥१५९॥

ध्यानमें तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करनेवाली एवं आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामें पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ॥१४५–१४६॥ इस समय लोग मृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई ! जब तक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथानकोंके साथ-साथ मेरे वचनोंमें प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमें एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९–१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमें हमलोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें एक भयङ्कर जङ्गली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१–१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उद्दण्ड महाहस्तीका सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलोंके भारसे झुके हुए वनमें, मैं नूतन पत्रोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षकी एक शाखाको झुका रही थी । तब उड़ते हुए चञ्चल भ्रमरोंने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबड़ायी हुईको आपने अपनी भुजाओंसे आलिङ्गन कर छुड़ाया था ॥१५४–१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसाकी थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी-सी डंडीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६–१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखर पर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एवं मनके हरण करनेमें निपुण ये कौनसे वृक्ष हैं ? ॥१५८–१५९॥ तब इस प्रकार

१. विना । २. साह्तः म० । ३. उद्दामोऽसौ म० । ४. रतिभूता म० ।

ततस्त्वयेति पृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते यथा नन्दिद्रुमा इति ॥१६०॥
कर्णकुण्डलनद्याश्च स्थितास्तीरे वयं यदा । तदा सन्निहितौ जातौ मध्याह्ने व्योमगौ मुनी ॥१६१॥
त्वया मया च भिक्षार्थं तयोरागतयोस्ततः । अभ्युत्थाय महाश्राद्धं रचितं पूजनं महत् ॥१६२॥
अन्नं च परमं ताभ्यां दत्तं विधिसमन्वितम् । पञ्च चातिशया जातास्तत्प्रभावेन सुन्दराः ॥१६३॥
पात्रदानमहोदानं महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽमरैश्चक्रे साधु सम्यग्ध्वनिश्रितः ॥१६४॥
अदृष्टतनुभिर्देवैर्दुन्दुभिः सध्वनिः कृतः । पपात गगनाद्वृष्टिः कौसुमी भृङ्गनादिता ॥१६५॥
सुखस्पर्शो ववौ वायुः सुगन्धिर्नीरजो मृदुः । मणिरत्नसुवर्णाङ्का धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥
चूडामणिमिमं चोद्धं[1] दृढप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रियः ॥१६७॥
जानामि नाथ ते भावं प्रसादिनमलं मयि । तथापि यत्नतः प्राणाः पाल्याः सङ्गमनाशया ॥१६८॥
प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽयं मया सह । साम्प्रतं त्वयि यत्नस्थे सङ्गमो नौ[2] निसंशयः ॥१६९॥
इत्युक्ते रुदतीं सीतां समाश्वास्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा[3] निरैत्सीताप्रदेशतः ॥१७०॥
पाण्यङ्गुलीयकं सीता तदाशक्तशरीरिका । मानसस्य कृताश्वासं मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
अथोद्यानगता नार्यस्त्रस्तसारङ्गलोचनाः । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविस्मितसङ्गताः ॥१७२॥
परस्परं समालापमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगस्योर्द्ध्वं कोऽप्यहो नरपुङ्गवः ॥१७३॥
अवतीर्णः किमेषः स्याद्विग्रही कुसुमायुधः । देवः कोऽपि तु शैलस्य शोभां द्रष्टुं समागतः ॥१७४॥

पूछे जाने पर आपने प्रसन्नमुख मुद्रासे सुशोभित हुए कहा था कि हे देवि! ये नन्दि वृक्ष हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने उठकर, भिक्षाके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पञ्च आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवोंने यह मधुर शब्द किये कि अहो! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीख नहीं रहा था ऐसे देवोंने दुन्दुभि बाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुखकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई! इसके बाद दृढ़ विश्वासका कारण यह उत्तम चूड़ामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ! आपका मुझपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रमादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जब कि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कह कर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनूमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अङ्गुलिको हाथमें पहिनकर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियाँ थीं वे हनूमान्को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगीं कि अहो! इस फूलोंके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है? ॥१७२-१७४॥

१. चोर्ध्वं म०, ख० । २. आवयोः । ३. निरगच्छत् ।

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि स्रजम् । उपवीणनमारेभे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥
काचिदिन्दुमुखी वामे हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य तं बभूवान्यथामनाः ॥१७६॥
ईषत्काचिदभिज्ञाय वधूरिदमचिन्तयत् । [1]अलब्धद्वारसन्मानः कुतो मोहतिरागतः ॥१७७॥
वरस्त्रीजनमुद्याने कृत्वा सम्भ्रान्तमानसम् । हारमाल्याम्बरधरो भास्वान् वह्निकुमारवत् ॥१७८॥
निसर्गकान्तया गत्या प्रदेशं किञ्चिदभ्यगात् । तथाविधां च तां वार्त्तामशृणोद्राक्षसाधिपः ॥१७९॥
क्रोधसंस्पृष्टचित्तेन निरपेक्षत्वमीयुषा । तावदाज्ञापिताः शूरा रावणेनोग्रकिङ्कराः ॥१८०॥
विचारेण न वः कृत्यं पुष्पोद्यानान्निरेति यः । मद्द्रोही कोऽप्ययं क्षिप्रं नीयतामन्तमायुषः ॥१८१॥
अमी ततः समागत्य दध्युर्विस्मयमागताः । किमिन्द्रजिन्नरेशः स्याद्भास्करः श्रवणोऽथवा ॥१८२॥
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा तैरित्युक्तं समन्ततः । भो भो शृणुत निःशेषा उद्यानस्याभिरक्षकाः ॥१८३॥
किं तिष्ठत सुविश्रब्धाः किङ्कराः कृतितां श्रिताः । किमिति श्रुतमस्माभिः कथ्यमानमिदं बहिः ॥१८४॥
कोऽप्युद्दामतयोद्यानं प्रविष्टो दुष्टखेचरः । स क्षिप्रं मार्यतामेष गृह्यतां दुर्विनीतकः ॥१८५॥
धावध्वमसकौ कोऽसौ सोऽयमेव यतः कुतः । कस्य कस्तादृशः क्वेति किङ्करध्वनिरुद्गतः ॥१८६॥
ततः कार्मुकिकान् दृष्ट्वा शाक्तिकान् गदिकांश्च तान् । खड्गिकान् कौन्तिकान्, बद्धसङ्घातानायतो बहून् १८७
किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वातिमृगाधिपपराक्रमः । रत्नशाखामृगच्छायासमुद्दीपितपुष्करः ॥१८८॥
अवरोहंस्ततो देशात्तैरदृश्यत किङ्करैः । आकुलत्वविनिर्मुक्तः प्रलम्बं बिभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियोंमें कामसे आकुल होकर कोइ स्त्री शिर पर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बाँये हाथमें दर्पण रख उसमें हनूमान्‌का प्रतिबिम्ब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गई ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछ-कुछ पहिचान कर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सन्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? १७७॥ इस प्रकार वनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोंको धारण करनेवाला एवं अग्निकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किङ्करोंको आज्ञा दी कि तुम लोगोंको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है। पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाय—मारा जाय ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किङ्कर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥१८२॥ अथवा कुछ भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कह कर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उद्दण्डतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनीतको शीघ्र ही मारा जाय अथवा पकड़ा जाय ॥१८३-१८५॥ रावणके प्रधान किङ्करोंकी बात सुनकर उद्यानके रक्षक किङ्करोंने 'दौड़ो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ है ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८६॥ उन किङ्करोंमें कोई धनुष लिए हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले संभाले हुए थे, और कोई झुण्ड-के-झुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे। उन सबको देख हनूमान्‌के मनमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिंहके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८७-१८८॥ तदनन्तर आकुलता

१. अलब्धदार -म०, ख० ।

ततस्तमुद्यदादित्यमण्डलप्रतिमत्विषम् । प्रदष्टाधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥१९०॥
ततः किलापरैः क्रूरैः प्रख्यातैः किङ्कराधिपैः । तत्किङ्करबलं गच्छदितश्चेतश्च धारितम् १९१॥
शक्तितोमरचक्रासिगदाकार्मुकपाणयः । सर्वतो वास्तृणन्नेतं[1] मुखराः किङ्करास्ततः ॥१९२॥
मुमुचुश्च घनं शस्त्रं ज्येष्ठवाता यथा बुसम्[2] । अदृष्टभास्करोद्योताः परं सङ्घातवर्तिनः ॥१९३॥
उत्पाट्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुङ्गवः । संघातं तुङ्गवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ॥१९४॥
भीमभोगिमहद्भोगभास्वद्भुजजवेरितैः । पादपादिभिराहिंसन् कालमेघ इवोन्नतः ॥१९५॥
अश्वत्थान् शालन्यग्रोधान्नन्दिचम्पककेसरान् । नीपाशोककदम्बांश्च पुन्नागानर्जुनान् धवान् ॥१९६॥
आम्रानाम्रातकांल्लोध्रा (स्तृणराजान्) स्थवीयसैः[3] । विशालान् पनसाद्यांश्च चिक्षेप क्षेपवर्जितः ॥१९७॥
बभञ्ज त्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् । मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ॥१९८॥
[4]आकूपारसमं तेन सैन्यमेकेन तत्कृतम् । समाकुलं गतं क्वापि क्षणेन प्रियजीवितम् ॥१९९॥
सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम् । कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥२००॥
पुष्पाद्रेरवतीर्णस्य [5]कंकुब्वलयरोधनम् । भूयो युद्धमभूद्दुग्रं प्रान्तविध्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

से रहित एवं लटकते हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनूमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किङ्करोंने उसे देखा ॥१८९॥ उस समय क्रोधके कारण हनूमान्की कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चबा रहा था। उसे देख किङ्करोंके झुण्ड भाग खड़े हुए ॥१९०॥ तदनन्तर जो किङ्करोंमें प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किङ्कर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किङ्करोंके दलको इकट्ठा किया ॥१९१॥ तदनन्तर जिनके हाथमें शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किङ्करोंने चिल्ला कर सब ओरसे हनूमानको घेर लिया ॥१९२॥ वे किङ्कर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था। तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९३॥ धीरशिरोमणि पवन-पुत्र हनूमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१९४॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित भुजाओंके वेगसे फेंके हुए वृक्ष आदिसे प्रहार करता हुआ हनूमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१९५॥ हनूमान् बिना किसी विलम्बके पीपल, सागौन, वट, नन्दी, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमाँ, लोध्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९६-१९७॥ उस महाबलवानने कितने ही लोगोंको शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ डाला—पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किङ्करोंको लात तथा घूँसोंके प्रहारसे पीस डाला ॥१९८॥ उस अकेलेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह व्याकुल हो क्षण भरमें प्राण बचाकर कहीं भाग गई ॥१९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगोंपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोंकी क्या आवश्यकता है ? और जो स्वाभाविक तेजको छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोंसे क्या लाभ है— निस्तेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं ? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनूमानका दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

---

१. वास्तृणन्नेतं म० । २. यथाम्बुदम् म० । ३. अतिस्थूलान् । ४. सागरसदृशम् । ५. चक्रुर्वलय-रोधनम् म० ।

सभावापीविमानानामुद्यानोत्तमसद्मनाम् । चूर्णितानां तदाघातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥
पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेश्मसु । महारथ्यापथा जाताः शुष्कसागरसन्निभाः ॥२०३॥
भग्नोत्तुङ्गापणश्रेणिः पातिताऽनेककिङ्करः । बभूव राजमार्गोऽपि महासंग्रामभूसमः ॥२०४॥
पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः कम्पितध्वजपंक्तिभिः । बभूवाम्बरमुत्पातादिव भ्रश्यत्सुरायुधम् ॥२०५॥
जङ्घावेगात्समुद्यद्भी रजोभिर्बहुवर्णकैः । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानीव [1]पुष्करे ॥२०६॥
पादावष्टम्भभिन्नेषु भूभागेषु निमज्जताम् । बभूव गृहशैलानां पातालेष्विव निस्वनः ॥२०७॥
दृष्ट्या कञ्चित्करेणान्यं कञ्चित्पादेन किङ्करम् । उरसा कञ्चिदंसेन वातेनान्यं जघान सः ॥२०८॥
आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां सहस्रशः । पततामुत्करै रथ्या जाता पूरसमागता ॥२०९॥
हाहाहीकारगम्भीरः पौराणामुद्गतो ध्वनिः । क्वचिच्च रत्नकूटानां भङ्गात्कणकणस्वनः ॥२१०॥
वेगेनोत्पततस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजाः । कोपादिवोद्ययुः पश्चात्कृतघण्टादिनिःस्वनाः ॥२११॥
उन्मूलितमहालाना बभ्रमुः परमा गजाः । वायुमण्डलपर्णानामश्वास्तुल्यत्वमागताः ॥२१२॥
अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कवशेषताम् । चक्रारूढेव निःशेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥
लङ्काकमलिनीखण्डं ध्वस्तराक्षसमीनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विक्षोभ्य बहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किङ्कर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनूमान्‌के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा बाग बगीचोंसे सुशोभित मकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गई थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची दुकानोंकी पंक्तियाँ तोड़ कर गिरा दी गईं थीं, तथा अनेक किंकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥ गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और काँपती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जङ्घाओंके वेगसे उड़ती हुईं रङ्ग बिरङ्गी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किङ्करको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वक्षःस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही साथ गिरनेवाले हजारों किंकरोंके समूहसे वह लम्बा चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोंका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमयी शिखरोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनूमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंचीं चली जातीं थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुईं क्रोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रहीं हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी खम्भे उखाड़ कर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गईं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥ जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभितकर ज्योंही हनूमानरूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥

१. आकाशे ।

तावत्तोयदवाहेन समं संनह्य वेगतः । पश्चादिन्द्रजितो लग्नो द्विपस्यन्दनमध्यगः ॥२१५॥
हनूमान्यावदेतेन समं योद्धुं समुद्यतः । प्राप्तं तावदिदं तस्य बलं यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
बाह्यायां भुवि लङ्कायां महाप्रतिभयं रणम् । जातं हनूमतः खेटैः लक्ष्मणस्येव दोषणम् ॥२१७॥
युक्तं सुचतुरैरश्वै रथमारुह्य पावनिः । समुद्धृत्य शरं सैन्यं राक्षसानामधावत ॥२१८॥
अथेन्द्रजितवीरेण पाशैर्माहोरगैस्सितः[1] । चिरमायोधितो नीतः पुरं किञ्चिद्विचिन्तयन् ॥२१९॥
ततो नगरलोकेन विश्रब्धं स निरीक्षितः । कुर्वन् भञ्जनमार्गाद्यो विद्युद्दण्डवदीक्षितः ॥२२०॥
प्रवेशितस्य चास्थान्यां तस्य दोषान् दशाननः । कथ्यमानान् श्रृणोति स्म तद्विद्भिः पुरुषैर्निजैः ॥२२१॥
दूताहूतः समायातः किष्किन्धं स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वंसं चक्रे तं च वशं रिपोः ॥२२२॥
साधूपसर्गमथने द्वीपे दधिमुखाह्वये । गन्धर्वकन्यकास्तिस्रः पद्मस्याभ्यनुमोदिताः ॥२२३॥
विध्वंसं वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुखस्य च । कन्यामाभिलपन्नस्य बहिरस्थापयद् बलम् ॥२२४॥
भग्नं पुष्पनगोद्यानं तत्पालयः[3] विह्वलीकृताः । बहवः किङ्करा ध्वस्ताः प्रपादि[4] च विनाशितम् ॥२२५॥
घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहाच्चिरन्तरम् । पयसा पोषिताः स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वंसमाहृताः ॥२२६॥
वृक्षैर्वियोजिता वल्यस्तरलायितपल्लवाः । धरण्यां पतिता भान्ति विधवा इव योषिताः ॥२२७॥
फलपुष्पभरानम्रा विविधास्तरुजातयः । श्मशानपादपच्छाया एतेन ध्वंसिताः स्थिताः ॥२२८॥

त्योंही हाथियोंके रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥२१५॥ हनूमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघवाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लंकाकी बाह्यभूमिमें हनूमानका विद्याधरोंके साथ उस तरह महाभयङ्कर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका खरदूषणके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनूमान् चार घोड़ोंसे जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राक्षसोंकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥२१८॥

अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो वीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशसे बाँध लिया गया था ऐसा हनूमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तोड़-फोड़ करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनूमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विज्ञ पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विज्ञ पुरुषोंने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया। वहाँसे लंका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपमें मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजकी तीन कन्याएँ रामको वरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लंकासुन्दरीको स्वीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्षक स्त्रियोंको विह्वल किया, बहुतसे किंकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पीने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनोंसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनके पल्लव चञ्चल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२२७॥ फल और फूलोंके भारसे झुकी हुई नाना वृक्षोंकी जातियाँ इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई हैं जिससे वे

१. महोरगसम्बन्धिभिः । २. बद्धः सितः ख० । ३. तत्पाल्या विह्वलाः कृताः ब० । ४. प्रपा पानीयशालिका तत्प्रभृति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । अबन्धयत्तमाहूय विनागं लोहशृङ्खलैः ॥२२९॥
उपविष्टोऽर्कसङ्काशो दशास्यः सिंहविष्टरे । पूजायोग्यं पुरा वातिमाक्रोशदिति निर्दयम् ॥२३०॥
उद्वृत्तोऽयममी पापः निरपेक्षस्त्रपोज्झितः । अधुनैतस्य का छाया धिगेतेनेक्षितेन किम् ॥२३१॥
व्यापाद्यते[१] न किं दुष्टः कर्ता नानागसामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुन्नतम् ॥२३२॥
ततस्तन्मण्डलप्रान्तस्थिताः प्रवरविभ्रमाः । महाभाग्या विलासिन्यो नवयौवनपूजिताः ॥२३३॥
कोपस्मितसमायुक्ता निर्मीलितविलोचनाः । विधाय शिरसः कम्पमेवमूचुरनादरात् ॥२३४॥
प्रसादाद्यस्य यातोऽसि प्रभुतां क्षितिमण्डले । पृथिव्यां विचरन् स्वेच्छं समस्तबलवर्जितः ॥२३५॥
एतत्तत्स्वामिनः प्रीतेर्भवता दर्शितं फलम् । भूमिगोचरदूतत्वं यत्प्राप्तोऽस्यतिनिन्दितम् ॥२३६॥
सुकृतं दशवक्त्रस्य कथमाधाय पृष्ठतः । वसुधाहिण्डनक्लिष्टौ भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३७॥
पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽस्यन्येन केनचित् । अदृष्टमकुलीनस्य निवेदयति चेष्टितम् ॥२३८॥
चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित् । अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः ॥२३९॥
मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् । नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥२४०॥
सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥२४१॥
इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः । को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ॥२४२॥

श्मशानके वृक्षोंके समान जान पड़ने लगी हैं ॥२२८॥ हनूमानके इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बँधवा दिया ॥२२९॥

तदनन्तर सिंहासनपर बैठा, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसकी पूजा करता था ऐसे हनूमानके प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार कठोर वचन बकने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्यों नहीं मारा जाय? अरे! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियाँ खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करतीं तथा शिर हिलातीं हुईं अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनूमान्! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३५॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३६॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे खेदको प्राप्त हुए राम लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनञ्जयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जारसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदोन्मत्त सिंह सियारोंकी सेवा करते हैं? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनोंसे हनूमानको क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर बोला कि कौन जानता है पुण्यके बिना विधाताका

१. व्यापादितेन म०।

स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना । इतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्यामः क्व प्रयास्यथ ॥२४३॥
सौमित्रिः सह पद्मेन बलोत्तुङ्गः समापतन् । न मेघ इव संरोद्धुं नगैः शक्यो भवेन्नृपैः ॥२४४॥
अतृप्तः परमाहारैः कामिकैरमृतोपमैः । याति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विषबिन्दुना ॥२४५॥
अतृप्तः स्त्रीसहस्त्रौघैरिन्धनैरिव पावकः । परस्त्रीतृष्णया सोऽयं विनाशं क्षिप्रमेष्यति ॥२४६॥
या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता दृढम् । न सा शक्याऽन्यथाकर्तुं पुरन्दरसमैरपि ॥२४७॥
निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः । नूनं विहितमस्यैतद्विहितेन हतो हतः ॥२४८॥
प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥२४९॥
[1]मर्त्यधर्मा यथा कश्चित्सुगन्धि मधुरं पयः । प्रमादी विषसन्मिश्रं पीत्वा ध्वंसं प्रपद्यते ॥२५०॥
तथाविधो दशास्य त्वं परस्त्रीसुखलोलुपः । [2]वचनेन विना क्षिप्रं विनाशं प्रतिपत्स्यते ॥२५१॥
गुरून् परिजनं वृद्धान् मित्राणि प्रियबान्धवान् । मात्रादीनपकर्ण्य त्वं[3] प्रवृत्तः पापवस्तुनि ॥२५२॥
कदाचारसमुद्रे त्वं मदनावर्तमध्यगः । प्राप्तो नरकपातालं कष्टं दुःखमवाप्स्यसि ॥२५३॥
त्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रवो नृपात् । अन्वयोऽधमपुत्रेण रक्षसां क्षयमाहृतः ॥२५४॥
अनुपालितमर्यादाः क्षितौ पूजितचेष्टिताः । पुङ्गवा भवतो वंश्यास्त्वं तु[4] तेषां पुलाकवत् ॥२५५॥
इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः खड्गमालोक्य रावणः । जगाद दुर्विनीतोऽयं सुदुर्वचननिर्भरः ॥२५६॥
त्यक्तमृत्युभयो विस्रब्धप्रगल्भत्वं ममाग्रतः । द्राक् खलीक्रियतां मध्ये नगरस्य दुरीहितः ॥२५७॥

निग्राह्य-दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥ जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिसप्रकार पर्वत मेघको नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारोंसे तृप्त नहीं होने वाला कोई मनुष्य विषकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईंधनोंसे अग्निके समान हजारों स्त्रियोंके समूहसे तृप्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी तृष्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ों प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है। जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबन्धु तथा माता आदिकी अनसुना कर तू पापकर्ममें प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचार रूपी समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्रने राक्षसोंका वंश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वंशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें छिलकेके समान निःसार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया। वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उद्दण्ड अत्यधिक दुर्वचनोंसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बड़प्पन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शीघ्र ही दुर्दशा की जाय ॥२५६-२५७॥

१. सत्यधर्मो म० । २. वमनेन म० । ३. तपकर्मत्वं म० । ४. नु म० ।

सशब्दैरायतैः स्थूलैर्बद्धो रज्जुभिरायसैः। ग्रीवायां हस्तपादे च रेणुरूषितविग्रहः ॥२५८॥
वेष्टितः किङ्करैः क्रूरैर्भ्राम्यतां च गृहे गृहे। हास्यमानः खरैर्वाक्यैः कृतमण्डलपूत्कृतः ॥२५९॥
इमकं वनिता दृष्ट्वा नराश्च पुरवासिनः। शोचन्ति कृतधिक्कारा विकृता कम्पिताननाः ॥२६०॥
क्षितिगोचरदूतोऽयं सोऽयं दूतः प्रपूजितः। पश्यतैनमिति स्वानः पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥
ततस्तैर्विविधाक्रोशैः संप्राप्तः कोपमुत्तमम्। अथासीद् बन्धनं छित्वा मोहपाशं यथा यतिः ॥२६२॥
पादविन्यासमात्रेण भंक्त्वा गोपुरमुन्नतम्। द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
शक्रप्रासादसङ्काशं भवनं रक्षसां विभोः। हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसङ्कुलम् ॥२६४॥
पतता वेश्मना तेन यन्त्रितापि महानगैः। धरणी कम्पमानीता पादवेगानुघाततः ॥२६५॥
भूमिसम्प्राप्तसौवर्णप्राकारं रन्ध्रगह्वरम्। वज्रचूर्णितशैलाभं जातं दाशमुखं गृहम् ॥२६६॥
कपिमौलिभृतामीशं श्रुत्वैवंविधविक्रमम्। प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥
वज्रोदरी ततोऽवोचत् किं वृथा देवि रोदिषि। सम्त्रोट्य शृङ्खलं पश्य यातं मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥
निशम्य वचनं तस्या विकसन्नेत्रपङ्कजा। गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
अचिन्तयदयं वार्ता मह्यं नाथस्य मे ध्रुवम्। कथयिष्यति यस्यैष गच्छतः प्रवरो जवः ॥२७०॥
पृष्ठतश्चास्य सानन्दा पुष्पाञ्जलिममुञ्चत। समाधानपरा भूत्वा श्रीरिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
उवाच च ग्रहाः सर्वे भवन्तु सुखदास्तव। हतविघ्नश्चिरंजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लम्बी मोटी लोहेकी सांकलोंसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बाँधा जाय, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाय, दुष्ट किंकर इसे घेर कर कठोर वचनोंसे इसकी हँसी करें तथा घर-घर घुमावें। इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख स्त्रियाँ तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह घोषणा की जाय कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनूमान बन्धनको छेड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेद कर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्ष पूर्वक आकाश में जा उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनूमानके पैरकी आघातसे इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खम्भे-ही-खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहाँकी पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतोंसे जकड़ी हुई थी तथापि चरणोंके वेगके अनुघातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चिह्न धारण करने वाले वानरवंशियोंके राजा हनूमानको इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार-बार विषादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो? देखो, वह हनूमान बन्धन तोड़कर आकाशमें उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनूमानको जाता देख सीताके नयन-कमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनूमान अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्ष पूर्वक हनूमानके पीछे उस प्रकार पुष्पाञ्जलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन

१. रायतैः म०। २. कृताधिकारा म०।

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः सकलभुवनरोधि[७]व्याप्यकीर्तिप्रधानाः ।
अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्तुमीशाः जनयति परमं तद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥
भजत सुकृतसङ्गं तेन निमुच्य सर्वं विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।
भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ताः परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥२७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्प्रत्याभिगमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५३॥

पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हों तथा तू विघ्नोंको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनकी कीर्तिका समूह समस्त संसारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आस्वादके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतने वाला एवं मनोहर लीलाओंका धारक होता है॥२७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

---

७. व्योधिश्लाघ्या -म० ।

चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद कैष्किन्धं हनूमान् बलमग्रतः । विधाय पुरिविध्वस्तध्वजछत्रादिचारुताम् ॥१॥
बहिर्निष्क्रान्तकैष्किन्धिजनसागरवीक्षितः । विवेश नगरं धीरो निसर्गोदारविभ्रमः ॥२॥
विक्षिताङ्गान् महायोधान् द्रष्टुं नगरयोषिताम् । गवाक्षार्पितवक्त्राणां संभ्रमः परमोऽभवत् ॥३॥
प्राप्य च वासमात्मीयं हितो भूत्वा पिता यथा । वातिरावासयत् सैन्यं यथायोग्यं समन्ततः ॥४॥
ततः सुग्रीवराजेन संगम्य ज्ञापितक्रियः । जगाम पद्मनाभस्य पादमूलं निवेदितुम् ॥५॥
प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः । वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥
क्षीणमत्यभिरामाङ्गं क्षीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नागं दावेनैवाकुलीकृतम् ॥७॥
वर्तमानं महाशोकपाताले द्विष्टविष्टपम् । पद्मं वातिरुपासर्पन् मूर्धन्यस्तकराम्बुरुट् ॥८॥
प्रथमं वातिना हर्षध्रियमाणोरुचक्षुषा । वक्त्रेण जानकीवार्ता शिष्टावाचा ततोऽखिला ॥९॥
अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्योक्तं स सीतया । चूडामणिं नरेन्द्राय समर्प्यागात् कृतार्थताम् ॥१०॥
चिन्तयेव हतच्छायः निषण्णः श्रान्तवत्करे । शोकक्लान्त इवासील्ल वेणीबन्धमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओं और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गई थी ऐसी सेना आगे कर हनूमान् किष्किन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किष्किन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनूमानने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने झरोखोंमें मुख लगा रक्खे थे, ऐसी नगर-निवासिनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनूमानने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनूमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्निसे उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनूमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनूमानने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडमणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता था मानों चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानों थककर ही बैठा हो और सीताकी चोटीमें बँधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानों शोकसे ही दुःखी होकर मलिन हो

१. पुरविध्वस्तध्वज -क० । पुरि विलस्त ख० । २. वीक्षिताङ्गान् म० । ३. -राश्वासयन् म० । ४. शिष्टवाचा म० । ५. शान्तवक्त्रकः म० ।

पद्मस्याञ्जलियातोऽसौ पतद्बाष्पो हतप्रभः । दृष्टा दृष्टो नु पीतो नु वार्ता पृष्टानु संभ्रमात् ॥१२॥
आसीनमञ्जलावेनं दौर्बल्यविरलाङ्गुलौ । गलत्किरणधारौघं शुशोच धरणीपतिः ॥१३॥
पूरिताञ्जलिमंशूनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रुदित्वैव नरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
प्रियायास्तदभिज्ञानं यत्राप्यङ्के नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिष्वङ्ग इवाभवत् ॥१५॥
सर्वव्यापी समुद्भिन्नो रोमाञ्चः कर्कशो घनः । अङ्गेष्वसंभवस्तस्य प्रमोद इव निर्झरः ॥१६॥
अपृच्छच्च परिष्वज्य मारुतिं कृतसंभ्रमः । अपि सत्यं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥
जगाद प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्ता समानीता सुखी भव इलापते ॥१८॥
किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्तिनी । गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ॥१९॥
वेणीबन्धच्युतिच्छायमूर्द्धजात्यन्तदुःखिता । मुहुर्निश्वसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
तनूदरी स्वभावेन विशेषेण वियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः क्रुद्धाभी रक्षसां विभोः ॥२१॥
सततं चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तसर्वतनुस्थितिः । दुःखं जीवति ते कान्ता कुरु देव यथोचितम् ॥२२॥
समीरणिवचः श्रुत्वा म्लानपद्मेक्षणश्चिरम् । चिन्तयाकुलितः पद्मो बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥
दीर्घमुष्णं च निश्वस्य स्रस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवितं स्वस्य जन्म चानेकधा भृशम् ॥२४॥

गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अञ्जलिमें पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो। रामने उसे बड़ी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या पिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियाँ विरल हो गई थीं ऐसी अञ्जलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओंका समूह झर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अञ्जलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिको रामने मस्तक पर धारण किया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूड़ामणिने स्वयं रोकर ही जलकी अञ्जलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानको रामने अपने जिस अङ्गपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिङ्गन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें जिसकी संभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमाञ्च निकल आया मानो हर्षका निर्झर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने बड़े संभ्रमके साथ हनूमान्‌का आलिङ्गन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलाङ्गी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनूमान्‌ने नम्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ! जीवित है। मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन्! सुखी होइए ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरहरूपी दावानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेणीबन्धनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, बार-बार दीनतापूर्वक सांसे भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह कृशोदरी तो स्वभावसे ही थी पर अब आपके वियोगसे और भी अधिक कृशोदरी जान पड़ती है। रावणकी क्रोधभरी स्त्रियाँ उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती हैं। इस तरह हे देव! आपकी प्रियवल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनूमानके उक्त वचन सुन कर रामके नेत्रकमल म्लान हो गये। वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो उठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरको धारण करनेवाले राम लम्बी तथा गरम सांस

१. जातोऽसौ म०। २. पृष्टानुसम्भ्रमात् म०। ३. रुदित्वा च० म०। ४. हे महीपते!। ५. च्युतच्छाय ख०।

ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा सौमित्रिरिदमब्रवीत् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयतां मनः ॥२५॥
लक्ष्यते दीर्घसूत्रत्वं किष्किन्धनगरप्रभोः । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥
[1]दशास्य कस्य नगरीं श्वो गन्तास्म विसंशयम् । नौभिरर्णवमुत्तीर्य बाहुभ्यामेव वा द्रुतम् ॥२७॥
अथोचे सिंहनादाख्यो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैवं भाषिष्ठाः[2] कोविदो भवान् ॥२८॥
भवतो या गतिः सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
गत्वा पवनपुत्रेण सप्राकाराट्टि[3]गोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोद्यानोपवनान्विता ॥३०॥
अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । सङ्घातमृत्युरस्माकं सम्प्राप्तोऽयं विधेर्वशात् ॥३१॥
ऊचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमूर्जितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तः सन्त्रासं मृगवत्परम् ॥३२॥
बिभेति दशवक्त्राङ्कः[4] को वासौ किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरग्रतः ॥३३॥
अस्माकं बहवः सन्ति खेचरेन्द्रा महारथाः । विद्याविभवसम्पन्नाः कृताश्चर्याः सहस्रशः ॥३४॥
ख्यातो घनगतिस्तीव्रो भूतनादो गजस्वनः । क्रूरः केलीकिलो भीमः कुण्डो गोरतिरङ्गदः[5] ॥३५॥
नलो नीलो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽशनिरर्णवः । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राह्वो वज्रदंष्ट्रो दिवाकरः ॥३६॥
उल्कालाङ्गूलदिव्यास्त्रप्रत्यूहोज्झितपौरुषः । हनूमान् सुमहाविद्यः प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
महेन्द्रकेतुरत्युग्रसमीरणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिरुद्वृत्तः सुतास्तस्य महाबलाः ॥३८॥

भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनूमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! शोक क्यों करते हो ? कर्तव्यमें मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैर कर कल ही निःसन्देह नीच रावणकी नगरी लंकाको चलेंगे ॥२७॥

तदनन्तर सिंहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानीके समान मत कहो । आप विद्वान् पुरुष हैं ॥२८॥ आपकी जो दशा लंकामें हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोंकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवन पुत्र हनूमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरोंसे सहित एवं बाग-बगीचोंसे सुशोभित लंकापुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैव वश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिंहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेग शाली हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं घनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अङ्गद, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट्र, दिवाकर, उल्का और लाङ्गूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहमें निर्बाध पौरुषको धारण करनेवाला हनूमान, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीक्ष्ण पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक

१. 'दशास्य नगरीं श्वो हि गन्तास्मेति विसंशयम्' म० । २. भाषिष्ट म० । ३. सताकाराद्रिगोपुरा म० । ४. वक्त्राख्यः ख० । ५. गोरविरंगदः ज० ।

किष्किन्धस्वामिनोऽन्येऽपि सामन्ताः परमौजसः । विद्यन्तेऽक्षतकर्माणो[1] निर्भृत्याः शासनैषिणः ॥३९॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचराश्चक्षुरानतम्[2] । लक्ष्मीधराग्रजं तेन निदधुर्विनयान्वितम् ॥४०॥
अथेक्षाञ्चक्रिरे तस्य वदनेऽव्यक्तसौम्यके । भ्रुकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम् ॥४१॥
लङ्कायां तेन विन्यस्तां दृष्टिं शोणस्फुरत्त्विषम् । केतुरेखामिवोद्याताम् राक्षसक्षयशंसिनीम् ॥४२॥
तामेव च पुनर्न्यस्तां चिरमध्यस्थतां गते । [3]दृष्टस्थाम्नि निजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ॥४३॥
कोपकम्पश्लथं चास्य केशभारं स्फुरद्द्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरोद्धुं तमसा जगत् ॥४४॥
तथाविधं च तद्वक्त्रं ज्योतिर्वलयमध्यगम् । [4]जरठीभवदुत्पातप्रभाभास्करसन्निभम् ॥४५॥
गृहीतगमनक्ष्वेडं[5] रक्षसां नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता सम्भ्रान्तमानसाः ॥४६॥
राघवाकूतनुन्नास्ते सम्पूज्येन्दुश्रुतेगिराम् । चलिताः व्योमगाश्चित्रहेतयः सम्पदान्विताः ॥४७॥
प्रयाणतूर्यसङ्घातं नादपूरितगह्वरम् । [6]दापयित्वा रणोत्सुक्यौ प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥४८॥
बहुले मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोत्साहैः शकुनैरेभिस्तेषां ज्ञेयं प्रयाणकम् ॥४९॥
दक्षिणावर्त्तनिर्धूमज्वाला रम्यस्वनः शिखी । परमालङ्कृता नारी सुरभिप्रेरकोऽनिलः ॥५०॥
निर्ग्रन्थसंयतश्छत्रं गम्भीरं वाजिहेषितम् । घण्टानिस्वनितं कान्तं कलशो दधिपूरितः ॥५१॥

महापराक्रमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भकर बीचमें नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी हैं और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३५-३९ ॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोंने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयङ्कर भृकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह-निकुञ्जके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लङ्काकी ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए हैं, वह राक्षसोंका क्षय सूचित करनेके लिए उदित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ़ धनुष पर लगा रक्खी है जो चिरकालसे मध्यस्थताको प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है। ॥४३॥ उनका केशोंके समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका खजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालका देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी उतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधरोंके मन क्षुभित हो उठे तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओंसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सन्मान कर आकाशमार्गसे चल पड़े। उस समय वे सब विद्याधर नानाप्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाओंसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मणने, ध्वनिके द्वारा गुफाओंको पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे बजवा कर प्रस्थान किया ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान कालमें होनेवाले निम्नाङ्कित शुभ शकुनोंसे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय उन्होंने देखा कि 'निर्धूम अग्निकी ज्वाला दक्षिणावर्तसे प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोंसे युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगन्धिको फैलानेवाली वायु बह रही है ॥५०॥ निर्ग्रन्थ मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है, घोड़ोंकी गम्भीर

१. कृतकर्माणो ज०, क० । २. चक्षुरानतं ज० । ३. दृष्ट्वा म० । ४. जटरीभव-म० । ५. गमने ज० । ६. सोत्साहं च दापयित्वा म० ।

उत्किरन्नितरां दृष्टो वामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निर्मुक्तमधुरस्वरः ॥५२॥
भेरीशङ्खरवः सिद्धिर्जय नन्द व्रज द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषां मङ्गलमुद्ययुः ॥५३॥
चतुर्दिग्भ्यः समायातैः पूर्यमाणो नभश्चरैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युक्तः सितपक्षविधूपमः ॥५४॥
नानायानविमानास्ते नानावाहनकेतनाः । व्रजन्तो व्योम्नि वेगेन बभुः खेचरपुङ्गवाः ॥५५॥
किष्किन्धाधिपतिर्वातिः शल्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुषेणश्च कुमुदाद्यास्तथा नृपाः ॥५६॥
एते ध्वजोपरिन्यस्तमहाभासुरवानराः । ग्रसमाना इवाकाशं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥
रेजे विराधितस्यापि हारो निर्झरभासुरः । जाम्बवस्य महावृक्षो व्याघ्रो सिंहरवस्य च ॥५८॥
वारणो मेघकान्तस्य शेषाणामन्वयागताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता भावाश्छत्रेषु चोज्ज्वलाः ॥५९॥
तेषां बभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्सरः । लोकपालोपमस्तस्य स्थितः पश्चान्मरुत्सुतः ॥६०॥
वृताः सामन्तचक्रेण यथास्वं परमौजसः । लङ्कां प्रति व्रजन्तस्ते रेजुः सञ्जातसम्मदाः ॥६१॥
सुकेशतनयाः पूर्वं लङ्कां माल्यादयो यथा । विमानशिखरारूढाश्चेलुः पद्मादयो नृपाः ॥६२॥
पार्श्वस्थः पद्मनाभस्य विराधितनभश्चरः । पृष्ठतो जाम्बवस्तस्थौ सचिवैरन्वितो निजैः ॥६३॥
वामे भुजे सुषेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च सम्प्राप्ता वेलन्धरमहीधरम् ॥६४॥
वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परमं युद्धमातिथ्यं समुपानयन्[1] ॥६५॥

हिनहिनाहट फैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ बायीं ओर नवीन गोवरको बार-बार बिखेरता तथा पङ्खोंको फैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ भेरी और शङ्खका शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो। इत्यादि मङ्गल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मङ्गलरूप शुभशकुनोंसे उन सबका उत्साह वृद्धिगत हो रहा था। चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोंसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसीलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनों पर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध-नगरके राजा सुग्रीव, हनूमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुषेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान वानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको ग्रसनेके लिए ही उद्यत हुए हों ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निर्झरके समान हार, जाम्बवके ध्वजामें महावृक्ष, सिंहरवकी ध्वजामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे चले आये अनेक चिह्न सुशोभित थे। ये सभी उज्ज्वल छात्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनूमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लङ्का जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदि ने लङ्काकी ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ हो लङ्काकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी बगलमें स्थित था और अपने मन्त्रियोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ बायें हाथकी ओर सुषेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था। इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेलन्धर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६४॥ वेलन्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था

१. समुपानयन् म० ।

ततो नलेन सस्पर्द्धं जित्वा निहतसैनिकः । बद्धो बाहुबलाढ्येन समुद्रः खेचरः परः ॥६६॥
सम्पूज्य च पुनर्मुक्तः पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽवस्थिताश्चैते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
सत्यश्रीः कमला चैव गुणमाला तथापराः । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिना ॥६८॥
कल्पिताः [२]पुरुशोभाढ्याः योषिद्गुणविभूषिताः । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥६९॥
तत्रैकां रजनीं स्थित्वा सुवेलमचलं गताः । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचरः ॥७०॥
जित्वा तमपि सङ्ग्रामे हेलामात्रेण खेचराः । चिक्रीडुर्मुदितास्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
तत्राक्षयवने रम्ये [३]सुखेनाक्षेपितक्षपाः । अन्येद्युरुद्यता गन्तुं लङ्कां तेन सुविभ्रमाः ॥७२॥
तुङ्गप्राकारयुक्तां तां हेमसद्मसमाकुलाम् । कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम् ॥७३॥
विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥
चैत्यालयैरलंतुङ्गैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषितां पवित्रां च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥७५॥
लङ्कां दृष्ट्वा समासन्नां सर्वे खेचरपुङ्गवाः । हंसद्वीपकृतावासा बभूवुः परमोदयाः ॥७६॥
युद्धे हंसरथं तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हंसपुरे क्रीडां चक्रुरिच्छानुगामिनीम् ॥७७॥
मुहुः प्रेषितदूतोऽयमद्य श्वो वा विशंसयम् । भामण्डलः समायातीत्येवमाकांक्षयास्थिताः ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते ।
नह्येतेषां [१]परजनमतं किञ्चिदुद्यमयुतानाम् सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥७९॥

सो उसने परम युद्धके द्वारा नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने स्पर्द्धाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बाँध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी होनेपर उसे सन्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया। राम आदि सन्त लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा देवाङ्गनाओंके समान जान पड़ती थीं। हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए समर्पित कीं ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये। वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास जीतकर विद्याधरोंने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीडा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुशलता पूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लङ्का जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोंसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके समान सफेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फर्शों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाओंसे अलंकृत थी, नाना रङ्गोंसे उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिरोंसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लङ्काको निकटवर्तिनी देख परम वैभवके धारक विद्याधर हंसद्वीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हंसपुर नामा नगरमें महाबलवान् राजा हंसरथको जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीडा की ॥७७॥ जिसके पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे शत्रुओंको जीतकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं। उद्यमशील पुण्यात्मा जीवोंके लिए कोई भी

१. पुर-म० । २. सुखेपाक्षेपितक्षपाः म० ।

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः ।
आस्तां तावत्स्वयंपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम् । धर्मादस्माद्व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥

वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७६॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उदित सर्व-श्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगोंका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लंकाके लिए प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा प्रतिसैन्यबलं पुरु । युगान्ताम्भोधिवेलेव लङ्का क्षोभमुपागतम् ॥१॥
सम्भ्रान्तमानसः किञ्चित्कोपमाप दशाननः । चक्रे रणकथां लोको वृन्दबन्धव्यवस्थितः ॥२॥
महार्णवरवा भेर्यस्ताडिताः सुभयावहाः । तूर्यशङ्खस्वनस्तुङ्गो बभ्राम गगनाङ्गणे ॥३॥
रणभेरीनिनादेन परं प्रमुदिता भटाः । सन्नद्धा रावणं तेन प्राप्ताः स्वामिहितैषिणः ॥४॥
मारीचोऽमलचन्द्रश्च भास्करः स्यन्दनो विभुः । तथा हस्तप्रहस्ताद्याः सन्नद्धाः स्वामिनं श्रिताः ॥५॥
अथ लङ्केश्वरं वीरं सङ्ग्रामाय समुद्यतम् । विभीषणोऽभ्युपागम्य प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥६॥
शास्त्रानुगतमत्युद्धं[1] शिष्टानामतिसम्मतम् । आयत्यां च तदात्वे च हितं स्वस्य जनस्य च ॥७॥
शिवं सौम्याननो वाक्यं पदवाक्यविशारदः । प्रमाणकोविदो धीरः प्रशान्तमिदमब्रवीत् ॥८॥
विस्तीर्णा प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभोः । स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ॥९॥
स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागाः परिक्षयम् । स्वामिन् सन्ध्याभ्ररेखेव प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतया । दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः ॥११॥
सुखोदधौ निमग्नस्त्वं स्वस्थस्तिष्ठ विचक्षण । अनवद्या महाभोगस्तवात्मीयं समन्ततः ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुकी बड़ी भारी सेनाको निकटमें स्थित जानकर लंका, प्रलयकालीन समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त संभ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ और झुण्डोंके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करने वाली भेरियाँ बजाई गई तथा तुरही और शङ्खोंका विशाल शब्द आकाशरूपी अङ्गणमें घूमने लगा ॥३॥ उस रणभेरीके शब्दसे परम प्रमोदको प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समीप आने लगे ॥४॥ मारीच, अमलचन्द्र, भास्कर, स्यन्दन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लंकाके अधिपति वीर रावणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणामकर शास्त्रानुकूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्योंके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एवं शान्तिपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहने लगा। विभीषण, सौम्यमुखका धारी, पदवाक्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमें निपुण एवं अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी संपदा इन्द्रकी संपदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुन्दकलीके समान निर्मल कीर्ति आकाश एवं पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥९॥ हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति संध्याकालीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमें नष्ट न हो जाय अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिए शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाय। इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेमें दोष नहीं दिखायी देता किन्तु गुण ही स्पष्ट दिखायी देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुख-रूपी सागरमें निमग्न हो सुखसे बैठो। तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओरसे निर्दोष

१. -मत्यन्तं म०।

समाने जानकी तस्मिन् पद्मनाभे नियुज्यताम् । निजः प्रकृतिसम्बन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥
श्रुत्वा तदिन्द्रजिद्वाक्यं जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाढ्यमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥
साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैवं भाषसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥१५॥
अत्यन्तं यद्यधीरस्त्वं भीरुश्च क्लीबमानसः । स्ववेश्मविवरे स्वस्थस्तिष्ठ किं तव भाषितैः ॥१६॥
[1]यदर्थे मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि । पतद्विविधशस्त्रौघे सङ्ग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥१७॥
हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तांस्तीक्ष्णया खड्गधारया । भुजेनोपार्ज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी[2] ॥१८॥
सुदुर्लभामिदं प्राप्य स्त्रीरत्नमनुत्तमम् । मूढवन्मुच्यते[3] कस्मात् त्वया व्यर्थमुदाहृतम् ॥१९॥
ततो विभीषणोऽवोचदिति निर्भर्त्सनोद्यतः । पुत्रनामासि शत्रुस्त्वमस्य दुःस्थितचेतसः ॥२०॥
महाशीतपरीतस्त्वमजानन् हितमात्मनः । अन्यचिन्तानुरोधेन हिमवारिणि मज्जसि ॥२१॥
उद्गतं भवने वह्निं शुष्कैः पूरयसीन्धनैः । अहो मोहग्रहार्तस्य विपरीतं तवेहितम् ॥२२॥
जाम्बूनदमयी यावत्सप्राकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तीक्ष्णैर्लङ्का न परिचूर्ण्यते ॥२३॥
तावन्नृपसुतां साध्वीं पद्माय स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमर्पयितुं द्रुतम् ॥२४॥
नैषा सीता समानीता पित्रा तव कुबुद्धिना । रक्षोभोगिबिलं लङ्कामेषानीता विषौषधिः ॥२५॥
सुमित्रानन्दनं क्रुद्धं तं लक्ष्मीधरपुङ्गवम् । सिंहं रणमुखे शक्ता न यूयं व्यूहितुं गजाः[4] ॥२६॥

हैं ॥१२॥ श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सन्मानकर सीता उन्हें सौंप दी जाय क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही अत्यन्त मानपूर्ण तथा आगमके विरुद्ध निम्नाङ्कित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपोंक या नपुंसक जैसे दीनहृदयके धारक हो तो अपने घरके बिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मदोन्मत्त हाथियोंके झुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शस्त्रोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त भयदायक संग्राममें तलवारकी पैनी धारासे उद्दण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीका उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर मूर्ख पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाय ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७-१९॥

तदनन्तर डाँट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीतकी बाधासे युक्त हो दूसरेकी इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है गोता लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको रूखे इन्धनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनोंसे युक्त सुवर्णमयी लङ्का जबतक लक्ष्मणके बाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री-सीताका सौंप देना सब लोगोंके कल्याणके लिए उचित है ॥२३-२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए बिलस्वरूप इस लङ्का नगरीमें विषकी औषधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिंहके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे

---

१. यदर्थं म० । २. मुक्ताद्दीयसुन्दरीः म० । ३. मुञ्चये म० । ४. गताः म० ।

अर्णवावर्तं धनुर्यस्य यस्यादित्यमुखाः शराः । पक्षे भामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनैः ॥२७॥
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः खेचराणां महाधिपाः । महेन्द्रा मलयास्तीरा श्रीपर्वततनूरुहाः ॥२८॥
किष्किन्धात्रिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरालकाः । कैलीकिला खतिलका सन्ध्याद्याः हैहयास्तथा ॥२९॥
प्राग्भारदधिवक्त्राश्च तथान्ये सुमहाबलाः । विद्याविभवसम्पन्नास्ते नु विद्याधरा न किम् ॥३०॥
एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः । उत्थाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः ॥३१॥
तेनापि कोपवश्येन दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलितः प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥
युद्धार्थमुद्गतावेतौ भ्रातरावुग्रतेजसौ । सचिवैर्वारितौ कृच्छ्रात्गतौ स्वं स्वं निवेशनम् ॥३३॥
कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्यैरेतैः प्रत्यायितस्ततः । जगाद रावणो बिभ्रन्मानसं [1]पौरुषाशयम् ॥३४॥
आश्रयाश[2] इव स्वस्य स्थानस्याहिततत्परः । दुरात्मा मत्पुरीत्तोऽयं परिनिःक्रामतु द्रुतम् ॥३५॥
अनर्थोद्यतचित्तेन स्थितेन किमिहामुना । स्वाङ्गेनापि न मे कृत्यं प्रतिकूलप्रवृत्तिना ॥३६॥
तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेतकं न नयाम्यहम् । ततो रावण एवाहम् न भवामि विसंशयम् ॥३७॥
श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः सोऽप्यहं न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ मानी लङ्कातोऽथ विभीषणः ॥३८॥
साग्राभिश्चारुशस्त्राभिः[3] त्रिंशद्भिः परिवारितः । अक्षौहिणीभिरुद्युक्तो गन्तुं पद्मस्य संश्रयम् ॥३९॥
विद्युद्घनेभवज्रेन्द्रप्रचण्डचपलाभिधाः । उद्गाताशनिसङ्घाताः कालाद्याश्च महाबलाः ॥४०॥
शूराः परमसामन्ता विभीषणसमाश्रयाः । सान्तःपुराः ससर्वस्वा नानाशस्त्रविराजिताः ॥४१॥

घेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमें है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, किष्किन्धा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, केलीकिल, गगनतिलक, संध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदिके बड़े-बड़े अभिमानी राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहे हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर क्रोधसे भरा रावण तलवार उभार कर खड़ा हो गया ॥३१॥ और इधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त दिया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी क्रोधके वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा खम्भा उखाड़ लिया ॥३२॥ युद्धके लिए उद्यत, उग्र तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोका । तदनन्तर रोके जाने पर वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३३॥

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्त जनोंने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठोर चित्तको धारण करता हुआ बोला कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४-३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अङ्गसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अथानन्तर 'क्या मैं भी रत्नश्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानी विभीषण लङ्कासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्दर शस्त्रोंको धारण करनेवाली कुछ अधिक तीस अक्षौहिणी सेनाओंसे परिवृत्त हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विद्युद्घन, इभवज्र, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े-बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमें रहनेवाले थे वे वज्रमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्तःपुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रोंसे सुशो-

१. पौरुषाशयम् म० । २. अग्निरिव, आश्रयस्य ख०, म० । ३. शस्त्रीभिः ख० ।

व्रजन्तो वाहनैश्चित्रैश्छादयित्वा नभस्तलम्[1] । परिच्छदसमायुक्ताः हंसद्वीपं समागताः ॥४२॥
द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोज्ञे ततस्तटे । ते सरिच्चुम्बिते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥
विभीषणागमे जाते जातो वानरिणां महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाकम्पः समन्ततः ॥४४॥
समुद्रावर्तभृत्सूर्यहासं लक्ष्मीभृदैक्षत । वज्रावर्तं धनुः पद्मः परामृशदुदादरः ॥४५॥
अमन्त्रयन्त सम्भूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहादिभमिव त्रस्तं वृन्दबन्धमगाद् बलम् ॥४६॥
युवा विभीषणेनाथ दण्डपाणिर्विचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाशं मधुराक्षरः ॥४७॥
सभायामुपविष्टोऽसौ कृतप्रणतिराहृतः । निजगादानुपूर्वेण विरोधं भ्रातृसम्भवम् ॥४८॥
इति चावेदयन्नाथ तव पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येवं धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥
भवन्तं शरणं भक्तः प्राप्तोऽहं श्रितवत्सल । आज्ञादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥
प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतीहारेण भाषिते । सन्मन्त्रो[2] मन्त्रिभिः सार्द्धं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥
मतिकान्तोऽब्रवीत्पद्मं कदाचिच्छद्मनैषकः । प्रेषितः स्याद्दशास्येन विचित्रं हि नृपेहितम् ॥५२॥
परस्पराभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५३॥
ततो मतिसमुद्रेण जगद्रे मतिशालिना । विरोधो हि तयोर्जातः श्रूयते जनवक्त्रतः ॥५४॥
धर्मपक्षो महानीतिः शास्त्राम्बुक्षालिताशयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥
सौन्दर्यकारणं नात्र कर्महेतुः पृथक् पृथक् । सततं तत्प्रभावेण स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

भित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियोंसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तट पर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दरिद्रोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषण-का आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ घबड़ाये हुए मन्त्री एकत्रित हो इच्छानुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर हाथियोंकी सेना झुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो झुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ बुलाये जानेपर वह सभामें गया और प्रणाम कर बैठ गया। तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ मतिकान्त मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने छलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताको प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद (पक्षमें स्वच्छता) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली मतिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोंके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह-उपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही

१. नभस्थलम् म० । २. समन्त्रो ज० ख० क० ।

प्रकृतेऽस्मिन् स्वमाख्यानं श्रुतौ कुरुत नैषिके[1]। गिरिगोभूतिनामानावभूतां बटुकौ किल ॥५७॥
तस्मिंश्च सूर्यदेवस्य राज्ञी नाम्ना मतिप्रिया। अददाद् व्रतकं ताभ्यामिदं सुकृतवाञ्छया ॥५८॥
[2]ओदनच्छादिते हेमपूर्णे पृथुकपालिके। गिरिः सुवर्णमालोक्य लोभादितरमच्छिणोत् ॥५९॥
अन्यच्च खलु कौशाम्ब्यां वणिग्नाम्ना बृहद्घनः। तद्भार्या कुरुविन्दाख्या तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥६०॥
अहिदेवमहीदेवौ तौ मृते जनके गतौ। सुधनौ यानपात्रेण विभवच्छेदभीरुकौ ॥६१॥
सर्वभाण्डेन तौ रत्नमेकमानयतां परम्। यस्य तज्जायते हस्ते स जिघांसति होतरम् ॥६२॥
परस्परं च दुश्चिन्तां तौ विवेद्य समं गतौ। मात्रे चार्पीय तद्रत्नं विरागाभ्यां समर्पितम् ॥६३॥
माता विषेण तौ हन्तुमैच्छद्बोधमिता पुनः। कालिन्द्यां[3] तैर्विरक्तैस्तद्रत्नं क्षिप्तं झषोऽगिलत् ॥६४॥
आनायिकगृहीतोऽसौ विक्रीतस्तद्गृहे पुनः। ततस्तयोः स्वसा मत्स्यं छिन्दाना रत्नमैक्षत ॥६५॥
मातरं भ्रातरौ चैषा विषयान्कर्तुं ततोऽलषत्। लोभमोहप्रभावेण स्नेहाच्च शममागता[4] ॥६६॥
ग्राव्णा निश्चूर्ण्य तद्रत्नं ज्ञाताकूताः[5] परस्परम्। संसारभावनिर्विण्णाः समस्तास्ते प्रवव्रजुः ॥६७॥
तस्माद्द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम्। संसारे जायते वैरं यौनबन्धो न कारणम् ॥६८॥
दृश्यते वैरमेतस्मिन् दैवयोगात्पुनः शमः। गोभूतिः सोदरो लोभाद्गिरिणा हत एव सः ॥६९॥
तस्मात्प्रेषितदूतोऽयं महाबुद्धिविभीषणः। आनीयतां न योनीयदृष्टान्तोऽत्र परिस्फुटः ॥७०॥

कारण है। कर्मके प्रभावसे ही संसारमें यह विचित्रता स्थित है ॥५६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—नैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥५७॥ उसी ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक व्रतके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्वर्ण रखकर तथा ऊपरसे भात ढककर दान दिया। उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देख लिया कि इन कपालोंमें स्वर्ण है तब उसने स्वर्णके लोभ से दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्वर्ण स्वयं ले लिया ॥५८-५९॥ दूसरी कथा यह है कि कौशाम्बी नामा नगरीमें एक बृहद्घन नामका वणिक् रहता था। कुरुविन्दा उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और महीदेव नामके दो पुत्र हुए थे। जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये। 'सूनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे। वहाँ सब वर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये। वह रत्न दोनों भाइयोंमें से जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेकी इच्छा करने लगता था ॥६०-६२॥ दोनों भाई अपने खोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥६३॥ माताने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चलकर वह ज्ञानको प्राप्त हो गई। तदनन्तर माता और दोनों पुत्रोंने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥६४॥ उस मच्छको एक धीवर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनोंके घर बेचा गया। तदनन्तर इनकी बहिनने मच्छको काटते समय वह रत्न देखा ॥६५॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विष देकर मारनेकी इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवश पीछे शान्त होगई ॥६६॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद संसारकी दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥६७॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदिके लोभसे भाई आदिके बीच भी संसारमें वैर होता है इसमें योनि सम्बन्ध कारण नहीं है ॥६८॥ इस कथामें वैर दिखाई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुनः शान्त होता गया है और पूर्व कथामें गिरिने अपने सगे भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥६९॥ इसलिए दूत भेजनेवाले इस महाबुद्धिमान् विभी-

१. नैमिषे म० । २. उदन ब०, ख० । ३. यमुनायां । ४. शममागतः म० । ५. ज्ञाताहृताः म० ।

ततो दण्डिनमाहूय जगुरेत्विति तेन च । गत्वा निवेदिते प्राप्तो पद्मं रत्नश्रवःसुतः ॥७१॥
ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभुः त्वमिह जन्मनि । परत्र जिननाथश्च ममायं निश्चयः प्रभो ॥७२॥
समये हि कृते तेन प्रोचे रामो विसंशयम् । योजयामि स्वकं लङ्कां भव सन्देहवर्जितः ॥७३॥
विभीषणसमायोगे वर्त्तते यावदुत्सवः । तावत्सिद्धमहाविद्यः प्राप्तः पुष्पवतीसुतः ॥७४॥
प्रभामण्डलमायातं विजयार्द्धखगाधिपम् । पद्मादयः परं दृष्ट्वा समानर्चुः प्रभाविणम् ॥७५॥
निर्वाह्य दिवसानष्टौ नगरे हंसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्काभिमुखमव्रजन् ॥७६॥
स्यन्दनैर्विविधैर्यानैः स्थूरीपृष्ठैर्मरुज्जवैः । प्रावृषेण्यघनच्छायैरनेकपकदम्बकैः ॥७७॥
अनुरागोत्कटैर्भृत्यैः वीरैः सन्नाहभूषणैः । ययुः खेचरसामन्ताः समन्ताच्छन्नपुष्कराः ॥७८॥
अग्रप्रयाणकन्यस्ताः प्रवीराः कपिकेतवः । सङ्ग्रामधरणीं प्रापुस्तद्योग्यत्वमुदाहृतम् ॥७९॥
विंशतिर्योजनान्यस्या रुन्द्रतापरिकीर्तितः । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणक्षितेः ॥८०॥
नानायुध[1]विचिह्नानां सहस्रैरुपलक्षिता । मृत्युचक्रमणिक्ष्मेव समवर्तत युद्धभूः ॥८१॥
ततो नागाश्वसिंहानां दुन्दुभीनां च निःस्वनम् । श्रुत्वा हर्षं दशास्योऽगाच्चिरागत[2]रणोत्सवः ॥८२॥
आज्ञादानेन चाशेषान् सामन्तान्सम[3]भावयत् । नहि ते वञ्चितास्तेन युद्धानन्देन जातुचित् ॥८३॥
भास्कराभाः पयोदाह्वाः काञ्चना व्योमवल्लभाः । गन्धर्वगीतनगराः कम्पनाः शिवमन्दिराः ॥८४॥

षणको बुलाया जाय। इसके विषममें योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेमे कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिये यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बुलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे। तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर खबर दी जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममें भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निश्छलताकी शपथ कर चुका तब रामने संशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लंकाका राजा बनाऊँगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्धके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस हंस नामक नगरमें आठ दिन बिताकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सबने लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनों, वायुके समान वेगशाली घोड़ों, वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहों, अनुरागसे भरे भृत्यों और कवचरूपी आभूषणोंसे विभूषित वीर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर वानरवंशी राजा युद्धकी भूमिमें सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिये उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंको धारण करनेवाले हजारों योद्धाओंसे सहित वह युद्धकी भूमि मृत्युके चक्ररत्नकी भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद रणका उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वंचित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्याभपुर, मेघपुर,

१. नानायुद्ध—ज०। २. विरागतरणोत्सवः म०। ३. समवाभवन् म० समनीनपत् ज०।

सूर्योदयामृताभिख्याः शोभासिंहपुराभिधाः । नृत्यगीतपुरालक्ष्मीकिन्नरस्वनसंज्ञकाः ॥८५॥
बहुनादा महाशैलाश्चक्राह्वा सुरनूपुराः । श्रीमन्तो मलयानन्दाः श्रीगुहा श्रीमनोहराः ॥८६॥
रिपुञ्जयाः शशिस्थानाः मार्तण्डाभविशालकाः । ज्योतिर्दण्डाः परिक्षोदा अश्वरत्नपराजयाः ॥८७॥
एवमाद्याः पुराभिख्याः महाखेचरपार्थिवाः । सचिवैरन्विताः प्रीता दशाननमुपागताः ॥८८॥
अस्त्रवाहनसन्नाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः । रावणोऽपूजयद्भूपान्[1] सुत्रामा त्रिदशानिव ॥८९॥
अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वारि त्रिककुप् प्रभोः । स्वशक्तिजनितं प्रोक्तं बलस्य प्रमितं बुधैः ॥९०॥
एकमक्षौहिणीनां तु किष्किन्धनगरप्रभोः । सहस्रं साग्रमेकं तु भामण्डलविभोरपि ॥९१॥
सुग्रीवः सचिवैः साकं तथा पुष्पवतीसुतः । आवृत्य परमोद्युक्तौ तस्थतुः[2] पद्मलक्ष्मणौ ॥९२॥
अनेकगोत्रचरणा नानाजात्युपलक्षणाः । नानागुणक्रियाख्याता नानाशब्दा नभश्चराः ॥९३॥

पुण्यानुभावेन महानराणां भवन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः ।
कुपुण्यभाजां तु चिरं सुशक्ता[3] विनाशकाले परतां भजन्ते ॥९४॥
भ्राता ममायं सुहृदेष वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेति ।
संसारवैचित्र्यविदा नरेण नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ॥९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विभीषणसमागमाभिधानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५५॥

काञ्चनपुर, गगनवल्लभपुर, गन्धर्व गीतनगर, कंपनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुरनूपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, श्रीगुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुंजयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तण्डाभपुर, विशालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिक्षोदपुर, अश्वपुर, रत्नपुर और पराजयपुर आदि अनेक नगरोंके बड़े-बड़े विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ रावणके समीप आ गये ॥८४–८८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सब राजाओंका उस तरह सन्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोंका सन्मान करता है ॥८९॥ विद्वानोंने रावणकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी दल बतलाया है। उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥९०॥ किष्किन्धनगरके राजा सुग्रीवकी सेनाका प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी दल था ॥९१॥ परम उद्योगी सदा सावधान रहनेवाले सुग्रीव और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥९२॥ उस समय युद्ध-भूमिमें नानावंश, नानाजातियाँ, नानागुण तथा नानाक्रियाओंसे प्रसिद्ध एवं नानाप्रकारके शब्दोंका उच्चारण करनेवाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥९३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन्! पुण्यके प्रभावसे महापुरुषोंके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाशके समय पर हो जाते हैं ॥९४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा बन्धु है और यह मेरा सदा सुख देनेवाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा संसारकी विचित्रताको जाननेवाले मनुष्यको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विभीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पचपनवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥५५॥

१. भूयः म० । २. परमोद्युक्तैस्तस्थतुः म० । ३. स्वशक्ताः म० ।

षट्पञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत् पुनरेवं गणेश्वरम् । अक्षोहिण्याः प्रमाणं मे वक्तुमर्हसि सन्मुने ॥१॥
शक्रभूतिरथागादीच्छृणु श्रेणिक पार्थिव । अक्षोहिण्याः प्रमाणं ते संक्षेपेण वदाम्यहम् ॥२॥
अष्टाविमे गताः ख्यातिं प्रकारा गणनाकृताः । चतुर्णां भेदमङ्गानां कीर्त्यमानं विबोध्यताम् ॥३॥
पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र तथा सेना प्रकीर्तिता । सेनामुखं ततो गुल्मं वाहिनी पृतना चमूः ॥४॥
अष्टमोऽनीकिनीसंज्ञस्तत्र भेदो बुधैः स्मृतः । यथा भवन्त्यमी भेदास्तथेदानीं वदामि ते ॥५॥
एको रथो गजश्चैकस्तथा पञ्च पदातयः । त्रयस्तुरङ्गमाः सैषा पत्तिरित्यभिधीयते ॥६॥
पत्तिस्त्रिगुणिता सेना तिस्रः सेनामुखं च ताः । सेनामुखानि च त्रीणि गुल्ममित्यनुकीर्त्यते ॥७॥
वाहिनी त्रीणि गुल्मानि पृतना वाहिनीत्रयम् । चमूस्त्रिपृतना ज्ञेया चमूत्रयमनीकिनी ॥८॥
अनीकिन्यो दश प्रोक्ता प्राज्ञैरक्षोहिणीति सा । तत्राङ्गानां पृथक् संख्यां चतुर्णां कथयामि ते ॥९॥
अक्षोहिण्यां प्रकीर्त्यानि रथानां सूर्यवर्चसाम् । एकविंशतिसङ्ख्यानि सहस्राणि विचक्षणैः ॥१०॥
अष्टौ शतानि सप्तत्या सहितान्यपराणि च । गजानां कथितं ज्ञेयं सङ्ख्यानं रथसङ्ख्यया ॥११॥
एकलक्षं सहस्राणि नव, पञ्चाशदन्वितम् । शतत्रयं च विज्ञेयमक्षोहिण्याः पदातयः ॥१२॥
पञ्चषष्टिसहस्राणि षट्शती च दशोत्तरा । अक्षोहिण्यामियं सङ्ख्या वाजिनां परिकीर्तिता ॥१३॥
एवं संख्यबलोपेतं विज्ञायापि दशाननम् । बलं कैष्किन्धमभ्यार तं भयेन विवर्जितम् ॥१४॥
तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पद्मनाभप्रभोर्बले । जनानामित्यभूद्वाणी [1]नानापक्षगतात्मनाम् ॥१५॥

अथानन्तर मगधपति राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे इस प्रकार पूछा कि हे सन्मुने ! मेरे लिए अक्षौहिणीका प्रमाण कहिए ॥१॥ इसके उत्तरमें इन्द्रभूति—गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् श्रेणिक ! सुन, मैं तेरे लिए संक्षेपसे अक्षौहिणीका प्रमाण कहता हूँ ॥२॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेनाके चार अङ्ग कहे गये हैं। इनकी गणना करने के लिए नीचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं ॥३॥ प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पाँचवाँ वाहिनी, छठवाँ पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी। अब उक्त चार अङ्गोंमें ये जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ ॥४-५॥ जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है ॥६॥ तीन पत्तिकी एक सेना होती है, तीन सेनाओंका एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुखोंका एक गुल्म कहलाता है ॥७॥ तीन गुल्मोंकी एक वाहिनी होती है, तीन वाहिनियोंकी एक पृतना होती है, तीन पृतनाओंकी एक चमू होती है और तीन चमूकी एक अनीकिनी होती है ॥८॥ विद्वानोंने दस अनीकिनीकी एक अक्षौहिणी कही है। हे श्रेणिक ! अब मैं तेरे लिए अक्षौहिणीके चारों अंगोंकी पृथक्-पृथक् संख्या कहता हूँ ॥९॥ विद्वानों ने एक अक्षौहिणीमें सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंकी संख्या इक्कीस हजार आठसौ सत्तर बतलाई है। हाथियोंकी संख्या रथोंकी संख्याके समान जानना चाहिये ॥१०-११॥ पदाति एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास होते हैं और घोड़ोंकी संख्या पैंसठ हजार छह सौ दस कही गई है ॥१२-१३॥ इस प्रकार चार हजार अक्षौहिणी रावणके पास थीं। सो इस प्रकारकी सेना से सहित रावणको अतिशय बलवान् जानकर भी किष्किन्धपति—सुग्रीवकी सेना निर्भय होकर रावण के सन्मुख चली ॥१४॥ जब रामकी सेना निकट आई तब नाना पक्षमें विभक्त लोगोंमें इस प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥१५॥

१. नानापक्षागतात्मनां म० ।

पश्यताम्बरयानोडुगणेशः शास्त्रधीकरः । दशास्यचन्द्रमारछन्नः परस्त्रीच्छाबलाहकैः ॥१६॥
अष्टादश सहस्राणि पत्नीनां यस्य [1]सुत्विषाम् । सीतायाः पश्यतैकस्याः कृते तं शोकशल्यितम्[2] ॥१७॥
रक्षसां वानराणां च कस्य नाम क्षयो भवेत् । एवं बभूव सन्देहः सैन्यद्वितयवर्तिनाम् ॥१८॥
बलेऽस्मिन्मारदेशीयो मारुतिर्नाम भीषणः । विस्फुरच्छौर्यतिग्मांशुः सूर्यतुल्योऽत्र शक्रजित् ॥१९॥
सागरोदारमत्युग्रं साक्षाद्दितिबलोपमम्[3] । साधनं रावणस्येति नराः केचिद् बभाषिरे ॥२०॥
अन्तरं वित्थशूरस्याशूरस्य च न जातुचित् । न तज्ज्ञातमतिक्रान्तं किं न वो[4] धीरबोधतम् ॥२१॥
यद्वृत्तं दण्डकाख्यस्य वनस्य महतोऽन्तरे । अत्यन्तदारुणं युद्धं लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥२२॥
चन्द्रोदरसुतं प्राप्य तुल्यं स्वाङ्गेन केवलम् । मृत्योरातिथ्यमानीतो येनासौ खरदूषणः ॥२३॥
अतिप्रकटवीर्यस्य लक्ष्मीनिलयवक्षसः । भवतां तस्य न ज्ञातं किं वा बलमनुत्तमम् ॥२४॥
एकेन वायुपुत्रेण निर्भर्त्स्य मयसम्भवाम् । रामपत्नीं समाश्वास्य परार्थासक्तवृत्तिना ॥२५॥
रावणस्य महासैन्यं विजित्यात्यन्तदारुणम् । लङ्कापुरी परिध्वस्ता भग्नप्राकारतोरणा ॥२६॥
एवं विदिततत्त्वानां स्फुटं वचसि निर्गते । जगाद प्रहसन् वाक्यं सुवक्त्रो गर्वनिर्भरः ॥२७॥
गोष्पदप्रमितं क्वैतद्बलं वानरलक्ष्मणाम् । क्व चैतत्सागरोदारं सैन्यं त्रैकूटमुद्धतम् ॥२८॥
इन्द्रेण साधितो यो न पतिर्विद्याभृतामयम् । एकस्य चापिनः साध्यो रावणः सञ्जायते ॥२९॥
सर्वतेजस्विमूर्धानं विभोरस्याधितिष्ठतः । श्रोतुं नामापि कः शक्तश्चेतनश्चक्रवर्तिनः ॥३०॥

कोई कहता था कि देखो जो विद्याधररूपी नक्षत्रोंके समूहका स्वामी है और जो शास्त्रज्ञानरूपी किरणोंसे सहित है ऐसा यह रावणरूपी चन्द्रमा परनारीकी इच्छारूपी मेघोंसे आच्छादित हो रहा है ॥१६॥ जिसकी उत्तम कान्तिको धारण करने वाली अठारह हजार स्त्रियाँ हैं वह एक सीताके लिए देखो शोकसे शल्य युक्त हो रहा है ॥१७॥ देखें राक्षसों और वानरोंमेंसे किसका क्षय होता है ? इस प्रकार दोनों सेनाओंके लोगोंको सन्देह हो रहा था ॥१८॥ उधर वानरोंकी सेनामें कामदेवके समान जो हनूमान् है वह अत्यन्त भयंकर है, उसका शौर्यरूपी सूर्य अतिशय देदीप्यमान हो रहा है और इधर राक्षसोंकी सेनामें इन्द्रजित् सूर्यके समान है॥१९॥ कोई कह रहे थे कि रावणकी यह सेना समुद्रके समान विशाल, अत्यन्त उग्र तथा साक्षात् दैत्योंकी सेनाके समान है ॥२०॥ क्या तुम कभी शूर-वीर और अशूर-वीरका अन्तर नहीं जानते ? क्या तुम्हें पिछली बात याद नहीं है ? और क्या तुम सबको धीर-वीर मनुष्यकी पहिचान नहीं है ? ॥२१॥ कोई कह रहे थे कि विशाल दण्डकवनके मध्यमें महाबलवान लक्ष्मणका जो युद्ध हुआ था और उसमें केवल अपने शरीरके तुल्य चन्द्रोदरके पुत्र—विराधितको पाकर उसने खर दूषणको यमका अतिथि बना दिया था । इस प्रकार अत्यन्त प्रकट पराक्रमके धारक लक्ष्मणका उत्कृष्ट बल क्या आपलोगोंको विदित नहीं है ? ॥२२-२४॥ कोई कह रहा था कि उस समय परहितमें लगे हुए अकेले हनूमानने मन्दोदरीको डाँटकर तथा सीताको सान्त्वना देकर रावणकी अत्यन्त उग्र सेना जीत ली थी तथा जिसके कोट और तोरण तोड़ दिये गये थे ऐसी लङ्काको क्षत-विक्षत कर दिया था ॥२५-२६॥

इस प्रकार तत्त्वज्ञ मनुष्योंके स्पष्ट वचन निकलने पर गर्वसे भरा सुमुख राक्षस हँसता हुआ निम्न प्रकारके वचन बोला ॥२७॥ वह कहने लगा कि वानर चिह्नको धारण करने वाले वानरवंशियोंकी यह गोखुरके समान तुच्छ सेना कहाँ ? और यह त्रिकूटवासियोंकी समुद्रके समान विशाल एवं उत्कट सेना कहाँ ? ॥२८॥ जो विद्याधरोंका अधिपति रावण इन्द्रके द्वारा भी वशमें नहीं किया जा सका वह एक धनुर्धारीके वश कैसे हो सकता है ? ॥२९॥ जो समस्त

१. सुकान्तियुक्तानां । २. शोकसंचितम् म० । ३. साक्षाद्दितिबलोपमम् (इति भवेत्) ४. युष्माकम् ।

सुपीवरभुजो वीरो दुर्द्धरस्त्रिदशैरपि । भुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥
यस्त्रिशूलधरः सङ्ख्ये कालाग्निरिव दीप्यते । सोऽयं विजीयते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥
यस्यातपत्रमालोक्य शरदिन्दुमिवोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोध्वंसमुपयाति समन्ततः ॥३३॥
उदात्ततेजसस्तस्य स्थातुं यस्याग्रतोऽपि कः । समर्थः[1] पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥

इति बहुविधवाचां द्वेषरागाश्रितानां प्रकटितनिजचित्तप्रार्थनासङ्कटानाम् ।
द्वितयबलजनानां दृष्टनानाक्रियाणाम् अजनि जनितशङ्को भावमार्गो विचित्रः ॥३५॥
चरित[2]जननकाला[3]ऽभ्यस्तरागेतराणां भवमपरमितानामप्ययं[4] चित्तमार्गः ।
भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे—उभयबलप्रमाणविधानं नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५६॥

तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे (अर्ध) चक्रवर्ती रावणका नाम भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन नहीं जानता ? ॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा सकता है ? ॥३२॥ उदित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंकी सेनारूपी अन्धकार सब ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भाँतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे, जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ देखी गई थीं । ऐसे उभयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शङ्काको उत्पन्न करनेवाली हुई थीं ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके योग्य समयमें भी रागी, द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता है—राग द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी सेनाओं के प्रयाणका कथन करनेवाला छप्पनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

---

१. समर्थपुरुषः म० । २. विरतिजनन- ख० । ३. कालोऽभ्यस्त- ज० । ४. मपरिजिनानां ज० ।

सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परसैन्यसमाश्लेषममृष्यन्तोऽथ मानवाः । उद्गच्छद्दर्पसंक्षोभ्या हृष्टाः सन्नद्धुमुद्यताः ॥१॥
उद्वेष्ट्य[1] दयिताबाहुपाशं कृच्छ्रेण केचन । संक्षुभ्य सिंहसङ्काशा लङ्कातो निर्ययुर्भटाः ॥२॥
वीरपत्नी प्रियं काचिदालिङ्ग्यैवमभाषत । श्रुतानेकमहायोध[2]परमाहवविभ्रमा[3] ॥३॥
सङ्ग्रामे विक्षतः पृष्ठे यदि नाथागमिष्यसि । दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्ष्यामि श्रुतिसङ्गतः[4] ॥४॥
किङ्कराणामतः पत्न्यो वीराणामतिगर्विताः[5] । धिक्शब्दं मे प्रदास्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥५॥
रणप्रत्यागतं वीरमुरोव्रणविभूषणम् । विशीर्णकवचं प्राप्तजयलब्धभटस्तवम् ॥६॥
द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकत्थनम् । जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥७॥
आभिमुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः । पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥८॥
स्तनद्वयसमुत्पीडं काचिदालिङ्ग्य मानवम् । जगाद पुनरेवं सा ग्रहीष्यामि जयान्वितम् ॥९॥
भवद्वक्षस्थलस्त्यानरक्तचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वयं शोभां मम यास्यति सर्वथा ॥१०॥
प्रातिवेश्मिकयोधानामपि पत्नीं जितप्रियाम् । न सहे कुत एवेश सहिष्ये त्वां विनिर्जितम् ॥११॥
काचिज्जगाद ते नाथ हताशं[6] व्रणभूषणम् । पुराणं रूढकं जातं ततो नैवातिशोभसे ॥१२॥
अतो नवव्रणन्यस्तस्तनमण्डलसौख्यदम् । द्रक्ष्येऽहं वीरपत्नीभिर्विकासिमुखपङ्कजा ॥१३॥

अथानन्तर परचक्रके आक्रमणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य उठते हुए अहंकारसे क्षुभित हो हर्ष पूर्वक कवच आदिक धारण करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ सिंहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमें पड़े हुए प्राणवल्लभाके बाहुपाशको बड़ी कठिनाईसे दूरकर क्षुभित हो लंकासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रक्खा था, ऐसी किसी वीरपत्नीने पतिका आलिङ्गनकर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ ! यदि संग्राममें घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूँगी ॥४॥ क्योंकि ऐसा होनेसे वीर किंकरोंकी गर्वीली पत्नियाँ मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या होगी ? ॥५॥ जिनके वक्षस्थलमें घाव आभूषणके समान सुशोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजयसे योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भीरताके कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूँगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करूँगी ॥६–७॥ महायोद्धाओंका सम्मुखागत मृत्युको प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखको धिक्कार शब्दसे मलिन जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोनों स्तनोंसे पतिका आलिङ्गनकर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिङ्गन करूँगी ॥९॥ आपके वक्षस्थलके गाढ़े-गाढ़े रक्तरूपी चन्दनोंकी चर्चासे मेरे दोनों स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त होंगे ॥१०॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाता है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंकी पत्नीको भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूँगी ? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभागा पुराना घावरूपी आभूषण रूढ हो गया है—पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अब नूतन घावपर रखे हुए स्तनमण्डलको सुख पहुँचानेवाले आपको जब देखूँगी तो मेरा

---

१. उद्वेज्य म० । २. योधं म० । ३. विभ्रमं म० । ४. सङ्गते । ५. मपि म० । ६. हतसंव्रण-भूषणम् -म० ।

काचिदूचे यथैतत्ते वदनं चुम्बितं मया । तथा[1] वक्षसि सञ्जातं चुम्बिष्यामि व्रणाननम् ॥१४॥
अनतिप्रौढिका काचिद्वधूरभिनवोढिका । संग्रामे प्रोद्यते नाथे प्रौढत्वं समुपागता ॥१५॥
चिराय रक्षितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुखे । तत्याजैकपदे कान्ता कान्तसंश्लेषतत्परा ॥१६॥
[2]अवितृप्तं भटी काचिद्भर्तृवक्त्रासवं पपौ । तथापि मदनप्राप्ता[3] रणयोग्यमशिक्षयत् ॥१७॥
काचिदुत्तानितं[4] भर्तुर्वदनं वनजेक्षणा । नैमिषोज्झितमद्राक्षीत् सुचिरं कृतचुम्बना ॥१८॥
काचिद्वक्षस्तटे भर्तुः करजव्रणमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छस्त्रपातस्य सत्यङ्कारमिवार्पयत् ॥१९॥
इति सञ्जातचेष्टासु दयितासु यथायथम् । भटानामित्यभूद्वाणी महासंग्रामशालिनाम् ॥२०॥
नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् । त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥२१॥
उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्ललितं भटाः । कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्तवाः ॥२२॥
गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः । यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ॥२३॥
त्रस्तं शरणमायातं दत्तपृष्ठं च्युतायुधम् । परित्यज्य पतिष्यामो दयिते शत्रुमस्तके ॥२४॥
भवत्या वाञ्छितं कृत्वा प्रत्यागत्य रणाजिरात् । [5]प्रार्थयिष्ये समाश्लेषं भवन्तीं तोषधारिणीम्[6] ॥२५॥
एवमादिभिरालापैः परिसान्त्व्य निजप्रियाः । धीरा निर्गन्तुमुद्युक्ताः [7]सङ्ख्यसौख्यसमुत्सुकाः ॥२६॥

मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्नियाँ मुझे बड़े गौरवसे देखेंगी ॥१३॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वक्षस्थलपर उत्पन्न हुए घावके मुखका चुम्बन करूँगी ॥१४॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि अधिक प्रौढ़ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर वह प्रौढ़ताको प्राप्त हो गई ॥१५॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानकी रक्षा करती बैठी थी परन्तु जब पति युद्धके सन्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिङ्गन करनेमें तत्पर हो गई ॥१६॥ यद्यपि किसी योद्धाकी स्त्री पतिके मुखकी मदिरा पीती-पीती तृप्त नहीं हुई थी तथापि कामाकुलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१७॥ कोई कमललोचना स्त्री पतिके ऊपर उठाये हुए मुखको टिमकार रहित नेत्रोंसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१८॥ किसी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर नखका उज्ज्वल घाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका बयाना ही दे दिया था ॥१९॥ इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित योद्धाओंकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बोला कि हे प्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके सन्मुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरद बखान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्यके बिना मदोन्मत्त हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागसे झूला नहीं झूल सकते ॥२२॥ हाथीदाँतके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखानेवाले एवं शस्त्र डाल देनेवाले पुरुषको छोड़ शत्रुके मस्तकपर टूट पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अभिलाषा पूर्णकर तथा रणाङ्गणसे लौटकर जब आपको सन्तुष्ट कर दूँगा तभी आपसे आलिङ्गनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके वार्तालापोंसे अपनी प्राणवल्लभाओंको सान्त्वना देकर युद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक वीर मनुष्य घरोंसे बाहर निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर ऐसी झूल गई मानो किसी गजराजके गलेमें कमलिनी ही

१. यथा म० । २. अवितृप्तभटी म० । ३. मदनं प्राप्ता म० । ४. दुत्तानितुं म० । ५. प्रापयिष्ये म० । ६. तोषकारिणीम् ज० । ७. संख्ये ज० ।

यियासोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठार्पितभुजद्वया । काचिद्दोलायनं चक्रे गजेन्द्रस्येव पद्मिनी ॥२७॥
काचित्सन्नाहरुद्धस्य पत्युर्देहस्य सङ्गमम् । अप्राप्य परमं प्राप्ता पीडामङ्कमपि श्रिता ॥२८॥
[1]अर्द्धबाहुलिकां दृष्ट्वा काचित्कान्तस्य वक्षसि । ईर्ष्यारसेन संस्पृष्टा किञ्चित्कुञ्चितलोचना ॥२९॥
अर्द्धसन्नाहनामायं मया परिहितो प्रिये । इति पुंशब्दयोगेन पुनस्तोषमुपागता ॥३०॥
ताम्बूलप्रार्थनव्याजात् काचित् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्चत् सुखिनी [2]कृच्छ्रात् कृत्वा व्रणविभूषितम् ॥३१॥
काचिन्निवर्त्यमानापि प्रियेण रणकांक्षिणा । सन्नाहकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥
एकतो दयितादृष्टिरन्यतः तूर्यनिस्वनः । इति हेतुद्वयादोलामारूढं भटमानसम् ॥३३॥
स्त्रीणां परिहरन्तीनां बाष्पपातममङ्गलम् । सत्यामपि दिदृक्षायां निमेषो नाभवत् दृशाम् ॥३४॥
अगृहीत्वैव सन्नाहं केचित् त्वरितमानसाः । यथालब्धायुधं योधा निर्ययुर्दर्पशालिनः ॥३५॥
रणसञ्जाततोषेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणसौण्डस्य वर्म माति स्म नो निजम् ॥३६॥
श्रुत्वा परचमूतूर्यस्वनं कश्चिद् भटोत्तमः । चिररूढैर्व्रणैः रक्तं मुमोचोच्छ्वासविग्रहः ॥३७॥
पिनद्धं कस्यचिद् वर्म सुदृढं तोषहारिणः । वर्द्धमानं ततः [3]शीर्णं पुराणं कङ्कटायितम् ॥३८॥
विश्रब्धं कस्यचिज्जाया समाधानपरायणा । सारयन्ती मुहुस्तस्थौ शिरस्त्राणं सुभाषिता ॥३९॥
प्रियापरिमलं कश्चिद्दीयमानं[4] स्ववक्षसः । कंकटं[5] प्रति नो चक्रे मनः सङ्ग्रामलालसः ॥४०॥
एवं विनिर्गता योधाः कृच्छ्रतः सान्त्वितप्रियाः । आकुलीभूतचित्ताश्च शयनीयेषु ताः स्थिताः ॥४१॥

झूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहिन रक्खा था इसलिए उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमें स्थित होनेपर भी परम पीड़ाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलपर अर्द्धबाहुलिका देख ईर्ष्यासे भर गई तथा उसके नेत्र कुछ-कुछ संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये! यह आधा कवच मैंने पहिना है। इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः सन्तोषको प्राप्त हो गई ॥३०॥ किसी सुखिया स्त्रीने ताम्बूल याचनाके बहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषितकर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किसी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके बहाने चली जा रही थी ॥३२॥ एक ओर तो वल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारण रूपी दोलाके ऊपर आरूढ़ हो रहा था ॥३३॥ अमाङ्गलिक अश्रुपातको बचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे नेत्रोंका पलक नहीं झपाती थीं ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अहंकारी योद्धा, कवच पहिने विना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न संतोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इतना फूल गया कि वह चिरकालके भरे घावोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किसी योद्धाने नया मजबूत कवच पहिना था परन्तु हर्षित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोपको चला रही थी ॥३९॥ किसीकी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर सुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो बड़ी कठिनाईसे प्रियाओं

१. सन्नहनीं (टि०) । २. कृत्वा म० । ३. शीघ्रं पुराणं कंटकायितम् म० । ४. दीयमानः म० । ५. कंटकं म०, ख० ।

अथाप्रकीर्तिमाध्वीकरसास्वादनलालसौ । द्विरदस्यन्दनारूढावसोढारिबलस्वनौ ॥४२॥
प्रथमं निर्गतोदात्तप्रतापौ शौर्यशालिनौ । हस्तप्रहस्तनामानौ लङ्कातो निर्गतौ नृपौ ॥४३॥
अनापृच्छ्यापि तत्काले स्वामिनो राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥४४॥
मारीचः सिंहजवनः स्वयम्भूः शम्भुरुत्तमः । पृथुः पृथुबलोपेतश्चन्द्राकौं शुकसारणौ ॥४५॥
गजबीभत्सनामानौ वज्राक्षो वज्रभृद्द्युतिः । गम्भीरनिनदो नक्रो मकरः कुलिशस्वनः ॥४६॥
उग्रनादस्तथा सुन्दः निकुम्भकुम्भशब्दितः । सन्ध्याक्षो विभ्रमक्रूरो माल्यवान् खरनिस्वनः ॥४७॥
जम्बूमाली शिखावीरो दुर्द्धर्षश्च महाबलः । एते केसरिभिर्युक्तैः सामन्ता निर्ययू रथैः ॥४८॥
वज्रोदरोऽथ शक्राभः कृतान्तो विघटोदरः । महाशनिरवश्चन्द्रनखो मृत्युः सुभीषणः ॥४९॥
कुलिशोदरनामा च धूम्राक्षो मुदितस्तथा । विद्युज्जिह्वो महामाली कनकः क्रोधनध्वनिः ॥५०॥
क्षोभणो धुन्धुरुद्धामा डिण्डिडिण्डिमडम्बराः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाहलादयः ॥५१॥
व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुङ्गै रथैरुद्भासिताम्बरैः । अहंयवो विनिर्याताः शत्रुविध्वंसबुद्धयः ॥५२॥
विद्याकौशिकविख्यातिः सर्पबाहुर्महाद्युतिः । शंखप्रशंखनामानौ रागो भिन्नाञ्जनप्रभाः ॥५३॥
पुष्पचूडो महारक्तो घटास्त्रः पुष्पखेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्तस्मरायणौ ॥५४॥
कामाग्निः कामराशिश्च कनकाभः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥
एतेऽपि वातरंहोभी रथैर्युक्तुरङ्गमैः । यथायथं विनिर्जग्मुरालयेभ्यो रसद्बलाः ॥५६॥
कदम्बविटपौ भीमो भीमनादो भयानकः । शार्दूलक्रीडितः सिंहश्चलाङ्गो विद्युदम्बुकः ॥५७॥

को समझा-बुझा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियाँ व्याकुल चित्त होती हुई शय्याओंपर पड़ रहीं ॥४१॥

अथानन्तर उत्तम कीर्तिरूपी मधुरसके आस्वादनमें जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रथ पर आरूढ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निकल चुका था, और जो शूरवीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निकले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय उनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अवसरपर दोष भी गुणरूपताको प्राप्त हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजवन, स्वयंभू, शम्भु, उत्तम, विशाल सेना से सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, बीभत्स, इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीरनाद, नक्र, मकर, वज्रनाद, उग्रनाद, सुन्द, निकुम्भ, कुम्भ, सन्ध्याक्ष, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, खरनाद, जम्बूमाली, शिखीवीर और महाबलवान् दुर्द्धर्ष ये सब सामन्त सिंहोंसे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४८॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतान्त, विघटोदर, महावज्ररव, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युज्जिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, क्षोभण, धुन्धु, उद्धामा, डिण्डि, डिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको देदीप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले। ये सभी सामन्त महा अहंकारी तथा शत्रु नाशकी भावना रखनेवाले थे ॥४९-५२॥ उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पबाहु, महाद्युति, शङ्ख, प्रशङ्ख, राग, भिन्नाञ्जनप्रभ, पुष्पचूड, महारक्त, घटास्त्र, पुष्पखेचर, अनङ्गकुसुम, काम, कामावर्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाभ, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामन्त, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने घरोंसे निकले। इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रहीं थीं ॥५३-५६॥ तदनन्तर कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक,

१. -बसोढौ विरलस्वनौ म० । २. प्रयाणे म० । ३. सिंहजघनः ज०, ख० । ४. वज्राद्यो म० । ५. गम्भीरो निनदो म० । ६. विभ्रमः क्रूरो म०, ख० । ७. -प्रभौ म० ।

[1]ह्लादनश्चपलश्चोलश्चलश्चञ्चलकादयः । गजादिभिरिमैर्युक्तैर्निर्ययुर्भास्वरै रथैः ॥५८॥
कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अध्यर्द्धपञ्चमाकोट्यः कुमाराणां स्मृता बुधैः ॥५९॥
विशुद्धराक्षसानूकाः कुमारास्तुल्यविक्रमाः । प्रख्यातयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥
आवृतास्ते समुद्युक्तैः कुमारैर्मारविभ्रमाः । बलिनो मेघवाहाद्याः कुमारेन्द्रा विनिर्ययुः ॥६१॥
अर्ककीर्तिसमो भूत्या दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजिन्निर्ययौ कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥
विमानमर्कसङ्काशं नाम्ना ज्योतिःप्रभं महत् । कुम्भकर्णः समारूढस्त्रिशूलाङ्को विनिर्गतः ॥६३॥
मेरुशृङ्गप्रतीकाशं लोकत्रितयशब्दितम् । विमानं पुष्पकाभिख्यमारूढः शक्रविक्रमः ॥६४॥
सञ्छाद्य रोदसी सैन्यैर्भास्वरायुधपाणिभिः । निष्क्रान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमद्युतिः ॥६५॥
स्यन्दनैर्वारणैः सिंहैर्वराहैः रुरुभिर्मृगैः । सृमरैर्विहगैश्चित्रैः सौरभेयैः क्रमेलकैः ॥६६॥
ययुभिर्महिषैरन्यैर्जलस्थलसमुद्भवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्रं वाहनैर्बहुरूपकैः ॥६७॥
भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः किष्किन्धाधिपतिं तथा । हिता राक्षसनाथाय[2] निर्ययुः खेचराधिपाः ॥६८॥
अथ दक्षिणतो दृष्टा भयानकमहास्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता भल्लुका बद्धमण्डलाः ॥६९॥
बद्धान्धतमसा पक्षैर्गृध्रा विकृतनिस्वनाः । भ्राम्यन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महाक्षयम् ॥७०॥
अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं क्रन्दन्तो भयशंसिनः । बभूवुराकुलीभूता भौमा वैहायसास्तथा ॥७१॥
शौर्यातिगर्वसम्मूढा विदन्तोऽप्यशुभानिमान् । महासैन्योद्धता योद्धुं रक्षोवर्गा विनिर्ययुः ॥७२॥

शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलाङ्क, विद्युदम्बुक, ह्लादन, चपल, चोल, चल और चञ्चल आदि सामन्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथों पर आरूढ होकर निकले ॥५७–५८॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम ले-ले कर कितने प्रधान पुरुष कहे जावेंगे ? उस समय सब मिला कर साढ़ेचार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रम के धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे घिरे, कामके समान सुन्दर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर वीर बुद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित्, जयन्तके समान बाहर निकला ॥६२॥ त्रिशूल शस्त्रका धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिःप्रभ नामक विशाल विमान पर आरूढ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मेरुकी शिखरके समान सुशोभित पुष्पक नामक विमानपर आरूढ़ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हाथोंमें नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादितकर निकला ॥६४–६५॥ तत्पश्चात् रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नानाप्रकारके पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जलथलमें उत्पन्न हुए नानाप्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामन्त लोग बाहर निकले ॥६६–६७॥ जो भामण्डल और सुग्रीव के प्रति क्रुद्ध थे तथा रावण के हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महाभयङ्कर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बाँधकर खड़े हुए थे ऐसे रीछ दक्षिणकी ओर दिखायी दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पङ्खोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रक्खा था, जिनका शब्द अत्यन्त विकृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीध आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इस प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत भारी गर्वसे मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्धत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नको जानते थे तो भी युद्ध करने के लिए बराबर

१. ह्रदन- म० । २. राक्षसनाशाय म० ।

प्राप्ते काले कर्म्मणामानुरूप्याद्दातुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।
शक्तो रोद्धुं नैव शक्रोऽपि लोके वार्तान्येषां केव वाङ्मात्रभाजाम् ॥७३॥
वीरा योद्धुं दत्तचित्ता महान्तो वाहारूढाः शस्त्रभाराजिहस्ताः ।
कृत्वावज्ञां वारकाणां समेषां[1] यान्त्यप्युद्ग्राहीं रविं प्रत्यभीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५७॥

नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७२॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है। फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, वाहनों पर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथ में था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुशोभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निषेध करनेवाले इन समस्त अशकुनोंकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लङ्कासे बाहर निकली इस बातका वर्णन करनेवाला संतावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥

१. समेते क० ।

अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

आस्तृणद्वीक्ष्य तत्सैन्यमुद्वेलमिव सागरम् । नलनीलमरुत्पुत्रजाम्बवाद्याः सुखेचराः ॥१॥
रामकार्यसमुद्युक्ताः परमोदारचेष्टिताः । महाद्विपयुतैर्दीप्तैः स्यन्दनैर्निर्ययुर्वरैः ॥२॥
सम्मानो जयमित्रश्च चन्द्राभो रतिवर्द्धनः । कुमुदावर्तसंज्ञश्च महेन्द्रो भानुमण्डलः ॥३॥
अनुद्धरो दृढरथः प्रीतिकण्ठो[2] महाबलः । समुन्नतबलः[3] सूर्यज्योतिः सर्वप्रियो बलः ॥४॥
सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः सर्वदः सरभो भरः । अभृष्टो निर्विनष्टश्च संत्रासो विघ्नसूदनः ॥५॥
नादो वर्बरकः पापो लोलपाटनमण्डलौ । सङ्ग्रामचपलाद्याश्च परमा खेचराधिपाः ॥६॥
शार्दूलसङ्गतैस्तुङ्गै रथैः परमसुन्दरैः । नानायुधधृताटोपा निर्जग्मुः पृथुतेजसः ॥७॥
प्रस्तरो हिमवान् भङ्गः प्रियरूपादयस्तथा । एते द्विपयुतैर्योद्धुं निर्ययुः सुमहारथैः[4] ॥८॥
दुःप्रेक्षः पूर्णचन्द्रश्च विधिः सागरनिःस्वनः । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्चन्दनपादपाः ॥९॥
चन्द्रांशुरप्रतीघातो महाभैरवकीर्तनः । दुष्टसिंहकटिः क्रुष्टः समाधिबहुलो हलः ॥१०॥
इन्द्रायुधो गतत्रासः सङ्कटप्राहरादयः । एते हरियुतैस्तूर्णं सामन्ता निर्ययू रथैः ॥११॥
विद्युत्कर्णो बलः शीलः स्वपक्षरचनो घनः । सम्मेदो विचलः सालः कालः क्षितिवरोऽङ्गदः ॥१२॥
विकालो लोलकः कालिर्भङ्गश्चण्डोर्मिरूर्जितः । तरङ्गस्तिलकः कीलः सुषेणस्तरलो बलिः ॥१३॥
भीमो भीमरथो धर्मो मनोहरमुखः सुखः । प्रमत्तो मर्दको मत्तः सारो रत्नजटी शिवः ॥१४॥
दूषणो भीषणः कोणः विघटाख्यो विराधितः । मेरू रणखनिः क्षेमः बेलाक्षेपी महाधरः ॥१५॥
नक्षत्रलुब्धसंज्ञश्च सङ्ग्रामो विजयो जयः । नक्षत्रमालकः क्षोदः तथातिविजयादयः ॥१६॥

अथानन्तर लहराते हुए सागरके समान व्याप्त होती हुई रावणकी उस सेनाको देख, श्रीरामके कार्य करनेमें उद्यत परम उदार चेष्टाओंके धारक नल, नील, हनूमान, जाम्बव आदि विद्याधर, महागजोंसे जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियोंसे युक्त रथोंपर सवार हो कटकसे निकले ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राभ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुद्धर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अमृष्ट, निर्विनष्ट, संत्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्बरक, पाप, लोल, पाटनमण्डल और संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रोंसे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे रथोंपर सवार हो बाहर निकले। ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोंके समूहको धारण कर रहे थे तथा विशाल तेजके धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भङ्ग तथा प्रियरूप आदि ये सब हाथियोंसे जुते उत्तम रथोंपर सवार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुष्प्रेक्ष, पूर्णचन्द्र, विधि, सागर निःस्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्रांशु, अप्रतीघात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि, क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास और संकटप्रहार आदि, ये सब सामन्त सिंहोंसे जुते रथोंपर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपक्षरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, क्षितिवर, अङ्गद, विकाल, लोलक, कालि, भङ्ग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरङ्ग, तिलक, कील, सुषेण, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भीषण, कोण, विघट, विराधित, मेरु, रणखनि, क्षेम, बेलाक्षेपी,

१. आस्तृणं ख० । २. प्रीतिकण्ठमहाबलौ ज० । ३. सूर्यः ज्योतिः ज० । ४. सुमहारथाः म०, ज० ।

एते वाजियुतैः कान्तैर्मनोरथजवै रथैः । महासैनिकमध्यस्थैरध्यासत रणाजिरम् ॥१७॥
विद्युद्वाहो मरुद्बाहुः सानुर्जलदवाहनः । रवियानः प्रचण्डालिरिमेऽपि घनसन्निभैः ॥१८॥
महारथवरैर्नानावाहनोद्भासिताम्बरैः । युद्धश्रद्धासमायुक्ता दधावुर्मारुतैः समाः ॥१९॥
विमानमुत्तमाकारं नाम्ना रत्नप्रभं महत् । आरूढो यत्नवानस्थात् पद्मपक्षो विभीषणः ॥२०॥
युद्धावर्तो वसन्तश्च कान्तः [१]कौमुदिनन्दनः । भूरिः कोलाहलो हेडो भावितः साधुवत्सलः ॥२१॥
अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागरः सागरोपमः । मनोज्ञो जिनसंज्ञश्च तथा जिनमतादयः ॥२२॥
नानावर्णविमानाग्रभूमिकास्थितमूर्तयः । दुर्द्धरा निर्ययुर्योद्धुं बद्धसन्नाहविग्रहाः ॥२३॥
पद्मनाभः सुमित्राजः सुग्रीवो जनकात्मजः । एते हंसविमानस्था विरेजुर्गगनान्तरे ॥२४॥
महाम्बुदप्रतीकाशा नानायानसमाश्रिताः । लङ्काभिमुखमुद्युक्ता गन्तुं खेचरपार्थिवाः ॥२५॥
[२]संघारलम्बिताम्भोदवृन्दनिर्घोषभैरवाः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्ययुः स्वनाः ॥२६॥
झम्भाभेर्यो मृदङ्गाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुकाः । झम्लाम्लातकहक्काश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणकाः ॥२७॥
झर्झरा हेतुकगुञ्जाश्च काहला दर्दुरादयः । समाहता महानादं मुमुचुः कर्ण[३]घूर्णकम् ॥२८॥
वेणुनादाट्टहासाश्च ताराहलहलारवाः । ययुः सिंहद्विपस्वाना महिषस्यन्दनस्वनाः ॥२९॥
क्रमेलकमहारावा निनादा मृगपक्षिणाम् । उत्तस्थुः पिहिताशेषाशेषविष्टपनिःस्वनाः ॥३०॥
तयोरन्योन्यमासङ्गे जाते परमसैन्ययोः । लोकः संशयमारूढः समस्तो जीवितं प्रति ॥३१॥
क्षोणी क्षोभं परं प्राप्ता विकम्पितमहीधरा । प्रशोषं गन्तुमारब्धः प्रक्षुब्धः [४]क्षारसागरः ॥३२॥

महाधर, नक्षत्रलुब्ध, संग्राम, विजय, रथ, नक्षत्रमालक, क्षोद तथा अतिविजय आदि घोड़ोंसे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेग वाले, तथा महासैनिकों के मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणाङ्गणमें पहुँचे ॥१२-१७॥ विद्युद्वाह, मरुद्बाहु, सानु, मेघवाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सब सामन्त भी मेघोंके समान नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको देदीप्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथोंपर सवार हो युद्ध की अभिलाषासे दौड़े। ये सब वायुके समान तीव्रवेग वाले थे ॥१८-१९॥ जिसे रामकी पक्ष थी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमानपर आरूढ़ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्त, वसन्त, कान्त, कौमुदि-नन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ, जिनसंज्ञ तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करनेके लिए बाहर निकले। ये सब नाना वर्णों वाले विमानोंकी अग्रभूमिमें स्थित थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कवचोंसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और भामण्डल ये सब हंसोंके विमानोंमें बैठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ जो महामेघके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ थे, ऐसे विद्याधर राजा लंकाकी ओर जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयंकर शब्द थे, तथा जो करोड़ों शङ्खोंके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही वादित्रोंके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥ भंभा, भेरी, मृदङ्ग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुंकार, दुन्दुकाणक, झर्झर, हेकगुञ्जा, काहल और दर्दुर आदि बाजे ताड़ित होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥२७-२८॥ बाँसोंके शब्द, अट्टहासकी ध्वनि, तारा तथा हलहलाके शब्द, सिंहों और हाथियोंके शब्द, भैंसाओं और रथोंके शब्द, ऊँटोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने लगे। इन सबके शब्दोंने शेष समस्त संसारके शब्दोंको आच्छादितकर दिया ॥२९-३०॥ जब उन दोनों विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनके प्रति संशयमें पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हुई, पर्वत हिलने लगे और क्षुभित हुआ

१. कौमुदनन्दनः म० । २. प्रलय- म० । ३. घूर्णनम् म० । ४. लवणसमुद्रः ।

सदर्पैर्निर्गतैर्योधैरसहैर्निजवर्गतः । दन्तुरीभूतमत्युग्रं बलद्वयमलक्ष्यत ॥३३॥
चक्रक्रकचकुन्तासिगदाशक्तिशिलीमुखैः । भिण्डिमालादिभिश्चोग्रं प्रवृत्तं युद्धमेतयोः ॥३४॥
आह्वयन्तः[१] सुसंनद्धाः शस्त्रज्वलितबाहवः । समुत्पेतुर्भटाः शूराः परसैन्यं विवक्षवः ॥३५॥
अतिवेगसमुत्पाताः प्रविष्टाः शात्रवं बलम् । शस्त्रसञ्चारमार्गार्थमपसस्रुः पुनर्मनाक् ॥३६॥
लङ्कानिवासिभिर्योधैरुद्गतैरतिभूरिभिः । सिंहैरिव गजा भङ्गं नीता वानरपक्षिणः ॥३७॥
पुनरन्यैर्भटैः शीघ्रमसीदन्तः समुज्वलाः । रक्षोयोधान् विनिर्जघ्नुर्भासुरा वानरध्वजाः ॥३८॥
भेद्यमानं बलं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागसमाकृष्टौ महाबलसमावृतौ ॥३९॥
गजध्वजसमालक्ष्यौ गजस्यन्दनवर्तिनौ । मा भैष्टेति कृतस्वानौ परमोत्कटविग्रहौ ॥४०॥
हस्तप्रहस्तसामन्तावुत्थाय सुमहाजवौ । निन्यतुः परमं भङ्गं बलं वानरलक्ष्मणाम् ॥४१॥
शाखामृगध्वजौ तावत्प्रतापं बिभ्रतौ परम् । क्रोडवारणसंयुक्तवाहव्यूढमहारथौ ॥४२॥
शौर्यगर्वाविवायुक्तशरीरौ परमद्युती । नलनीलौ परिक्रुद्धौ भीषणौ योद्धुमुद्यतौ ॥४३॥
ततो बहुविधैः शस्त्रैश्चिरं जाते महाहवे । क्रमात्तसाधुनिस्वाने निपतद्भटसङ्कटे ॥४४॥
नलेनोत्पत्य हस्तो वा विह्वलो विरथीकृतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतजीवितः ॥४५॥
तावालोक्य ततो राजन् विपर्यस्तौ महीतले । विनायका बभूवैतद्वाहिनीयं पराङ्मुखा ॥४६॥

लवण समुद्र शोषणको प्राप्त होने लगा ॥३२॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर आये हुए, असहनशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनों सेनाएँ अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३३॥ कुछ ही समय बाद दोनों सेनाओंमें चक्र, क्रकच, कुन्त, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और भिण्डिमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३४॥ जो एक दूसरेको बुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनकी भुजाएँ शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमें प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूर वीर योद्धा उछल रहे थे ॥३५॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उछलकर पहले तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥३६॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजितकर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजितकर देते हैं ॥३७॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओंने राक्षस योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥३८॥ तत्पश्चात् रावणकी सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिंचे तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त उठकर आगे आये। ये हाथीके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे पृथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, 'डरो मत, डरो मत' यह शब्दकर रहे थे, अत्यन्त उत्कट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे। इन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार-काट मचा दी ॥३९-४१॥ यह देख जो परम प्रतापको धारण कर रहे थे, सूकर, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूर वीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवंशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४२-४३॥

तदनन्तर जिसमें क्रम-क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उछलकर हस्तको रथ रहित तथा विह्वल कर दिया और नीलने प्रहस्तको निर्जीव बना दिया ॥४४-४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर

१. आहूयन्तः (?) म०।

वंशस्थवृत्तम्

बिभर्ति तावद् दृढनिश्चयं जनः प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुन्नतम् ।
[१]गतविनाशं स्वपतौ विशीर्यते यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ॥४७॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि सन्नराणां विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४८॥
प्रधानसम्बन्धमिदं हि सर्वं जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं प्रयाति मन्दो निकरः कराणाम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तवधाभिधानं नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥

हस्त और प्रहस्तको पृथ्वीपर पड़ा देख रावणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गई—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जब तक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे उठे मुखको देखता रहता है तभी तक दृढ़ निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्ठा बिखर गया है ऐसी गाड़ीके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योंका कार्य किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आक्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अंठावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥

१. गतैर्विनाशं म० ।

एकोनषष्टितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽथैवं विद्याविधिविशारदौ । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वौ न केनचित् ॥१॥
महदाश्चर्यमेतन्मे ताभ्यां तौ निहतौ कथम् । अत्र मे कारणं नाथ गणधृग्वक्तुमर्हसि ॥२॥
ततो गणधरोऽवोचच्छृणुत[1] तत्त्वविशारदः । राजन् कर्माभियुक्तानां जन्तूनां गतिरीदृशी ॥३॥
पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहितः पुरा ॥४॥
असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु । यो येन मोचितं पूर्वमनर्थे पतितो नरः ॥५॥
आसँल्लौकिकमर्यादाः प्रातिवेश्मिकवासिनः । निःस्वाः कुटुम्बिनः स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥
इन्धकः पल्लवश्चैव तत्रैकोदरसम्भवौ । पुत्रदारपरिक्लिष्टौ[2] विप्रौ[3] लाङ्गलकर्मकौ ॥७॥
सानुकम्पौ स्वभावेन साधुनिन्दापराङ्मुखौ । जैनमित्रपरिष्वङ्गाद् भिक्षादानादिसेविनौ ॥८॥
द्वितीयं निःस्वयुगलं प्रतिवेश्मोषितं तयोः । स्वभावनिर्दयं क्रूरं लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥
[4]वण्टने राजदानस्य सञ्जाते कलहे सति । ताभ्यामत्यन्तरौद्राभ्यां हताविन्धकपल्लवौ ॥१०॥
साधुदानाद्धरिक्षेत्रे जातौ सद्भोगभोजिनौ । पल्यद्वयक्षये जातौ देवलोकनिवेशिनौ ॥११॥
अधर्मपरिणामेन क्रूरौ तु प्राप्तपञ्चतौ । शशौ कालेञ्जरारण्ये[5] जातौ दुःखातिसङ्कटे ॥१२॥
मिथ्यादर्शनयुक्तानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिनां पापकूटानां भवत्येवेदृशी गतिः ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! विद्याओंकी विधिमें निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जीते जा सके वे बड़ा आश्चर्य है कि नल और नील के द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मोंसे प्रेरित प्राणियोंकी ऐसी ही गति होती है ॥३॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमें पड़े हुए जिस मनुष्यको उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-संकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥

इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमें लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कुछ दरिद्र कुटुम्बी पास-पासमें रहते थे ॥६॥ उनमें इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके ब्राह्मण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे; साधुओंकी निन्दासे विमुख थे, तथा अपने एक जैन-मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमें तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंकी पड़ोसमें ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार राजाकी ओरसे जो दान बँटता था उसमें कलह हो गई जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ मुनि दानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमें उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए। वहाँ दो पल्यकी उनकी आयु थी। उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमें उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्म रूप परिणामसे मर कर दुःखोंसे परिपूर्ण कालञ्जर नामक वनमें खरगोश हुए ॥१२॥ सो ठीक

---

१. च्छृणु तत्त्वविशारदः म० । २. पुत्रादर- म० । ३. विद्वौ म० । ४. विभागकरणे, बन्धने म० । ५. काले जरारण्ये म० ।

ततस्तिर्यक्षु सुचिरं भ्रान्त्वा विविधयोनिषु । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्तौ तापसत्वमुपागतौ ॥१४॥
बृहज्जटौ बृहत्कायौ फलपर्णादिभोजिनौ । तपोभिः कर्शितौ तीव्रैः कुज्ञाने द्वौ मृतौ च तौ ॥१५॥
क्रमादग्निक्षये जातावश्विन्याः कुक्षिसम्भवौ । पुत्रौ वह्निकुमारस्य विजयार्द्धस्य दक्षिणे ॥१६॥
आशुकारासुराकाराविमौ[1] जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिवौ रक्षसां विभोः ॥१७॥
पूर्वौ तु प्रच्युतौ नाकात् सुमनुष्यत्वमागतौ । गृहाश्रमे तपः कृत्वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥
पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टौ स्वर्गादिन्धकपल्लवौ । किष्कुसंज्ञे पुरे जातौ नलनीलौ महाबलौ ॥१९॥
यत्तद्धस्तप्रहस्ताभ्यां नलनीलौ भवान्तरे । निहतौ फलमेतस्य परावृत्य तदागतम् ॥२०॥
हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना । औदासीन्यमुदासीने[2] जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥
यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जितः । निःसन्दिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ॥२२॥
यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा[3] । असन्दिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ॥२३॥
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः शीर्णपोतं[4] झषादयः । स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद्दुःकृतजं फलम् ॥२४॥
मत्तैर्गिरिनिभैर्नागैर्योधैर्बहुविधायुधैः । सुवेगैर्वाजिभिर्दृप्तैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ॥२५॥
विग्रहेऽविग्रहे वापि निःप्रमादस्य सन्ततम् । जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥
निरस्तमपि नियन्तं[5] यत्र तत्र स्थितं[6] परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ॥२७॥

ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुओंकी निन्दा करनेवाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥१३॥ तदनन्तर तिर्यञ्चोंकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमणकर दोनों बड़ी कठिनतासे मनुष्य पर्याय प्राप्तकर तापस हुए ॥१४॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील-डौलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे। मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें वह्निकुमार विद्याधरकी अश्विनी नामा स्त्रीकी कुक्षिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोनों ही शीघ्रतासे कार्य करने वाले असुरोंके समान आकारके धारक थे, जगत्‌में अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवकस्वर्गसे च्युत हो कर उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए। तदनन्तर गृहस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे च्युत हो किष्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलको मारा था इसका फल लौटकर इस भव में उन्हींको प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभवमें जो जिसे मारता है वह इस भवमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभवमें जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भवमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभवमें जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भवमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे निःसन्देह परलोक सम्बन्धी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे निःसन्देह पूर्वभवका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहराते जलमें जर्जर नाकवाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि बाधा पहुँचाते हैं तथा स्थलमें म्लेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्वतों के समान मदोन्मत्त हाथियों, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगके धारक घोड़ों एवं कवच धारण करनेवाले अहंकारी भृत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यकी रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा

१. आशुकारशराकारौ ज० ख०, आशुकारशुराकारौ क० । २. उदासीन- म० । ३. चक्षुषाम् म० । ४. शीर्णे पोतं म० । ५. नियतं म० । ६. स्थिरं म० ।

दृश्यते बन्धुमध्यस्थः पित्राप्यालिङ्गितो धनी । म्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥२८॥
पात्रदानैः व्रतैः शीलैः सम्यक्त्वपरितोषितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरः ॥२९॥
दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जितः पुरा[1] । जीवितं चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनिःफला ॥३०॥

न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिररिष्वपि ॥३१॥

दोधकवृत्तम्

एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।
बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥३२॥
इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यसुखासुखगौणनिमित्तैः ।
रागतरं कलुषं च निमित्तं कृत्यमपोज्झितकुत्सितचेष्टैः ॥३३॥
भूविवरेषु निपातमुपैति ग्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम् ।
सन्तमसापिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥३४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तनलनीलपूर्वभवानुकीर्तनं नामैकोनषष्टितमं पर्व ॥५९॥

मनुष्य जहाँसे हटता है, जहाँ से बाहर निकलता है अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई-बन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई-बन्धुओंके मध्यमें स्थित है, पिता जिसका आलिङ्गन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी वह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके विना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विज्ञ पुरुषोंको शत्रुओं पर भी क्षमा करनी चाहिए ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है। लोगोंको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने सुख-दुःखके बाह्य निमित्तोंको गौण कर खोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको निमित्त कारणोंमें तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिये ॥३३॥ गाढ़ अन्धकारके द्वारा आच्छादित मार्ग जब सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्ढोंमें गिरता है; न पत्थर पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हस्त-प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५९॥

---

[1] पुरः म० ।

षष्टितमं पर्व

हस्तप्रहस्तसद्वीरौ विज्ञाय निहतौ ततः । अन्येद्युरुद्धुरक्रोधा बहवो योद्धुमुद्यताः ॥१॥
मारीचः सिंहजघनः स्वयम्भुः शम्भुरूर्जितः । शुकसारणचन्द्रार्कजगद्बीभत्सनिःस्वनाः ॥२॥
ज्वरोग्रनक्रमकरा [1]वज्राख्योद्यामनिष्ठुराः । गम्भीरनिनदाद्याश्च सन्नद्धारभसान्विताः ॥३॥
सिंहसम्बृद्ध[2]वाहोढस्यन्दनार्पितमूर्तयः । क्षोभयन्तः परिप्राप्ताः कपिकेतुवरूथिनीम् ॥४॥
तान् समापततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्थिवान्परान् । इमे वानरवंशाग्राः पार्थिवा योद्धुमुद्यताः ॥५॥
मदनाङ्कुरसन्तापप्रथिताक्रोश[3]नन्दनाः । दुरितानघपुष्पास्त्रविघ्नप्रीतिङ्करादयः ॥६॥
अन्योन्याहूतमेतेषामभवत् परमं रणम् । कुर्वज्जटिलं व्योम शस्त्रैर्बहुविधैर्घनम् ॥७॥
अभिलष्यति सन्तापो मारीचं समरे तदा । प्रथितः सिंहजघनमुद्यामं विघ्नसंज्ञकः ॥८॥
आक्रोशः सारणं पापः शुकाख्यं[4] नन्दनो ज्वरम् । तेषां स्पर्द्धवतामेवं युद्धं जातं नियन्त्रितम् ॥९॥
ततः क्लिष्टेन सन्तापो मारीचेन निपातितः । नन्दनेन हतः कृच्छ्राज्ज्वरः कुन्तेन वक्षसि ॥१०॥
प्रथितः सिंहकटिना विघ्नश्चोद्दामकीर्तिना । हतोऽथ युद्धसंहारः सवितास्तं समागमत् ॥११॥
श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नाथं निमग्नाः शोकसागरे । स्त्रियो विभावरीमेतामनन्तामिव मेनिरे ॥१२॥
अन्येद्युः सन्ततक्रोधाः सामन्ता योद्धुमुद्यताः । वज्राख्यः[5] क्षपितारिश्च मृगेन्द्रदमनो विधिः ॥१३॥
शम्भुः स्वयम्भुश्चन्द्रार्कास्तथा वज्रोदरादयः । राक्षसाधिपवर्गीयास्तेभ्योऽन्ये वानरध्वजाः ॥१४॥

अथानन्तर हस्त और प्रहस्त वीरोंको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुतसे योद्धा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयंभू, शम्भु, अर्जित, शुक, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्बीभत्स, निःस्वन, ज्वर, उग्र, नकर, मकर, वज्राख्य, उद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारणकर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहों और परिपुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ थे तथा वानर वंशियोंकी सेनाको क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-४॥ उन राक्षस वंशी उत्तमोत्तम राजाओंको आते देख वानरवंशके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमेंसे कुछके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंकुर, संताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिंकर आदि ॥६॥ आकाशको अत्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनों पक्षके लोगोंका एक दूसरेको ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें संताप, मारीचको चाह रहा था; प्रथित, सिंह जघनको; विघ्न, उद्यामको; आक्रोश, सारणको, पाप, शुकको और नन्दन, ज्वरको; देख रहा था । इस प्रकार स्पर्धासे भरे हुए इन सब योद्धाओंका विकट युद्ध हुआ ॥८-९॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचके सन्ताप को गिरा दिया। नन्दनने वक्षःस्थलमें भालेका प्रहारकर बड़े कष्टसे ज्वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह जघनने प्रथितको और उद्यामने विघ्नको मार गिराया। तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसंहार हुआ ॥११॥ अपने-अपने पतिको मरा सुन स्त्रियाँ शोकरूपी सागरमें निमग्न हुईं और उस रात्रिको अनन्त—बहुत भारी मानने लगीं ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राख्य, क्षपितारि, मृगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयंभु, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा

१. वज्राद्यो घाति निष्ठुराः म०, क० वज्राद्योद्याननिष्ठुराः ज०, क० । २. संबृत्त- ज० । ३. क्रोध- ज० । ४. शुकाद्यं म० । ५. वज्राद्यः म० ।

जन्मान्तरार्जितक्रोधकर्मबन्धोदयेन ते । योद्धुं परममासक्ता निजजीवितनिस्पृहाः ॥१५॥
क्षपितारिः समाहूतः संक्रोधेन महारुषा । मृगारिदमनो बलिना संहूतो बाहुशालिना ॥१६॥
विधिर्वितापिनाऽन्योन्यमेवं जाते महाहवे । भटेष्वज्ञातसंज्ञेषु निपतत्सूपलेष्विव ॥१७॥
शार्दूलस्ताडितः पूर्वं वज्रोदरमताडयत् । सक्रोधं सुचिरं युद्धं क्षपितारिरमारयत् ॥१८॥
विशालद्युतिनामा च शम्भुना विनिपातितः । मृत्युं स्वयम्भुवा नीतो विजयो यष्टिताडितः ॥१९॥
वितापिर्विधिना ध्वस्तो गदाघातेन कृच्छ्रतः । सामन्तैरिति हन्यन्ते सामन्ताः शतशस्तदा ॥२०॥
अवसीदत्ततो दृष्ट्वा स्वं किष्किन्धपतिर्बलम् । परमक्रोधसम्भारो यावत्सन्नद्धुमुद्यतः ॥२१॥
अञ्जनातनयस्तावत्स्वसैन्येन युगमहीम् । वारणोढं रथं हेममारूढो योद्धुमुद्ययौ ॥२२॥
रक्षःसामन्तसङ्घातो दृष्ट्वैव पवनात्मजम् । गवामिव गणो भ्रान्तस्त्रस्तः केशरिदर्शनात् ॥२३॥
ऊचुश्च राक्षसाः सोऽयं हनूमान् वानरध्वजः । अद्यैव विधवा योषाः परं बह्वीः करिष्यति ॥२४॥
माली तस्याग्रतो भूतो युद्धार्थी राक्षसोत्तमः । समुद्धृत्य शरं तस्य पुरो वातिरजायत ॥२५॥
तयोरभून्महद्युद्धं शरैराकर्णसंहितैः । उपात्तसाधुनिस्वानं क्रमेण परमोद्धतम् ॥२६॥
सचिवाः सचिवैः साकं रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिभिः सत्रा लग्ना युद्धरणोद्यताः ॥२७॥
मालिनं नष्टमालोक्य शक्त्या पवनजन्मनः । वज्रोदरोऽभवत्तस्य पुरः परमविक्रमः ॥२८॥
चिरंकृतरणोऽथायं वातिना विरथीकृतः । रथमन्यं समारुह्य मारुतिं समधावत ॥२९॥
कृत्वा तं विरथं भूयो मारुतिः परमोदयः । उपर्यवाहयत्तस्य रथं मारुतरंहसम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३–१४॥ जन्मान्तरोंमें संचित क्रोध कर्मके तीव्र उदयसे वे अपने जीवनसे निःस्पृह हो भयंकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे संक्रोधने क्षपितारिको ललकारा, भुजाओंसे सुशोभित बलीने सिंह दमनको बुलाया और वितापिने विधिको पुकारा। इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर जिनके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर-मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों ॥१६–१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने वज्रोदरको मारा। दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले संक्रोधको क्षपितारिने मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालद्युतिको मार गिराया, स्वयंभूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा दी और विधिने गदाके प्रहारसे वितापिको बड़ी कठिनाईसे मार पाया। इस प्रकार उस समय सामन्तोंके द्वारा सैकड़ों सामन्त मारे गये थे ॥१९–२०॥

तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जबतक कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हनूमान् हाथियोंसे जुते स्वर्णमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१–२२॥ जिस प्रकार सिंहको देखकर गायोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगता है, उसी प्रकार हनूमान्को देख राक्षस-सामन्तोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनूमान् आज ही अनेक स्त्रियोंको विधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी राक्षसोंका शिरोमणि, माली हनूमान्के आगे आया सो हनूमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ कानोंतक खींच-खींचकर चढ़ाये हुए बाणोंसे उन दोनोंका ऐसा महायुद्ध हुआ कि जिसमें क्रम-क्रमसे ठीक-ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव, सचिवोंके साथ, रथी रथियोंके साथ और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हनूमान्की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर उसके सामने आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हनूमान् ने जब उसे रथ-रहितकर दिया तब वह दूसरे रथपर सवार हो हनूमान्की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम अभ्युदयके

१. संनद्ध ज० ।

स्यन्दनोद्वाहिनागांह्रिचूर्णितः स रणाजिरे । अमुञ्चत द्रुतं प्राणान् हुङ्कारेणापि वर्जितः ॥३१॥
ततोऽस्याभिमुखं तस्थौ स्वपक्षवधकोपितः । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो बली ॥३२॥
असावुत्थितमात्रश्च ध्वजं वानरलाञ्छनम् । चिच्छेद वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्धसदृशेषुणा ॥३३॥
केतुकल्पनहृष्टेन तस्य मारुतिना धनुः । कवचं च ततो नीतं पुराणतृणशीर्णताम् ॥३४॥
[1]ततस्तनूदरीसूनुर्ध्वान्यं कवचं दृढम् । अताडयन्मरुत्सूनुं [2]तीक्ष्णैर्वक्षसि सायकैः ॥३५॥
बालनीलोत्पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवैः । असेवत [3]स तैः सौख्यं धरणीधरधीरधीः ॥३६॥
अथास्य वायुपुत्रेण रथयुक्तं महोद्धतम् । मुक्तं सिंहशतं पष्ठीचन्द्रवक्रेण पत्रिणा ॥३७॥
दंष्ट्राकरालवदनैः स्फुरल्लोहितलोचनैः । तैरुत्पत्य निजं सैन्यं सकलं विह्वलीकृतम् ॥३८॥
महाकल्लोलसङ्काशास्तस्य सैन्यार्णवस्य ते । क्रूरनक्रसमाना वा जाताः प्रबलमूर्तयः ॥३९॥
चण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिणः । सैन्यमेघसमूहं ते परमं क्षोभमानयन् ॥४०॥
रणसंसारचक्रेऽसौ सैन्यलोकः समन्ततः । सिंहकर्मभिरत्यर्थं[4]महादुःखवशीकृतः ॥४१॥
वाजिनो वारणा मत्ता रथारोहाश्च विह्वलाः । रणव्यापारनिर्मुक्ता निर्शुर्दश दिशस्ततः ॥४२॥
ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपश्यद्रावणं नातिदूरेऽवस्थितमग्रतः ॥४३॥
आरुह्य च रथं सिंहैर्युक्तं परमभासुरैः । अधावद्वाणमुद्धृत्य विंशत्यर्द्धमुखं प्रति ॥४४॥

धारक हनूमान्ने उसे पुनः रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ चढ़ा दिया ॥३०॥ जिससे रथको खींचनेवाले हाथियोंके पैरोंसे चूर-चूर होकर उसने रणाङ्गणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हुँकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्षके लोगोंकी मृत्युसे कुपित हो हनूमान्के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश बाणके द्वारा हनूमान् की वानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनूमान्ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण तृणके समान जर्जरता प्राप्त करा दी अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मजबूत कवच धारण कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा हनूमान्के वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले हनूमान्ने उन बाणोंसे ऐसे सुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरझाये हुए नालोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनूमान्ने षष्ठीके चन्द्रमाके समान कुटिल बाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ोंसे भयंकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उछलकर अपनी समस्त सेनाको विह्वलकर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके समान जान पड़ते थे अथवा अतिशय बलवान् क्रूर मगर-मच्छोंके समान दिखायी देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विद्युद्-दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेघोंके समूहको अत्यन्त क्षोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी संसारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सब ओरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, मदोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विह्वल हो युद्ध सम्बन्धी कार्य छोड़ दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सब सामन्तोंके भाग जानेपर हनूमान्ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥

तदनन्तर वह अत्यन्त देदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो बाण खींचकर रावणकी

---

१. मन्दोदरीपुत्रः । २. तीक्ष्णं म० । ३. शतैः म० । ४. इत्यर्थमहादुःख—म० ।

दशास्यस्त्रासितं वीक्ष्य निजं केसरिभिर्बलम् । समीपं चाञ्जनासूनुं कृतान्तमिव दुर्द्धरम् ॥४५॥
चक्रे योद्धुमभिप्रायं यावत्सन्नाहतत्परः । तावन्महोदरोऽस्यान्ते संरम्भेण[1] समुद्ययौ ॥४६॥
महोदरस्य च वातेश्च वर्त्तते यावदाहवः । तावत्ते हरयः प्राज्ञैर्गृहीताः स्वामिभिः शनैः ॥४७॥
वशीभूतेषु सिंहेषु जाता सन्तो महारुषः । वायुपुत्रं समुत्पेतुः समस्ता राक्षसध्वजाः ॥४८॥
[2]तथाप्यनिलसूनुस्तान् मुञ्चत शरसंहतीः । दधार मण्डलीभूतान् पतत्रिसचिवैः कृती ॥४९॥
ते शिलीमुखसङ्घाताः प्रहितास्तस्य राक्षसैः । संयतस्य यथाऽऽक्रोशा नाभवन्कम्पकारिणः ॥५०॥
रक्षोभिर्वेष्टितं दृष्ट्वा तैस्तमतिभूरिभिः । इमे वानरवर्गीणाः समराय समुद्ययुः ॥५१॥
सुषेणो नलनीलौ च प्रीतिङ्करो विराधितः । सन्त्रासको[3] हरिकटिः सूर्यज्योतिर्महाबलः ॥५२॥
जाम्बूनदसुताद्याश्च सिंहेभाश्वयुतैः रथैः । कृच्छ्राद्रावणसैन्यस्य निवारयितुमुद्यताः ॥५३॥
तैः समापतितैः सैन्यं दशग्रीवस्य सर्वतः । परीषहैरिव ध्वस्तं महानुच्छधृतं व्रतम् ॥५४॥
आत्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा युयुत्सुं च दशाननम् । आदित्यश्रवणो योद्धुमुद्गतो सुमहाबलः ॥५५॥
दृष्ट्वा तमुद्गतं वीरं ज्वलन्तं रणतेजसा । सुषेणादीनिमे प्रापुः साधारयितुमाकुलाः ॥५६॥
[4]इन्दुरश्मिर्जयस्कन्दश्चन्द्राभो रतिवर्द्धनः । अङ्गोऽङ्गदोऽथ सम्मेदः कुमुदः शशिमण्डलः ॥५७॥
बलिश्चण्डतरङ्गश्च सारो रत्नजटी जयः । बेलाक्षेपी वसन्तश्च तथा कोलाहलादयः ॥५८॥
ततस्ते [5]बहुबलत्वेन प्रवीराः पद्मपक्षिणः । लग्ना महाहवं कर्तुं [6]शत्रुमामन्तदुःसहम् ॥५९॥

ओर दौड़ा ॥४४॥ अपनी सेनाको सिंहोंके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्धर हनूमान्को पास आया देख, कवच आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने ज्योंही युद्धका विचार किया त्योंही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ ॥४५-४६॥ इधर जब तक महोदर और हनूमानका युद्ध होता है तब तक वे छूटे हुए सिंह धीरे धीरे बुद्धिमान स्वामियोंके द्वारा पकड़ लिये गये ॥४७॥ सिंहोंके वशीभूत होने पर जिनका तीव्र क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवन पुत्र पर टूट पड़े ॥४८॥ तथापि अतिशय कुशल हनूमान्ने, बाण समूहको छोड़ने वाले उन समस्त राक्षसोंको बाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥४९॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्योंके द्वारा कहे हुए दुर्वचन संयमी मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसोंके द्वारा छोड़े हुए बाणोंके समूह हनूमान्के कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं हुए अर्थात् धीर वीर हनूमान्, राक्षसोंके बाणोंसे कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥५०॥

तदनन्तर हनूमान्को बहुतसे राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥५१॥ सुषेण, नल, नील, प्रीतिंकर, विराधित, संत्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जाम्बूनदके पुत्र आदि । ये सब सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथों पर सवार हो बड़ी कठिनायीसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५२-५३॥ जिसप्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ व्रत परिषहोंके द्वारा ध्वस्त—नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब ओरसे आते हुए वानर पक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गई ॥५४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महाबलवान् भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥५५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान वीर भानुकर्णको उठा देख, ये लोग सुषेण आदिको सहारा देनेके लिए पहुँचे ॥५६॥ चन्द्ररश्मि, जयस्कन्द, चन्द्राभ, रतिवर्धन, अङ्ग, अङ्गद, संमेद, कुमुद, चन्द्रमण्डल, बलि, चण्डतरङ्ग, सार, रत्नजटी, जय, बेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥५७-५८॥ ये सब राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा,

१. सक्रोधेन म० । २. सूनोश्च म० । ३. संत्राहको हरिकोटिः म० । ४. इन्द्ररश्मि म० क० । ५. बहुबलत्वेन म०, क० । ६. शत्रूणामतिदुःसहम् म० ।

क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्यया स्वापिताः सर्वे दर्शनावरणी यया[1] ॥६०॥
निद्राघूर्णितनेत्राणां तेषां शस्त्रावसक्तिनाम् । करेभ्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥
निद्राविद्राणसङ्ग्रामानेतानव्यक्तचेतनान् । दृष्ट्वाऽमुञ्चत सुग्रीवो विद्यां द्राक्प्रतिबोधिनीम् ॥६२॥
प्रतिबुद्धास्तया तेऽथ सुतरां जाततेजसः । हनूमदादयो योद्धुं प्रवृत्ताः सङ्कुलं परम् ॥६३॥
शाखाकेसरिचिह्नानां बलमत्यर्थपुष्कलम् । छत्रासिपत्रसङ्कीर्णमच्छिन्नरणलालसम् ॥६४॥
स्पर्द्धमानं समालोक्य क्षुब्धसागरसन्निभम् । अवस्थां च [2]स्ववाहिन्याः परिप्राप्तामसुन्दरीम् ॥६५॥
[3]उत्सेहे रावणो योद्धुं प्रणम्य च तमिन्द्रजित् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यमभाषत महाद्युतिः ॥६६॥
तात तात न ते युक्तं सम्प्राप्तं मयि तिष्ठति । निष्फलत्वं हि मे जन्म सत्येवं प्रतिपद्यते ॥६७॥
नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गतिः । ततो भव सुविश्रब्धः करोम्येष तवेप्सितम् ॥६८॥
इत्युक्त्वा मुदितोऽत्यन्तमारुह्य गिरिसन्निभम् । त्रैलोक्यकण्टकाभिख्यं गजेन्द्रं [4]परमप्रियम् ॥६९॥
गृहीतादरसर्वस्वो महासचिवसङ्गतः । आखण्डलसङ्काशः प्रवीरो योद्धुमुद्यतः ॥७०॥
कपिध्वजबलं तेन विविधायुधसङ्कटम् । ग्रस्तमुत्थित[5]मात्रेण महावीर्येण मानिना ॥७१॥
किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्रजिता विद्धः शरैराकर्णसंहितैः ॥७२॥
किमयं शक्रजिन्नायं शक्रो वह्नि[6]रयं नु किम् । उतायमपरो भानुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

ऐसा महायुद्ध करने लगे कि जो शत्रु-सामन्तोंको अत्यन्त दुःसह था ॥५९॥ तदनन्तर रणको खाजसे युक्त उन सब वीरोंको क्रोधसे भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा सुला दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् निद्रासे जिनके नेत्र घूम रहे थे ऐसे शस्त्रोंको धारण करनेवाले उन वीरोंके हाथ सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुग्रीवने शीघ्र ही प्रतिबोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे प्रतिबुद्धि होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ़ गया था ऐसे हनूमान् आदि वीर अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानर वंशियों की वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, खड्ग तथा वाहनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्ध की लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करनेवाली थी, और क्षोभ को प्राप्त हुए सागरके समान जान पड़ती थी। इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानर वंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण युद्धके लिये उत्साही हुआ सो महादीप्तिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥६४–६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर मेरा जन्म निष्फलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे ! जो तृण नखके द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिन्त रहिये आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकंटक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्र पर सवार होकर युद्धके लिये उद्यत हुआ। उस समय जिसने आदर रूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान जान पड़ता था तथा अतिशय धीर-वीर था ॥६९–७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्‌ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी वानरोंकी सेना क्षणमात्रमें ग्रस ली—दबा दी ॥७१॥ सुग्रीवकी सेनामें ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इन्द्रजीत्‌ने कान तक खिंचे हुए बाणोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुखसे

१. यथा म०, यथा क०, यथा ज० । २. स वाहिन्याः म० । ३. उत्सहे म० । ४. परमं प्रियः म० । ५. मस्थित-म० । ६. वह्निरियं म० ।

ग्रस्यमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य शक्रजिता ततः । सुग्रीवः स्वयमुत्थातः प्रभामण्डल एव च ॥७४॥
तद्यानामभूद्युद्धमन्योन्याह्वानसङ्कुलम् । शस्त्रान्धकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७५॥
[1]अश्वैरश्वाः समं लग्नाः नागा नागै रथा रथैः । निजनाथानुरागेण महोत्साहा[2] भटा भटैः ॥७६॥
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः किष्किन्धेशं पुरः स्थितम् । अपूर्वशस्त्रभूतेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥
दशास्यशासनं त्यक्त्वा शाखामृगपशो त्वया । क्वाधुना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥
इन्दीवरनिभेनाद्य सायकेन तवामुना । शिरश्छिनद्मि संरक्षां कुरुतां क्षितिगोचरौ ॥७९॥
किष्किन्धेशस्ततोऽवोचत् किमेभिर्गर्जितैर्मुधा । मानशृङ्गमिदं भग्नं तव पश्य मयाधुना ॥८०॥
इत्युक्ते कोपसम्भारं वहन्निन्द्रजितोऽद्भुतम् । चापमास्फालयंस्तस्य समीपत्वमुपागतः ॥८१॥
शशिमण्डलसङ्काशच्छत्रच्छायानुसेवितः । मुमोच शरसङ्घातं किष्किन्धाधिपतिं प्रति ॥८२॥
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टान्[3] बाणान्नादोपलक्षितान् । [4]निजरक्षामहादक्षश्चिक्षेपेन्द्रजितं प्रति ॥८३॥
तेन बाणसमूहेन सन्ततेन निरन्तरम् । जातं नभस्तलं सर्वं मूर्तियुक्तमिवापरम् ॥८४॥
मेघवाहनवीरेण प्रभामण्डलसुन्दरः । आहूतो वज्रनक्रश्च विराधितमहीभृता ॥८५॥
विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तमः । [5]राजन् वक्षसि चक्रेण भासुरेणाभिपातितः ॥८६॥
ताडितो वज्रनक्रेण सोऽपि चक्रेण वक्षसि । विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥८७॥
चक्रसङ्घाहनिष्पेषजन्मवह्निकणोत्करैः । चञ्चदुल्कास्फुलिङ्गौघपिङ्गतां गगनं गतम् ॥८८॥

इसप्रकारके वचन निकल रहे थे कि—यह इन्द्रजित् नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजीत्के द्वारा दबी देख स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए उठे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओंमें ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलानेके शब्दसे व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिसमें आकाश अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिसमें प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ घोड़े घोड़ोंसे, हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने स्वामीके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे भिड़ गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगनस्पर्शी स्वरसे बोला ॥७७॥ कि अरे ! पशु तुल्य नीच वानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़ कर अब तू मेरे कुपित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥७८॥ आज मैं इस नील कमलके समान श्याम तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम लक्ष्मण तेरी रक्षा करें ॥७९॥ तदनन्तर सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थकी गर्जनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मान रूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारको धारण करने वाला इन्द्रजित् अद्भुत रूपसे धनुषका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके समान छत्र की छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर बाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिंचे तथा शब्दसे युक्त बाण इन्द्रजित् की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत बाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे वीर मेघवाहनने भामण्डलको ललकारा और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गौतम स्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन ! राजा विराधितने वज्रनक राजाकी छाती पर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे गिरा दिया ॥८६॥ इसके बदले वज्रनक्रने भी संभलकर विराधितकी छाती पर चक्रका प्रहार किया सो ठीक ही है क्योंकि बदला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय

१. अश्वैरश्वैः म० । २. महोत्साहभटाः म० । ३. समाकृष्यन् म० । ४. निजरक्षमहारक्ष -म० । ५. राजवक्षसि म० ।

लङ्कानाथस्य पुत्रेण निरस्त्रः सूर्यनन्दनः । कृतः सङ्ग्रामशौण्डेन सङ्ग्रामादनिवर्तकः ॥८९॥
तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्रं निराकृतम् । पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥९०॥
अवतीर्य ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । सिंहस्यन्दनमारूढः पिञ्जरीकृतपुष्करम् ॥९१॥
समाहितमतिर्नानाविद्यास्त्रगतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो बिभ्रद्रसमत्रमिवाहवे ॥९२॥
अस्त्रं घनौघनिर्घोषं सम्प्रयुज्य सवारुणम् । दिशः[1] किष्किन्धराजस्य चकारालोकवर्जिताः[2] ॥९३॥
तेनापि पवनास्त्रेण कृतच्छत्रध्वजादिना । तदस्त्रं वारुणं क्वापि नीतं तूलोत्करोपमम् ॥९४॥
घनवाहनवीरोऽपि प्रभामण्डलभूभृतः । आग्नेयास्त्रनियोगेन चकार धनुरिन्धनम् ॥९५॥
तस्य स्फुलिङ्गसंसर्गादन्येषामपि चापिनाम् । धूमोद्गारानमुञ्चन्त धनूंषि भयवीक्षितम् ॥९६॥
नितान्तबहुयोद्धॄणां जीवितग्रसनादिव । प्राणानां परमाजीर्णं धनुषां ते तदाभवन् ॥९७॥
वारुणेन ततोऽस्त्रेण त्वरितं जनकात्मजः । आग्नेयास्त्रं निराचक्रे स्वचक्रे कृतपालनः ॥९८॥
ततो मन्दोदरीसूनुश्चक्रे तं रथवर्जितम् । तथाविधमहासत्त्वमाकुलत्वविवर्जितम् ॥९९॥
प्रयोगकुशलश्चारुमस्त्रं तामसमक्षिपत् । तेनान्धकारितं सैन्यं सर्वं जनकजन्मनः ॥१००॥
[3]स नाजानाद् द्विपं न क्ष्मां नात्मीयं न च शात्रवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छन्नो मूर्च्छामिव समागतः ॥१०१॥

चक्र और कवचकी टक्करसे जो आग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकाश इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओंके तिलगोंके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लङ्कानाथके पुत्र इन्द्रजित्‌ने सुग्रीवको निःशस्त्र कर दिया फिर भी वह संग्रामसे पीछे नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीवने भी वज्रके द्वारा इन्द्रजित्‌के सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर क्रोध से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतर कर आकाशको पीला करने वाले सिंहोंके रथपर आरूढ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसकी बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ।९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करने वाला वारुण अस्त्र छोड़ कर सुग्रीवकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बदले सुग्रीवने भी छत्र तथा ध्वजा आदिको छेदने वाला पवन बाण चलाया जिससे इन्द्रजित्‌का वारुण अस्त्र रुईके समूहके समान कहीं चला गया ॥९४॥

उधर वीर मेघवाहनने भी आग्नेय बाण चलाकर राजा भामण्डलके धनुषको इन्धन बना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोंके सम्बन्धसे अन्य धनुष धारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे सब सेनाने बड़े भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक योद्धाओंके प्राण ग्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो ।।९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाकी रक्षा करते हुए भामण्डलने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़ कर आग्नेय अस्त्रका निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्दोदरीके पुत्र मेघवाहनने उस प्रकारके महापराक्रमी एवं आकुलतासे रहित भामण्डलको रथ रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेमें कुशल मेघवाहनने सुन्दर तामस बाण भी चलाया जिससे भामण्डलकी समस्त सेना अन्धकारसे युक्त हो गई ॥१००॥ वह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शत्रु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था। गाढ़ अन्धकारसे आच्छादित हुआ वह मानो मूर्च्छाको ही प्राप्त हो रहा था

१. दिशा म० । २. वर्जिता म० । ३. स नो जनो द्विपो न क्ष्मा म० ।

अन्धीभूतो दशास्यस्य सुतेन जनकात्मजः । विमुक्तविषधूमौघैः वेष्टितो नागसायकैः ॥१०२॥
तैः रसौ व्याप्तसर्वाङ्गो[1] विस्फुरद्भोगभासुरैः । चन्दनद्रुमसङ्काशः पपात वसुधातले ॥१०३॥
एवमिन्द्रजितेनापि कृता किष्किन्धभूभृतः । अवस्थाध्वान्तनागास्त्रद्वयव्यापारकारिणा ॥१०४॥
ततो विभीषणो विद्वान् विद्यास्त्ररणवस्तुनि । कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि बभाषे पद्मलक्ष्मणौ ॥१०५॥
पद्म पद्म महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । एताः पश्य दिशश्छन्नाः शरैरिन्द्रजितेरितैः ॥१०६॥
वियत्तलं धरित्री च तस्य बाणैर्निरन्तरैः । उत्पातभूतनागाभैरातेनेऽत्यन्तदुःखदैः ॥१०७॥
कृतौ सुग्रीववैदेहौ निरस्त्रौ[2] नागसायकैः । बद्धौ निपातितौ भूमौ [3]मयजासुतनिःसृतैः ॥१०८॥
उदारे विजिते देव[4] श्रीभामण्डलपण्डिते । वीरे सुग्रीवराजे च बहुविद्याधराधिपे ॥१०९॥
सङ्घातमृत्युमस्माकमासन्नं विद्धि राघव । एतौ हि नायकावुग्रावस्मत्पक्षस्य केवलौ ॥११०॥
एतामनायकीभूतां विद्याधरवरूथिनीम् । पलायनोद्यतां पश्य समाश्रित्य दिशो दश ॥१११॥
आदित्यश्रवणेनासौ पश्य मारुतनन्दनः । विजित्य समुहायुद्धे कराभ्यां बद्धविग्रहः ॥११२॥
शरजर्जरितच्छत्रकेतुकार्मुककङ्कटः । गृहीतः प्रसभं वीरः प्लवङ्गध्वजपुङ्गवः ॥११३॥
यावत्सुग्रीवभाचक्रौ पतितौ धरणीतले । न सम्भावयते क्षिप्रं रावणी रणकोविदः ॥११४॥
तावदेतौ स्वयं गत्वा निश्चेष्टावानयाम्यहम् । त्वं साधारय निर्नाथामिमां खेचरवाहिनीम् ॥११५॥
यावदेवमसौ पद्मं लक्ष्मणं चाभिभाषते । सुतारातनयस्तावद् गत्वा स्वैरमलक्षितः ॥११६॥

॥१०१॥ जब भामण्डल उस तामसबाणसे अन्धा हो रहा था तब मेघवाहनने उसे विषरूपी धूम का समूह छोड़ने वाले नागबाणोंसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फनोंसे सुशोभित उन नागोंसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था और इसीलिए जो चन्दन वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नाग पाश इन दो अस्त्रों को चलाने वाले इन्द्रजितने भी सुग्रीवकी दशाकी अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बाँध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर विद्यामय शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा राम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, ये दिशाएँ इन्द्रजित् के द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोंके समान आभावाले, अत्यन्त दुःखदायी उसके निरन्तर बाणोंसे आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्दोदरीके पुत्रोंने सुग्रीव और भामण्डलको अस्त्र रहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग बाणोंसे उन्हें बाँधकर पृथिवी पर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय चतुर भामण्डल और अनेक विद्याधरोंके राजा वीर सुग्रीवके पराजित होने पर हे राघव ! समझ लीजिये कि हम लोगोंकी सामूहिक मृत्यु निकटवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देखो, यह विद्याधरोंकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशों दिशाओंमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देखो कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनूमानको जीतकर अपने हाथोंसे उसे कैदकर रक्खा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कवच बाणोंसे जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनूमान् बलात् कैद किया गया है ॥११३॥ रण-विशारद रावणका पुत्र, जब तक पृथिवी पर पड़े हुए सुग्रीव और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचता है तब तक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनोंको मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित इस विद्याधर सेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जब तक विभीषण राम और लक्ष्मण

१. म पुस्तके त्वेवं पाठः 'सर्वाङ्गे विस्फुरद्भोगभासुरैश्चन्दनद्रुमः । यथा तथायं तैर्युक्तः पपात वसुधातले ॥' २. निरस्तौ म० । ३. मन्दोदरीपुत्र । ४. देवं म० । ५. भामण्डलौ ।

अम्बरं भानुकर्णस्य परिधानममुञ्चत । ह्रीभाराकुलितो जातः सेतद्धरणविह्वलः ॥११७॥
यावद्वासः समाधानपरोऽसौ राक्षसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदानिलिः ॥११८॥
नवो बद्धो यथा पक्षी निर्गतः पञ्जरोदरात् । आसीत्सुचकितो वातिः प्रत्युग्रद्युतिसङ्गतः ॥११९॥
ततो मुदितसम्प्रीतौ विमानशिखरस्थितौ । हनूमदङ्गदौ वीरौ रेजतुः सुरसन्निभौ ॥१२०॥
ताभ्यामङ्गकुमारेण चन्द्रोदरसुतेन च । समं लक्ष्मीधरः सेनां समाश्वासयितुं स्थितः ॥१२१॥
मन्दोदरीसुतं तावदभियाय विभीषणः । स पितृव्यं समालोक्य चिन्तामेतामुपागतः ॥१२२॥
तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥१२३॥
नागपाशैरिमौ बद्धौ मृत्युं यातौ विशंसयम् । एतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्प्पणम् ॥१२४॥
इति सञ्चिन्त्य निर्याताविन्द्रजिन्मेघवाहनौ । गहनाहवमेदिन्याः कृतार्थत्वाभिमानिनौ ॥१२५॥
अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्यां सम्भ्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरामुक्तकङ्कटस्तरलेक्षणः ॥१२६॥
उत्तीर्य स्वरथाद्वीरस्तयोर्निकम्पदेहयोः । अवस्थान्तरमद्राक्षीन्नागसायकनिर्मितम् ॥१२७॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् पद्मनाभं विचक्षणः । श्रूयतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२८॥
अत्यूर्जितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । भामण्डलसुग्रीवौ नीतावस्त्रविमुक्तताम् ॥१२९॥
रावणस्य कुमाराभ्यां [2]स्यूतावुरगमार्गणैः । तत्र त्वया मया वापि साध्यते किं दशाननः ॥१३०॥
ततः पुण्योदयात्पद्मः स्मृत्वा लक्ष्मणमब्रवीत् । सदा स्मर वरं लब्धं योग्युपद्रवनाशने ॥१३१॥

से कहता है तब तक सुताराके पुत्र अङ्गदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वस्त्रके संभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जब तक कुम्भकर्ण वस्त्रके संभालनेमें लगता है तब तक हनूमान् उसकी भुजपाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बँधा पक्षी पिंजड़ेके मध्यसे निकलने पर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनूमान् भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलने पर चकित तथा उग्र तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और संतोषसे युक्त वीर हनूमान् और अङ्गद विमानके अग्रभाग पर बैठ देवोंके समान सुशोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाको धैर्य बँधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाय तो पितामें और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सन्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बँधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचार कर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जाने पर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहिन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतर कर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्चेष्ट पड़े हुए थे। वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देखी ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिये, जहाँ वे महाविद्याधरोंके स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न ये भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अस्त्र रहित अवस्थाको प्राप्त हो नागपाशसे बाँध लिये गये हैं वहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१३०॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियोंका उपसर्ग दूर

१. त्वरद्धरण- म० २. स्यूतावुरुमार्गणैः म० ।

महालोचनदेवस्य तदभिध्यानमात्रतः । सुखावस्थस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥
आलोक्यावधिनेत्रेण ततो विज्ञाय सम्भ्रमी । विद्याभ्यां प्राहिणोद्युक्तं चिन्तावेगं निजं सुरम् ॥१३३॥
[1]गत्वा कथित स क्षेमः सन्देशः सादरं सुरः । ताभ्यामुद्धे ददौ विद्ये परिवारसमन्विते ॥१३४॥
[2]सैंहं पद्मावदातस्य यानमर्पयदद्भुतम् । समुद्योतितदिक्चक्रं सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥
[3]विद्येसं प्राप्य सम्मान्य धीरौ [4]चिन्तागतिं मुदा । पृष्टवार्तौ जिनेन्द्राणां पूजां तौ चक्रतुः परम् ॥१३६॥
परं साधुप्रसादं च प्रस्तावे सङ्गतोदयम् । संशंसतुर्मुदोदारगुणग्रहणतत्परौ ॥१३७॥
[5]अद्राष्टां च सुरास्त्राणि भासुराणि सहस्रशः वारुणाग्निमरुन्मुख्यप्रभृतीनि सुविभ्रमौ ॥१३८॥
चन्द्रादित्यसमे छत्रे चारुचामरमण्डिते । रत्नानि च प्रदत्तानि पिहितानि निजौजसा ॥१३९॥
गदाप्रहरणं विद्युद्वक्त्रा लक्ष्मीधरं श्रिता । हलं समुसलं पद्मं दैत्यानां भयकारणम् ॥१४०॥
महिमानं परं प्राप्य ताभ्यां सम्मदसङ्गतः । आशीःशतानि दत्त्वासौ गतो देवस्त्रिविष्टपम् ॥१४१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरैर्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
यन्मम्प्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः सञ्जायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुमुद्भूतवीर्याः ॥१४२॥

करने पर हमलोगोंको जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे सुखसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अवधिज्ञान रूपी नेत्रके द्वारा सब समाचार जान कर गरुडेन्द्रने शीघ्र ही दो विद्याओं के साथ अपना चिन्तावेग नामका देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल संदेश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दीं ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहको देदीप्यमान करने वाली गरुडवाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीर वीर राम-लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्तकर चिन्तागति देवका बड़ा सन्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम-लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुडेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी बड़े हर्षसे स्तुतिको प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत देदीप्यमान शस्त्र सामने खड़े देखे अर्थात् उस देवने वे सब शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥ सुन्दर चमरोंसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान छत्र तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्वक्त्र नामक गदा लक्ष्मणको प्राप्त हुई और दैत्योंको भय उत्पन्न करनेवाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र रामको प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्तकर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ वह देव अपने स्थानको चला गया ॥१४१॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो योग्य समय पर प्रशंसनीय एवं अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीर वीर मनुष्योंको जानना चाहिये। धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही छूट जाते हैं और वे महाशक्तिसे सम्पन्न हो स्वपरका

१. गत्वा कथितः क्षेमः सन्देशः म० । २. तयोः म० । ३. विद्येशं प्राप्य । ४. चित्तगतिं म० । ५. आदत्तां म० ।

आस्तां तावन्मनुजजनिताः[1] सम्पदः कांक्षितानां यच्छन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्रितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकांक्षाः येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालाभो नाम षष्टितमं पर्व ॥६०॥

कल्याण करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी बात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती हैं। इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवाले हे भव्यजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला साठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥

१. मनुजजनितं म० ।

एकषष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवचच्छन्नविग्रहौ । लक्ष्मीश्रीवत्सलक्ष्माणौ तेजोमण्डलमध्यगौ ॥१॥
नागारिवाहनारूढौ सुकान्तौ पद्मलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सैंहगारुडकेतनौ ॥२॥
परपक्षक्षयं कर्तुमुद्यतौ परमेश्वरौ । संग्रामधरणीमध्यं तेन सन्नतुरुत्कटौ ॥३॥
अग्रतस्त्वरितो जातः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः । दिव्यातपत्रविक्षिप्तदूरभास्करदीधितिः ॥४॥
श्रीशैलप्रमुखैर्वीरैर्वृतः प्लवगकेतनैः । दधानस्त्रैदशं रूपमशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥
अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादित्यभास्वरम् । दृष्टं विभीषणेनेदं जगद्विस्मिततेजसा ॥६॥
गरुत्मकेतने तस्मिन् सम्प्राप्ते तत्तथाघनम् । अस्त्रं सान्तमसं क्वापि गतं गरुडतेजसा ॥७॥
गरुत्मपक्षवातेन क्षोभितक्षारसिन्धुना । नीता विषधरा नाशं कुभावा इव साधुना ॥८॥
तार्क्ष्यपक्षविनिर्मुक्तमयूखालोकसङ्गतम् । जाम्बूनदरसेनेव जगदासीद्विनिर्मितम् ॥९॥
ततो नभश्चराधीशौ गतपन्नगबन्धनौ । प्रभामण्डलसुग्रीवौ समाश्वासनमापतुः ॥१०॥
सुखेन प्राप्य निद्रां च रत्नांशुकसमावृतौ । अलगर्दलतारेखासमलङ्कृतविग्रहौ ॥११॥
अधिकं भासमानाङ्गौ व्यक्तोच्छ्वासविनिर्गमौ । निद्राक्षये परं कान्तौ स्वस्थसुप्ताविवोत्थितौ ॥१२॥
ततो विस्मयमापन्नाः श्रीवृक्षप्रथितादयः । विद्याधरगणाधीशाः पप्रच्छुः कृतपूजनाः ॥१३॥
नाथावापन्सु वामेषा दृष्टपूर्वा न जातुचित् । विभूतिरद्भुता जाता कुतश्चिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिनके शरीर दिव्य कवचोंसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमें गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड़ वाहनपर आरूढ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमें स्थित थे, सिंह तथा गरुड चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पक्षका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१-३॥ जिन्होंने दिव्यछत्र के द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दीं थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शीघ्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनूमान् आदि प्रमुख वानरवंशी वीरोंसे घिरे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करने पर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एक साथ उदित हुए बारह सूर्योंसे ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह उस प्रकारका सघन तामस अस्त्र गरुडके तेजसे न जाने कहाँ चला गया ॥७॥ लवण समुद्रके जलको क्षोभित करनेवाली गरुड़के पङ्खोंकी वायुसे सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा खोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुड़के पङ्खोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्वर्णरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुखसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कम्बलोंसे आवृत थे, सर्परूपी लताओंकी रेखाओंसे जिनके शरीर अलंकृत थे अर्थात् जिनके शरीरमें नागपाशके गड्ढा पड़ गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासोच्छ्वासका निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुखसे सोये पुरुष निद्राक्षय होनेपर उठ बैठते हैं ॥११-१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए श्रीवृक्ष आदि विद्याधर राजाओंने

१. सुकेतौ म० । २. दुरु -म० । ३. स्वच्छ म० ।

वाहनास्त्रसम्पत्तिरातपत्रे परा द्युतिः । ध्वजौ रत्नानि चित्राणि श्रूयते दिव्यमीदृशम् ॥१५॥
पद्मनाभस्ततोऽगादीत्तेभ्यो हिण्डनमात्मनः । उपसर्गे च शैलाग्रे देशगोत्रविभूषयोः ॥१६॥
चतुराननयोगेन स्थितयोर्देवनिर्मितम् । प्रातिहार्यं समुद्भूतं केवलं च सुरागमम् ॥१७॥
गरुडेन्द्रस्य तोषं च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुध्यानप्रयोगेन महाविद्यासमागमम् ॥१८॥
ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा परमां योगिसत्कथाम् । इदमूचुः परिप्राप्ताः प्रमोदं विकचाननाः ॥१९॥

वंशस्थवृत्तम्

इहैव लोके विकटं परं यशो मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम् ।
अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥२०॥
तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम् ।
प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१॥
इतिप्रशंसार्पितभाविताश्चिरं जिनेन्द्रमार्गोन्नतिविस्मिताः परम् ।
बलं सनारायणमाश्रिता बभुर्महाविभूत्या समुपाश्रिता नृपाः ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भव्याम्भोजमहोत्सवकरीं[२] श्रुत्वा पवित्रां कथां
सर्वे हर्षमहारसोदधिगताः प्रीतिं दधानाः पराम् ।
तौ निद्रोज्झितपुण्डरीकनयनौ सम्प्राप्तदेवार्चनौ
ते विद्याधरपुङ्गवाः सुरसमाः सर्वात्मनापूजयन् ॥२३॥

पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूछा कि हे नाथ ! आप दोनोंकी विपत्तिके समय जो पहले कभी देखने में नहीं आई ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिये ॥१३-१४॥ वाहन, अस्त्ररूपी संपत्ति, छत्र, परम कान्ति, ध्वजाएँ और नाना प्रकारके रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए हैं वे सब दिव्य हैं, देवोपनीत हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सबके लिए कहा कि एकबार वंशस्थविल पर्वतके अग्रभाग पर देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंको उपसर्ग हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजोंको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, देवोंका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे संतुष्ट हुआ और उससे हमें वरकी प्राप्ति हुई। इस समय उसी गरुडेन्द्रके ध्यानसे इन महाविद्याओंकी प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ तदनन्तर सावधान हो मुनियोंकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और जिनके मुखकमल हर्षसे विकसित हो रहे थे। ऐसे उन सब विद्याधर राजाओंने कहा कि ॥१९॥ भक्ति पूर्वककी हुई साधुसेवाके प्रभावसे मनुष्य इसीभवमें विशाल उत्तम यश, बुद्धिकी प्रगल्भता, उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिको प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिजन उत्तम बुद्धिको धर्ममें लगा कर मनुष्योंका जैसा भोदयसे संपन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न पिता करता है, न मित्र करता है और न सगा भाई ही करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल तक प्रशंसा कर जिन्होंने अपनी भावनाएँ समर्पित की थीं और जिनेन्द्रमार्गकी उन्नतिसे जो परम आश्चर्यको प्राप्त हो रहे थे, ऐसे महावैभवसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥ इस तरह भव्य जीव रूपी कमलोंके उत्सवको करने वाली पवित्र

१. देशभूण-कुलभूषणयोः । २. भव्यांभोजमहान्त० म० ।

वंशस्थवृत्तम्

उपात्तपुण्यो जननान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।
न केवलं स्वस्य परस्य[1] भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सुग्रीवभामण्डलसमाश्वासनं नामैकषष्टितमं पर्व ॥६१॥

कथा सुनकर जो हर्ष रूपी महारसके सागरमें निमग्न हो परम प्रीतिको धारण कर रहे थे, ऐसे देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करने वाले उन देव पूजित राम-लक्ष्मणकी सब प्रकारसे पूजा की ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तरमें पुण्यका संचय करने वाला मनुष्य, इस संसारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम उत्सवोंसे संयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको दिखाकर अन्य लोगोंका भी अत्यधिक वैभवके साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरों को भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामण्डलका नागपाश से युक्त हो आश्वासन प्राप्तिका वर्णन करने वाला इकसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥

१. परेण म० ।

द्वाषष्टितमं पर्व

अपरेद्युर्महोद्भूतविक्रमा[1]क्रमकोविदाः । युद्धार्थोपात्तसम्भारा रणशौण्डाः समुद्ययुः ॥१॥
वानरीयैः खमालोक्य सैन्यैर्व्याप्तं निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसन्मिश्रं श्रुत्वेभाश्वध्वनिं तथा ॥२॥
अभ्यूर्जितमतिर्मानी सादरोऽमरविभ्रमः । सत्त्वप्रतापसंयुक्तः सैन्यार्णवसमावृतः ॥३॥
तेजसा शस्त्रजातेन ज्वलयन्निव विष्टपम् । कैलासोद्धारवीरोऽपि निरैद्भ्रात्रादिभिः समम् ॥४॥
उद्गता बद्धकवचाः सङ्ग्रामात्यर्थलालसाः । नानायानसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥
पूर्वानुबन्धसङ्क्रोधमहारौरवसन्निभाः । परस्परं भटा धीराः लग्नास्ताडनकर्मणि ॥६॥
चक्रक्रकचपाशासियष्ट्यार्ष्टिघनमुद्गरैः । कनकैः परिघाद्यैश्च गगनं गहनीकृतम् ॥७॥
लग्नमर्श्वीयमर्श्वीयै[2]र्गजता[3] गजतामगात् । रथिनश्च महाधीरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥
सैंहं सैंहेन पादातं[4] पादातेन च चञ्चलम् । समं महाहवं कर्तुमुद्यतं समविक्रमम् ॥९॥
ततः[5] कापिध्वजं सैन्यं रक्षोयोधैः पराजितम् । नीलादिभिः पुनर्नीतं शस्त्रसम्पातयोग्यताम् ॥१०॥
भूयोजलधिकल्लोललोललङ्केन्द्रपार्थिवाः । इमे समुद्ययुर्दृष्ट्वा निजसैन्यपराभवम् ॥११॥
[6]विद्युद्वदनमारीचचन्द्रार्कशुकसारणाः । कृतान्तमृत्युजीमूतनादसङ्क्रोधनादयः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणबांकुरे वीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरोंकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज़ सुन कैलासको उठानेवाला वीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निकला। रावण अत्यन्त बलवती बुद्धिका धारक था, मानी था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शस्त्रसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२-४॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच बाँध रक्खे थे, जिन्हें संग्रामकी उत्कट लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ थे, नाना प्रकारके बड़े-बड़े शस्त्र जिन्होंने धारण कर रक्खे थे और जो पूर्वानुबद्ध क्रोधके कारण महानारकीके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर वीर योद्धा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, क्रकच, पाश, खड्ग, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, कनक तथा परिघ आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके समूहके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके सम्मुख गया, महा धीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ खड़े हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चञ्चल तथा समान पराक्रमको धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो राक्षस योद्धाओंने वानरोंकी सेनाको पराजित कर दी, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उसे पुनः शस्त्रवर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त करा दी अर्थात् वानरोंकी सेना पहले तो कुछ पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः राक्षसोंपर शस्त्र वर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चात् अपनी सेनाका पराभव देख, समुद्रकी तरङ्गोंके समान चञ्चल लङ्काके निम्नाङ्कित राजा पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विद्युद्वक्त्र, मारीच, चन्द्र

१. विक्रमक्रम म० । २. अश्वानां समूहः । ३. गजानां समूहः । ४. सोद्योगं म० । ५. कपिध्वजसैन्यं म० । ६. विद्युद्वचन म० ।

भज्यमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य तैः राक्षसोत्तमैः । कपिध्वजमहायोधाः परिप्रापुः सहस्रशः ॥१३॥
ग्रस्ता राक्षससैन्यास्तैरुच्छ्रितैर्विविधायुधैः । महाप्रतिभयैर्वीरैरत्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥
निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ॥१५॥
लङ्केशः कोपनो योद्धुं बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपत्रोपमान्[1] दूरं विक्षिपन् शत्रुसैनिकान् ॥१६॥
ततः पलायनोद्युक्तान् परिपाल्य तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणः ॥१७॥
आहवेऽभिमुखीभूतं भ्रातरं वीक्ष्य रावणः । बभाण पृथुकक्रोधो वाक्यमादरवर्जितः ॥१८॥
कनीयानसि स त्वं मे भ्राता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पाग्रतो मास्थाः न त्वां शक्तोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥
विभीषणकुमारेण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्वं मे नीतः किमपसर्प्यते ॥२०॥
ततः कुमारकोपस्तं पुनरप्याह रावणः । क्लीब क्लिष्ट धिगस्तु त्वां नरकाक कुचेष्टितम् ॥२१॥
त्वया व्यापादितेनापि नैव मे जन्यते धृतिः । भवद्विधा हि नो योग्याः कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥
यद्विद्याधरसन्तानं त्यक्त्वा मूढोऽन्यमाश्रितः । कर्मणामतिदौरात्म्यात्[2] जैनं त्यक्त्वेव शासनम् ॥२३॥
ततो विभीषणोऽवोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याणं भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥
एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्य श्रेयः स मेच्छसि । राघवेण समं प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥
अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । मा कलङ्कं स्ववंशस्य कार्षीर्योषिन्निमित्तकम् ॥२६॥
अथवा मर्तुमिष्टं ते कुरुषे यन्न मद्वचः । मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

अर्क, शुक, सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्षोधन आदि ॥१२॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख वानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१३॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महाभयंकर, वीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंको धारक उन वानर योद्धाओंने राक्षसोंकी सेनाको घेर दबाई ॥१४॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित वानर रूपी प्रलयाग्निके द्वारा अपनी सेना रूपी सागरको सब ओरसे पिया जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सूखे पत्तोंके समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर वानरोंकी शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए खड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सन्मुख खड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ वह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः मुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, खड़ा मत रह मैं तुझे देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने बड़े भाई—रावणसे कहा कि तू यमके द्वारा मेरे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ पश्चात् विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संक्लिष्ट ! नरकाक ! तुझ कुचेष्टाको धिक्कार है ॥२१॥ तुझे मार डालनेपर भी मेरा यश नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न मुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उत्पन्न करनेके योग्य हैं ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेसे जिन शासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुझ मूर्खने भी विद्याधरकी सन्तानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! तेरे कल्याण के लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें आने पर भी यदि तू अपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और सीताको समर्पित कर दे ॥२५॥ अहंकार छोड़कर रामको प्रसन्न कर स्त्रीके निमित्त अपने वंशको कलङ्कित मत कर ॥२६॥ अथवा तुझे मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो ठीक ही है क्योंकि बलवान

1. पत्रोपमं म० । 2. कम् म० ।

विनिशम्य वचस्तस्य तरुणक्रोधसङ्गतः । निशातं बाणमुद्धृत्य समधावत रावणः ॥२८॥
रथाश्ववारणारूढाः स्वामितोषे हि तत्पराः । अन्येऽपि पार्थिवा लग्ना रणे सुभटदारुणे ॥२९॥
आयातोऽभिमुखं तस्य राक्षसेन्द्रस्य रंहसा । अष्टमीचन्द्रवक्रेण ध्वजं भ्रान्तेषुणाऽच्छिनत् ॥३०॥
तेनापि तस्य संरम्भसम्भाराक्रान्तचेतसा[1] । धनुर्द्विधाकृतं क्षिप्त्वा सायकं निशिताननम् ॥३१॥
ततोऽपरमुपादाय चापमाशु विभीषणः । द्विधाकरोद्धनुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥
एवं तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसंक्षये । जनकस्य परं भक्तः शक्रजिद्योद्धुमुद्ययौ ॥३३॥
लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ पर्वतेनेव सागरः । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽग्रतः कृतः ॥३४॥
ययौ सिंहकटिं नीलो युद्धशम्भुं तथा नलः । स्वयम्भुं दुर्मतिः क्रुद्धो दुर्मर्षोऽपि घटोदरम् ॥३५॥
दुष्टः शक्राशनिं कालिस्तथा चन्द्रनखं नृपम् । स्कन्दो भिन्नाञ्जनं विघ्नं विराधितनराधिपः ॥३६॥
ख्यातं मयमहादैत्यमङ्गदो भासुराङ्गदः । कुम्भकर्णसुतं कुम्भं समीरणसमुद्भवः ॥३७॥
[2]किष्किन्धेशः सुमाल्याख्यं केतुं जनकनन्दनः । कामं दृढरथः क्षुब्धः क्षोभणाभिख्यमूर्जितम् ॥३८॥
अन्येऽप्येवं महायोधा यथायोग्यं परस्परम् । आरेभिरे रणं कर्तुमाह्वानमुखराननाः ॥३९॥
गृहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापादयोद्गिरः । छिन्धि भिन्धि क्षिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥४०॥
बधान स्फोटयाकर्ष मुञ्च चूर्णय नाशय । सहस्व दत्स्व निःसर्प सन्धत्स्वोच्छ्रय कल्पय ॥४१॥
किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां धिक् त्वां कातरको भवान् । कस्त्वं बिभेषि नष्टोऽसि मा कम्पिष्ठा क्व गम्यते॥४२॥

मनुष्योंको भी इस बलवान् मोहका तिरना अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर रहने वाले, रथों, घोड़ों और हाथियों पर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करने वाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर बड़े वेगसे सन्मुख जा कर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल घूमने वाले बाण से रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके भार से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीक्ष्णमुख बाण चला कर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ पश्चात् प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करने वाला महायुद्ध चल रहा था तब पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोका और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नील, सिंहकटि (सिंहजघन)के सन्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्षने कुम्भोदरका, दुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नाञ्जनका, विराधित राजाने विघ्नका, देदीप्यमान केयूरके धारक अङ्गदने प्रसिद्ध, मय नामक महा दैत्यका, हनूमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुग्रीवने सुमालीका, भामण्डलने केतुका, दृढरथने कामका और क्षुब्धने क्षोभण नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय बुलानेके शब्दसे जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे कहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मारडालो, छेदो, भेदो, फेंक दो, उठो, बैठो, खड़े रहो, विदारण करो और धारण करो ॥४०॥ बांधो, फोड़ डालो, घसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, संधि करो, उन्नत हो ओ, समर्थ बनो । तू क्यों डर रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, तुझे धिक्कार है, तू बड़ा कातर है, तुझे धिक्कार है, तू क्यों कम्पित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? कम्पित मत हो,

१. संरम्भं सम्भाराक्रान्तसाधनम् म० । २. किष्किन्धेशं म० ।

अयं स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । भुज्यते[1]ऽन्नं यथा मृष्टं न तथा युध्यते रणे ।।४३।।
गर्जितैरिति धीराणां तूर्यनादैस्तथोन्नतैः[2] । नदन्तीव दिशो मत्ताः क्षतजातान्धकारिताः ॥४४॥
चक्रशक्तिगदायष्टिकनकार्ष्टिघनादिभिः । दंष्ट्रालमिव सञ्जातं गगनं भीषणं परम् ।।४५।।
रक्ताशोकवनं किं तत् किं वा किंशुककाननम् । परिभद्रद्रुमारण्यमुत[3] जातं क्षतं बलम् ॥४६॥
कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कङ्कटं छिन्नबन्धनम् । सन्धत्ते त्वरितं भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ।।४७।।
कश्चित्सन्धार्य दन्ताग्रैः खड्गं परिकरं दृढम् । बध्वा दीप्तः पुनर्योद्धुं श्रममुक्तः प्रवर्तते ॥४८॥
मत्तवारणदन्ताग्रक्षतवक्षःस्थलोऽपरः । चलत्कर्णसमुद्धूतैर्वीजितः[4] कर्णचामरैः ॥४९।।
उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तोत्सङ्गे ततः शिश्ये सम्प्रसार्य भुजद्वयम् ॥५०॥
धातुपर्वतसङ्काशाः केचित् क्षतजनिर्झराः । मुमुचः शीकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥५१।।
पर्यस्ता भूतले केचिद्दष्टौष्ठाः शस्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदुरीक्ष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२।।
उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ध्यायन्तः परमाक्षरम् ॥५३॥
विषाणकोटिसंसक्तपाणयः केचिदुत्कटाः । आन्दोलनं गजेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥५४॥
रक्तच्छटां विमुञ्चन्त[5]श्चञ्चलाः शस्त्रपाणयः । कबन्धा नर्तनं चक्रुः शतशोऽतिभयानकम् ॥५५।।
केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकङ्कटाः । प्रविष्टाः सलिलं क्लिष्टा जीविताशापराङ्मुखाः ।।५६॥

तू अकेला कहाँ जायगा ? ।।४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ।।४३।।

इस प्रकार धीर-वीरोंकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकार युक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हों ।।४४।। चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक ,आर्ष्टि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सबको निगलनेके लिए दाढ़े ही धारण कर रहा हो ।।४५।। खूनसे लथपथ घायल सेनाको देख कर ऐसा संदेह होता था कि क्या यह अशोकका लाल वन है ? या पलाशका कानन है, या पारिभद्र वृक्षोंका वन है ? ।।४६।। किसीका कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उसप्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेहके टूट जाने पर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ।।४७।। कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोंके अग्रभागसे तलवार दवा तथा हाथोंसे कमर कस कर श्रमरहित हो फिरसे युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ।।४८।। मदोन्मत्त हाथीके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चञ्चल कानोंसे ऊपर उठे हुए कर्णचामरोंसे वीजित हो रहा था ।।४९।। जिसने स्वामी का कर्त्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसार कर हाथीके दाँतोंके बीच सो रहा था ॥५०॥ जिनसे खूनके निर्झर झर रहे थे तथा जो गेरूके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओंने जलकणोंकी वर्षाके सिञ्चनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ।।५१।। जो ओंठ डस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहोंसे जिनके मुख भयंकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवी पर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ।।५२।। कितने ही धीर वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शस्त्रोंका त्याग कर परब्रह्मका ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५३।। कितने ही प्रचण्ड वीर खीसोंके अग्रभागको हाथोंसे पकड़ कर हाथियोंके आगे मूला मूल रहे थे ।।५४।। जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों उछलते कवन्ध—शिररहित धड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ।।५५॥ जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवनकी आशासे विमुख हो शस्त्र

१. भुञ्जतेऽन्नं म० । २. तदुन्नतैः म० । ३. पारिभद्रकुमाराणां म० । ४. समुद्भूतैः म० । ५. विमुञ्चन्ति म० ।

ईदृशे समरे जाते लोकसन्त्रासकारिणि । परस्परसमुद्भूतमहाभटपरिक्षये ॥५७॥
महेन्द्रजिदसौ वाणैर्लक्ष्मीमन्तं सिताननैः । लग्नश्छादयितुं वीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥
महातामसशस्त्रं च भीमं शक्रजिदक्षिपत् । विनाशं भानवीयेन तदस्त्रेणानयद्रिपुः[1] ॥५९॥
तमुग्रैः शक्रजिद्भूयः शरैराशीविषात्मकैः । आरब्धो वेष्टितुं क्रुद्धः सरथं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥
वैनतेयास्त्रयोगेन नागास्त्रं स निराकरोत् । पूर्वोपात्तं यथा पापजालं योगी महातपाः ॥६१॥
ततोऽमात्यगणान्तस्थं हस्तिवृन्दस्थलावृतम् । विरथं लक्ष्मणश्चक्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥
पालयन् स निजं सैन्यं वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्तास्त्रं महाध्वान्तपिहितारिदशास्यकम् ॥६३॥
विद्यया तपनास्त्रं च हत्वा[2] तस्य विचिन्तितम् चिक्षेपेच्छाधृताकारानाशीमुखशिलीमुखान् ॥६४॥
सङ्ग्रामाभिमुखो नागैः कुटिलं व्याप्तविग्रहः । इन्द्रजित्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥
पद्मेनाऽऽदित्यकर्णोऽपि सुयुद्धे[3] विरथीकृतः । आदित्यास्त्रं शनैर्हत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥
सम्वेष्ट्य सर्वतो नागैः पतितो धरणीतले । पुरेव बाहुबलिना श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥
[4]चित्रं श्रेणिक ते वाणाः भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कामुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥६८॥
क्षणं वाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वमागताः । आमरा शस्त्रभेदास्ते यथा चिन्तितरूपगाः ॥६९॥
कर्मपाशैर्यथा जीवो नागपाशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पद्माज्ञां प्राप्याऽऽत्मीये रथे कृतः ॥७०॥

छोड़ पानीमें घुस गये ॥५६॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करने वाला, लोक संत्रास कारी महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्रजित् तीक्ष्ण वाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को आच्छादित करनेमें लीन थे ॥५७–५८॥ इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने नाग वाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया। तब लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्र को उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी योगी पूर्वोपार्जित पापोंके समूहको दूर कर देता है ॥६०–६१॥

तदनन्तर मन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मण ने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महा अन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्का मनोरथ नष्ट कर दिया और इच्छानुसार आकृतिको धारण करने वाले नागवाण छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर नागोंके द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा था उसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ उधर रामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर तथा नागास्त्रको चलाकर युद्धमें भानुकर्णको रथ रहितकर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार बाहु-बलीने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बाँध लिया था, उसी प्रकार रामने भी भानुकर्ण को सब ओरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतल पर गिर पड़ा ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! वे वाण बड़े ही विचित्र थे। जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते थे तब वाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुखवाले हो जाते थे और शरीरपर जाकर नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे वाण क्षण भरके लिए वाण हो जाते थे, क्षण भरमें दण्ड-रूप हो जाते थे और क्षण भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सब शस्त्रोंके भेद देवो-पनीत थे तथा मन चाहे रूपको धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपी पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित

१. रिपुम् म० । २. हृत्वा म० । ३. सुयुद्धो म० । ४. म० पुस्तके ६८–६९तमश्लोकयोर्मध्ये 'निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ॥' एष श्लोकोऽधिको वर्तते ।

मन्दोदरीसुतोऽप्येष बद्धो नारायणाज्ञया। विराधितेन याने स्वे स्थापितः क्लान्तविग्रहः ॥७१॥
तावद्रणमुखेऽभाणीद् दशवक्त्रो विभीषणम् । सङ्क्रुद्धोऽभिमुखीभूतं चिरं [1]सोढारणक्रियम् ॥७२॥
प्रहारमिममेकं मे प्रतीच्छ यदि मन्यसे । सत्यं पुरुषमात्मानं रणकण्डूप्रचण्डकम् ॥७३॥
इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्गस्फुलिङ्गालिङ्गिताम्बरम् । शूलं चिक्षेप तत्सोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे शरैः ॥७४॥
तं भस्मीकृतमालोक्य शूलमत्युग्रमायुधम् । अधिकं रावणः क्रुद्धः शक्तिं जग्राह दारुणाम् ॥७५॥
यावत्पश्यति सज्ञानमग्रतो गरुडध्वजम् । प्रौढेन्दीवरसङ्काशं भासुरं पुरुषोत्तमम् ॥७६॥
प्रलयाम्भोदसम्भारगम्भीरोदारनिस्वनः । विशल्यद्रुमुखोऽवोचत् तमेवं ताडयन्निव ॥७७॥
अन्यस्यैव मया शस्त्रमुद्यतं वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासन्नतो मम ॥७८॥
अभिवाञ्छसि मर्त्तुं वा यदि दुर्मत लक्ष्मण । प्रतीच्छेमं प्रहारं मे तिष्ठ प्रगुणविग्रहः ॥७९॥
विभीषणं समुत्सार्य सोऽपि कृच्छ्रेण मानवान् । दशास्यमभिदुद्राव चिरं सङ्ग्रामखेदितम् ॥८०॥
निःसर्पत्तारकाकारस्फुलिङ्गनिकरां ततः । चिक्षेप रावणः शक्तिं कोपसम्भारसङ्गतः ॥८१॥
वक्षस्तस्य तया भिन्नं महाशैलतटोपमम् । अमोघक्षेपया शक्त्या दिव्यया यन्त्रदीप्रया ॥८२॥
लक्ष्मणोरसि सा सक्ता भासुराङ्गमनोहरा । परमप्रेमसम्बद्धा शोभते स्म वधूरिव ॥८३॥
गाढप्रहारदुःखार्त्तः स परायत्तविग्रहः । महीतलं परिप्राप्तो गिरिवज्राहतो यथा ॥८४॥

हो गया। तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ उधर जिसका शरीर बेचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्को भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमें क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणक्रियाको सहन करनेवाले विभीषणने कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रणकी खाजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहार को झेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोंसे आकाशको व्याप्त करने वाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने बाणोंसे बीचमें ही समाप्त कर दिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयङ्कर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देख रावणने अत्यन्त कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्योंही सामने देखता है तो उसे आगे खड़े हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुरुषोत्तम, लक्ष्मण दिखायी दिये ॥७६॥ लक्ष्मणको देख प्रलय कालीन मेघ समूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताड़न करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जब मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार झेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनाईसे विभीषणको अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे खेद खिन्न हो गया था ऐसे रावणके सन्मुख दौड़ा ॥८०॥

तदनन्तर क्रोधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओंके समान तिलगोंका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थी ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके तटके समान लक्ष्मणका वक्षःस्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वक्षःस्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी थे तथा जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्रसे ताडित पर्वतके समान पृथिवी पर गिर

१. सोढा रणक्रियम् म० ।

दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ पद्मः पद्माभलोचनः । विनियम्य परं शोकं शत्रुघातार्थमुद्यतः ॥८५॥
सिंहयुक्तं [1]समारूढः स्यन्दनं क्रोधपूरितः । शत्रुमायातमात्रेण चकार विरथं बली ॥८६॥
रथान्तरं समारूढश्छिन्नपूर्वशरासनः । यावच्चापं समादत्ते भूयोऽथ विरथीकृतः ॥८७॥
पद्माभस्य शरैर्ग्रस्तो दशास्यो विह्वलीकृतः । न समर्थो बभूवेषु ग्रहीतुं न च कार्मुकम् ॥८८॥
लोठितोऽपि शरैस्तीव्रैस्तथापि धरणीतले । रथे विलोक्यते भूयो रावणः खेदसङ्गतः ॥८९॥
विच्छिन्नचापकवचः षड्वारं विरथीकृतः । तथापि शक्यते नैव स साधयितुमद्भुतः ॥९०॥
प्रोक्तश्च पद्मनाभेन परं प्राप्तेन विस्मयम् । नाल्पायुष्को भवानेव यो न प्राप्तोऽसि पञ्चताम् ॥९१॥
मद्बाहुप्रेरितैर्बाणैर्वेगवद्भिः शिताननैः । महीभृतोऽपि शीर्यन्ते मन्येऽन्यत्र किमुच्यताम् ॥९२॥
तथापि रक्षितः पुण्यैर्जन्मान्तरसमर्जितैः । शृणु जल्पामि किं चित्ते वचनं खेचराधिप ॥९३॥
सङ्ग्रामेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्त्या त्वया [2]हतः । प्रेतस्याभिमुखं तस्य वीक्षे यद्यनुमन्यसे[3] ॥९४॥
एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रार्थनाभङ्गदुर्विधः । ययौ दशाननो लङ्कामृद्ध्याऽऽखण्डलसन्निभः ॥९५॥
एकस्तावदयं ध्वस्तो मया शत्रुर्महोत्कटः । इति किञ्चिद्धृतिं प्राप्तो विवेश भवनं निजम् ॥९६॥
अन्विष्य विक्षतांस्तत्र योधान् विक्रान्तवत्सलः । विवेशान्तःपुरं धीरो दर्शनश्रमनोदनः ॥९७॥
निरुद्धं भ्रातरं श्रुत्वा पुत्रावरणकारिणौ । शोचन् प्रियजनं पश्यन्नाशां चक्रे दशाननः ॥९८॥

पड़े ॥८४॥ उन्हें भूमिपर पड़े देख कमल लोचन राम, तीव्र शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंह जुते रथपर बैठे एवं क्रोधसे भरे बलवान् रामने सामने जाते ही शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जब तक वह दूसरे रथ पर चढ़ता है तब तक रामने उसका धनुष तोड़ दिया। तदनन्तर वह जब तक दूसरा धनुष उठाता है तब तक उसे पुनः रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके बाणोंसे ग्रस्त हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो बाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥८८॥ यद्यपि रामने तीव्र बाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लुटा दिया था तथापि वह खेद-खिन्न हो पुनः दूसरे रथपर आरूढ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोड़ा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोड़े हुए वेगशाली तीक्ष्णमुख बाणोंसे पहाड़ भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होनेपर भी जन्मान्तरमें सञ्चित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है। अब हे विद्याधरराज! सुन, मैं तुझसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ संग्राममें सामने आये हुए मेरे जिस भाईको तूने शक्तिके द्वारा घायल किया है वह मरनेके सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लूँ ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भङ्ग करनेमें दरिद्र था और इन्द्रके समान जिसकी शोभा बढ़ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' कह कर वैभवके साथ लङ्काकी ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महाबलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमें कुछ धैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर वीर रावणने घायल योद्धाओंकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा इस तरह उनका खेद दूर कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥९७॥ भाई कुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंको शत्रुके पास रुका सुन रावण शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंको ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेकी आशा की ॥९८॥

१. समारूढं म० । २. यतः म० । ३. यद्यनुगम्यसे म० ।

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्व्यतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः[1] ॥९९॥
व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं हतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
विफलितपृथुशक्तिर्बन्धनं सेवतेऽन्यो रविरुचितपदार्थोद्भासने हि प्रवीणः ॥१००॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिसन्तापाभिधानं नाम द्वाषष्टितमं पर्व ॥६२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जीव, अपने विविध आचरणोंके अनुरूप पूर्वभवोंमें जो कर्मका सञ्चय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पड़ता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥९९॥ इस संसारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर वीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे बन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनेके दुःखका वर्णन करनेवाला बासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥

---

१. भूतिभावाः म० ।

त्रिषष्टितमं पर्व

ततः समाकुलस्वान्तः पद्मः शोकेन ताडितः । [1]परिप्राप तमुद्देशं यत्र तिष्ठति लक्ष्मणः ॥१॥
निर्विचेष्टं तमालोक्य क्षितिमण्डलमण्डनम् । शक्त्याऽऽलिङ्गितवक्षस्कं पद्मो मूर्च्छामुपागतः ॥२॥
सम्प्राप्य च चिरात् संज्ञां महाशोकसमन्वितः । दुःखाग्निदीपितोऽत्यन्तं विप्रलापमसेवत ॥३॥
हा वत्स विधियोगेन महादुर्लङ्घ्यमर्णवम् । उत्तीर्य सङ्कतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥
अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मदर्थं सततोद्यतः । क्षिप्रं प्रयच्छ मे वाचं किं मौनेनावतिष्ठसे ॥५॥
जानास्येव वियोगं ते मुहूर्त्तमपि नो सहे । कुर्वालिङ्गनमुत्तिष्ठ क्व गतोऽसौ तवादरः ॥६॥
अद्य केयूरदष्टौ मे भुजावेतौ महायतौ । भावमात्रकरौ जातौ निष्क्रियौ निष्प्रयोजनौ ॥७॥
निक्षेपो गुरुभिस्त्वं मे प्रयत्नेन समर्पितः । गत्वा किमुत्तरं तेभ्यो दास्यामि त्रपयोज्झितः ॥८॥
क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति गाढं समुत्सुकः । लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भरः ॥९॥
रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम् । मन्ये जीवितमात्मीयं हतं निहतपौरुषः ॥१०॥
दुष्कृतस्योदयस्थस्य रचितस्य भवान्तरे । फलमेतन्मया प्राप्तं सीतया मे किमन्यथा ॥११॥
यस्याः कृते [2]क्षतोरस्कं शक्त्या निर्दयमुक्तया । भवन्तं भूतले सुप्तं पश्यामि दृढमानसः ॥१२॥
कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा । [3]विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥
पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्नतु । यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीडित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षःस्थल शक्तिसे आलिङ्गित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकार स्वरूप लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एवं दुःख रूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स! तू कर्मयोगसे इस दुर्लङ्घ्य सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स! तू सदा मेरी भक्तिमें सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अतः शीघ्र ही मुझे वचन दे-मुझसे वार्तालाप कर मौनसे क्यों बैठा है? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अतः उठ आलिङ्गन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया? ॥६॥ आज बाजूबन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गईं, तेरे विना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गईं ॥७॥ माता-पिता आदि गुरुजनोंने तुझे धरोहरके रूपमें प्रयत्न पूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जा रहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? ॥८॥ प्रेमसे भरे समस्त लोग अत्यन्त उत्सुक हो मुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है? लक्ष्मण कहाँ है? ॥९॥ तू वीर पुरुषोंमें रत्नके समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थ हीन हुआ अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरमें जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदय में आ रहा है। और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई! मुझे तेरे विना सीतासे क्या प्रयोजन है? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय-रावणके द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथिवी पर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥१२॥ इस संसारमें पुरुषको काम और अर्थ तथा नाना प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ हैं ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें घूम कर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई माता तथा

१. परिप्राप्तस्तमुद्देशं म० । २. क्षितौ रक्तं म० । ३. द्विविधा- म० ।

हे सुग्रीव सुहृत्त्वं ते दर्शितं खेचराधिप । व्रजाऽधुना निजं देशं भामण्डल भवानपि ॥१५॥
जीविताशां परित्यज्य दयितां जानकीमिव । ज्वलनं श्वः प्रवेष्टास्मि समं भ्रात्रा विसंशयम् ॥१६॥
विभीषण न मे शोकस्तथा सीताऽनुजोद्भवः । यथा निरुपकारित्वं मम सम्बाधते त्वयि ॥१७॥
उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः । पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हतात्मनाम् ॥१८॥
कृतपूर्वोपकारस्य साधोर्बन्धुविरोधिनः । यत्ते नोपकृतं किंचित्तेन दह्येतरामहम् ॥१९॥
भो भामण्डलसुग्रीवौ चितां रचयतां द्रुतम् । परलोकं गमिष्यामि कुरुतं युक्तमात्मनः ॥२०॥
ततो लक्ष्मीधरं स्प्रष्टुमिच्छन्तं रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तरः ॥२१॥
मा स्प्राक्षीर्लक्ष्मणं देव दिव्यास्त्रपरिमूर्च्छितम् । प्रमादो जायते ह्येवं प्रायो हि स्थितिरीदृशी ॥२२॥
प्रपद्यस्व च धीरत्वं कातरत्वं परित्यज । भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपद्गतायुषाम् ॥२३॥
प्रतीकारो विलापोऽत्र नानुदात्तजनोचितः । परमार्थानुसारेण क्रियतां धीरमानसम् ॥२४॥
उपायः सर्वथा कश्चिदिह देव भविष्यति । जीविष्यति तव भ्राता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥
ततो विषादिनः सर्वे परं विद्याधराधिपाः । उपायचिन्तनासक्ताश्चक्रुरित्यन्तरात्मनि ॥२६॥
दिव्या शक्तिरियं शक्या न निराकर्तु[1]मौषधैः । उद्गते [2]ज्योतिषामीशे दुःखं जीवति लक्ष्मणः ॥२७॥
अथोत्सार्य कबन्धादीन्निमिषार्द्धेन सा मही । किङ्करैर्विहितोत्तुङ्गदूष्यप्राकारमण्डपा ॥२८॥

पिना पुनः प्राप्त हो सकते हों ॥१४॥ हे विद्याधरोंके राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखाई । अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल ! तुम भी अपने देश जाओ ॥१५॥ इसमें संशय नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कल भाईके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥१६॥ हे विभीषण ! मुझे सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते है परन्तु जो कार्यके पीछे भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमें नीचताका ही निवास समझना चाहिये ॥१८॥ हे विभीषण ! तू साधु पुरुष है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बन्धुसे विरोध किया है फिर भी मैं तेरा कुछ भी उपकार नहीं कर सका इससे मन ही मन जल रहा हूँ ॥१९॥ हे भामण्डल और सुग्रीव ! शीघ्र ही चिता बनाओ । मैं पर लोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो । जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥२०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की सो उन्हें महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्यअस्त्रसे मूर्छित लक्ष्मणको मत छुओ क्यों कि ऐसा करनेसे प्रायः प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको प्राप्त होओ, कातरता छोड़ो, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस संसारमें अधिकांश विद्यमान हैं ॥२३॥ क्षुद्र मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमें धैर्य युक्त किया जाय ॥२४॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जीवित होगा क्यों कि यह नारायण है नारायणका असमयमें मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विषादसे भरे सब विद्याधर राजा उपायके चिन्तनमें तत्पर हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि यह दिव्य शक्ति औषधियोंके द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्योदय होने पर लक्ष्मण बड़ी कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित रहना कठिन हो जायगा ॥२६–२७॥

तदनन्तर किङ्करोंने आधे निमेषमें ही शिर रहित धड़ आदिको हटा कर उस युद्धभूमिको शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे ऊँचे डेरे कनातें तथा मण्डप आदि खड़े कर दिये ॥२८॥ उस

१. सूर्ये । २. दृष्य म० ।

सप्तकक्ष्याट्टसम्पन्ना[1] कृतदिक्चयनिर्गमा[2] । बहिः कवचितैर्योधैर्गुप्ता कार्मुकधारिभिः ॥२९॥
प्रथमे गोपुरे नीलश्चापपाणिः प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्थौ गदाहस्तो घनोपमः ॥३०॥
विभीषणस्तृतीये तु शूलपाणिमहामनाः । स्रङ्माल्यचित्ररत्नांशुरीशानवदशोभत ॥३१॥
संनद्धबद्धतूणीरस्तुरीये कुमुदः स्थितः । सुषेणः पञ्चमे ज्ञेयः कुन्तहस्तः प्रतापवान् ॥३२॥
सुपीवरभुजो वीरः सुग्रीवः स्वयमेव च । रराज भिण्डिमालेन षष्ठे वज्रधरोपमः ॥३३॥
प्रदेशे सप्तमे राजमहारिपुबलान्तकः । मण्डलाग्रं समाकृष्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥३४॥
पूर्वद्वारेण संचारे शरभः शरभध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाम्बवो यथा ॥३५॥
प्रदेशमौत्तरद्वारं व्याप्यामात्यौघसंकुलम् । स्थितश्चन्द्रमरीचिश्च वालिपुत्रो महाबलः ॥३६॥
एवं विरचिता क्षोणी खेचरेशैः प्रयत्निभिः । रराज द्यौरिवात्यर्थं निर्मलैरुडुमण्डलैः ॥३७॥
यावन्तः केचिदन्ये तु समरादनिवर्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशां व्याप्य वानरकेतवः ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं प्रयत्नाः कृतयोग्यरक्षाः संदेहिनो लक्ष्मणजीवयोगे ।
सविस्मयाः सोरुशुचः समानाः स्थिताः समस्ता गगनायनेशाः ॥३९॥
न तस्करा नो ययवो[3] न नागा न चापि देवा विनिवारयन्ति ।
यदात्मना सञ्जनितस्य लभ्य-फलं नृणां कर्मरवेः प्रकाशम् ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिभेदरामविलापाभिधानं नाम त्रिषष्टितमं पर्व ॥६३॥

भूमिको सात चौकियोंसे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन बन्द किया और कवच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धाओंने बाहर खड़े रह कर उसकी रक्षा की ॥२९॥ पहले गोपुर पर धनुष हाथमें लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करने वाला मेघ तुल्य नील खड़ा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ। वहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३०-३१॥ कवच और तरकसको धारण करनेवाला कुमुद चौथे गोपुर पर खड़ा हुआ। पांचवें गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ ॥३२॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था। तथा सातवें गोपुरमें बड़े बड़े शत्रुराजाओंकी सेनाको मौतके घाट उतारने वाला भामण्डल स्वयं तलवार खींच कर खड़ा था ॥३३-३४॥ पूर्व द्वारके मार्ग में शरभ चिह्नसे चिह्नित ध्वजाको धारण करने वाला शरभ पहरा दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रि समूहसे युक्त उत्तर द्वारको घेर कर चन्द्ररश्मि नामका वालिका महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था ॥३५-३६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई वह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहसे आकाश के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥३७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटने वाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर खड़े हो गये ॥३८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर योग्य रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मणके जीवित होने में संदेह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सहित थे एवं मानी थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथा स्थान खड़े हो गये ॥३९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्म रूपी सूर्यके प्रकाश स्वरूप जो फल मनुष्योंको प्राप्त होने वाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न घोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शक्तिभेद एवं रामविलापका वर्णन करनेवाला तिरसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥

---

१. कक्ष्याद्रि-म० । २. दिक्क्रय-म० ।

चतुःषष्टितमं पर्व

नियतं मरणं ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशाननः । पुत्रभ्रातृवधं बुद्धौ चकारात्यन्तदुःखितः ॥१॥
हा भ्रातः परमोदार ममात्यन्तहितोद्यतः । कथमेतामवाप्नोसि बन्धावस्थामसङ्गताम् ॥२॥
हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ भुजाविव दृढौ मम । विधेर्नियोगतः प्राप्तौ भवन्तौ बन्धनं नवम् ॥३॥
किं करिष्यति वः शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितात्माहं विरसं वा करिष्यति ॥४॥
भवद्भिरुत्तमैः प्रीतैर्बन्धदुःखं समागतैः । बाध्येऽहं नितरां कष्टं किमिदं मम वर्तते ॥५॥
एवं गजेन्द्रवद्बद्धनिजयूथमहागजः । अप्रकाशं परं शोकमसेवत स सन्ततम् ॥६॥
शक्त्या हतं गतं भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधरं परम् । सम्प्राप्ता जानकी शोकमकरोत्परिदेवनम् ॥७॥
हा भद्र लक्ष्मण प्राप्तस्त्वमवस्थामिमां हताम् । कृते मे मन्दभाग्याया विनीत गुणभूषण ॥८॥
ईदृशमपि वाञ्छामि भवन्तमहमीक्षितुम् । विमुक्ता हतदैवेन न लभे पापकारिणी ॥९॥
भवन्तं तादृशं वीरं घ्नता पापेन शत्रुणा । क्व मे कृतो न सन्देहः प्रवीरे मरणं प्रति ॥१०॥
वियुक्तो बन्धुभिः भ्रातुरिष्टे संसक्तमानसः । अवस्थामागतोऽस्येतां कृच्छ्रादुत्तीर्य सागरम् ॥११॥
अपि नाम पुनः क्रीडाकोविदं विनयान्वितम् । पश्येयं चारुवाक्यं त्वां परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुखी होता हुआ मनमें पुत्रों और भाईके बधका विचार करने लगा । भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा और उसके प्रतिकार स्वरूप रामपक्षके लोगोंने कैद किये हुए इन्द्रजित् तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा । इस विचारसे वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त बन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥२॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महा बलवान् और मेरी भुजाओंके समान दृढ़ थे । कर्मके नियोग से ही तुम इस नूतन बन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोंका क्या करेगा ? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुरुष बन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिये मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्यों रहा है ? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—झुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजकी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जब सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो पृथिवी पर गिर पड़े हैं तब वह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनीत ! हाय गुण रूपी आभूषण-से सहित ! तुम मुझ अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमें पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? अर्थात् जब उसने आप जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका भला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनोंसे विछोहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पारकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं क्रीड़ा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलने वाले एवं

कुर्वन्तु सर्वथा देवास्तव जीवितपालनम् । विशल्यतां द्रुतं गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥
एवं विलापिनी कृच्छ्राच्छोकिनी जनकात्मजा । भावप्रीतिभिरानीता खेचरीभिः प्रसान्त्वनम् ॥१४॥
ज्ञायते देवि नाद्यापि निश्चयो देवरस्य ते । अतो न वर्तते कर्तुमेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥
भव धीरा प्रवीराणां भवत्येवेदृशी गतिः । भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ॥१६॥
इति विद्याधरीवाक्यात्किञ्चित्साऽभूदनाकुला । शृण्विदानीं यद्वेतस्मिञ्जातं लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥
प्राप्तो [1]दूष्यगृहद्वारं पुरुषश्चारुदर्शनः । प्रभामण्डलवीरेण प्रविशन्निति नोदितः ॥१८॥
कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा [2]विविक्षसि । तिष्ठ तिष्ठ [3]समाचक्ष्व नात्राविदितसंगमः ॥१९॥
सोऽवोचदद्य मे मासः साग्रः प्राप्तस्य वर्तते । पद्मं समाश्रयामीति प्रस्तावो [4]नत्वलभ्यत ॥२०॥
अधुना दर्शये शीघ्रं जीवन्तं यदि लक्ष्मणम् । द्रष्टुं भवति वाञ्छा वस्तत्रोपायं वदाम्यहम् ॥२१॥
इत्युक्ते परितुष्टेन भामण्डलमहीभृता । दत्त्वा प्रतिनिधिं द्वारे नीतोऽसौ पद्मगोचरम् ॥२२॥
संप्रयुज्य प्रणामं च स जगाद महादरः । मा [5]खिद्यथास्त्वं महाराज कुमारो जीवति ध्रुवम् ॥२३॥
सुप्रभा नाम मे माता जनकः शशिमण्डलः । देवगीते पुरेऽहं च चन्द्रप्रतिमसंज्ञकः ॥२४॥
जातुचिद्विचरन् व्योम्नि वेलाध्यक्षस्य सूनुना । सहस्रविजयाख्येन वैरिणाऽहं निरीक्षितः ॥२५॥
ततो मैथुनिकावैरं स्मृत्वा क्रोधं समीयुषः । तस्य जातं मया सार्द्धं रणं[6] सुभटदारुणम् ॥२६॥

परम आश्चर्यके कार्य करने वाले तुम्हें फिर भी देख सकूँगी ? ॥१२॥ देव सब प्रकारसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करें और सब लोगोंके मनको हरण करने वाले तुम शीघ्र ही शल्य रहित अवस्थाको प्राप्त होओ ॥१३॥ इस प्रकार विलाप करने वाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखने वाली विद्याधरियोंने सान्त्वना प्राप्त कराई ॥१४॥ उन्होंने समझाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभीतक निश्चय नहीं जान पड़ा है इसलिए इसके विषयमें विलाप करना उचित नहीं है ॥१५॥ धैर्य धारण करो, वीरोंकी तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसको प्रतीकार होते हैं यथार्थमें पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥१६॥ इस प्रकार विद्याधरियोंके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥१७॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सुन्दर मनुष्य डेरेके द्वार पर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँसे आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खड़ा रह खड़ा रह सब बात ठीक-ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगोंका आगमन निषिद्ध है ॥१८-१९॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२०॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगोंकी लक्ष्मणको शीघ्र ही जीवित देखनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२१॥ उसके इतना कहते ही राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे रामके समीप ले गया ॥२२॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! खेद मत कीजिये, कुमार निश्चित ही जीवित हैं ॥२३॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल है । मैं देवगीतपुरका रहने वाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२४॥ किसी समय मैं आकाशमें घूम रहा था उसी समय राजा वेलाध्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया ॥२५॥ तदनन्तर स्त्री सम्बन्धी वैरका स्मरणकर वह क्रोधको प्राप्त हो गया

१. दुःखग्रहद्वारं म० । २. विवक्षसि म० । ३. समन्वश्च (?) म० । ४. ननु लभ्यते म० । न तु लभ्यते । ५. खिद्यास्त्वं ख० । ६. रणे म० ।

ततोऽहं चण्डरवया शक्त्या तेन समाहतः। खान्महेन्द्रोदयोद्याने नक्तं निपतितो घने ॥२७॥
पतन्तं मां समालोक्य तारकाबिम्बसन्निभम्। साकेताधिपतिस्तर्की[7] भरतः समढौकत ॥२८॥
शक्तिशल्यितवक्षश्च[8] सिक्तश्चन्दनवारिणा। तेनाहं करुणार्त्तेन साधुना जीवदायिना ॥२९॥
शक्तिः पलायिता क्वापि जातं रूपं च पूर्वकम्। अधिकं च सुखं जातं तेन मे गन्धवारिणा ॥३०॥
तेन मे पुरुषेन्द्रेण भरतेन महात्मना। जन्मान्तरमिदं दत्तं फलं यस्य त्वदीक्षणम् ॥३१॥
अत्रान्तरे स सम्भ्रान्तः सुरूपो रघुनन्दनः। प्रपच्छ भद्र जानासि तद्गन्धोदकसम्भवम् ॥३२॥
सोऽवोचद्देव जानामि श्रूयतां वेदयामि ते। पृष्टो हि स मया राजा तेन चेति निवेदितम् ॥३३॥
यथा किल समस्तोऽयं देशः पुरसमन्वितः। अभिभूतो महारोगैरासीदप्रतिकारकैः ॥३४॥
उरोघातमहादाहज्वरलालापरिस्रवाः। सर्वशूलारुचिच्छर्दिश्वयथुस्फोटकादयः ॥३५॥
क्रुद्धा इव परं तीव्राः सर्वे रोगास्तदाऽभवन्। यैरत्र विषये प्राणी नैकोऽप्यस्ति न पातितः ॥३६॥
केवलो द्रोणमेघाह्वः सामात्यपशुबान्धवः। नृपो देव इवारोगः श्रुतो निजपुरे मया ॥३७॥
आहूय स मयाऽवाचि माम त्वं नीरुजो यथा। कालक्षेपविनिर्मुक्तं तथा मां कर्तुमर्हसि ॥३८॥
ततः सौरभसंरुद्धदूरदिग्वलयं जलम्। तेन सिक्तोऽहमानाय्य प्राप्तश्चोल्लाघतां पराम् ॥३९॥

जिससे उसका मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक सघन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए ताराबिम्बके समान मुझे देख अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका वक्षःस्थल शल्ययुक्त था ऐसे मुझको देख राजा भरत दयासे दुखी हो उठे। तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्पुरुषने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गई और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस सुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ॥३०॥ पुरुषोंमें इन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है। भावार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फलस्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥

इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव! जानता हूँ सुनिये मैं आपके लिए बताता हूँ। मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोघात—जिसमें वक्षःस्थल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापरिस्राव—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्व-शूल—जिसमें सर्वाङ्गमें पीड़ा होती है, अरुचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते हैं, श्वयथु—जिसमें शरीर पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे। इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल, द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रियों पशुओं तथा बन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥३७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अविलम्ब नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी सुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझ पर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

७ तार्क्षो म०। ८. कापि म०।

न केवलमहं तेन वारिणाऽन्तःपुरं मम । पुरं देशश्च संजातं सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥
कर्ता रोगसहस्राणां वायुरत्यन्तदुःसहः । प्रणष्टो वारिणा तेन मर्मसम्भेदकोविदः ॥४१॥
मयैवं सततं पृष्टो मामैतदुदकं कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिदं शीघ्रं कृतं रोगविनाशनम् ॥४२॥
सोऽवोचच्छ्रूयतां राजन्नस्ति मे गुणशालिनी । विशल्या नाम दुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥
यस्यां गर्भप्रपन्नायामनेकव्याधिपीडिता । देवी ममोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥
जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्यं पूजासमुद्यता । शेषेव सर्वबन्धूनां पूजनीया मनोहरा ॥४५॥
स्नानोदकमिदं तस्या महासौरभ्यसङ्गतम् । कुरुते सर्वरोगाणां तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥
ततस्तदहमाकर्ण्य द्रोणमेघस्य भाषितम् । परं विस्मयमापन्नः[2] सम्पदा तामपूजयम् ॥४७॥
नगरीतश्च निष्क्रम्य नाम्ना सत्त्वहितं मुनिम् । गणेश्वरं समप्राप्तं प्रणम्य विनयान्वितः ॥४८॥
ततः खेचरपृष्टोऽसौ समाख्यासीन्महायतिः । वैशल्यं चरितं दिव्यं चतुर्ज्ञानी सुवत्सलः ॥४९॥
विदेहे पौण्डरीकाख्ये विषये[3] स्वर्गसन्निभे । चक्री त्रिभुवनानन्दः पुरे चक्रधरेऽभवत्[4] ॥५०॥
नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य तनया गुणमण्डना[5] । अपूर्वा कर्मणां सृष्टिर्लावण्यप्लवकारिणी ॥५१॥
तां प्रतिष्ठपुराधीशः सामन्तोऽस्य पुनर्वसुः । दुर्धीराहरदारोप्य विमानं स्मरचोदितः ॥५२॥
क्रुद्धाच्चक्रधरादाज्ञां सम्प्राप्यामुष्य किङ्करैः । चिरं कृतवतो युद्धं विमानं चूर्णितं भृशम् ॥५३॥
चूर्ण्यमानविमानेन मुक्ता तेनाकुलात्मना । पपात नभसः कान्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥३९॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्तःपुर, नगर और समस्त देश रोग रहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगोंको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एवं मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गई ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगोंको नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! सुनिये, मेरी, गुणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करने वाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन-शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शेषाक्षतके समान सर्व बन्धु जनोंकी पूज्या है ॥४५॥ यह महा सुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण भरमें सब रोगोंका नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह वचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापिस आ रहा तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले। मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधर से कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पूछने पर चार ज्ञानके धारी, महास्नेही मुनिराज विशल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिभुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अनंगशरा नामकी एक कन्या थी जो गुण रूपी आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह बहाने वाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था। कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमान पर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर चूर किया

१. त्वदीक्षणे म० । २. मापन्नाः म० । ३. विजये म०, ज० । ४. चक्रधरोऽभवत् म० । ५. गुण-मण्डला म० ।

विद्यया पर्णलघ्व्याऽसौ पुनर्वसुनियुक्तया । अटवीमागता स्वैरं नाम्ना श्वापदरौरवाम् ॥५५॥
महाप्रतिभयाकारां महाविद्याभृतामपि । दुःप्रवेशां कृतध्वान्तां महाविटपसङ्कटैः ॥५६॥
नानावल्लीसमाश्लिष्टविविधोत्तुङ्गपादपाम् । पल्लवोद्वासितैर्मुक्तां भीतैरिव रवेः करैः ॥५७॥
तरक्षुशरभद्वीपिव्याघ्रसिंहादिसेविताम् । उच्चावचखरक्षोणीं महाविवरसङ्कुलाम् ॥५८॥
अरण्यानीं गता सेयं महाभयसमागता । कान्ता शिखेव दीपस्य सीदति स्म वराकिका ॥५९॥
नदीतीरं समागम्य कृत्वा दिगवलोकनम् । महाखेदसमायुक्ता स्मृतबन्धुः स्म रोदिति ॥६०॥
तेनाहं लोकपालेन देवेन्द्रप्रतिभासिना । सुचक्रवर्तिना जाता महादुर्ललितात्मिका ॥६१॥
विधिना वारुणेनेमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वनं दुःखनिरीक्षणम् ॥६२॥
हा तात सकलं लोकं त्वं पालयसि विक्रमी । कथं मामपरित्राणां विपिने नानुकम्पसे ॥६३॥
हा मातस्तादृशं दुःखं कुक्षिधारणपूर्वकम् । विषह्य साम्प्रतं कस्मात् कुरुषे नानुकम्पनम् ॥६४॥
हा मेऽन्तःकरणच्छायपरिवर्गगुणोत्तम[1] । अमुक्तां क्षणमप्येकं कथं त्यजसि साम्प्रतम् ॥६५॥
जातमात्रा मृता नाऽहं कस्माद्दुःखस्य भूमिका । अथवा न विना पुण्यैरभिवाञ्छितमाप्यते ॥६६॥
किं करोमि क गच्छामि दुःखिनी संश्रयामि कम् । कं पश्यामि महाऽरण्ये कथं तिष्ठामि पापिनी ॥६७॥
स्वप्नः किमेष सम्प्राप्तं जन्मेदं नरके मया । सैव किं स्यादहं कोऽयं प्रकारः सहसोद्गतः ॥६८॥
एवमादि चिरं कृत्वा विप्रलापं सुविह्वला । पशूनामपि तीव्राणां मनोद्रवणकारणम् ॥६९॥

जा रहा था ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाकी शरद् कालीन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुके द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलघ्वी नामक विद्याके सहारे स्वेच्छासे उतरती हुई वह श्वापद नामक अटवीमें आई ॥५५॥

तदनन्तर जो बड़े बड़े विद्याधरोंके लिए भी भय उत्पन्न करने वाली थी, जिसमें प्रवेश करना कठिन था, बड़े बड़े वृक्षोंकी सघन झाड़ियोंसे जिसमें अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृक्ष नाना लताओंसे आलिङ्गित थे, पल्लवोंकी सघन छायासे दूर की हुई सूर्यके किरणोंने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा सिंहों आदिसे सेवित थी, जहाँकी कठोर भूमि ऊँची नीची थी, और जो बड़े-बड़े बिलोंसे सहित थी ऐसी उस महा अटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई बेचारी अनंगसेना दीपककी शिखाके समान काँपने लगी ॥५६–५९॥ नदीके तीर आकर और सब दिशाओंकी ओर देख महाखेदसे युक्त होती हुई वह कुटुम्बीजनोंको चितार-चितार कर रोने लगी ॥६०॥ वह कहती थी कि हाय मैं लोककी रक्षा करने वाले, इन्द्रके समान सुशोभित उन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महास्नेहसे लालित हुई। आज प्रतिकूल दैवसे—भाग्यकी विपरीततासे इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ। हाय जिसका देखना भी कठिन है ऐसे इस वनमें आ पड़ी हूँ क्या करूँ? ॥६१–६२॥ हाय पिता! तुम तो महापराक्रमी, सब लोककी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझ पर दया क्यों नहीं करते हो? ॥६३॥ हाय माता! गर्भ धारणका वैसा दुःख सहकर इस समय दया क्यों नहीं कर रही हो? ॥६४॥ हाय मेरे अन्तःकरणके समान प्रवृत्ति करने वाले तथा उत्तम गुणोंसे युक्त परिजन! तुमने तो मुझे एक क्षणके लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो? ॥६५॥ मैं दुःखिया क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसका आश्रय लूँ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनी कैसे रहूँ? ॥६६॥ क्या यह स्वप्न है? अथवा नरकमें मेरा जन्म हुआ है? क्या मैं वही हूँ अथवा यह कौनसी दशा सहसा प्रकट हुई है? ॥६७–६८॥ इस प्रकार चिरकाल तक विलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गई। उसका वह विलाप क्रूर पशुओंके

१. हा मातः करणच्छायपरिवर्गं गुणोत्तमाम् म० ।

क्षुत्तृष्णापरिवृग्धाङ्गा शोकसागरवर्तिनी । फलपर्णादिभिर्वृत्तिमकरोद्दीनमानसा ॥७०॥
अरण्याम्बुजखण्डानां शोभासर्वस्वमर्दनः । हिमकालस्तया निन्ये ध्रुवं कर्मानुभावतः ॥७१॥
श्वसत्पशुगणस्तीव्रः शोषितानेकपादपः । सोढस्तथैव रूक्षाङ्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तया ॥७२॥
स्फुरच्चण्डाचिरज्योतिः शीतधारान्धकारितः । घनकालोऽपि निस्तीर्णः प्रवृत्तौघो यथा तथा ॥७३॥
निश्छायं स्फुटितं क्षामं शीर्णकेशं मलावृतम् । वर्षोपहतचित्राभं स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥
सूर्यालोकहतच्छाया क्षीणेव शशिनः कला । जाता तन्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥
कपित्थवनमानम्रं फलैः पाकाभिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुध्याय करुणं सा स्म रोदिति ॥७६॥
जाता चक्रधरेणाऽहं प्राप्तावस्थामिमां वने । ध्रुवं कर्मानुभावेन सुपापेनान्यजन्मना ॥७७॥
इत्यश्रुदुर्दिनीभूतवदना वीक्षितक्षितिः । फलान्यादाय सा शांता पतितानि स्वपाकतः ॥७८॥
उपवासैः कृशीभूता परं षष्ठाष्टमादिभिः । अम्बुना वाकरोद् बाला पारणामेकवेलिकाम् ॥७९॥
शयनीयगतैः पुष्पैर्या स्वकेशच्युतैरपि । अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थंडिलेऽशेत केवले[2] ॥८०॥
पितुः सङ्गीतकं श्रुत्वा या प्रबोधमसेवत । सेयं शिवादिनिर्मुक्तैरधुना भीषणैः स्वनैः ॥८१॥
एवं वर्षसहस्राणि त्रीणि दुःखमहासहा । अकरोत्सा तपो बाह्यं प्रासुकाहारपारणा ॥८२॥
ततो निर्वेदमापन्ना त्यक्त्वा[3]ऽऽहारं चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा श्रिता सल्लेखनामसौ ॥८३॥

भी मनको पिघला देने वाला था ।।६९।। तदनन्तर भूख प्यासकी बाधासे जिसका शरीर झुलस गया था, जो निरन्तर शोक रूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रोंसे निर्वाह करने लगी ।।७०।। वनके कमल समूहकी शोभाका सर्वस्व हरने वाला शीत काल आया सो उसने कर्मोंका फल भोगते हुए व्यतीत किया ।।७१।। जिसमें पशुओंके समूह सांस भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रूक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ।।७२।। जिसमें तीक्ष्ण बिजली कौंध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ।।७३।। कान्ति हीन, फटा, दुबला, बिखरे बालोंसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीगे चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ।।७४।। जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ।।७५।। परिपाकके कारण धूसर वर्ण से युक्त फलोंसे झुके हुए कैथाओंके वनमें जाकर वह बार बार पिताका स्मरण कर रोने लगती थी ।।७६।। मैं चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमें इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरमें किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ।।७७।। इस प्रकार अविरल अश्रुवर्षासे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ।।७८।। वेला तेला आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानीसे ही पारणा करती थी सो भी एक ही बार ।।७९।। जो अनंगसेना पहले अपने केशोंसे च्युत हो शय्या पर पड़े फूलोंसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवी पर शयन करती थी ।।८०।। जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ।।८१।। इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा बीच बीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ।।८२।। तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गई तब विरक्त हो उस धीर वीराने चारों प्रकार

१. एष श्लोको म० पुस्तके नास्ति । २. श्वेतकेवले । ३. त्यक्ताहारं ।

बाह्यं हस्तशताद्भूमि न गन्तव्यं मयेति च । जग्राह नियमं पूर्वं श्रुतं जैनेन्द्रशासने ॥८४॥
नियमावधितोऽतीते षड्रात्रेऽथ नभश्चरः । लब्धिदास इति ख्यातो वंदित्वा मेरुमाव्रजत् ॥८५॥
तामपश्यत्ततो नेतुमारेभे तां समुद्यतः । पितुः स्थानं निषिद्धश्च तया सल्लेखनोक्तितः ॥८६॥
लब्धिदासो लघु प्राप्तः सकाशं चक्रवर्त्तिनः । समं तेन समायातस्तमुद्देशमसौ गतः ॥८७॥
अथ तामतिरौद्रेण शंयुनाऽतिस्थवीयसा । भक्ष्यमाणामसौ दृष्ट्वा समाधानपरोऽभवत् ॥८८॥
प्राप्तसल्लेखनां क्षीणां संवृत्तामपरामिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चक्री निर्वेदमागतः ॥८९॥
समं पुत्रसहस्राणां द्वाविंशत्या गतस्पृहः । महावैराग्यसम्पन्नः श्रमणत्वमुपागतः ॥९०॥
कन्या त्वथ[2] क्षुधार्त्तेन ग्रासेनातिस्थवीयसा । भक्षिताऽजगरेणागात्सता सानत्कुमारताम् ॥९१॥
जानन्त्याऽपि तथा मृत्युं न समुत्सारितः शयु. । माभूत्स्वल्पापि पीडाऽस्य काचिदित्यनुकम्पया ॥९२॥
उत्सार्य खेचरान् संख्ये समस्तांश्च पुनर्वसुः । तदानङ्गशरामिष्टामपश्यन्विरहावनौ ॥९३॥
द्रुमसेनमुनेः पार्श्वे गृहीतं श्रमणव्रतम् । अत्यन्तदुःखितस्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥
कृत्वा निदानमेतस्याः कृतेऽयं प्राप्तपञ्चतः[3] । सुरो जातश्च्युतश्चायं जातो लक्ष्मणसुन्दरः ॥९५॥
प्रभ्रष्टा सुरलोकाच्च जाताऽनङ्गशरा वरी । सुतेयं द्रोणमेघस्य विशल्येति प्रकीर्तिता ॥९६॥
सैतस्मिन्नगरे देशे भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन सञ्जाताऽत्यन्तमुत्तमा ॥९७॥
परमं स्नानवारीदं तेन तस्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तया येन महातपः ॥९८॥

का आहार त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली ॥८३॥ उसने जिन-शासनमें पहले जैसा सुन रक्खा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे बाहरकी भूमिमें नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेखनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियाँ व्यतीत हो चुकीं तब लब्धिदास नामक एक पुरुष मेरु पर्वतकी वन्दना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्याको देखा। तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कह कर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्तीके पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थान पर आया ॥८७॥ जब वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमें तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सब प्रकारकी इच्छा छोड़ महावैराग्यसे युक्त हो बाईस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूखसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खाई हुई वह कन्या मर कर ईशान स्वर्गमें गई ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमें समस्त विद्याधरोंको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशराको नहीं देख विरहकी भूमिमें पड़ बहुत दुखी हुआ। अन्तमें उसने द्रुमसेन नामक मुनिराजके समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३-९५॥ पहलेकी अनङ्गशरा देवलोकसे च्युत हो राजा द्रोणमेघकी यह विशल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९६॥ महागुणोंको धारण करने वाली विशल्या इस नगर देश अथवा भरत क्षेत्रमें पूर्वकर्मोंके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई है ॥९७॥ यतश्च उसने पूर्व भवमें उपसर्ग सहित महातप

१. अजगरेण । २. चाथ म० । ३. प्राप्तमरणः ।

अनेन वारिणाऽमुष्मिन्देशेऽयं विषमोऽनिलः । महारोगकरो यातः क्षयं शासितविष्टपः ॥९९॥
कुतोऽयमीदृशो वायुरिति पृष्टेन भाषितम् । मुनिना भरतायैवं तदा कौतुकयोगिने ॥१००॥
गजाह्वान्नगरादेत्य विन्ध्यो नामा महाधनः । अयोध्यां सार्थवाहेशः खरोष्ट्रमहिषादिभिः ॥१०१॥
मासानेकादशामुष्यां त्वन्नगर्यामसौ स्थितः । तस्यैकमहिषस्तीव्ररोगभारेण पीडितः ॥१०२॥
पुरमध्ये महादुःखं कृत्वा कालं व्रणान्वितः । अकामनिर्जरायोगाद्देवभूयमशिश्रियत् ॥१०३॥
जातो वायुकुमारोऽसावश्वकेतुर्महाबलः । ²वाय्वावर्त्त इति ख्यातो वायुदेवमहेश्वरः ॥१०४॥
श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलगतो महान् । असुरो भासुरः क्रूरो मनोयातक्रियासहः ॥१०५॥
अज्ञासीत्सावधिज्ञानः प्राप्तपूर्वपराभवम् । सोऽहं महिषकोऽभूवं प्राप्तोऽयोध्यां तदा व्रणी ॥१०६॥
क्षुत्तृष्णापरिदिग्धाङ्गो महारोगनिपीडितः । रथ्याकर्दमनिर्मग्नस्ताडितो जनसंपदा ॥१०७॥
कृत्वा मे मस्तके पादं तदाऽयासीज्जनोऽखिलः । पतितस्य विचेष्टस्य निर्दयो विड्मलाञ्चितम् ॥१०८॥
अचिरान्निग्रहं घोरं तस्य चेन्न करोम्यहम् । अनर्थकं सुरत्वं मे तदेवं जायते महत् ॥१०९॥
इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन् सदेशे क्रोधपूरितः । प्रावर्त्तयदसौ वायुं नानारोगसमावहम् ॥११०॥
सोऽयं ³नीतो विशल्याया वारिणा प्रलयं क्षणात् । भवंति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे ॥१११॥
यथा सत्त्वहितेनेदं भरताय निवेदितम् । भरतेनापि मे तद्वन्मया ते पद्म वेदितम् ॥११२॥

किया था इसलिए उसका यह स्नानजल महागुणोंसे सहित है ॥९८॥ इस देशमें जिसने सब लोगों पर शासन जमा रक्खा था तथा जो महारोग उत्पन्न करने वाली थी ऐसी विषम वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गई है ॥९९॥ 'यह वायु ऐसी क्यों हो गई ?' इस प्रकार पूछने पर उस समय मुनिराजने कौतूहलको धारण करने वाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

विन्ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगरीमें ग्यारह माह तक रहा । अनेक वर्णोंसे सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोगके भारसे पीड़ित हो नगरके बीच मरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१–१०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ । वाय्वावर्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवोंका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमें निवास करने वाला देदीप्यमान, क्रूर और इच्छानुसार क्रियाओंको करने वाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥१०४–१०५॥ अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्वभवमें प्राप्त हुए पराभवको जान लिया । उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । भूख प्यास आदिसे मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगोंसे पीड़ित हुआ मैं मार्गकी कीचड़में पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे । उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मस्तक पर पैर रखकर जाते थे ॥१०६–१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयंकर निग्रह नहीं करता हूँ—बदला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका बड़प्पन युक्त देव पर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगोंको उत्पन्न करने वाली वायु चलाई ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान जलके द्वारा क्षण भरमें विनाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानोंके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनिने राजा भरतसे जिस प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुझसे कही उसी प्रकार हे राम ! मैंने

१. सन्नगर्यां म । २. वाय्यावर्त म । ३. भीतो म० ।

अभिषेकजलं तस्या तदा नेतुमतित्वरम् । यत्नं कुरुत नास्त्यन्या गतिर्लक्ष्मणजीविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुदार्यो ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो वदत्युद्भवनाभ्युपायं रवे समस्तत्त्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विशल्यापूर्वभवाभिधानं नाम चतुःषष्टितमं पर्व ॥६४॥

आपसे कही है ॥११२॥ इसलिए शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल लानेका यत्न करो। लक्ष्मणके जीवित होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जीवन प्रदान करने वाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महाविपत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके पूर्वभवका वर्णन करने वाला चौसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

---

१. भवन्त्युपायो म० २. विहितोऽ -म० ।

पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसंमदः । समं विद्याधरार्धीशैर्विस्मितस्तमपूजयत् ॥१॥
अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृताः । अयोध्यां गमिनः कृत्वा सन्मंत्रं निश्चितं द्रुतम् ॥२॥
ततश्चिंतितमात्रेण ते ययुर्यत्र पार्थिवः । भरतः प्रवरः कीर्त्या प्रतापी गुणसङ्गतः ॥३॥
सुप्तस्योत्थाप्यमानस्य सहसास्यासुखासिका । मा भूदिति सुखं गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥
ततः सङ्गीतमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भावसमारूढसुप्तस्थौ कोशलेश्वरः ॥५॥
ज्ञापिताः सेवितद्वारास्ततस्तस्मै समागताः । वैदेह्या हरणं प्रोचुर्निपातं लक्ष्मणस्य च ॥६॥
अथ शोकरसादुग्रात् क्षणमात्रभुवः परम् । राजा क्रोधरसं भेजे परमं भरतश्रुतिः ॥७॥
महाभेरीध्वनिं चाशु रणप्रीतिमकारयत् । सकला येन साकेता संप्राप्ताऽऽकुलतां परम् ॥८॥
लोको जगाद किं न्वेतद्वर्त्तते राजसद्मनि । महान् कलकलः शब्दः श्रूयतेऽत्यन्तभीषणः ॥९॥
किन्तु[1] रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमतिः परः । अतिवीर्यसुतः प्राप्तो भवेदापातपंडितः ॥१०॥
कश्चिदङ्कगतां कान्तां त्यक्त्वा सन्नद्धुमुद्यतः । सन्नाहनिरपेक्षोऽन्यः सायके करमर्पयत् ॥११॥
मुग्धबालकमादाय काचिदङ्के मृगेक्षणा । हस्तं स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम् ॥१२॥
काचिदीर्ष्याकृतं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना । सुप्तमाश्रयते कान्तं शयनीयैकपार्श्वगम् ॥१३॥

अथानन्तर प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचन सुन जिन्हें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान भामण्डल तथा अङ्गदको अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामण्डल आदिने सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनको हरण करने वाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीतको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगनेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥

अथानन्तर क्षणमात्रमें उत्पन्न हुए, अतिशय उग्र शोकरससे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमें प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलताको प्राप्त हो गई ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमें अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाला महान् कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमें निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अंकमें स्थित कान्ताको छोड़ कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमें ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इधर-उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वश पतिसे हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रोंमें नींद नहीं आ रही थी । रणभेरीका शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा

१. किन्तु म० ।

पार्थिवप्रतिभः[1] कश्चिद्धनी कान्तामुदाहरत्[2] । कान्ते बुद्ध्यस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम् ॥१४॥
राजालये समुद्योतो लक्ष्यते जात्वलक्षितः । सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च संहिताः ॥१५॥
नीतिज्ञैः सततं भाव्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः[3] । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः ॥१६॥
शातकौम्भानिमान्कुम्भान् कलधौतमयांस्तथा । मणिरत्नकरण्डांश्च कुरु भूमिगृहान्तरे ॥१७॥
पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णानिमान् गर्भालयान् द्रुतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुःस्थितं सुस्थितं कुरु ॥१८॥
शत्रुघ्नोऽपि सुसंभ्रान्तो निद्रारुणितलोचनः । आरुह्य द्विरदं शीघ्रं घण्टाटङ्कारनादिनम् ॥१९॥
सचिवैः परमैर्युक्तः शस्त्राधिष्ठितपाणिभिः । विमुञ्चन् बकुलामोदं चलदम्बरपल्लवः ॥२०॥
भरतस्यालयं प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुङ्गवाः । शस्त्रहस्ताः सुसंनद्धा नरेन्द्रहिततत्पराः ॥२१॥
यच्छन्नाज्ञां नरेशानां युद्धाय स्वयमुद्यतः । विनीताधिपतिः प्रोक्तो नत्वा भामंडलादिभिः ॥२२॥
दूरे लङ्कापुरी देव गन्तुं नार्हति तां विभुः । क्षुब्धोर्मिजलजो घोरो वर्तते सागरोऽन्तरे[4] ॥२३॥
मया किं तर्हि कर्त्तव्यमिति राज्ञि कृतस्वने । उच्चारितं विशल्यायाश्चरितं तैर्मनोहरम् ॥२४॥
अघप्रमथनं नाथ पुण्यं जीवितपालनम् । द्रोणमेघसुतास्नानवारिदानं द्रुतं भज ॥२५॥
प्रसादं कुरु यास्यामो यावन्नोदेति भास्करः । हतोऽरिमथनः शक्त्या दुःखं तिष्ठति लक्ष्मणः ॥२६॥
भरतेन ततोऽवाचि किं वा ग्रहणमम्भसा । स्वयं सा सुभगा तत्र यातु द्रोणघनात्मजा ॥२७॥
मुनीशेन समादिष्टा तस्यैवासौ सुभामिनी । स्त्रीरत्नमुत्तमं सा हि कस्य वाऽन्यस्य युज्यते ॥२८॥

मिली—उससे सटकर पड़ रही ॥१३॥ राजाकी तुलना प्राप्त करने वाला कोई धनी मनुष्य अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्यों सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभवनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथोंके सवार तैयार खड़े हैं और ये मदोन्मत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनोंको सदा सावधान रहना चाहिये । उठो उठो धनको प्रयत्न पूर्वक छिपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चाँदीके घट तथा मणि और रत्नोंके पिटारे तलगृहके भीतर कर दो ॥१७॥ रेशमी वस्त्र आदिसे भरे हुए इन गर्भगृहोंको शीघ्र ही बन्द कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरहसे रखदो ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घबड़ाया हुआ शत्रुघ्न भी घंटाका शब्द करने वाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा । शत्रुघ्न, हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियोंसे सहित था, वकुलकी सुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसके वस्त्र चञ्चल-चञ्चल हो रहा था । शत्रुघ्नके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कवचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्पर थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९–२१॥ अयोध्याके स्वामी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तब भामण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२२॥ हे देव ! लंकापुरी दूर है, वहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं है, जिसकी लहरें और शङ्ख क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयंकर समुद्र बीचमें पड़ा है ॥२३॥ तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरतके कहने पर उन सबने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२४॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोणमेघकी पुत्रीका स्नानजल पापको नष्ट करने वाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करने वाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥२५॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जावेंगे । शत्रुओंका संहार करने वाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२६॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री स्वयं ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२७॥ मुनिराजने कहा है कि यह उन्हींकी वल्लभा होगी । यथार्थमें वह उत्तम स्त्रीरत्न है सो अन्य किसके योग्य हो सकती है ? ॥२८॥

१. पार्थिवं प्रथमः म० । २. -मुदाहरन् म० । ३. सपण्डितैः ज० । ४. सागरोत्तरे म० ।

ततो द्रोणघनाङ्कस्य सकाशं प्रेषितो निजः । स चाऽपि कुपितो योद्धुं मानस्तम्भसमुद्यतः ॥२९॥
संक्षुब्धास्तनयास्तस्य सन्नद्धाः सचिवैः सह । परमाकुलतां प्राप्तां महादुर्लङ्घितक्रियाः ॥३०॥
भरतस्य ततो मात्रा स्वयं गत्वा महादरम् । प्रतिबोधमुपानीतः स[1] तेन तनयामदात् ॥३१॥
सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखरं निजम् । आरोपिता महारथ्यं कान्तिपूरितदिङ्मुखा ॥३२॥
सहस्रमधिकं चान्यत्कन्यानां सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूतानां कृतं गामि समं तया ॥३३॥
ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता संग्राममेदिनीम् । अर्घ्यादिभिः कृताभ्यर्हा[2] सर्वैः खेचरपुङ्गवैः ॥३४॥
अवतीर्णा विमानाग्रात्ततः कन्याभिरावृता । चारुचामरसङ्घातैः वीज्यमाना शनैः सुखम् ॥३५॥
पश्यन्ती तुरगान् द्वारे मत्तांश्च वरवारणान् । महत्तरैः कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिभानना[3] ॥३६॥
यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथाऽभजत्सौम्यं सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३७॥
प्रभापरिकरा[4] शक्तिस्ततो लक्ष्मणवक्षसः । चकिता दुष्टयोषेव कामुकात् परिनिःसृता ॥३८॥
स्फुरत्स्फुलिङ्गज्वाला च लङ्घयन्ती द्रुतं नभः । उत्पत्य वायुपुत्रेण गृहीता वेगशालिना ॥३९॥
दिव्यस्त्रीरूपसम्पन्ना ततः सङ्गतपाणिका । सा जगाद हनूमन्तं सम्भ्रान्ता बद्धवेपथुः ॥४०॥
प्रसीद नाथ मुञ्चस्व न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुत्सितास्मद्विधानां हि प्रेष्याणां स्थितिरीदृशी ॥४१॥
अमोघविजया नाम प्रज्ञप्तेरहकं स्वसा । विद्या लोकत्रये ख्याता रावणेन प्रसाधिता ॥४२॥
कैलासपर्वते पूर्वं बाली प्रतिमया स्थिते । सन्निधौ जिनबिम्बानां गायता भावितात्मना ॥४३॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२९॥ प्रचण्ड बलको धारण करने वाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो क्षुभित हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियोंके साथ साथ तैयार हो गये ॥३०॥ तब भरतकी माता केकयीने स्वयं जा कर उसे बड़े आदरसे समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री देदी ॥३१॥ कान्तिसे दिशाओंको पूर्ण करने वाली उस कन्याको भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥३२॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशल्याके साथ भेजीं ॥३३॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गई सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सन्मान किया ॥३४॥ तत्पश्चात् जो कन्याओंसे घिरी थी और जिसपर सुन्दर चमरोंके समूह धीरे धीरे सुख पूर्वक मेले जा रहे थे ऐसी विशल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३५॥ द्वार पर खड़े घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंको देखती, हुई वह आगे बढ़ी। बड़े बड़े लोग उसकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३६॥ महाभाग्यशालिनी विशल्या जैसे जैसे पास आती जाती थी वैसे वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुखदशा को प्राप्त होते जाते थे ॥३७॥

तदनन्तर जिस प्रकार दुष्ट स्त्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करने वाली शक्ति लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे बाहर निकल गई ॥३८॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको लांघती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनूमानने उछल कर उसे पकड़ लिया ॥३९॥ तब वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड़ कर हनूमान्से बोली। उस समय वह घबड़ाई हुई थी तथा उसके शरीर से कँपकँपी छूट रही थी ॥४०॥ उसने कहा कि हे नाथ! प्रसन्न होओ मुझे छोड़ो इसमें मेरा दोष नहीं है हमारे जैसे सेवकोंकी ऐसी ही निन्द्य दशा है ॥४१॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघविजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञप्तिकी बहिन हूँ और रावणने मुझे सिद्ध किया है ॥४२॥ कैलास

१. सां तेन ज० । २. कृताभ्यर्चाः म० । ३. निभातनं ज० । ४. प्रभाकरकरा म० ।

निजे भुजे समुत्कृत्य शिरातन्त्रीं मनोहराम् । उपवीणयता दिव्यं जिनेन्द्रचरितं शुभम् ॥४४॥
लब्धाऽहं दशवक्त्रेण धरणानागराजतः । कम्पितासनतः[1] प्राप्तप्रमोदं बिभ्रतः[2] परम् ॥४५॥
अनिच्छन्नप्यसौ तेन रक्षसां परमेश्वरः । मां परिग्राहितः कृच्छ्रान् स हि ग्रहणदुर्विधः ॥४६॥
साऽहं न कस्यचिच्छक्या भुवनेऽत्र व्यपोहितुम् । विशल्यासुन्दरीमेकां मुक्त्वा दुःसहतेजसम्[3] ॥४७॥
मन्ये पराजये देवान् बलिनो नितरामपि । अनया तु विकीर्णाहं महत्या दूरगोचरा ॥४८॥
अनुष्णं भास्करं कुर्यादशीतं शशलक्ष्मणम् । अनया हि तपोऽत्युग्रं चरितं पूर्वजन्मनि ॥४९॥
शिरीषकुसुमासारं शरीरमनया पुरा । नियुक्तं तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःसहं ॥५०॥
एतावतैव संसारः सुसारः प्रतिभाति मे । ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपांसीह जन्तुभिः ॥५१॥
वर्षाशीतातपैर्घोरैर्महावातसुदुःसहैः । एषा न कम्पिता तन्वी मन्दरस्येव चूलिका ॥५२॥
अहो रूपमहो सत्त्वमहो धर्मे दृढं मनः । अशक्यं ध्यातुमप्यस्याः सुतपोऽन्याङ्गनाजनैः ॥५३॥
सर्वथा जिनचन्द्राणां मतेनोद्वहते तपः । लोकत्रये जयत्येकं यस्येदं फलमीदृशम् ॥५४॥
अथवा नैव विज्ञेयमाश्चर्यमिदमीदृशम् । प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥
पराधीनक्रिया साऽहं तपसा निर्जिताऽनया । व्रजामि स्वं पदं साधो[4] क्षम्यतां दुर्विचेष्टितम् ॥५६॥
एवं कृतसमालापां तत्त्वज्ञः शक्तिदेवताम् । विसृज्यावस्थितो वातिः स्वसैन्येऽद्भुतचेष्टितः ॥५७॥

पर्वत पर पहले जब बालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तब रावणने जिन-प्रतिमाओंके समीप भावनिमग्न हो मधुरगान किया था और अपनी भुजाकी नाड़ी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान्का दिव्य एवं शुभचरित वीणाद्वारा गाया था। रावणकी भक्तिके प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उसने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था। यद्यपि राक्षसोंका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणेन्द्रने प्रेरणा कर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था। यथार्थमें रावण किसीसे कोई वस्तुग्रहण करनेमें सदा संकुचित रहता था ॥४३-४६॥ वह मैं, इस संसारमें दुःसह तेजकी धारक एक विशल्याको छोड़ और किसीका पकड़में नहीं आ सकती ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस विशल्याने दूर रहने पर भी मुझे पृथक् कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वभवमें ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वभवमें अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमें लगाया था कि जो प्रायः मुनियोंके लिए भी कठिन था ॥५०॥ मुझे इतने ही कार्यसे संसार सारभूत जान पड़ता है कि इसमें जीवों द्वारा ऐसे ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीव्र वायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा शीत और घामसे यह कृशाङ्गी सुमेरुकी चूलिकाके समान रञ्चमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहो इसका रूप धन्य है, अहो इसका धैर्य धन्य है और अहो धर्ममें दृढ़ रहनेवाला इसका मन धन्य है। इसने जो तप किया है अन्य स्त्रियाँ उसका ध्यान भी नहीं कर सकतीं ॥५३॥ सर्वथा जिनेन्द्र भगवान्के मतमें ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीनों लोकोंमें एक जुदा ही जयवंत रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है? ॥५५॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, इसने मुझे तपसे जीत लिया। हे सत्पुरुष! अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुश्चेष्टा क्षमा की जाय ॥५६॥ इस प्रकार वार्तालाप करने वाली उस शक्तिरूपी देवताको छोड़ कर तत्त्वका जानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपनी सेनामें स्थित हो गया ॥५७॥

१. कम्पितासनकं म० । २. बिभ्रता म० । ३. तेजसाम् म० । ४. हनुमान् । ५. मान्ये म० ।

सुता तु द्रोणमेघस्य ह्रियालंकृतदेहिका । पादपद्मद्वयं पाद्मं[1] प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥५८॥
विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशंसना । वन्दिता खेचरैरन्यैराशीर्भिरभिनन्दिता ॥५९॥
शक्रस्येव शची पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्षणा । अवस्थिता महाभाग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥
मुग्धा मुग्धमृगीनेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसम्भारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥
परिष्वज्य रहो नाथं सुखसुप्तं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसंवाहनसुचारुणा ॥६२॥
गोशीर्षचन्दनेनैवमन्वलिम्पत सर्वतः । तथा पद्ममपि व्रीडाकिञ्चित्कम्पितपाणिका ॥६३॥
शेषाः कन्या यथायोग्यं शेषाणां खेचरेशिनाम् । चन्दनेनास्पृशन्मात्रं विशल्याहस्तसङ्गिना ॥६४॥
विशल्याहस्तसंस्पृष्टं चन्दनं पद्मवाक्यतः । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीतं यथाक्रमम् ॥६५॥
शीतलं तं समाघ्राय कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्वृतिं परमां प्राप्ताः शुद्धात्मानो गतज्वराः ॥६६॥

उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः क्षतविक्षताङ्गा द्विपास्तुरङ्गाः पदचारिणश्च[2] ।
अभ्युक्षितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशल्या नवभास्कराङ्गाः ॥६७॥
जन्मान्तरं प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।
उत्थाप्यते स्म प्रवरैर्नितान्तं सङ्गीतकैर्वेणुनिनादगीतैः ॥६८॥
ततः शनैरुच्छ्वसितोरुवक्षा नेत्रे समुन्मील्य तिगिञ्छताभ्रे ।
विक्षिप्तबाहुः शनकैर्निकुञ्च्य लक्ष्मीधरोऽमुञ्चत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलंकृत था, जिसने श्रीरामके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोंसे जिसकी प्रशंसा की गई थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्षणोंको धारण करने वाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गई जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास इन्द्राणी ही खड़ी हो ॥५८–६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली मृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें पृथिवी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिङ्गन कर उन्हें सुकोमल हस्त कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखने वाले गोशीर्ष चन्दनसे खूब अनुलिप्त किया तथा लज्जासे कुछ कुछ काँपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१–६३॥ शेष कन्याओं ने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीराम की आज्ञा अनुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनको सूंघकर तथा आदर के साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए। सबकी आत्माएं शुद्ध हो गईं तथा सबका ज्वर जाता रहा ॥६६॥

इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीरके धारक जो अन्य योधा हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जा कर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको बांसुरीकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल वक्षःस्थल धीरे धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी भुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोल कर तथा भुजाओंको संकोचित कर मोहरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥

१. पद्मस्येदं पाद्मं रामसम्बन्धि, पद्मं म०, ब० । २. पदकारिणश्च म०, ज० ।

[1]त्यक्त्वोपपादाङ्कशिलामिवासौ रणक्षितिं देव इवोद्धकायः ।
उत्थाय रुष्टः ककुभो निरीक्ष्य क्वासौ गतो रावण इत्युवाच ॥७०॥
ततः प्रफुल्लाम्बुजलोचनेन महाभिनन्दं भजताऽग्रजेन ।
उदाररोमाञ्चसुकर्कशेन प्रोक्तः परिष्वज्य लसद्भुजेन ॥७१॥
कृतार्थवत्तात दशाननोऽसौ हत्वा भवन्तं विजहार शक्त्या ।
त्वमप्यमुष्याश्चरितेन जीवं भूयोऽभजः[2] संस्तुतकन्यकायाः ॥७२॥
निःशेषतश्चास्य निवेदितं तच्छक्त्याहतिप्रेरणवस्तुवृत्तम् ।
अपूर्वमाश्चर्यमुदारभावं सुविस्मितैर्जाम्बवसुन्दराद्यैः ॥७३॥
तावत् त्रिवर्णाब्जविलासिनेत्रां शरत्समृद्धेन्दुसमानवक्त्राम् ।
शातोदरीं दिग्गजकुम्भशोभिस्तनद्वयां नूतनयौवनस्थाम् ॥७४॥
शरीरबद्धामिव मन्मथस्य क्रीडां विशालालससज्जितम्बाम् ।
संगृह्य शोभामिव सार्वलोकां विनिर्मितां कर्मभिरेकतानैः ॥७५॥
तां वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकस्थामचिन्तयद् विस्मयरुद्धचित्तः ।
लक्ष्मीरियं किन्नु सुरेश्वरस्य कान्तिर्नु चन्द्रस्य नु भानुदीप्तिः ॥७६॥
ध्यायन्तमेवं परिगम्य योषास्तमेवमूचुः कुशलप्रधानाः ।
स्वामिन् विवाहोत्सवमेतया ते द्रष्टुं जनो वाञ्छति मङ्गलोऽयम् ॥७७॥
कृतस्मितोऽसावगदत् समीपे समंशये युक्तमिदं कथं नु ।
ऊचुः पुनस्ते ननु वृत्त एव स्पर्शोऽनया ते प्रकटस्तु नासीत् ॥७८॥

जिस प्रकार उपपाद शय्याको छोड़ कर उत्तम शरीरका धारक देव उठ कर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिको छोड़ खड़े हो गये और दिशाओंकी ओर देख रुष्ट होते हुए बोले कि वह रावण कहाँ गया ? ॥७०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उत्कट रोमाञ्चोंसे जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे बड़े भाई श्रीरामने आलिङ्गन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्तिके द्वारा आपको मार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥७१–७२॥ तत्पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जाम्बव और सुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृत्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया–सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥७३॥

तदनन्तर जिसके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रङ्गके कमलोंके समान सुशोभित थे, जिसका मुख शरद्‌ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उदर कृश था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्थामें स्थित थी जो, मानो शरीरधारिणी कामकी क्रीड़ा ही थी, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिसे कर्मोंने एकाग्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥७४–७५॥ ऐसी समीपमें स्थित उस विशल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥७६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणको देख, मङ्गलाचार करनेमें निपुण स्त्रियाँ उनसे बोलीं कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥७७॥ यह सुन लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोंका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार

१. त्वक्त्वोप-म० । २. भुजः म० ।

भवत्प्रभावक्षतसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ भज त्वमस्याः ।
इत्यर्थनाद्गौरवतश्च वाक्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७९॥

मालिनीवृत्तम्

क्षणविरचितसर्वश्लाघ्यकर्तव्ययोगः पवनपथविहारिस्फीतभूतिप्रपञ्चः ।
अभवदमरसम्पत्कल्पितानन्दतुल्यः प्रधनभुवि विशल्यालक्ष्मणोद्वाहकल्पः ॥८०॥
इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मन्युदाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥८१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मचरिते विशल्यासमागमाभिधानं नाम पञ्चषष्टितमं पर्व ॥६५॥

उचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥७८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो। इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरव-पूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७९॥ तदनन्तर जिसमें क्षणभरमें समस्त प्रशंसनीय कार्योंका योग किया गया था, विद्याधरोंने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव सम्पदासे कल्पित आनन्दके समान था ऐसा विशल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव युद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें विशल्याके समागमका वर्णन करने वाला पैंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

[आ]

[प]

[श]